

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर) बरेली  
(उत्तर प्रदेश)

सम्पादक :

प० श्रीराम शर्मा आचार्य

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम सस्करण

१९६८

मुद्रक :

जगदीश प्रसाद भरतिवा

बम्बई भूषण प्रेस, मयुरा

मूल्य—सात रुपया

# भूमिका

पौराणिक साहित्य में 'श्री हरिवंशपुराण' कई दृष्टियों से एक विशेष स्थान रखता है। सामान्यतः इसे 'महाभारत' का 'खिला' (एपेंडिक्स) कहा गया है। अर्थात् 'महाभारत' में अपूर्ण रह गई कुछ घटनाओं की पूर्ति के लिये यह एक 'उपसंहार-भाग' की तरह लिखा गया है। स्वयं इस ग्रन्थ के आरम्भ में राजा जन्मेजय इसी भावना से इसके सुनने की इच्छा प्रदर्शित करते हैं। 'महाभारत' की कथा सुन लेने के बाद उन्होंने वैशम्पायन जी से कहा था—

“आपके द्वारा कही गई अथंगाम्भीयपूर्ण, श्रुति-सम्मत तथा विस्तारयुक्त महाभारत की कथा मैंने श्रवण की है। उसमें आपन प्रद्युम्न आदि अनेक वृष्णि एवं अन्यकवशी महारथियों के नामों का उल्लेख किया है और उनका कुछ वृत्तान्त भी सुनाया है। उन पुरातन पुराणों को उतने चरित्र-श्रवण से मेरी तृप्ति नहीं हो सकी। आपके कहने से यह भी विदित हुआ कि पाण्डव तथा वृष्णिबन्धियों का कुल एक ही था। अतएव हे महामुने ! आप भली प्रकार विचारपूर्वक प्रजापति से वृष्णिबन्धियों का तब का पूर्वपर वृत्तान्त मुझे सुनाइये कि किन किन का कहीं जन्म हुआ और उन्होंने कौन स महान कार्य किये ?”

इस कथन से प्रबल होता है कि 'हरिवंश' की रचना आरम्भ में भगवान् श्रीकृष्ण के पारिवारिक तथा महारथी व्यक्तियों के चरित्रों का वर्णन करने के उद्देश्य से ही की गई थी। महाभारत निस्सन्देह एक बहुत विशाल और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, पर कुरुक्षेत्र में होने वाले कौरव-पाण्डव महाग्राम की मुख्यता होना कारण उसमें भगवान् कृष्ण के 'यादव-वंश' का (जिसकी सम्पदा उस समय ६ करोड़ बतलाई गई थी) और जो वात्सल्य के निम्नी समय बड़ा सन्निवृत्त हो गया था, वर्णन बहुत कम दिया गया है। 'महाभाग्य' के अन्त में दिये गये 'मोक्ष-पर्व' में यदुवंश के पारस्परिक महारथी का वर्णन अवश्य किया गया है पर उन महारथियों ने कहीं-कहीं कमी की गयी दिखाई इसकी

कोई चर्चा उसमें नहीं पाई जाती । इसी वमी को पूरा करने के लिये 'श्रीरामायण' की रचना की गई है । इसके रचयिता 'महाभारत' के पश्चात् हुए थे । महाभारतकार से पूर्ण थड़ा रखते थे, यह भी उनकी लेखनी से ही सिद्ध है । प्रथम को आरम्भ करते हुए वे कहते हैं—'

"भगवान् व्यासजी के मुखारविन्द से निबले हुए अद्भुत, पवित्र, नाशक एवं सुखदायक 'महाभारत' को जो मनुष्य सुनता है उसे पुष्करादि में स्नान करने की क्या आवश्यकता है ? पराशर नन्दन एवं सत्यवती के पुत्र को आनन्द देने वाले उन भगवान् व्यासदेव की जय हो जिनके पुण्य-मुक्तार से निःसृत कथामृत का पान यह सम्पूर्ण विश्व करता है । जो मनुष्य स्वर्णमसीगो वाली सी गायें किसी बहुश्रुत एवं वेदज्ञाता ब्राह्मण को दान देता है अथवा जो परम पवित्र महाभारत की कथा श्रवण करता है, तो उन दोनों का समान ही होता है ।"

समय है हरिवंश का आरम्भिक रूप केवल 'महाभारत' के उपसंहार 'खिल' की तरह रहा हो, पर अन्य पुराणों की तरह कथावाचक विद्वानों । उसका भी विस्तार होता गया और वर्तमान समय में पुराणों के लक्षण—सर्ग, प्रतिसर्ग, वक्त्र, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित उसमें अच्छे रूप पाये जाते हैं । अदिसृष्टि का उद्भव, स्वायम्भुव मनु तथा दक्ष से जगत निर्माण की प्रक्रिया का आरम्भ, पृथु द्वारा पृथ्वी पर मानव-सम्भवा की स्थापना, स्वतः मनु और उनकी वंश, सूर्य तथा चन्द्रवंश का वर्णन आदि विषयों का पुराण में उत्तम रूप से प्रतिपादन किया गया है । इतना ही नहीं इसका अध्ययन करने पर पाठकों को विदित होगा कि 'पुराण' होने पर भी इसमें वास्तविक तथ्यों के समावेश करने की अन्य पुराणों की अपेक्षा अधिक चेष्टा की गई इसीलिये हरिवंशकर्ता ने एक स्थान पर इसे इतिहास समन्वित घोषित किया है

उक्ताय हरिवंशस्ते पर्वणि निखिलानि च ।

यथा पुरोवर्तानि तथा व्यास शिष्येणधीमता ॥

तत्त्वथ्यमानाममितमितिहास—समन्वितम् ।

प्रीणत्यस्मानमृतवत्सर्वं पापविनाशनम् ॥

“शौनक ने कहा कि पूर्वकाल में व्यास शिष्य बुद्धिमान वैशम्पायन जी जिस प्रकार हरिवंश का वृत्तान्त सुनाया था उसी प्रकार आपने भी कहा है। पापनाशक, इतिहास समन्वित अमृत तुल्य हरिवंश-वर्णन सुन कर हम अधिक आनन्दित हुए हैं।”

यद्यपि पुराणों का मुख्य उद्देश्य धार्मिक तत्त्वों को उपदेशात्मक कथाओं रूप में वर्णन करके पाठकों को मनोरंजन के साथ नैतिक और चारित्रिक धार्य देना है, इसलिये उनमें ऐतिहासिक तथ्यों को वास्तविक रूप में दूँटना या उनकी प्रत्येक बात को यथार्थ घटना मान लेना अनावश्यक है। फिर प्राचीन राज्यवंशों और राजाओं की नामावली का पता लगाने में देशी और देशी इतिहास लेखकों ने ‘हरिवंश’ को अन्य कितने ही पुराणों की अपेक्षा अधिक मान्यता दी है। इसी प्रकार भारतीय संस्कृति, कला, रहन-सहन, भूषण आदि के लिये भी ‘हरिवंश’ के वर्णन अपेक्षाकृत अधिक सारयुक्त माने जाते हैं। इसका स्वाध्याय करते हुए पाठक को स्वतः ही ऐसा अनुभव होने लगता है कि विविध विषयों का वर्णन करने में इसके रचयिता ने स्वाभाविकता विशेष ध्यान रखा है और लगन-कला का अच्छा परिचय दिया है।

### हरिवंश का कृष्ण-चरित्र—

यद्यपि भारतीय-साहित्य के सभी प्राचीन कथा-ग्रन्थों में भगवान् कृष्ण का चरित्र वर्णन किया गया है, पर ‘हरिवंश’, ‘भागवत’, ‘ब्रह्मवैवर्त’ आदि का मुख्य विषय कृष्ण-चरित्र का वर्णन और महत्त्व प्रदर्शित करना ही है। पर ही ‘भागवत’ में कृष्ण के बाल-चरित्र को प्रधानता दी है और गोकुल तथा रावन की घटनाओं के वर्णन को ही अधिकाधिक स्थान दिया है, वहीं ‘हरिवंश’ में कृष्ण के प्रौढावस्था के चरित्रों का विशेष रूप में वर्णन किया गया और उनके द्वारकापुरी के जीवन पर विस्तृत रूप में प्रकाश डालने की चेष्टा की है। पर इन दोनों ही ग्रन्थों में कृष्ण की महाभारत सम्बन्धी घटनाओं का प्रा भी नहीं किया गया। इसी से अनेक विद्वान् महाभारत में कृष्ण और गणपत तथा ‘हरिवंश’ के कृष्ण को पृथक् व्यक्ति मानने की कल्पना करते रहते हैं। वास्तव में भारतीय-साहित्य में भगवान् कृष्ण का चरित्र इनका



अधिक व्यापक और विविधतापूर्ण है कि उपनिषदों से लेकर पुराणों तक में विभिन्न भावों को लेकर विवक्षित हुआ है। इससे विस्तृत रूप पर विचार करते हुए एक शोध ग्रन्थ में कहा गया है—

“कृष्ण चरित्र एक प्राचीन वृत्तान्त है। अनेक ग्रन्थ कृष्ण के चरित्र किसी न किसी प्रकार परिचय की सूचना देते हैं। ‘महाभारत’ कृष्ण-चरित्र परिचित ही नहीं, वरन् उसे एक महत्त्वपूर्ण विषय सामग्री के रूप में प्रस्तुत करता है। इस विशाल ग्रन्थ के अन्तर्गत कृष्ण के व्यक्तित्व के विविध रूप देखे जा सकते हैं। ‘महाभारत’ के आरम्भ में ही कृष्ण को ‘युधिष्ठिर धर्म वृक्ष का मूल’ कहकर कौन्व और पाण्डवों के वृत्तान्त में उनके स्वतन्त्र व्यक्तित्व को प्रस्तुत किया गया है। उनके ‘वनपर्व’ में मार्कण्डेय ऋषि प्रलय काल में जगत की आत्मसात् करने के बट-वृक्ष के पत्र में शयन करने वाले विष्णु को ‘कृष्ण रूप’ बतलाते हैं। ‘शांतिपर्व’ का नारायणीय-वृत्तान्त कृष्ण के परब्रह्म स्वरूप पर सबसे अधिक प्रकाश डालता है। इसमें नर-नारायण, कृष्ण और हरि को सनातन नारायण के चार अवतार कहा गया है। शांति पर्व के ‘भीम स्तवराज’ के अन्तर्गत कृष्ण के विष्णु स्वरूप की स्तुति की गई है। समापर्व राजसूय यज्ञ के अवसर पर कृष्ण की अग्र पूजा में शिशुपाल आदि राजाओं विरोध करने पर भी भीष्म कृष्ण के विष्णुस्वरूप पर जोर देते हैं।”

“महाभारत के कुछ स्थलों पर कृष्ण के देवस्वरूप को छोड़कर उन मानव रूप को ही प्रस्तुत किया गया है। पाण्डवों के सलाहकार के रूप में कृष्ण के ईश्वरत्व पर विश्वास न करने वाले ब्राह्मण उनकी सीमित शक्ति की ओर संकेत करते हैं। अश्वमेध पर्व के अनुगीता-भाग में उत्तक ऋषि का कृष्ण को शाप देने को उद्यत होना भी उनके मानव चरित्र की ओर संकेत करना है। समापर्व, वनपर्व तथा शांतिपर्व में कृष्ण के गोपाल रूप का वर्णन भी पाया जाता है।”

“पतञ्जल का ‘महाभाष्य’ कृष्ण के व्यक्तित्व पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। इसमें वामुदेव को कस का निहन्ता कहा गया है। कस की घटना प्रस्तुत करने के कारण ‘वामुदेव’ कृष्ण का ही नाम जाना होता है। पाणिनि के ‘अष्टाध्यायी’ में भी वामुदेव का उल्लेख है। पाणिनि स का समय विद्वान्

भगवान् ढाई हजार वर्ष प्राचीन माना है। इस प्रमाण में कृष्ण-भूजा पाणिनि से बहुत अधिक पुरानी सिद्ध होती है। वामुदेव का आशय कृष्ण से ही है, यह 'गीता' के दसवें अध्याय के इस श्लोक में भी सिद्ध होना है—

“वृष्णीना वामुदेवोऽस्मि पाण्डवाना धनजय”

“ ‘छान्दोग्योपनिषद्’ में देवकी-मुत्र कृष्ण को गुरु घोर-आगिरम से ब्रह्म-विद्या सीखते हुए वर्णित किया गया है। छान्दोग्य की प्राचीनता सर्वमान्य है। अधिकांश विद्वान् उसे बौद्ध-यान के पहले का प्रमाणित करते हैं। ”

हरिवंश में कृष्ण विष्णु के अवतार हैं—

अधिकांश पुराणों में कृष्ण को विष्णु का अनावतार अथवा पूर्णावतार बताया गया है। ‘हरिवंश’ में भी पृथ्वी के कष्टों को मिटाने के लिये विष्णु के कृष्ण-रूप में अवतरित होने का वर्णन किया है—

“ह राजन् ! जलीय मेघों के महस्य स्वाम वर्ष भगवान् श्री विष्णु बोले—ऐसा ही हो तथा समस्त देवगणों सहित वे मेरा शिखर की ओर चर दिये। जब समस्त तदस्य ममा मे जानिपूर्वक बैठ गये तो पृथ्वी शोरपूर्ण और वर्णाजनक शब्दों में विष्णु की से कहने लगी—हे भगवन् ! यह समस्त ममार, समस्त प्राणी और मैं स्वयम् भी आप में ही समाविष्ट हैं। आप अपने तेज और शक्ति में जिनको धारण करते हैं आपकी महत्ता में मैं भी उनका भार सहन करती हूँ। अगर आप उनको धारण न करें तो मैं भी उनका बोझ नहीं ढो सकती। आप ही हर एक युग में मेरा भार सहन करते आये हैं। हे देवादिदेव ! मैं आपकी शरण में आई हूँ अब आप मेरी रक्षा करने मुझे निर्भय कीजिये। जब-जब दुष्ट दैत्यों तथा राक्षसों ने मुझे पीड़ा पहुँचाई है तत्पक्ष में आपकी शरण आई हूँ। हे प्रभो ! समार के हित के लिये वेद न जाय ही युद्धक्षेत्र में थीर तथा निष्ठर क्षत्रिय राजाओं का विनाश कर सकते हैं। मैं इन राजाओं का अत्यन्त बोझ वहन करने के कारण कष्ट में पीड़ित होकर आपकी शरण में आई हूँ। आपके अनिश्चित कोई और मेरा महादक नहीं है।”

पृथ्वी द्वारा प्रार्थना की जाने के पश्चात् ब्रह्माजी ने भी निवेदन किया—  
हे भगवन् ! ऐसा कोई कार्य कीजिये जिससे कि पृथ्वी का कष्ट दूर हो। इन

तीनों लोकों की रक्षा आपने ही है तथा आप ही इनके स्वामी हैं। अब हम समस्त देवगण इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, चन्द्र, सूर्य, वायु, आदित्यगण, आश्वि, रुद्रगण, अश्विनीकुमार, साध्यगण, बृहस्पति, शुक्र, स्वामि-वार्तिकेय, यम, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, पर्वत, सागर, गंगादि नदियाँ आदि को क्या करना चाहिये यह विस्तार से बतला दीजिये। अगर आप राजाओं में परस्पर युद्ध बरान पृथ्वी का भार हलका करना चाहते हैं तो हम लोगों को बतलाइये कि हम क्या-क्या करना है ?”

इस योजना के अनुसार जब देवताओं के अश्वि ने अनेक वीरों के रूप में पृथ्वी पर जन्म ग्रहण कर लिया पर भगवान् विष्णु अपने लोक में ही बँधे रहे तो नारद जी उनको फिर से याद दिलाने को पहुँचे और कुछ नाराज होकर कहने लगे—‘हे विष्णु ! समस्त देवगणों ने उन अनेकों राजाओं का सहाय करने के लिये नाना प्रकार के अवतार धारण किये हैं। पर यह सब व्यर्थ है जब तक नर-नागयण दोनों ही पृथ्वी पर अवतीर्ण न हों तब तक कुछ न हो सकेगा। आप ही इन राजाओं का परस्पर संघर्ष कराके सहार कर सकते हैं। आप सभी तत्त्वों के देखने व जानने वाले हैं, फिर भी आपकी यह योजना उत्तम नहीं है। जब सभी देवगणों ने पृथ्वी का कष्ट दूर करने के लिये अवतार धारण कर दिया तो फिर अभी तक आपने अवतार क्यों नहीं लिया ? समस्त देवगण जो अवतार धारण कर चुके हैं तभी अपने अभीष्ट को पूर्ण कर सकें। जब आप उनको सहायता तथा प्रोत्साहन देंगे। आपके अवतीर्ण होने से पार्वत का सहार होकर पृथ्वी का भार हलका हो सकेगा। भारत का यह अभीष्ट कार्य आप ही सिद्ध कर सकते हैं, अतः भारतभूमि पर शीघ्र अवतार लीजिये।’

### महामानव कृष्ण—

इन वर्णनों से प्रकट होता है कि श्रीकृष्ण की मान्यता और भगवान् के रूप में उनकी पूजा उपासना पिछले दो-तीन हजार वर्षों से भारतवर्ष के अनेक भागों में प्रचलित थी और पुराणकारों ने अपनी अपनी भावना के अनुसार अगावनार अथवा पूर्णावतार के रूप में उनका चरित्र चित्रित किया है। ‘हरि-युग’ में भी उनका वर्णन विष्णु के एक महत्त्वपूर्ण अवतार के रूप में किया

गया है। पुराणों के अनुसार श्रीकृष्ण के चरित्र की जयिनाग घटनाएँ चमत्कारी और देखी ही बही जा सकती हैं। तो भी 'हरिवंश पुराण' में जगह जगह उनका वर्णन और बार्तालाप ऐसे ढंग में किया गया है जिसमें वे एक महामानव और जननायक अथवा राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में प्रकट होते हैं। छोटी अवस्था में ही जब वे गोकुल में रह कर गोपानन करने थे, तभी से उनमें जनहित की गहरी भावना पैदा जाती थी और वे उनके लिये समयानुकूल प्रयत्न करने में किसी प्रकार का मकोच नहीं करते थे। जब उन्होंने देखा कि मथुरा नगर के समीप होने से गोकुल की भूमि और वन-सम्पत्ति का अथ तीव्रता में हो रहा है तो उन्होंने उस स्थान को बदलने की योजना बनाई और उसे प्रकट करते हुए बलराम जी से कहा—

“हे धाम ! अब इस वन में गोप-बालकों के साथ खेलना उचित नहीं, क्योंकि हम इसका उपयोग भली प्रकार कर चुके हैं। अब यहाँ घाम और बाष्प प्राप्त करने सायन वृक्ष भी कम रह गये हैं क्योंकि गोशों ने वृक्षों का काट डाला है। पहले यह वन वृक्षों में इतना परिपूर्ण था कि और कुछ भी दिखाई नहीं देता था, परन्तु अब उन वृक्षों के कट जाने पर सग्नता में दूर तक देखा जा सकता है। गोशाला और उनकी प्राचीर पर स्थित वृक्ष ब्रज की अग्नि में दग्ध होकर प्रभाहीन हो गये हैं। जो घाम अथवा बाष्प पहले गोकुल के समीप था अब वह बहुत दूर हो गया है तथा यत्नपूर्वक उगकी सोच करनी पड़ती है। इस वन में घाम, जल और विश्रामस्थल मिटना अब कठिन हो गया है। यहाँ के सभी वृक्ष बेकार हो चुके हैं, इसलिए वनवासी पशुओं ने इन्हें त्याग दिया है। यहाँ के निवासियों ने वृक्षों को काट डाला है, इसलिए अब इस वन में घाम के सुगंध शक्ति उपलब्ध नहीं होने। पशुओं के चने जाने से अब यह वन शत्रादि से हीन भोजन के समान निरानन्द हो गया है।

“वन में उत्पन्न वनस्पतियों और बाष्प का विनाश होने से यहाँ इन वस्तुओं का अभाव होता गया है। पर्वतों की शोभा घाम है, घासों की शोभा वन तथा पत्तों की शोभा शीत है, यही हमारी परम गति है। इसलिए इस स्थान को छोड़ कर हमें वही करना चाहिये जहाँ घाम और बाष्प भग्नुर भित्त में,

वयोधि' गोएँ नवीन वृण घरना चाहती है। हम ब्रजवासियों के लिये वंश भी निश्चित घर, क्षेत्र अथवा द्वार आदि का बन्धन नहीं है। हम तो हम-भारत आदि पक्षियों के समान जहाँ वही भी जाकर रहने लगे, वही स्थान ब्रज बन जाता है। यहाँ की घास में गोबर और मन-भूषादि के मिश्रित हो जान में एक प्रकार का क्षार उत्पन्न हो गया है, इसलिये गोएँ उसे दधिपूर्वक नहीं घरती और उससे उनका दूध भी उतना हितकारी नहीं होता। इसलिये हमें नवीन वृणयुक्त समतल बन्ध-प्रदेश में अपनी गौआ सहित बन देना चाहिये।"

इस प्रकार भगवान् कृष्ण के हृदय में बाल्यावस्था से ही लोकहित की सामूहिक भावना पाई जाती थी। वे यह भी समझते थे कि गौपालन करने वाले मानव समुदाय को किसी एक स्थान में बंध कर रहने की आवश्यकता नहीं वरन् जब जहाँ चारा और जलधायु उत्तम मिले वही जाकर निवास करना चाहिये। पर अधिकांश मनुष्य स्वभाव से रुढ़िवादी और परम्पराप्रिय होते हैं इसलिये अनेक असुविधाओं और हानियों को सहन करके भी नवीन परिवर्तन को अपनाने के लिये तैयार नहीं होते। इसलिये श्रीकृष्ण ने उनको युक्ति का अवलम्बन करके आतंकित किया और गोकुल से हटा कर वृन्दावन के नये और मान्य मन्थन प्रदेश में ले गये।

### जन-सेवा की भावना—

वृन्दावन पहुँच कर उन्होंने लोगों की सुरक्षा और सुख सुविधा की वृद्धि के लिये विशेष प्रयत्न किया और वहाँ जितनी विघ्न बाधाएँ तथा संकट सामने था उसका निराकरण किया। उनके द्वारा कालिय नाग, दनुवासुर, अरिष्ठासुर, केशी आदि का विनाश किया जाना इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये था। उन्होंने अनुभव कर लिया था कि जब तक जन जीवन को सुरक्षित और निष्कटक न बनाया जायगा तब तक उसका अच्छी तरह विकास और वृद्धि होना संभव नहीं। इसलिये उन्होंने गोप युवकों में तरह-तरह के क्रीडा आयोजनों द्वारा सामूहिकता की भावना उत्पन्न की और सम्मिलित प्रयत्नों द्वारा बड़ी से बड़ी बाधा का निराकरण करके वृन्दावन को सब प्रकार से एक आदर्श उपनिवेश बना कर दिखा दिया।

श्रीकृष्ण द्वारा इन्द्रोत्सव के स्थान पर गोवर्धन-पूजा का प्रचलन भी इसी मनोवृत्ति का द्योतक था। इन्द्रोत्सव विशेष रूप से कृषिकार्य पर आधार रखने वाले जागृता की परम्परा थी, जो इन्द्र-योग आदि के द्वारा यथोचित वर्षा होने की कामना रखते थे जिससे अन्न की उपज ठीक हो सके। पर वृन्दावन का गोप-समुदाय मुख्य रूप से पशुपालक समुदाय था जिसका मुख्य उद्देश्य उत्तम गोचर-भूमि और किंचित शुष्क वातावरण प्राप्त करना होता है। ऐसी परिस्थितियाँ पर्वतों की तलहटी में अधिक होती हैं और वह भूमि कृषि की अपेक्षा पशु सम्बर्द्धन के लिये ही विशेष उपयुक्त मानी जाती है। इसलिये श्रीकृष्ण ने अपने नये उपनिवेश की सीमा गोवर्धन पर्वत के समीप तक बढ़ाई और लोगों को यह प्रेरणा दी कि उस क्षेत्र को ही अधिकाधिक विकसित करने की ओर ध्यान दें। उन्होंने इस सिद्धान्त को गोप जाति के मुखियाओं को समझाते हुए कहा—

“हमारी जीविका तो गोधन से चलती है और हमारे देवता भी पर्वत, वन और गौएँ ही हैं। कृषकों की जीविका खेतों से और वैश्यों की जीविका व्यापार से है, वैसे ही हमारी जीविका का साधक गोधन है। विद्या-साधन का आराध्य विद्या ही होती है और वह सरस्वती का ही पूजन करता है। इसके विपरीत जो लोग किसी एक देवता द्वारा जीविका प्राप्त करते हुए अन्य देवता का पूजन करते हैं, उन्हें इह लोक और परलोक दोनों में ही सुख नहीं मिलता। कृषि की सीमा खेत है, खेत की सीमा वन है और वन की सीमा पर्वत है। वे पर्वत ही विविध रूप धारण कर वनों की रक्षा करते हैं। वे वनों में विघ्न उपस्थित करने वाले दुराचारियों को नष्ट कर देते हैं। ब्राह्मण लोग मन्त्र-यज्ञ और कृषक हलके अग्रभाग से कृषि-यज्ञ करते हैं, उसी प्रकार हम गोपों को गिरि यज्ञ करना चाहिये, क्योंकि हमारा हित उसीसे सम्बन्धित है। अब वर्षा समाप्त होकर शरद ऋतु आगई है, खेतों में अन्न परिपक्व हो गये हैं, पर्वत पर वृक्षों की शाखाएँ घर के समान विसृत होकर झुक गई हैं, इसलिये हम भी गौआ को सजा कर इस पर्वत-देवता का पूजन करना उचित ही है।”

इस प्रकार श्रीकृष्ण ने पशु-पालक समुदाय की अर्थ-व्यवस्था पर यथायथ काश डाल कर उनका सच्चा मार्ग-दर्शन किया और उनको इन्द्र-यज्ञ के स्थान

पर गोवर्द्धन-उत्सव की प्रेरणा दी जो उनके लिये अधिक हितकर थी। गोवर्द्धन-उत्सव या आश्विन-पर्वत की पूजा ही नहीं थी, पर गो वध की उन्नति तथा विकास सम्बन्धी सभी विषयों पर विचार करने लाभकारी योजना बनाना तथा उनको कार्यान्वित करने की विधियों को सोचना भी था। जिस प्रकार आज-कल उद्योग धर्मों तथा राष्ट्रीय संपत्ति की वृद्धि के लिये विभिन्न योजना-आयोग बनाये जाते हैं और समय-समय पर उनकी बैठकें होकर विभिन्न कार्यक्रमों पर विचार किया जाता है उसी प्रकार उस गुण में सामूहिक उत्सव और मेले ही सार्वजनिक हित की योजनाओं को निश्चित करने और आगे बढ़ाने में सहायक होते थे। भगवान् कृष्ण ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये जो उपाय निकाला वह पूर्णतः कल्याणकारी सिद्ध हुआ और किसी रूप में अभी तक प्रचलित रह कर गो वध की महिमा को प्रकट कर रहा है।

### राजनीतिक दोषों का निराकरण—

जिस प्रकार भगवान् कृष्ण ने लोकहितकारी, बुद्धिसंगत दृष्टिकोण अपना कर सामाजिक और आर्थिक सुधारों का प्रयत्न किया, उसी प्रकार राजनीतिक क्षेत्र में भी उन्होंने सर्वोत्कृष्ट सूक्ष्म-बुद्ध और समयानुकूल गतिविधि का परिचय दिया। उनके समय में कस का दूषित और निरकुश साम्राज्यवाद चल रहा था। वह एक नीच स्वभाव का महत्वाकांक्षी ध्वजित था, जिसने राज्य की लालसा से अपने पिता को सिंहासन से उतार कर उस पर जबर्दस्ती अधिकार कर लिया था। अपनी स्वार्थपूर्ण नीतिका विरोधी होने के कारण अपने बहनोई वसुदेव जी को बन्दीगृह में बंद कर दिया था। वह अपनी सामान्य प्रजा पर कठोर का भार भी बढ़ा रहा था, जिससे एक बड़ी सेना खड़ी करने राज्य का अधिकाधिक विस्तार कर सके। वह अन्य प्रदेश में रहने वाली गोप जैसी अन्य-साधन सम्पन्न जाति पर भी दूध-घी देने का दंड लगा रहा था। इन सब कारणों से उसकी समस्त प्रजा तथा अधिकांश राज्य वर्गचारी भी उससे असंतुष्ट थे। पर उसकी क्रूरता और दमन नीति के कारण विभीषण का ग्राह्य प्रकट रूप से उसका विरोध करने का नहीं होता था।

श्रीकृष्ण को कस का यह अनैतिकपूर्ण शासन और अनियंत्रित सैनिकवाद

देश और समाज के निचे घानक जान पडा और वे वृन्दावन के वन्य-प्रदेश मे ही उसने विरोध मे जन-सगठन करने लगे । जब अपन गुप्तचरों द्वारा कस को इस रहस्य का भेद ज्ञात हुआ तो उसने कृष्ण-वलराम को गुप्त रूप से मरवा डालने के अनेक प्रयत्न किये, पर श्रीकृष्ण को जागरकता और शक्ति सम्पन्नता के कारण उसकी कोई दुरभिसधि सफल न हो सकी । तब उसने पहलवानों के दगल के बहाने श्रीकृष्ण को अपनी राजधानी मे बुलवा कर उनकी हत्या कराने का पडयत्र रचा । इस पर श्रीकृष्ण ने भी खुल कर उक्का मुकाबला करना तथा उसके पापपूर्ण शासन का अन्त कर डालने का निश्चय किया । उन्होने अपनी बुद्धिमत्ता और नीतिज्ञता से कस के बड़े-बड़े अधिकारियों तथा घरेलू नौकरों तक को अपनी तरफ मिला लिया और कस की बड़ी-बड़ी तैयारियों तथा घातक योजनाओं को चकनाचूर करके अचानक ही उसे यमलोक पठा दिया । उनका यह कार्य जिस प्रकार लोकहित की दृष्टि से किया गया था, इसका परिचय 'हरिवंश' के उस अध्याय से मिलता है जिसमे कस-वध के पश्चात् कस के पिता उग्रसेन और श्रीकृष्ण का वयोपवचन दिया गया है । जब उग्रसेन कृष्ण की महान शक्ति और सगठन-योग्यता द्वारा कुछ ही घण्टी के भीतर कस को पराभूत और नष्ट हुआ देखते हैं तो तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार वे उनसे राज्य-अधिकार और शासन-भत्ता ग्रहण करने को कहते हैं । वे श्रीकृष्ण को एक विजयी राजा के रूप मे मानते हैं और उनसे सम्मुख दीनता और वदयता का भाव प्रकट करने हैं । इस पर श्रीकृष्ण ने उनको स्पष्ट रूप से अपना उद्देश्य और मन्तव्य समझाते हुए कहा—

नहि राज्ये न मे कार्य नाप्यह नृप काक्षितः ।

न चाहि राज्यं लुब्धे न मया कसौ निपातितः ॥

किं तु लोकहितार्थाय कीर्त्ययं च सुतस्तव ।

व्यगमूत कुलस्यास्य सानुजो विनिपातितः ॥

“मुझे राज्याधिकार से कोई सम्बन्ध नहीं है, न मुझे राजा बनने की आकांक्षा है और न मैंने राज्य के लोभ से कस को मारा है । वरन् जब मैंने यह देखा कि वह अनुचित और अपने वश को कलवित करने वाले कार्य कर



रहा है तब 'लोक-रक्षायण' की दृष्टि से ही मैंने उसका और उसके छोटे भाई के जीवन का अन्त किया है ।"

उन्होंने उग्रसेन जी को विश्वास दिलाया कि मुझे बस स काई शत्रुता नहीं थी, पर वह राज्य-मंद में अन्धा होकर प्रजा तथा अपने सम्बन्धियों के साथ जो दुर्व्यवहार कर रहा था और प्रजा को साम्राज्यवाद के पजे में जकड़ रहा था इसी कारण मैंने उसके विरुद्ध विद्रोह का क्षण्डा ऊँचा किया । अब वह उद्देश्य पूरा हो गया, इसलिये मैं तो उसी वन्य-प्रदेश में जाकर गौएँ चराना ही सबसे अधिक पसन्द करता हूँ । इस रिक्त राज्य सिंहासन पर आप ही विराजमान हो, आप ही इसके न्यायोचित अधिकारी हैं, मैं तो एक देश-सेवक तथा समाज-सेवक के नाते आपकी जितनी भी सेवा और सहायता हो सकेगी उसनी किया कहूँगा ।

### सामाजिक अवस्था का दिग्दर्शन—

प्रत्येक पुराण में कलियुग-वर्णन का एक प्रसंग पाया जाता है, जिसके विषय में विद्वानों का मत है कि वह उस काल की सामाजिक दशा का द्योतक है, जिसमें उस पुराण की रचना अथवा विस्तार किया गया था । हरिवंश के 'भविष्य-मर्व' में भी आरम्भ में ही यह प्रसंग उठाया गया है और कहा है—

"कलियुग में राजा अपनी इन्द्रियों के दास बनकर प्रजा-रक्षण से परा-मुख हो जायेंगे । वास्तविक क्षत्रियों का राजसिंहासन पर अधिकार नहीं रहेगा और ब्राह्मण शूद्रों की जीविना अपनायेंगे । पक्ति भेद का नाम न रहेगा और सब लोग एक साथ बैठ कर भोजन करेंगे ( जैसा होटलों में देखा जाता है ) । नौकर अपने मालिकों से प्रतिस्पर्धा करने लगेंगे और उनका सर्वस्व अपहरण कर लेन में भी सकोच नहीं करेंगे । उस समय धन की ही पूजा होगी । सज्जन उपेक्षणीय समझे जायेंगे और पतितों की बही निन्दा नहीं की जायगी । और—

अट्टट शूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथा ।

प्रमदा केश शूलाश्च भविष्यति युगक्षये ॥

'सभी लोग अन्न को बेचने लगेंगे, ब्राह्मण धर्म को बेचने वाले हो जायेंगे और स्त्रियाँ अपने रूप-सौन्दर्य का विक्रय करने लगेंगी—उस युग के अन्त

मे सर्वत्र यही दशा दिखाई पड़ेगी ।" पामर जनो से लेकर साधारण लोग तर ब्रह्मवाद के बहाने बर्भक्ष्य हो जायेंगे । कलिपुग मे ब्राह्मण तपस्या और मनो के फल को चर्चेंगे और समस्त ऋतुएँ समय विरुद्ध प्रवर्तित ह्यगी । सूद्रगण भय-मौत त्याग कर स्वतन्त्र, सूक्ष्मदर्शी मुण्डितमुण्ड या नापाय वेप धारो होकर बोद्ध अथवा जैन-मत को मान कर वेद विरुद्ध आचरण करेंगे । पृथ्वी पर हिसक जीवो की अधिकता हो जायगी और गौओ का हास होने लगेगा । सभी वस्तुओ का स्वाद घट जायगा । उन समय म्लेच्छगण मध्यदेश मे और मध्यदेश निवासी म्लेच्छदेशो मे जाकर रहने लगेगे । समार के सभी लोग शौर्य वृत्ति अवलम्बन करके परस्पर एक दूसरे का धन अपहरण करते हुये अल्प आयास से ही धनी बन जायेंगे और सरह-तरह के व्यसनो मे पॅन कर दुर्दशाग्रस्त होन लगेगे—

सर्वे वाणिज्यकाश्चैव भविष्यन्ति कलौयुगे ।

कलिपुग मे सभी लोग वाणिज्य-वृत्ति का अवलम्बन करके उदरपालन करने वाले होंगे । समस्त पृथ्वी वृथा रूप-गविता एव दुश्चरित्रा नारियों से भर जायगी और उनकी सख्या पुरुषो से अधिक हो जायगी । ब्राह्मण लोग बिना विचारो सभी वर्णों का दान लेते फिरेंगे । समार के सभी लोग राज-दण्ड, चोर-दण्ड और अग्नि-दण्ड से नितान्त दुःखी होकर नष्ट होने लगेगे । सेतो मे बोपा हुआ बीज भी नष्ट हो जायगा । तरुण पुरुष वृद्ध जैसे दीखेंगे । ब्राह्मणो मे केवल क्रोधमात्र की निपुणता शेष रह जायगी । क्षत्रियगण वैश्यो के समान धन-धान्य का क्रय-विक्रय करके जीविकायापन करेंगे । अनावश्यक होने पर भी लोग झूठी प्रतिज्ञा करेंगे और शपथ लेंगे । नीच प्रवृत्ति वाले ही नही, उच्च कहलाने वाले भी ऋण लेकर हडप कर जायेंगे । गोधन की कमी होने पर लोग दूध के लिये बकरियाँ पालेंगे । शास्त्रज्ञान बिहीन लोग इच्छानुसार शास्त्रीय नियमो का प्रतिपादन करेंगे और अनुभवी वृद्धो से उपदेश प्राप्त किये बिना ही सब कोई अपने को सर्वज्ञ और विज्ञ समझने लगेगे । इसना ही नही—

न कश्चिद् कविर्नाम युगान्ते समुपस्थिते ।

उस कलिपुग मे कोई मनुष्य 'अकवि' न रह जायगा, अर्थात् सभी

साहित्य के ज्ञाता होने का दावा करेंगे । पुत्र पिता से और स्त्रियाँ अपनी माता से सेवा कार्य लेगी, गुरु के प्रति शिष्य का गर्जन-तर्जन भीषण हो उठेगा ।”

आजकल इन बातों में से अधिकांश प्रत्यक्ष होती दिखाई पड़ रही हैं और इससे लोग बात बात में वर्तमान युग की निन्दा करते हैं । पर हरिवंश के इस प्रसंग से अनुमान किया जा सकता है कि इस प्रकार की दुष्प्रवृत्तियाँ आज से दो डेढ़ हजार वर्ष पहले भी पाई जाती थी, चाहे उग समय उनका विस्तार अधिक न हुआ होगा । उस समय सर्वसाधारण में इन दूषित मनोवृत्तियों के लक्षण देखकर ही पुराणकार ने भविष्य का अनुमान करके यह चित्र खींचा है ।

‘विष्णु पुराण’ में भी कलियुग का वर्णन करते हुए लोगों की बढती हुई स्वार्थमयी मनोवृत्ति को देख कर जग के परिवर्तनों का जो वर्णन किया गया है वह इससे मिलता-जुलता ही है । उसमें पराशर जी ने कहा है—

“कलियुग में मनुष्यों की प्रवृत्ति वर्णाश्रम धर्म और वेदत्रयी युक्त नहीं होती । उस समय धर्म-विवाह, गुरु शिष्य सम्बन्ध, दाम्पत्य जीवन का क्रम और अन्य धर्मानुष्ठानों का लोप हो जाता है । जिसके भुख से जी निवस जाय वही शास्त्र मान लिया जाता है । भूतगण देवता बन जाते हैं और सभी के लिये सब आश्रम खुले होते हैं । स्त्रियाँ धनहीन पति का त्याग करेगी और धन को ही पति बनायेंगी । अधिक धन देने वाला ही स्वामी होगा, कुलीनता तथा सज्जनता का कोई महत्व नहीं होगा । सभी व्यक्ति अन्यायपूर्वक धन ग्रहण करवाने की इच्छा करेंगे । शूद्र ब्राह्मणों की समानता करेंगे और दूध देने के आधार पर ही गौओं का सम्मान किया जायगा । भूख से व्याकुल हुई प्रजा अनावृष्टि के भय से आकाश की ओर ताकती रहेगी । ब्रह्मचारी व्रतादि न करने वाले गृहस्थ सत्पान को दान न देने वाले, वानप्रस्थ मगर का भोजन पसन्द करने वाले और सन्यासी अपने परिवार वालों के प्रेम में फँसे रहने वाले होंगे । त्रियुग में राजागण कर लेने के बहाने प्रजा को लूटने वाले होंगे । अधम लोग सन्यासी के वैप में मिथ्यावृत्ति करेंगे और सम्मानित हो पाखंड की वृद्धि करेंगे ।

मंत्रेय जी ! जंमे-जंमे धर्म की हानि होनी हुई दिखाई दे, वैसे-वैसे ही कलि-  
का वटना हुआ समझन ।”

चास्तव मे कलियुग अथवा पाप-युग का मुख्य लक्षण यही है । जब भी धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती दिखाई दे सभी कलियुग समझ  
रहा जाय । अन्य सब बुराईयाँ उसी के अन्तर्गत आ जाती हैं । ऐसी परिस्थि-  
तियाँ प्रत्येक युग मे बीच-बीच मे पैदा होती रहती हैं । इस और बालयवन  
सो का शासन किसी युग में क्यों न हो उसे कलियुग ही समझना चाहिये ।  
इतना अवश्य है कि इसकी अधिक वृद्धि सभी होगी जब धन की अधिक  
वृद्धि होगी तथा मनुष्य नैतिकता तथा धार्मिकता की अपेक्षा उसे अधिक महत्त्व  
दे । जब कभी साम्राज्यवाद और पूँजीवाद की प्रवृत्तियाँ बढ़ेंगी सर्वसाधारण  
के अनेक प्रकार के दोष उत्पन्न होंगे और दुर्गुणों की वृद्धि होने लगेगी ।

**साम्प्रदायिक समन्वय की प्रवृत्ति—**

अनेक विदेशी विद्वानों का कथन है कि अधिकांश पुराण साम्प्रदायिक-  
भावना से रच गये हैं और उनके कारण विभिन्न सम्प्रदाय वालों के बीच  
दुर्भावना उत्पन्न होती है । इस कथन को कुछ अंशो मे ठीक मानते हुये भी  
सब पुराणों को सम्प्रदायवादी अथवा विभिन्न सम्प्रदायों मे वर्गनस्य उत्पन्न  
करने वाला मानना उचित नहीं जान पड़ता । दो-चार पुराणों मे अन्य देवों  
की निन्दान्मक बातें मिल सकती हैं, पर अधिकांश पुराणकारों ने शिव-वैष्णव-  
शाक्त इन तीनों मतों मे सामञ्जस्य स्थापित करने का ही प्रयत्न किया है ।  
इसका एक स्पष्ट उदाहरण शिवपुराण और रामचरितमानस की तुलना करने  
से मिल सकता है । शिवपुराण मे शिव को सर्वोपरि मान कर विष्णु और  
ब्रह्मा को उनके कृपापात्र के रूप मे दिखाया है । इससे विपरीत रामायण मे  
( जो कि कई पुराणों के आधार पर लिखी गई है ) राम ही सर्वेश्वर हैं और  
शिव उनके सबसे बड़े भक्त हैं । इस तरह एक दूसरे के संबंधों विपरीत दृष्टि-  
कोण रखते हुए भी दोनों रचनाओं मे समन्वयात्मक दृष्टिकोण ही अपनाया  
गया है ।

‘हरिवंश’ यद्यपि एक वैष्णव-पुराण है और उसका मुख्य उद्देश्य कृष्ण

चरित्र का उत्कर्ष और उसका विस्तार करना है, तो भी उगमें शिव को बड़े-बड़े स्थान दिया गया । 'भागवत' 'ब्रह्मवैवर्त', और 'विष्णुपुराण' आदि जहाँ श्रीकृष्ण को सर्वोपरि तथा सर्वेश्वर बतनाया गया है वहाँ 'हरिवंश' शिव को ही ऊँचा स्थान दिया गया है । यद्यपि शिव भी श्रीकृष्ण का सम्मान करते हैं, पर मृष्टि में ऊँचा स्थान उन्हीं का है । इस दृष्टि से 'पारिजात' लिये श्रीकृष्ण और इन्द्र के सपथों के अवसर पर श्रीकृष्ण द्वारा शिव को विशेष महत्त्व को है । वे शिवजी की आराधना करते हुए कहते हैं—

“हे देव ! आपने रत्न करते हुए द्रावण दिया इसी कारण 'रत्न' बड़े प्यारे हैं । आप नित्य अपने ही प्रकाश प्रवाहित होते रहते हैं, आप भवनवामन अतएव मुझे यशस्वी बनाइये । आप गृहस्थ में रहने वाले ससारी और ससार विरक्त सन्यासी रूपी पशुओं ( जीवों ) के स्वामी हैं, अतएव लोग आप 'पशुपति' कहते हैं । आप सर्वकर्मा हैं, आपसे बढ़कर ध्येष्ठ देवता और कोई नहीं है । आप जगत्पति तथा देव-शत्रुओं के नाशक हैं । आप ईश्वरो के ईश्वर हैं, आप आद्य, प्रीतिप्रद और प्राणप्रद हैं । आप साधुओं का कल्याण करते हैं इसी से लोग आपको 'शर्व' कहते हैं । आप ही 'ईशान' हैं, आप तेज सूर्य से भी अधिक हैं । आप अपने भक्तों को सदा शान्ति तथा पाप क्षमा को दण्ड देते हैं, इसी से धर्मात्मा व्यक्ति आपको 'शंकर' कहते हैं । हे सोम ! आप ससार में स्त्री-चिह्न, पुरुष-चिह्न, स्थावर और जगम सभ के सर्वस्व जो विप्रगण आपके वास्तविक तत्त्व से परिचित हैं, वे लोकधात्री पार्वती । तथा आपको गुणारम्भक कहते हैं । वेदों में इन उमा देवी को मायास्वरूपा बताया गया है । इस मायास्वरूपा भगवती से ही महत्तत्त्व की उत्पत्ति होती है । यज्ञ में दीक्षित योगियों के यज्ञस्वरूप हैं । भूत, भविष्य तथा वर्तमान में विद्यमान भी समय आपके तुल्य कुछ भी नहीं है । हे देवादितेव मैं ( विष्णु ), ब्रह्मा, कपिल, शेष भगवान आदि सब आपके द्वारा ही उत्पन्न किये गये हैं । जिनके सभी पदार्थ, वस्तुएँ आपके द्वारा ही उत्पन्न होती हैं । इससे आप सत्तुल्य हैं ।”

शिवजी भी श्रीकृष्ण के महत्त्व को स्वीकार करते हैं । वे कहते हैं—

"हे शुग्मत्तम ! आपकी कामना अवश्य पूर्ण होगी । आप अवध्य, अजेय तथा मुक्त से भी अधिक बनवान होंगे । जब आपने मैनाक पर्वत पर तपस्या की थी तभी मैंने आपको वरदान दे दिया था । मेरा वरदान कभी ध्वर्य न होगा । आज से मैं विल्वोदकेश्वर के नाम से विख्यात हूँगा और आप जहाँ मुझे स्थापित कर देंगे वही रहता हुआ सब लोगों की कामना पूर्ण करता रहूँगा ।"

ये सत्र वर्षोंन साम्प्रदायिक द्वेष से कितने पृथक और समन्वय की भावना की वृद्धि करने वाले हैं, यह पाठक सहज में अनुभव कर सकते हैं । हरिवंश में सर्वथ ऐसी ही समन्वयात्मक नीति से काम लिया गया है और किसी भी देवता को नीचे गिराने की चेष्टा नहीं की गई है ।

### विश्व और मानव की वास्तविकता—

भगवान की लीला-कथाओं के उपरान्त जहाँ 'हरिवंश' में विश्व और मानव के वास्तविक स्वरूप पर विचार किया है, वहाँ दर्शन तथा योग सम्बन्धी उत्कृष्ट तत्त्वों का निरूपण एक निराले ही ढंग से किया गया है । उसमें मानव-शरीर में ही ब्रह्माण्ड की स्थिति सिद्ध की गई है और कहा है कि मनुष्य उचित साधन द्वारा सहज में ही इस चराचर जगत का स्वामी और निर्माता बन सकता है । 'हरिवंश' का यह विवेचन अनेक दृष्टियों से विलक्षण और विशेष महत्त्वपूर्ण है । इसमें योग का बहुत मूढम वर्णन करते हुये उसके प्रचलित अष्टाङ्गों का नामोल्लेख नहीं किया है, पर उसकी विधियों तथा उनके परिणामों पर भली भाँति प्रकाश डाला गया है ।

'हरिवंश' में मधु-कैटभ के उपाख्यान का अन्य पुराणों की तरह वर्णन करते हुए यह भी प्रकट किया है कि इस कथा में विवेक रूपी विष्णु मोह रूपी मधु दैत्य पर विजय प्राप्त करके उसकी नष्ट करते हैं । सृष्टि-रचना में जब विष्णु और मधु का भीषण संग्राम होता तो सिद्धिगण आकाश में प्रकट कर उनकी स्तुति करते हैं—

'हे नारायण इस घातु विनिमित्त भौतिक शरीर में जो निहित भाव से चेतन बन कर विराजमान रहता है, वह चेतन ही चिन्मय सनातन

ब्रह्म और देहेन्द्रिय सम्युक्त जीव के नाम से प्रसिद्ध होता है। यह पाँच भौतिक उपादान प्रलयकाल में सूक्ष्म होकर नारायण में विलीन हो जाता है। फिर जब समय आता है तब वही सूक्ष्म रूपधारी उपादान विभिन्न रूपों में जीवों को उत्पन्न करके अपने भायाजाल में फँसा कर मानस-शरीर धारण करके विभिन्न लोकों में विचरण करता रहता है। वे योगात्मा भगवान् शिष्टों का पालन और दुष्टों का निग्रह करने के लिये विभिन्न रूप धारण करके पृथ्वी पर अवतीर्ण होते हैं। वे ही भूतधात्री पृथ्वी, दोष नाम वाले अनन्तदेव, स्वर्ग-लोक के धारक हैं और वे ही पंचभूत हैं। इस प्रकार वे ही धर्म और धारक हैं। वे ही वेद रूप से ब्राह्मणों को, युद्ध रूप से क्षत्रियों को, दान रूप से वैश्यों को और सेवा रूप से शूद्रों को पालते हैं। वे दुग्ध रूप से गौ, यज्ञीय प्रोक्षण रूप से अश्व, ऊष्मा रूप से पितर, हवि रूप से देवता, सप्तविध-अन्नरूप हैं पितृगणों और समस्त त्रिलोकी का पालन करते हैं। आप कभी तेजोमूर्ति धारण कर विश्व को प्रकाशित करते हैं और कभी तमोमूर्ति होकर सब कुछ अन्धकारपूर्ण कर देते हैं। हे भगवान् आप ही आकाशादि पंचभूत आप ही अहकारादि पञ्चतन्मात्रास्वरूप हैं। आपसे ही ब्रह्मा जी की उत्पत्ति हुई है। आप सबके मूल कारण हैं। इसलिये अग्नि, वायु प्रभृति आप से ही तेज प्राप्त करते हैं। प्रलयकाल उपस्थित होने पर रुद्र स्वरूप होकर आप सब कुछ भस्म करके आत्मसात् कर लेते हैं।”

इस प्रकार पुराणकार ने कथा और रूपक के साथ विश्व के वास्तविक स्वरूप और उसके मूल आधार पर भी पूरा प्रकाश डाला है। इसका आशय यही है कि पुराण साधारण और विशेष सब श्रेणियों के व्यक्तियों के लिये उपयोगी हैं। साधारण व्यक्ति दृश्य-जगत् को ही देखता और समझता है, इसलिये उसके मार्ग-दर्शन के लिये भगवान् के सीला-प्रसंग को मतोरजक रूप में उपस्थित किया गया है। पर ज्ञानीजन इसके मूल स्वरूप को जानने के अमितापी होते हैं, इसलिये परमात्मा के सत्स्वरूप और जड़ प्रकृति से नाना प्रकार के अद्भुत और आश्चर्यजनक रचना के पकट होने का रहस्य भी बतलाया गया है। रचयिता का यह प्रयत्न निस्सन्देह प्रशंसनीय है।

## ‘हरिवंश’ की योग-पद्धति की विशेषता—

शास्त्रों में अध्यात्म-मार्ग में प्रगति होने का मुख्य उपाय योग बतलाया गया है। भक्ति और ज्ञान मार्ग अधिकांश में भावना-प्रधान हैं। यदि हमारी भावनाएँ शुद्ध होगी, उनमें प्रखरता होगी मनोबल सुदृढ़ होगा, तभी हम भक्ति और ज्ञान-मार्ग की साधना को प्रभावयुक्त बना सकते हैं। पर योग अधिकांश में व्यावहारिक और क्रियात्मक होता है और उसका प्रतिफल अपने को और दूसरों को भी बहुत कुछ स्पष्ट दिखलाई दिया करता है। इसलिये सभी धर्म-शास्त्रों ने उसका महत्त्व स्वीकार किया है और उसका मार्ग भी बतलाया है। ‘हरिवंश’ में योग-मार्ग का जो विवेचन किया गया है, उसमें यम-नियम, आसन, प्रत्याहार आदि आठ अङ्गों का नाम नहीं आया है, केवल उनके स्वरूप और विधि का वर्णन एक स्वतन्त्र रूप में ही किया गया है। उससे कुछ विद्वान् यह अनुमान करते हैं कि हरि-वशीय योग-पद्धति अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक प्राचीन समय की घोटक है। उदाहरण के लिए उसकी कुछ बातें निम्न प्रकार हैं —

“भगवान् ईश्वर, ऐश्वर्य प्राप्ति के साथ ब्रह्मरूप में अवतीर्ण होकर योगासक्त चित्त से स्थाणु ( खूँटे ) की तरह अचल भाव से रहते हैं। उनके रजोगुण की ओर आकृष्ट होने पर जीव मृष्टि की बहुलता होती है। मोक्ष पद प्राप्ति में जिस प्रकार विविध बाधाएँ रहती हैं, उसी प्रकार ज्ञान पद की प्राप्ति में भी अनेक विघ्न रहते हैं। किन्तु भगवान् मोक्ष पद के समान ज्ञान-पद में भी सहायक होते हैं और ज्ञान-पद से साधन करने में हजारों पद उत्पन्न कर देते हैं। जो ब्रह्म सदस्य ब्राह्मण साधक विकारहीन कार्य में प्रवृत्त होते हैं, उनमें सर्व प्रथम आकाश रूपी ऐश्वर्य का उदय होता है। यह आकाश-ज्ञान ही विशुद्ध ब्रह्म है। वेदों की भली भाँति आलोचना करने से ज्ञात होता है कि ब्रह्मवादी योगी, देहधारी व अन्यान्य सभी पदार्थ ब्रह्म में ही विलीन रहते हैं। ब्रह्म-योग का अनुष्ठान करने से परब्रह्म में आकाश रूपी ऐश्वर्य का ज्ञान होने पर योगीगण उन्हें वायु स्वरूप कहने लगते हैं। इसी प्रकार क्रमशः तेज आदि ( अग्नि तत्त्व आदि ) विकारों का भी प्रादुर्भाव होता है। इस प्रकार सब



विकारों से उत्तीर्ण हो जाने पर जब साधक में ध्रुव ऐश्वर्य स्वरूप परब्रह्म के ज्ञान का उदय होता है, तब वह सिद्ध पुरुष कहा जाता है। यह सिद्ध शरीर से निरालम्ब हो वायु आदि महाभूतों के सहारे अदृश्य भाव से आकाश में विचरण करता है। इहलोक के मनुष्य इन्द्र के सदृश्य हजारों नेत्र पानर भी उसको नहीं देख सकते।”

इसके पश्चात् ‘ओंकार-योग’ का महत्त्व दर्शाते हुए कहा है—“विद्वान् ब्राह्मणों के लिये यह ओंकार ही ब्रह्म स्वरूप रहता है। यह ओंकार चैतन्य परमात्मा के साथ सब जीवों के अन्तरात्मा में विचरण करता रहता है। श्रेष्ठ साधकों का कथन है कि इस ‘ॐ’ शब्द और ब्रह्म में तनिक भी भेद नहीं है। यह नित्य, सर्व वर्ण प्रकाशक और वायु स्वरूप है। यही बैलरी रूप को प्राप्त हो जाता है। यद्यपि ओंकार रूप रहित है, पर नाना प्रकार के तत्त्वों से मिल कर जीवों के शरीर में बैलरी स्वरूप हो जाता है। यह ओंकार रूपी ब्रह्म सूक्ष्म रूप से सब जीवों में विचरण करता रहता है, किन्तु किसी में लिप्त नहीं होता। जो उदार मनीषी ब्रह्म में तन्मय हो जाते हैं वे ही इस ओंकार रूपी ब्रह्म का चिन्तन कर सकते हैं। उत्कृष्ट पद प्राप्त करने के लिये ही वे प्राणपण से विविध प्रकार के कर्म करते हैं।”

आगे चलकर ज्ञान और भक्ति का समन्वय करने के उद्देश्य से कहा गया है—“वे योगी तीन बार प्रदत्त पुष्प-माला की तरह ज्ञानोपहार अर्पण करके सत्य पराक्रम विष्णु की आराधना करते हैं। वेद ही जिनका एकमात्र अवलम्बन होता है, ऐसे वेदज्ञ साधक वेदों के प्रमाणानुसार योग और विष्णु-पूजा दोनों प्रकार के कर्मों का अनुष्ठान करते हैं। उनको यह दृढ़ विश्वास हो जाता है कि ब्रह्म और विष्णु अमित्र हैं। निर्मल अन्तःकरण के साधक मोक्ष के अधिकारी बनकर जिस महात्मा का साक्षात्कार करते हैं वही ब्रह्मा, विष्णु, रस, ऐश्वर्य तथा परम आश्चर्यमय पदार्थ है। किन्तु वायु आदि विकारों के शान्त न होने तक उसका दर्शन अति दुसह होता है।”

इस प्रकार के ब्रह्म-योग और विष्णु-योग में जो ‘विकार’ या विघ्न आते हैं उनका वर्णन भा पुराणकार ने बड़ी स्पष्टता से किया है। पहले

राजस' योगोपसर्गों का वर्णन करते हुए कहा है—“नेत्र, कर्ण आदि पाँच इंद्रियो को सिद्ध कर लेने से ही दूर-दर्शन तथा दूर-श्रवण आदि का ज्ञान अनायास प्राप्त हो जाता है। अतएव जो पंचेन्द्रियों में स्थित रूप और श्रावणादि गुणा को त्याग कर सनातन ब्रह्म के विषय में मनन करते हैं, वह उत्कृष्ट वैराग्य-भाव प्राप्त होने के पढ़ने ही योग-मिद्धि के विषय में नाना प्रकार के विघ्न घेर लेते हैं। नव-द्वार युक्त इस शरीर में काम, क्रोध, लोभ, मोह प्रभृति अनेक उपमग्न विद्यमान रहने हैं। अपनी बुद्धि शक्ति की सहायता से उन उपमग्नों का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर शरीर में एक प्रकार के तेज का प्रादुर्भाव होता है। वह तेज जब मस्तिष्क से निकलता है तो भयानक रूप से घुर्झा-झा उठता जान पड़ता है। वह घुर्झा नील, रक्त-वर्ण, पीत, श्वेत, मज्जिष्ठ, कपोत ग्रीव, वैदूर्य, पद्मराग, रुद्रिक आदि मणिपों और इन्द्र-यनुष के समान विविध वर्णों का होता है। वह विविध वर्ण का घुर्झा मेघ के समान एक साथ समस्त आकाश ( व्यक्तीगण ) में छा जाता है। तदनन्तर जब वह धूम्र घनीभूत होकर मेघ रूप में परिणिन हो जाता है तो उससे 'वर्षा' होने लगती है। उन वर्षा का सारा जन पृथ्वी में समा जाता है।

“इस प्रकार उस घूर्ण के शान्त हो जाने पर सबको लपटी से युक्त भयकर अग्नि जल उठनी है। उस समय उस योगी के शरीर से अनगिनती जिनगारियाँ निकलने लगती हैं। ऊपर मेघ में जिनका जन वरमता है इधर योगी के शरीर से उतनी ही अग्नि जिनियाँ उत्पन्न होती हैं। तदनन्तर वह समस्त 'जनधारा' प्रत्येक 'अग्नि शिखा' में प्रविष्ट होकर ज्वाला को शान्त कर देती है। इन दोनों उपमग्नों में शान्त होकर विलीन हो जाने पर धीरे-धीरे 'वायु' चलन लगता है। उसका वेग बहुत ही प्रबल होता है, शब्द अत्यन्त भयकर होता है। इस प्रकार ये अग्नि, वायु, जन, प्रभृति तत्त्व एकत्रित होकर संबद्ध और हजारी रूप ग्रहण कर लेते हैं। पर वास्तव में वह ब्रह्म ही इस प्रकार के संयोग का कारण होता है। उस समय योगी के दानों नेत्रों में जो ब्रह्म नाम की वस्तु सतिन होती है, वह अनिरूप सूक्ष्म तथा गिराट्ट के नाम से विख्यात है। अतएव उस समय वह योगी ही स्थूल सूक्ष्म-

भूत, समस्त विद्याओं का आधार एवं प्रलयकर्त्ता भगवान् विष्णु का रूप होता जाता है । इस प्रकार वह योगी सर्वभूत समष्टि रूप हो उठता है । वह अपना स्थूल शरीर त्याग कर भगवान् का सारूप्य प्राप्त कर लेता है । ऐसे योगीगण कर्म-बन्धन से मुक्त होकर ही ईन्द्रियो के बन्धन से मुक्त होते हैं । अतएव अन्त में वे जिस प्रकृति को प्राप्त करते हैं, वह प्रकृति यज्ञादि कर्मों में लगे हुए व्यक्तियों के लिये बहुत दूर की बात रहती है । वे यदि अग्निहोत्रादि यज्ञ तथा कष्ट-साध्य आन्द्रामणादि व्रतों का अनुष्ठान करते हैं, तो उन्हें अपने सस्कार्यों का फल भोगने फिर ससार में आना पड़ता है ।”

‘तमस विघ्नो का वर्णन करते हुए कहा गया है—“योग साधन के समय विविध विकार उत्पन्न होकर योगियों के मन में सका उपस्थित करके उसे दुःख देते हैं । कभी योगी को ऐसा मालूम देता है कि वह जल में डूब रहा है । कभी ऐसा लगता है कि अतिशय शीतल तथा अति उष्ण तरंग माला में आकर उसे सर्वथा डक लिया है । कभी ऐसा जान पड़ता है कि वह महा-समुद्र में निमग्न हो गया है और उसके सब अंग भस्म हुए जा रहे हैं । कभी मालूम पड़ता कि नदी का तट दह गया है और वह जल में गिर कर डूबा जा रहा है । कभी-कभी ऐसा भान होता है कि उसके अश्व-वस्त्र का भी सहारा छूट गया है । कभी ऐसा लगता है कि पीत तथा श्वेत वर्ण की बिजली के समान तेजस्विनी ज्योति उसके मस्तक पर पड़ रही है । योग साधन के समय में ये सब उपद्रव उपस्थित होते हैं । जो योगी इन विभीषिकाओं को कुछ समय कर अपना साधन करने में समर्थ होते हैं, वे ही ईश्वरत्व प्राप्त करके सिर पुरण हो जाते हैं ।

“मोक्ष प्राप्ति के साधन स्वरूप योगावलम्बन के समय ब्रह्मवेत्ता व्यक्ति का चित्त स्वभावतः सुस्थिर हो जाता है । किन्तु सहसा उसमें कहीं से विघ्न जनित विविध विकार तथा तैजस ऐश्वर्य का उदय हो उठता है, यह निश्चित नहीं है । उस समय उन्हें ऐसा मालूम पड़ता है कि बिगड़ाकार, पिगल नेत्र तथा गम्भीर रूपधारी कुछ पुरुष दण्ड तान कर प्रहार करने को उद्यत हैं । ऐसा लगता है मानो वे बिगट पुरुष अस्त्र निवास सेवे और जीभ के संव

टुकटे कर टालेंगे। एक बार वे अपना मुग फँसा कर भीषण रूप में चीत्कार करते हैं और तत्पश्चात् रूप बदल कर नृत्य गीत द्वारा साधक के मन को मन्तोष देने लगते हैं। कुछ ही क्षणों बाद वे प्राणी सुन्दर स्त्री रूप धारण करते साधक के कानों पर हाथ रख देने हैं। तदनन्तर हँस-हँस बातें करते हुए विविध प्रकार के प्रलोभन उपस्थित करने हैं। कुछ देर बाद जैसे दया की भील माँगते हुए वे साधक के पैरों पर गिर पड़ते हैं और नाना प्रकार की भाव-भगी के साथ नृत्य करते हुए उमका मन अपनी ओर आकृष्ट करते हैं।"

उपरोक्त वर्णन में प्रकट होता है कि 'इण्ड्रिज' में योग का स्वरूप मुख्यतः तत्त्वों की साधना करके उन पर विजय प्राप्त करना माना है। क्योंकि यह जगत् पञ्च तत्त्वों का ही विकार अथवा केन । जो तत्त्वों पर पूर्ण नियन्त्रण रख सकता है, वह निश्चय ही ईश्वरत्व के निकट पहुँच जायगा, क्योंकि मनुष्यों को ईश्वर का परिचय उनकी पञ्च तत्त्वमय रचना के माध्यम से ही मिलता है। "जो साधक पञ्च तत्त्वों की माया द्वारा उपस्थित किये गये इन विघ्नों को कुछ समय कर अपने सख्य की ओर बदलते चले जाते हैं वे अरि-नाशी ऐश्वर्य प्राप्त करके मिट्ट बन जाते हैं। पर जो योग-साधक रजोगुण तथा तमोगुण के विकार से उत्पन्न पाण्डित्य ऐश्वर्य में लुभा जाता है उमका योग मार्ग से पतन हो जाता है और फिर उसकी निन्दा का ठिकाना नहीं रहता। बार-बार अपनी निन्दा सुनकर उमकी ऐसी इच्छा होने लगती है कि वह धरती में गमा जाय। किन्तु यह धीमे ही नाना प्रकार के भौतिक तथा अग्राह्य विषय रूपी रंगों की ओर आकृष्ट हो जाता है और तब मगारी मनुष्य उसे धूलपूर्वक विदीर्ण कर टाकते हैं।"

**योग का लक्ष्य सदैव उच्च ही रहे—**

इससे हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि योग एक बहुत ऊँची और पवित्र वस्तु है और उमका सत्य मर्दव आत्मोत्कर्ष तथा परोपकार ही होना चाहिए। जो लोग तान्त्रिकों की तरह उमका उपायोग मारण-मोहन-कलीकरण जैसी निरुष्ट स्वार्थपूर्ण क्रियाओं में करते हैं अथवा

हठ-योगियों की तरह उसे प्रदर्शन की चीज बना डालते हैं, वे वास्तविक योग से बिलकुल दूर हैं। 'हरिवंश' ने इस सम्बन्ध में बिल्कुल ठीक कहा है—

ब्रह्मयज्ञ तु यजते योगद्वेदान्मव सदा ।

ब्रह्मणो विपुल ज्ञानमैश्वर्यं च प्रवर्तते ॥

ततः प्रथममैश्वर्यं युञ्जानेन प्रवर्तितम् ।

ब्रह्मणा ब्रह्मभूतेन भूतानां हितं मिच्छता ॥

“जो सच्चे ब्राह्मण वेदानुकूल ब्रह्म-यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं, उससे उनको विपुल ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त होता है। उस प्राप्त ऐश्वर्य को स्वार्थ में व्यय न करके परोपकार में लगा देना ब्राह्मण का आवश्यक कर्तव्य है।”

धर्म का सबसे बड़ा लक्षण परोपकार और पर-सेवा ही है। मनुष्य चाहे छोटा हो या बड़ा, गृहस्थी हो या सन्यासी, भोगी हो या योगी, उसका कर्तव्य है कि अपनी शक्ति और साधनों के अनुसार परोपकार सदा करता रहे। जो इस कर्तव्य का सचाई के साथ पालन करता रहता है, उसका जीवन सार्थक माना जाता है। वेदों अपने लाभ की ही चिन्ता रखने वाला अथवा अपनी शक्तियों से दूसरों का अपकार करने वाला चाहे कितना भी बड़ा योगी, तपस्वी, ज्ञानी, ध्यानी क्यों न हो उसको नष्ट जीवन ही समझना चाहिये। ऐसे ही लोगो की असुर, दैत्य, दानव, राक्षस आदि सजा होती है। वास्तव में महत्त्व योग, तप, ध्यान अथवा जप का नहीं है, बल्कि इनको किस लक्ष्य की पूर्ति के लिये किया जाता है, उसी आधार पर इनकी प्रशंसा या निन्दा की जाती है। पुराणा में जगह-जगह यही बतलाया गया है कि हिरण्याक्ष, हिरण्यकुक्षी, कौतिल्य, अर्जुन, रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद, शुम्भ-निशुम्भ, तारकासुर आदि ने भी धोर तपस्याओं की थी, रावण को वेद-शास्त्रों का अपूर्व पण्डित और शिव-योग का अभ्यासी बतलाया गया है, पर ये सब जगत् के अभिशाप स्वरूप ही सिद्ध हुए। इसलिये 'हरिवंश' ने यदि योग का सभ्य परोपकार बतलाया है तो यह बचन सोलह आने सत्य है।

## ५ की महिमा—

“हरिवंश पुराण” में विष्णु तथा अन्य सभी देवताओं की शक्ति तथा कर्षण का आधार तप को बतलाया है। कहा गया है कि “विष्णु ने उत्तर गा में एक पैर से खड़े होकर दस हजार वर्षों तक तप किया। नौ सहस्रों तक भस्म से आच्छादित होकर तप किया। विष्णु के साथ अन्य अनन्त भी तप में लीन हो गये। ये देवता सोम और वृष रूपवारी महेश्वर थे, ठ सहस्र वर्ष तक महेश्वर के तप के फल स्वर्ण वायु धनीभूत होकर उनके तपकरण में प्रविष्ट हो गया। यह वायु उद्गार के द्वारा फेन रूप में बाहर कला। वायु के समर्थ से वह फेन निराधार आकाश में बादल बन गया। पेट की इस प्रक्रिया के बाद वायु, अग्नि, वायुकि और पृथ्वी ने तप किया। उनके अतिरिक्त आदित्य, वसु, भरत, अश्विन, गन्धर्व, विन्दर, नाग और शनैः तप किया। इन प्रसंग में तपोशील शेष की कालभूट विष का कारण बताया गया है। पृथ्वी के तप का फल भी शेष के तप की भाँति पिट में परिवर्तन का कारण बतलाया गया है। सूर्य ने अपनी विरणों के तप तपोशील पृथ्वी का रस ग्रहण किया। यह रस बादलों द्वारा मेघ-रूप में पुनः वापस आया तथा इससे नदियों की सृष्टि हुई। सूर्य विरणों से समन्वित स्वर्णमय धातुओं वाली नदियाँ स्फटिक मणि की भाँति शोभित हुई।”

इसमें सन्देह नहीं कि सृष्टि में प्रत्येक श्रेष्ठ पदार्थ के मिलने, यैव महान् सफलता के प्राप्त होने का मूलधार ‘तप’ ही है। तप का धर्म केवल धूनी तपने का या किसी कठिन आसन पर बँठे रहकर शूनाधिक जप र लेना नहीं है। बरन् इसका आशय यह है कि यदि मनुष्य को कोई काम—सोचोत्तर कार्य करना हो तो उसने लिये समय-नियम, ग्रहचर्य, साधार, अपरिग्रह, मानसिक और शारीरिक सतुल्य, सहनशक्ति आदि का व्यावहारिक रूप से पूरा अभ्यास किया जाय। प्राचीन काल के व्यक्ति इन कर्मों को समझने थे और इसलिये जब कोई महत्त्वपूर्ण समस्या—कोई भीर प्रश्न सामने आता था तो उसने लिये पहने से हर प्रकार का

प्रयत्न, परिश्रम, आत्म-सयम, कष्ट-सहिष्णुता आदि का जीवन व्यती करके उसके योग्य बनने की चेष्टा करते थे । तभी 'देव-शक्तियाँ' उससे प्रसन्न होकर 'वरदान' देती थी । गोस्वामी तुलसीदासजी ने तो यहाँ तक कहा है—  
तप बल रचइ प्रपञ्च विधाता । तप बल विष्णु सकल जग स्र्जता ।  
तप बल शम्भु करहि सहारा । तप बल शेष धरइ महि भारा ।

सासारिक कार्य ही नहीं, बरन् सृष्टि-संचालन के मूलभूत कार्यों लिये भी किसी न किसी प्रकार के 'तप' की आवश्यकता पड़ती है । जब हम अपने लक्ष्य में पूर्णतः तल्लीन न हो जायेंगे, उसके लिये बड़े से बड़ा कष्ट, धर्म सहन करने को प्रस्तुत न होंगे, तब तक कार्य-सिद्धि की आशा नहीं की जा सकती ।

इनके अनिरवित्त 'हरिवंश' में और भी कई ऐसी विशेषताएँ पाई जा सकती हैं, जिनके आधार पर पौराणिक-साहित्य में उसका दर्जा काफी ऊँचा माना जायगा । उसमें भारतीय ललित-कलाओं का जो वर्णन मिलता है उसमें दो-हजार वर्ष पूर्ववर्ती भारत की अच्छी झलक पाई जाती है । उसमें नगर-निर्माण-कला, मूर्ति-कला, गृह-सज्जा, विभूषण-कला, नाट्य-कला आदि के सम्बन्ध में का महत्वपूर्ण सूचनाएँ मिलती हैं । श्रीकृष्ण ने द्वारका नगरी को उस समय का कला विचारको (इंजीनियरों) की सहायता से कितना अधिक सुख-सुविधा दे बनाया, इसका वर्णन पढ़ने योग्य है । गन्धर्व-कला के सम्बन्ध में अनेक बातें इसमें देखने को मिलती हैं । ऐतिहासिक दृष्टि से कई राज-वंशों का वर्णन इसमें अधिक प्रामाणिक रूप में पाया जाता है ।

कृष्ण-चरित्र प्राचीन और मध्य-युगीन भारतीय-साहित्य का एक किं महत्वपूर्ण अंग है । भागवत, ब्रह्मवैवर्त पुराण, पंच पुराण, विष्णु पुराण ॥ महाभारत आदि में उनकी बारी-बारी की गई है । इधर हिन्दी में सूरदास और अन्य कवियों ने भी अपनी रचनाओं से उनको बहुत लोक-प्रिय बना दिया है । 'हरिवंश' द्वारा कृष्ण-चरित्र पर जो एक नया प्रकाश पड़ता है, उससे वे उसका पठन-पाठन निरपेक्ष ही महत्वपूर्ण है ।

# श्री हरिचंश पुराण

की

## विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ
भूमिका	१-२८
१—हरिचंश श्रवण माहात्म्य	३३

### ॥ हरिचंश माहात्म्य ॥

२—हरिचंश श्रवण विधि तथा फल	३५
३—नवाह तृती के पालने योग्य नियम	४१
४—सन्तान गोपाल स्तोत्र	४३

### ॥ हरिचंश पर्व ॥

—गौतम-उग्रधवा सवाद—महाभारत कथा का महत्व	
और आदि-भृष्टि कथन	५१
—शायम्भुव का बर्ण—दश की उत्पत्ति	५६
—दश द्वारा मर्तों की उत्पत्ति	६७
—पृथु-उपायान	७६
—वेन का विनाश—पृथु का जन्म	८३
—पृथु द्वारा पृथ्वी-सोहन	९१
—मन्त्र-रक्षा	९७
—वैशम्पत मनु तथा यम की उत्पत्ति, संगा की तपस्या और	
उत्पत्ति-उत्पत्ति	१०७



## दियय

- १३—वैवस्वत मनु के वंशज  
 १४—धुन्धु का वध  
 १५—महर्षि गानव की उत्पत्ति  
 १६—निशकु की कथा  
 १७—सगर की उत्पत्ति और सागर बनना  
 १८—सूर्य वंश का वर्णन  
 १९—वाराह, नृसिंह आदि अवतार  
 २०—भगवान विष्णु के अवतार—तीन भूतियों का रहस्य  
 पुष्करावतार, वाराहवार, नृसिंहावतार, वामन, दत्त  
 परशुराम, राम, कृष्ण, कालि आदि अवतारों का वर्णन  
 २१—भगवान का ईश्वरत्व और सारकामय सग्राम  
 २२—देवामुर संश्राम  
 २३—देवताओं का दैत्यों को विफन करना  
 २४—कालनेमि के साथ देवताओं का युद्ध  
 २५—विष्णु द्वारा देवताओं को आश्वासन,  
 २६—विष्णु भगवान विषयक प्रश्न  
 २७—ऋषियों की ब्रह्मलोक यात्रा  
 २८—विष्णु का देवताओं से वार्तालाप  
 २९—पृथ्वी का दुःख वर्णन  
 ३०—देवताओं का अंशावतार लेना  
 ३१—नारद-विष्णु संवाद  
 ३२—पितामह ब्रह्मा की योजना

## ॥ विष्णु पर्व ॥

- ३३—नारद-विष्णु संवाद

३४—नारद-विष्णु संवाद

## विषय

## पृष्ठ

३५—वम द्वारा देवकी के नव-जान मिशुओ की हत्या—योगमःया का यमोदा के गर्म में उत्पन्न होना और कृष्णजी के बढते वम द्वारा गिरा पर पट्टा जाना—उमका वम को क्षाप देना	२५०
३६—श्रीकृष्ण की व्रज-यात्रा	२५६
३७—श्रीकृष्ण द्वारा ककशामुर-वध	२६४
३८—भगवान द्वारा पूतना-वध	२६७
३९—यमलातुंग भग होने की कथा	२६८
४०—श्रीकृष्ण की बालि-वीना	२७५
४१—श्रीकृष्ण का कृ-दानन समन	२८०
४२—कार्तिक नाग दमन	२८४
४३—प्रेतनामुर-वध	२९०
४४—प्रतन्नामुर-वध	२९३
४५—गोपों द्वारा हन्त्रोत्थाप वधन	२९८
४६—श्रीकृष्ण का गोवर्द्धनोत्थाप	३००
४७—गोपों द्वारा गोवर्द्धन-पूजन	३०४
४८—श्रीकृष्ण का गोवर्द्धन-पारण	३०८
४९—श्रीकृष्ण का गोवर्द्धन पर अभिषेक	३१४
५०—भगवान द्वारा अरिष्टामुर-वध	३२०
५१—श्रीकृष्ण की मानों को अक्रूर का प्रस्थान	३२२
५२—श्रीकृष्ण द्वारा बेगी-वध	३२६
५३—व्रज में अक्रूर का आगमन	३३३
५४—अक्रूर द्वारा नाग-चोर वधन	३३५
५५—श्रीकृष्ण और बलराम का मद्युग-प्रवेग—घोड़ी का मारा जाना—गुम्हा द्वारा श्रीकृष्ण को अनुवेदन प्रदान— वम के पतन का तोड़ना	३४२
५६—गुर्वाजिमागीट का वध	३५०

विषय	पृष्ठ
५७—श्रीकृष्ण द्वारा वस-वध	३५६
५८—उग्रसेन अभियेक वर्णन	३५६
५९—सधुरा पर जरासन्ध की चढ़ाई	३७२
६०—जरासन्ध का पलायन	३७३
६१—श्रीकृष्ण द्वारा कास्यवन-वध	३७८
६२—द्वारकापुरी का निर्माण	३८८
६३—हविमणी-हरण	३९८
६४—श्रीकृष्ण-हविमणी का विवाह	४०७
६५—हवमी-वध वृत्तान्त	४१३
६६—पारिजात-हरण कथा	४२१
६७—भगवान का सत्यभामा को आमवासन	४२८
६८—श्रीकृष्ण का सात्यकि तथा प्रद्युम्न को लेकर स्वर्ग जाना और बलपूर्वक पारिजात को ग्रहण करना—इन्द्र और उसके सहायको से भगवान कृष्ण का तुमुल संग्राम	४३७
६९—श्रीकृष्ण द्वारा शिवजी की स्तुति	४४६
७०—पारिजात को द्वारका लाया जाना	४५७
७१—पटपुर का वध	४६२
७२—श्रीकृष्ण का पटपुर को प्रस्थान	४७४
७३—पटपुर युद्ध में राजाओं का बन्दी होना	४६६
७४—पटपुर का वध	४८१
७५—अन्धकामुर का वध	४८०
७६—भगवान शंकर द्वारा अन्धक का अन्त	४८६

# श्री हरिवंश पुराण

## हरिवंश माहात्म्य

॥ हरिवंश श्रवण माहात्म्य ॥

नारायण नमस्कृत्य नर चैव नरोत्तमम् ।  
देवी सरस्वती चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥  
जयति पराशरगूनु मत्पुत्रीहृदयनन्दनो व्यास ।  
ग्रन्थाम्यकमलगत्ति वाङ्मयममृत जगत्प्रति ॥२॥  
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।  
चक्षुःशोभित येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥३॥  
अष्टाष्टमडनाकारं व्याप्न येन चराचरम् ।  
नन्दनं दक्षिण येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥४॥  
एवमा मे भगवन्प्राक्तो भाग्यश्रवणे विधिः ।  
श्रवणे हरिवंशस्य विनेषाद्द मे विधिम् ॥५॥  
ब्रह्मनिष्कृमहेतूनां हरिवंश जगत्तु ।  
गच्छद्ब्रह्ममयं विद्धि हरिवंश मनाननम् ॥६॥  
शास्त्रं ब्रह्मणि निष्णान परब्रह्माधिगच्छति ।  
तस्मिन्पुण्ये तु श्रुते चैव राजमन्त्रम् ॥७॥  
कारिणं कारिणं पाप मनसा ममुपातिनम् ।  
तस्मात् नान्यभाषानि तम मूर्खोदर यदा ॥८॥

का सम्पूर्ण विश्व पान करता है ॥२॥ मैं अज्ञान रूप तिमिर से अंधा हो रहा था, तभी जिन्होंने ज्ञानाञ्जन की सलाई से मेरे बुद्धि रूपी नेत्रों को तोन उनमें ज्ञान का प्रकाश भर दिया है, उन गुरुदेव को नमस्कार करता हूँ ॥३॥ यह अक्षण्ड मण्डलाकार घराचर विश्व जिस परमात्मा से व्याप्त है, उनके का साक्षात् कराने वाले गुरुदेव को नमस्कार है ॥४॥ जनमेजय ने कहा— भगवन् ! आपने मुझे महाभारत की कथा सुनने की विधि बतायी थी, कृपा करके हरिवंश-श्रवण की विधि को विशेष रूप से मेरे प्रति कहिये ॥ वैशम्पायनजी ने कहा—जानियो ने हरिवंश को ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी स्वरूप कहा है । इसलिये इसे सनातन शब्द ब्रह्म मय समझो, इसमें निष्ण पुरुष परब्रह्म को प्राप्त होता है ॥६॥ हे नृपोत्तम ! जैसे सूर्योदय के होने भयंकार का नाश हो जाता है, वैसे ही हरिवंश पुराण के सुनने से बाणी और देह के द्वारा संचित हुए सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते ॥७॥

अष्टादशपुराणानां श्रवणाद्यत्फलं लभेत् ।  
 तत्फलं समवाप्नोति वैष्णवो नान्य सशय ॥८॥  
 क्रियश्च पुरुषार्थं च वैष्णव पदमाप्नुयुः ।  
 जम्बूद्वीपं समाश्रित्य श्रोतारो दुर्लभा कलौ ॥९॥  
 भविष्यन्ति नरा राजन्सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।  
 स्त्रीभिश्च पुत्रकामाभिश्च श्रोतव्यं वैष्णव यश ॥१०॥  
 बालधात्री च पुरुषो मृगवत्स प्रजायते ।  
 श्रवणं हरिवंशस्य कर्तव्यं च यथाविधि ॥११॥  
 गुरुचन्द्राग्निसूर्याणां सम्मुखे मेहते च यः ।  
 बीजमुत्सृज्यते तेन त्यक्तरता नरो भवेत् ॥१२॥  
 योऽपि पुष्पफलानां च बालानां धातिनी तथा ।  
 फलानां कर्तनकरी मातापितृवियोगिनी ॥१३॥  
 स्त्राविणी परमर्भाणां तत्तत्प्रायोपजोषिणी ।  
 हृत्पितृघातविष्यं च ॥१४॥

अपुष्पा मृतवत्साश्च काकवन्ध्यास्तथैव च ।  
 कन्याप्रजात्व च तथा स्नावयुक्ता स्वपातकैः ॥१६॥  
 तासां दोषापहारार्थं हरिवंशोऽभिगर्जति ।  
 मदीयश्रवणात्सद्यो दोषा नश्यन्ति सत्त्वरम् ॥१७॥

जो फल अठारह पुराणों के श्रवण से प्राप्त होता है, उतना ही फल विष्णुभक्त को हरिवंश के सुनने से मिल जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥१६॥ इसे सुनने वाले स्त्री पुरुष भगवान् विष्णु के धाम को प्राप्त होते हैं। हे राजन् ! मैं सत्य कहता हूँ कि कलिकाल में जम्बूद्वीप के आश्रय में निवास करने वालों में इस ग्रन्थ के सुनने वाले दुर्लभ हो जायेंगे ॥१०॥ पुत्राकाक्षिणी स्त्रियों की भगवान् विष्णु के इस वंश को अवश्य सुनना चाहिये। जिन बाल हत्यारे पुरुषों की सन्तान हो-हो कर मृत्यु को प्राप्त होती है, वह विधि पूर्वक इस हरिवंश को श्रवण करें ॥११-१२॥ गुरु, चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि की ओर मुख करके मल-मूत्र का त्याग करने वाला पुरुष जन्म जन्मान्तर में पुत्रत्व हीन होता है ॥१३॥ फल फूल तोड़ने और बाल हत्या करने वाली, माता पिता से उनकी सन्तान का विरोध करा देने वाली, दूसरी स्त्रियों के गर्भ नष्ट करने वाली अथवा इसी प्रकार के बुरे कार्य करने वाली स्त्रियाँ अपुष्पा, मृतवत्सा, काक वध्या, कन्याप्रजा तथा स्नावयुक्ता आदि दोषों वाली होती हैं, उन सब दोषों की शांत करने के लिये हरिवंश सदा गर्जता हुआ कहता है कि मेरे सुनने मात्र से सम्पूर्ण दोष तत्काल ही नाश को प्राप्त होते हैं ॥१४-१७॥

॥ हरिवंश श्रवण विधि तथा फल ॥

अथ ते सप्रवक्ष्यामि नवाह्श्रवणे विधिम् ।  
 सहायैर्बहुभिश्चैव प्रायः साध्यो विधिस्त्व-  
 दैवज्ञ तु समाहूय मुहूर्तं पृच्छथ यत्नत  
 विवाहे यादृशं वित्तं तादृशं परिकल्प्य च  
 नभरयश्चाश्विनोजौ च मार्गशीर्षं शुचिर्न  
 एते मासा क्यारम्भे श्रोतृणां कामसूचक

सहायाश्च त एवाप्त कर्तव्याः सोद्यमाश्च ये ।

देशे देशे तथा सेयं वार्ता प्रोच्या प्रयत्नतः ॥४॥

भविष्यति कया चाप्त आगन्तव्यं कुटुम्बिभिः ।

देशे देशे विरक्ता ये वैष्णवाः कीर्तनोत्सुकाः ॥५॥

लेख्येव पत्र प्रेष्यं च तल्लेखनमितीरितम् ।

सता समाजो भविता नवरास सुदुर्लभ ॥६॥

वैशम्पायनजी बोले—हे राजन् ! अब मैं हरिवंश के नवाल्ल-श्रवण की विधि कहता हूँ । यह अनेक प्रकार के सहायको से साध्य होती है ॥१॥ प्रयत्न-पूर्वक ज्योतिषी को बुलाकर मुहूर्त्त निकलवावे तथा जितना धन दिवा-कार्य के लिये आवश्यक होता है, उतने ही धन की व्यवस्था इसके लिये करे ॥२॥ भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, आपाद और आषण इन महीनों में कथ का आरम्भ करना श्रोताओं की अभीष्ट सिद्धि का सूचक है ॥३॥ इस कार्य में उद्योगी व्यक्ति ही सहायक हो । प्रयत्नपूर्वक कथा होने का सन्देश सर्वत्र विज्ञापित करे और कहलावे कि आप सब सभी सज्जन सपरिवार पधारे ॥४॥ विभिन्न स्थानों में निवास करने वाले हरिकीर्तन को उत्सुक विरक्त वैष्णव जन को अवश्य निमन्त्रित करे, निमन्त्रण पत्र में यह भी लिखे—महानुभावो ! तू तमो तक यहाँ सत्पुरुष समागम और सत्संग का परम दुर्लभ सुअवसर ॥५-६॥

आगन्तुकाना सर्वेषा वासस्थानानि कल्पयेत् ।

तीर्थे वापि वने वापि गृहे वा श्रवण स्मृतम् ॥७॥

विशाला वमुधा यस्य कर्तव्यं तत्कथास्थलम् ।

शोधनं मार्जनं भूमेर्लेपनं धातुमण्डनम् ॥८॥

गृहोपस्वरमुदघृत्य गृहकोणे निवेशयेत् ।

कर्तव्यो मण्डप प्रोच्चं वदलीस्तम्भमण्डितः ॥९॥

फलपुष्पदलविष्वग्वितानेन विराजितः ।

चतुर्दिक्षु द्वजारोपस्तोरणेन विराजित ॥१०॥

ऊर्ध्वं सप्तैव लोकाश्च सप्ताग्रः पङ्क्तिल्पयेत् ।

तेषु विप्रा विरक्ताश्च स्थापनीयाः प्रबोध्य वै ॥११॥

पूर्वं तेषामासनानि कर्तव्यानि यथोत्तरम् ।

वक्तुश्चापि तथा दिव्यमासनं परिवत्सयेत् ॥१२॥

यागत जनो के टहरने का समुचित प्रबन्ध करे । क्या मुनते का स्थान कोई तीर्थ, वन वयवा धपना घर ही श्रेष्ठ माना गया है ॥७॥ लम्बे चौड़े िदान में कथा स्थल बनावे, उस स्थान का शोभन, मार्जन और लेपन करके रग-वेरंगी धानुओं से चौक पूरना चाहिये ॥८॥ घर की भब वस्तुओं को किसी एक तीर्थ में रखदे तथा कथा के निमित्त वेसे के खम्भों में युक्त एक ऊँचा मण्डप बनावे ॥९॥ उसे सब ओर से फन, पून, पत्र तथा चोंचों आदि से भले प्रकार रचावे, सब दिशाओं में पञ्चार्थ फैलावे और मण्डप में सुन्दर पाटल लगा कर उसकी शोभा वृद्धि करे ॥१०॥ मण्डप में कुछ ऊँचाई पर सान लोह बना कर उनमें विरक्त ब्राह्मणादि को तथा नीचे के सात लोहों में जन साधारण को बैठावे ॥११॥ विरक्त ब्राह्मणों के लिये श्रेष्ठ आसन की और कथा वाचक के लिये दिव्य आसन की व्यवस्था करे ॥१२॥

उदङ्मुखो भवेद्वक्ता श्रोता वै प्राट्मुखस्तथा ।

प्राट्मुखोऽय भवेद्वक्ता श्रोता चोदङ्मुखस्तथा ॥१३॥

विरक्तो वैष्णवो विप्रो वैश्वास्त्रविशारदः ।

दृष्टान्तकुशलौ घीरो वक्ता कार्यो दयान्वितः ॥१४॥

वेदवेदान्ततत्त्वज्ञगुरुभिर्ब्रह्मवादिभिः ।

नृणां कृतोपदेशानां सद्यः मिद्धिहि जायते ॥१५॥

अथान्यजनसामान्यगुरुभिर्नीतिकोविदैः ।

नृणां कृतोपदेशानां मिद्धिर्भवति कीदृशी ॥१६॥

अनेकधर्मविघ्नान्ताः स्तेनाः पाखण्डवादिनः ।

धर्मशास्त्रकथोच्चारैस्तथाज्यास्ते यद्वि पण्डिताः ॥१७॥

वक्तुः पाश्च सहायार्थमन्यः स्थाप्यस्तथाविधः ।



पण्डित सशयन्ते ता लोकवोधनतत्पर ॥१८॥

वक्त्रा क्षीरं प्रवर्तय्य दिनादवगमिताप्यये ।

वक्तुं श्रोतुश्चन्द्रशुद्धौ दम्पत्यो शुभतारके ॥१९॥

अरुणोदये विनिर्वृत्य शौचं स्नानं समाचरेत् ।

नित्यं सक्षेपत कृत्वा सध्याद्यं प्रयत्नस्ततः ॥२०॥

सुक्षालितपाणिपादं स्पृशन्निवाचनपूर्वकम् ।

गोमयोपलिप्तदेशे सर्वतोभद्रकल्पनम् ॥२१॥

स्वीयशक्त्यनुपारेण पूजनं सर्वमाचरेत् ।

कथाविघ्नविनाशाय गणनाथं प्रपूजयेत् ॥२२॥

यदि वक्त्रा का मुख उत्तर की ओर हो तो श्रोताओं का मुख पूर्व की ओर रहे और यदि वक्त्रा का पूर्वामुख हो तो श्रोतागण उत्तर की ओर मुख करके बैठें ॥१३॥ विरक्त, विष्णुभक्त, वेदशास्त्री का ज्ञान, सत्य के भाव को हृदयङ्गम बनाने में कुशल, धीरे एक दयालु ब्राह्मण को वक्त्रा बनावे ॥१४॥ वेद वेदाङ्ग के तत्त्वज्ञ एक ब्रह्मवादी गुरुओं से जिन्होंने उपदेश ग्रहण किया है, उन्हें मित्रि की मुनभना उसी समय होती है ॥१५॥ परन्तु जो गुरु जनसाधारण के समान ही नीति वाला है उसमें उपदेश प्राप्त करने वाले मनुष्यों को सिद्धि-लाम किस प्रकार संभव है ? ॥१६॥ अनेक मतमतान्तरों में पड़ कर भ्रान्त हुए, धोरी करने वाले, सम्पद एवं पातण्डी पुण्य, पण्डित हा तो भी परमेश्वर की कथा कहने के विषे योग्य नहीं हैं उन्हें वक्त्रा न बनावे ॥१७॥ वक्त्रा की सहायता के नियम बँगी ही योग्यता का एक विद्वान् और रत्ना चाहिये, यह भी पण्डित, भ्रम निवर्णन में समर्थ और जनसाधारण के समक्षान में चतुर होना चाहिये ॥१८॥ वक्त्रा को, वक्त्रा में एक दिन पूर्व क्षीर करा लेना चाहिये । वक्त्रा और श्रोता दोनों के ही चन्द्रवत् तथा यवण करने वाले दम्पति के ग्रह एवं तारा न अनुकूल हो तभी कथा का आरम्भ करे ॥१९॥ श्रोता को अरुणोदय काल में नित्य स्नान न चिह्न होकर स्नान करना चाहिये प्रतिदिन मन को वना रगदर गन्धर्वनादि करत वस्तुओं में स्थिति बाधा कराव, फिर गोबर

। लिपे हुए स्थान पर सर्वतोमद्र मण्डल बनावे और सामर्थ्यानुसार पूजन कर्म को सम्पन्न करे । विष्णो की शक्ति के निमित्त श्रीगणेशजी का पूजन करे ॥२०-२२॥

सलक्ष्मीपुत्रसहितं गोपालं स्थापयेत्ततः ।

निर्विघ्नेनैव सिद्धयर्थं देवपूजनपूर्वकम् ॥२३॥

अद्य हेत्यादि देवेकाली स्मृत्वा अमुकगोनस्यामुकप्रवरस्यामुक-  
शर्मणो मम जन्मनि जन्मनि सञ्चितमहापातकपटलनाशपूर्वकं  
तेन पापमञ्चयेन कृतसन्तानवाधकताविनाशपूर्वकमिह जन्मनि  
सतानोदपत्तिहेतवे तस्य सतानस्य शरदा शतमायुषो वृद्ध्यर्थ-  
मात्मनश्च सकलसुखाप्तिहेतवे इह शरीर-शुद्ध्यर्थं परल-  
( चेन्द्रादिलोकातिक्रमणपूर्वकं श्रीमद्विष्णुभक्त्युद्रेकजनितकल्पा  
वधितल्लोकगमनतत्त्ववासपूर्वकतत्त्वस्वप्नावप्तिहेतवे ) श्री-  
मद्वरिवंशपुराणश्रवण करिष्यावहे ॥ अन्तरवर्तुत्वे करिष्ये  
इत्येवं मकल्पः ॥ इति कृत्वा तु संकल्प वक्तार वृणुयात्ततः ॥  
श्रुताध्ययनमपन्न पूजयित्वा यथाविधि ॥२४॥

फिर लक्ष्मी और पुत्रों के सहित गोपाल श्रीकृष्ण की स्थापना करे और  
कथा की निर्विघ्न रूप से सम्पूर्णता के लिये देव पूजन करके पत्नी-पुत्र, सहित  
भगवान् श्रीकृष्ण को पूजे ॥२३॥ फिर निम्न प्रकार मकल्प करे—मुझ अमुक  
गोत्र, अमुक प्रवर, अमुक नाम और जाति वाले, पत्नी युक्त यजमान के  
जन्म जन्मान्तरो में एकत्र हुए महापाप समूहों का नाश होकर सन्तति बाधा का  
शमन हो । इस जन्म में शतायु सन्तति लाभ और सम्पूर्ण सुख लाभ की कामना  
से, इहलोक में शरीर-शुद्धि और परलोक में इन्द्रादि लोकों के पार भगवान् विष्णु  
की भक्ति के उद्रेक से उपलब्ध विष्णुलोक में गमन और वहाँ एक कल्प तक  
निवास तथा इस प्रकार भगवत्स्वरूप की प्राप्ति के निमित्त हम दम्पति यज्ञकर्त्ता  
होते हुए हरिवंश पुराण को सुनेंगे । यदि एक ही व्यक्ति थोड़ा हो तो करेंगे के  
स्थान पर 'वस्त्र' कहें । इस प्रकार संकल्प करके वेद शास्त्रों के पारंगत वक्ता  
का पूजनपूर्वक वरण करे ॥२४॥

सुवर्णमुद्रिका गृह्य कृण्वले च विशेषत ।

धोतवस्त्र सोत्तरीय चोष्णीपेण समन्वितम् ॥२५॥

सुवर्णपोडशपल पुष्पताम्बूलसयुतम् ।

पूगीफल चाक्षतान्वं गृहीत्वा शुद्धमानम् ॥२६॥

(सकल्प) अद्य हेत्यादि अमुकगोत्रममुकशर्माण ब्राह्मणमेभि-  
श्रन्दन ताम्बूलसुवर्णवस्त्रादिभिर्हरिवश श्रवणे वाचकत्वेनावा-  
दम्पती त्वा वृणीवहे । वृतोऽस्मीति तेनोक्ते ॥ व्रतेन दीक्षा-  
माप्नोतीति मन्त्रेण वक्तुर्दक्षिणवरमूले रक्षावन्धन कार्यम् ॥  
ब्राह्मणेन श्रोतृणा रक्षावन्धन कार्यम् । चन्दनाद्युपचारस्तु  
वस्त्रपुष्पाक्षतैस्तथा ।

हेमालकरणं पूर्णं फलैर्ऋतुसमुद्भवं ॥२७॥

पुराणपूजनं प्रोक्तं विधिना पोडशेन तु ।

पूजयित्वा द्विज-श्रेष्ठा श्रवणं फलदं स्मृतम् ॥२८॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रोतव्यं विधिपूर्वकम् ।

अथ व्यास नमस्कुर्यमन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥२९॥

नमस्ते भगवन्व्यास सर्वशास्त्रार्थकोविद ।

ब्रह्मविष्णुमहेशानमूर्ते सत्यवतीसुत ॥३०॥

इति व्यास नमस्कृत्य शुभे देशे कुशासने ।

उपविश्य प्रतिदिनमुल्लसत्प्रीतमानस ॥३१॥

स्वर्णं बी मुद्रिका, दो स्वर्णमय कुण्डल सोसह फल स्वर्ण, धोती, चादर,  
पगडी, पुष्प, ताम्बूल, सुपारी और अक्षत हाथ में लेकर निम्न सकल्पपूर्वक  
व्रता का वरण करे ॥२५ २६॥ हम दम्पति अमुक गोत्र, अमुक शर्मा का इन  
चन्दन, ताम्बूल, स्वर्ण, वस्त्रादि से हरिवश की कथा कहने के लिये व्यास रूप  
से वरण करते हैं । तब वाचक बहे कि 'मेरा वरण हो गया' फिर यजमान  
'व्रतेन दीक्षामाप्नोति' इत्यादि मन्त्र से वाचक के दक्षिण हाथ के मूल में रक्षा  
बांधे । फिर वह ब्राह्मण भी श्रोताओं के रक्षा बांधे । फिर चन्दनादि उपचार पूर्वक,  
, पुष्प, अक्षत, स्वर्णभिपण, सुपारी और ऋतुफल आदि से पोडशोपचार

वेधि के द्वारा पुराण का पूजन करे ॥२०॥ थोछ ब्राह्मणों का पूजन करके हरि-  
श का सुनता अभीष्ट फल देने वाला माना गया है, इसलिये सावधानी से  
विधिपूर्वक ही इसका थवण करना उचित है ॥२८॥ फिर सभी श्रोता वानक  
ही नमस्कार करें, उस समय यब्रमान कहे कि हे सर्व शास्त्रों के अर्थ के ज्ञाता ।  
ब्रह्मा, विष्णु, शिव स्वरूप, सत्यवतीपुत्र भगवान् व्यास जी हम आपको नमस्कार  
करते हैं ॥२९-३०॥ इस प्रकार वाचक को नमस्कार करके थोछ पवित्र स्थान  
पर कुश के आसन पर बैठ कर उत्साहपूर्वक एवं प्रमत्त मन से प्रतिदिन क्या  
सुने ॥३१॥

वालो युवाऽथ वृद्धो वा दरिद्रो दुर्वलोऽपि वा ।  
पुराणज्ञ सदा वन्द्य पूज्यश्च सुकृतार्थिभिः ॥३२॥  
नीचवृद्धिं न कुर्वीत पुराणज्ञे कदाचन ।  
यस्य वक्त्रोद्गता वाणी कामधेनु शरीरिणाम् ॥३३॥  
गुणैः सन्ति लोकस्य जन्मतो गुणतश्च ये ।  
तैरामपि च सर्वेषां पुराणज्ञ परो गुरुः ॥३४॥  
भवकोटिसहस्रेषु भूत्वा भूत्वा च सीदति ।  
यो ददानि पुण्यवृत्तिं कोऽन्यस्तस्मात्परो गुरुः ॥३५॥

पुराण का ज्ञाता बालक, युवा, वृद्ध, दरिद्र अथवा दुर्बल ही क्यों न हो,  
पुण्यावाक्षी मनुष्यों के लिये वह सदा ही वदनीय एवं पूज्य है ॥३२॥ जिसके  
मुख से निकलने वाली वाणी देहधारियों के लिये कामधेनु के समान है, उस  
पुराण के जानने वाले विज्ञ के प्रति धुरे विचार कभी न रखे ॥३३॥ जो मनुष्यों  
के लिये जन्म तथा गुणों से गुरु हैं, पुराणवेत्ता उन सबका भी परम गुरु है ॥३४॥  
बरोहो हजार जन्म लेकर कष्ट को प्राप्त होने वाले प्राणी को पुराण कथा  
सुना कर पुण्यवृत्ति प्रदान करने वाले से थोछ अन्य गुरु कीज हो सकता है ? ॥३५॥

॥ नवाह व्रती के पालने योग्य नियम ॥

नवाहव्रतिना पु सा नियमाञ्छृणु सत्तम ।

एककालाशनश्चैव अथ शायी भवेन्नर ॥१॥

स्थातव्य ब्रह्मचर्येण यावद्ग्रय समाप्यते ।  
 हरिवंशे तथा राजन्पायस चरुभोजनम् ॥२॥  
 पारणे पारणे यात यथावद्भूतर्पणम् ।  
 मलमूत्रजयार्थं हि लघ्वाहार सुखावह ॥३॥  
 हविष्यान्नेन कर्त्तव्यमेकवार कथाधिना ।  
 उपोष्य नवरात्र वा शक्तिश्चेच्छृणुयात्तदा ॥४॥  
 घृतपानं पयपानं कृत्वा वा शृणुयात्सुखम् ।  
 फलाहारेण वा श्राव्यमेकमुक्त्वा वा पुनः ॥५॥  
 सुखसाध्यं भवेद्यत्तु कर्त्तव्यं श्रवणाय तत् ।  
 भोजनं तु वरमन्ये कथाश्रवणकारकम् ॥६॥  
 नोपवासो वरप्रोवनो कथाविघ्नकरो यदि ।  
 शृणुयाच्च शुचिरितृष्टन्नेकचित्ततया सदा ॥७॥  
 प्रातः स्नानादिकं कृत्वा पुनर्दारसमन्वितः ।  
 पुराणश्रवणं कुर्यात्कृष्णपूजनपूर्वकम् ॥८॥

ब्रह्मचर्यायनजी बोले— हे साधु श्रेष्ठ ! नकाह कथा श्रवण का व्रत लेने  
 वालो के आवश्यक नियम कहता हूँ । व्रत का पालक श्रोता एक समय भोजन  
 और पृथिवी पर शयन करे ॥१॥ ग्रन्थ की समाप्ति पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत का  
 पालन करे । हे राजन् ! हरिवंश के प्रत्येक पारण में स्त्रीर अथवा चरु का भोजन  
 करे ॥२॥ कथा के समय मलमूत्रादि के वेग पर नियंत्रण रखने के लिये हल्का  
 भोजन उचित है, इसलिये हविष्यान्न का भोजन करे । शक्ति हो तो उपवास करे  
 या वेदन दूध या घी का पान करे अथवा फलाहार करे या एक समय भोजन  
 करके वषा श्रवण करे ॥३-५॥ जिससे जिस नियम का निर्वाह हो सके वैसा ही  
 करे, मैं तो उपवास की अपेक्षा भोजन करना ही ठीक समझता हूँ ॥६॥ क्योंकि

पुष्पधूपफलै सम्यङ् नैवेद्यं श्रद्धयोद्धृतै ।  
 गुरोः शुश्रूषण तेन कर्तव्यं फलवाङ्क्षिणा ॥६  
 श्रुत्वा यथेच्छया शौचं कार्यं पुण्येन वर्त्मना ।  
 सायकाले गुरुश्रेष्ठ तोषयित्वा सवान्धव ॥१०  
 स्वपरिग्रहसङ्ग्रेने सुखं स्वपिति वै तदा ।  
 नियमादिं प्रकर्तव्यं पापानां विनिवर्तने ॥११  
 यथासुखं व्यवहरेन्नित्यं विष्णुपरायण ।  
 शुचिं शुद्धमनास्तिष्ठन्पक्षावल्या च भोजनम् ॥१२

इच्छित फल की कामना वाला श्रोता पुष्प धूप, फल तथा श्रेष्ठ नैवेद्य  
 के द्वारा गुरु सेवा करे ॥६॥ क्या श्रवण के पश्चात् सायकालीन कमों से निवृत्त  
 होकर बंधु-बान्धवों सहित गुरु श्रेष्ठ व्याम की सेवा में उपस्थित होकर उन्हें  
 सन्तुष्ट करे और पत्नी सहित घर जाकर पृथक् पृथक् शयन करे । पाप शमनार्थ  
 मम-नियम। का पालन दृढतापूर्वक करे और भगवान् विष्णु के चिन्तन में निरन्तर  
 लगा रहकर पूर्वोक्त नियमों को पाले । १०-११॥ क्या ब्रवी पुष्प पवित्र एवं  
 शुद्ध चित्त में क्या श्रवण करे और क्या समाप्ति पर प्रतिदिन पक्ष मही  
 भोजन करे ॥१२॥

## ॥ सन्तान गोपाल स्तोत्र ॥

अनमो भगवते वासुदेवाय । श्रीशङ्खमलपद्माक्ष देवकीनन्दन हरिम् ।  
 सुतसम्प्राप्तये कृष्ण नमामि मधुसूदनम् ॥१  
 तमाम्यहं वासुदेव सुतसम्प्राप्तये हरिम् ।  
 यशोदाङ्गुलत वाल गोपाल नन्दनन्दनम् ॥२  
 अस्माकं पुत्रलाभाय गोविन्द मुनिवन्दितम् ।  
 तमाम्यहं वासुदेव देवकीनन्दन सदा ॥३  
 गोपाल डिम्भक वन्दे कमलापतिमच्युतम् ।  
 पुत्रसम्प्राप्तये कृष्ण नमामि यदुपुङ्गवम् ॥४

पुत्रकामेष्टिफलदं कञ्जाक्ष वमलापतिम् ।  
 देवकीनन्दन वन्दे सुतसम्प्राप्तये मम ॥५॥  
 पद्मापते पद्मनेत्र पद्मनाभ जनार्दन ।  
 देहि मे तनय श्रीश वासुदेव जगत्पते ॥६॥  
 यशोदाङ्गुगत बाल गोविन्द मुनिवन्धितम् ।  
 अस्माक पुत्रनाभाय नमामि श्रीशमच्युतम् ॥७॥  
 श्रीपते देवदेवेश दीनार्तिहरणाच्युत ।  
 गोविन्द मे सुत देहि नमामि त्वां जनार्दन ॥८॥  
 भक्तकामद गोविन्द भक्तं रक्ष शुभप्रद ।  
 देहि मे तनय कृष्ण रुक्मिणी-वल्लभ प्रभो ॥९॥  
 रुक्मिणीनाथ सर्वेश देहि मे तनय सदा ।  
 भक्तमन्दार पद्माक्ष त्वामहं शरणं गतः ॥१०॥

पुत्र प्राप्ति के निमित्त मैं लक्ष्मी के पति, पद्मनयन, देवकी पुत्र, मधुसूदन भगवन् श्रीकृष्ण को नमस्कार करता हूँ ॥१॥ पुत्र की प्राप्ति के निमित्त यशोदा के अङ्क मे बाल गोपाल रूप से स्थित एव नन्द को आनन्द देने वाले वासुदेव श्री हरि को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२॥ पुत्र-लाभ के निमित्त देवकी-वासुदेव के पुत्र, मुनियो द्वारा वन्दना किये हुए गोविन्द को मैं नमस्कार करता हूँ ॥३॥ पुत्र-लाभ की कामना से साक्षात् लक्ष्मी के पति, अच्युत होकर भी गोप बालक के रूप मे गोभी की रक्षा मे तत्पर यदुकुल तिलक भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम करता हूँ ॥४॥ पुत्र की कामना से पुत्रेष्टि यज्ञ के फलदाता कमलाक्ष कमलापति देवकी मुत्र श्रीकृष्ण की मैं नमस्कार करता हूँ ॥५॥ हे वमलापते ! हे कमल नयन ! हे वमलनाभ ! हे जनार्दन ! हे जगदीश्वर वासुदेव ! मुझे पुत्र दीजिये ॥६॥ यशोदा की गोदी मे निराजमान रहने वाले, अपनी महिमा से कभी विलग न होने वाले, मुनियो द्वारा वन्दना किये हुए भगवान् गोविन्द को मैं नमस्कार करता हूँ, मेरे इस बर्ष के फल से मुझे पुत्र-लाभ हो ॥७॥ हे भक्तो की कामना पूर्ण करने वाले गोविन्द मुझ भक्त की रक्षा करिये । हे शुभप्रद ! हे रुक्मिणी-नाथ ! हे प्रभो ! हे श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र दीजिये ॥८॥ हे रुक्मिणी पते ! हे सर्वेश्वर !

मुझे पुत्र दीजिये । भक्तों के असीष्ट को पूर्ण करने में कल्पवृक्ष स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण । मैं आपका शरणागत हूँ ॥१०॥

देवकीमुत्त गोविन्द वामुदेव जगत्पते ।

देहि मे तनय कृष्ण त्वामह शरण गत ॥११

वामुदेव जगद्वन्द्य श्रीपते पुष्पोत्तम ।

देहि मे तनय कृष्ण त्वामह शरण गत ॥१२

कञ्जाक्ष कमलानाय परकारुणिकोत्तम ।

देहि मे तनय कृष्ण त्वामह शरण गत ॥१३

लक्ष्मीपते पद्मनाभ मुकुन्द मुनिवन्दित ।

देहि मे तनय कृष्ण त्वामह शरण गत ॥१४

कार्यकारणरूपाय वामुदेवाय ते सदा ।

नमामि पुष्पलामाये सुखदाय बुधाय ते ॥१५

राजीवनेत्र श्रीराम रावणारे हरे कवे ।

तुम्य नमामि देवेश तनयं देहि मे हरे ॥१६

अस्माक पुत्रलामाय भजामि त्वा जगत्पते ।

देहि मे तनय कृष्ण वामुदेव रमापते ॥१७

श्रीमानिनीमानचोर गोपीवस्त्रापहारक ।

देहि मे तनय कृष्ण वामुदेव जगत्पते ॥१८

अस्माक पुत्रमम्प्राप्ति कुरुष्व यदुनन्दन ।

रमापते वामुदेव मुकुन्द मुनिवन्दित ॥१९

वामुदेव सुत देहि तनय देहि मात्रव ।

पुत्र मे देहि श्रीकृष्ण वत्स देहि महाप्रभो ॥२०

हे देवकीनन्दन । हे गोविन्द । हे वामुदेव । हे जगन्नाथ । हे श्रीकृष्ण मुझे पुत्र प्रदान कीजिये, मैं आपकी शरण में आया हूँ ॥११॥ हे विश्ववध । हे वामुदेव । हे श्रीपते । हे पुष्पोत्तम श्रीकृष्ण । मुझे पुत्र प्रदान कीजिये, मैं आपकी शरण में उपस्थित हूँ ॥१२॥ हे कमलाक्ष । हे कमलापते । हे दया करने वालों में सर्वश्रेष्ठ श्रीकृष्ण । मैं आपकी शरण में आया हूँ, मुझे पुत्र दीजिये ॥१३॥



हे नमोपते । हे मुनिवदित मुकुन्द । हे श्रीकृष्ण । मैं आपकी शरण में उपति  
हूँ मुझे पुत्र प्रदान कीजिये ॥१४॥ आप कार्य कारण हर, सुख देन वार  
विज्ञ हैं पुत्र की प्राप्ति के निमित्त मैं आप वासुदेव की सदा प्रणाम करत  
॥ १५ ॥ हे कमलनयन । हे रावणार । हे हर । हे बने । हे द  
विष्णो । आपकी नमस्कार है मुझे पुत्र दीजिये । ॥१६॥ हे विद्वेश्वर ।  
प्राप्ति की कामना से मैं आपकी आराधना कर रहा हूँ । हे रमापते । हे वा  
श्रीकृष्ण । मुझे पुत्र प्रदान करिये ॥१७॥ हे मानिनी राधा के मान न  
श्रीकृष्ण । हे वासुदेव । हे जगन्नाथ मुझे पुत्र प्रदान करिये ॥१८॥ हे यदुन  
हे लक्ष्मीपति वासुदेव । हे मुनिवदित मुकुन्द । हर्षे पुत्र लाभ कराइये ॥  
हे वासुदेव । मुझे पुत्र दीजिये, हे माधव । मुझे तनय दीजिये हे श्रीकृष्ण  
मुझे पुत्र दीजिये, हे महाप्रभो । मुझे वत्स प्रदान कीजिये ॥२०॥

चन्द्रसूर्याक्ष गोविन्द पुण्डरीकाक्ष माधव ।  
अस्माकं नमस्तपुन देहि देव जगताते ॥२१॥  
कारुण्यरूप पद्माक्ष पद्म नाभसमर्चित ।  
देहि मे तनय कृष्ण देवकीनन्दनन्दन ॥२२॥  
देवकीमुत श्रीनाथ वासुदेव जगत्पते ।  
समस्तकामफलद देहि मे तनय सदा ॥२३॥  
भक्तमन्दार गम्भीर शङ्कराच्युत माधव ।  
देहि मे तनय गोपबालवत्सल श्रीपते ॥२४॥  
श्रीपते वासुदेवेश देवकीप्रियनन्दन ।  
भक्तमन्दार मे देहि तनय जगता प्रभो ॥२५॥  
जगन्नाथ रमानाथ भूमिनाथ दयानिधे ।  
वासुदेवेश सर्वेश देहि मे तनय प्रभो ॥२६॥  
श्रीनाथ कमलपनाक्ष वासुदेव जगत्पते ।  
देहि मे तनय कृष्ण त्वामह शरण गत ॥२७॥  
दासमन्दार गोविन्द भक्तचित्तामणे प्रभो ।  
देहि मे तनय कृष्ण त्वामह शरण गत ॥२८॥

गोविन्द पुण्डरीकाक्ष रमानाथ महाप्रभो ।  
 देहि मे तनय कृष्ण त्वामह शरण गत ॥२८॥  
 श्रीनाथ कमलपत्ताक्ष गोविन्द मधुसूदन ।  
 मत्पुत्रफलसिद्धयर्थं भजामि त्वा जनार्दन ॥३०॥

हे चन्द्र मूर्त्यं स्त्री नेत्रधारी गोविन्द । हे पद्मनयन माधव । हे जगदीश्वर ।  
 हमे भाग्यवान पुत्र दीजिये ॥२९॥ हे करणामय । हे पद्मनयन । हे पद्मनाभ ।  
 हे विष्णु-मम्मानित द्वक्तीपुत्र श्रीकृष्ण । हम पुत्र प्रदान करिय ॥२९॥ हे देवकी-  
 नन्दन । हे लक्ष्मीपते । हे जगत्पति वासुदेव । हे अभीष्ट जनदाता श्रीकृष्ण  
 मुझे सदा तनय प्रदान कीजिये ॥२३॥ हे भक्तों की कामना पूर्ति के लिये कल्प-  
 वृक्ष स्वरूप । हे गम्भीर स्वभाव वाले अच्युत । हे भगलगारी माधव , हे ग्वाल-  
 वालो पर स्नेह करने वाले लक्ष्मीनाथ । मुझे पुत्र प्रदान करिय ॥२४॥ हे श्रीपते ।  
 हे धमुदेवपुत्र । हे देवकीनन्दन ईश्वर । आप भक्तों के त्रिय कल्पवृक्ष रूप हो,  
 हे जगदीश्वर । मुझे पुत्र प्रदान करिये ॥२५॥ हे जगन्नाथ । हे लक्ष्मीनाथ ।  
 हे रमानाथ । हे दयानिधे । हे वासुदेव, ईश्वर एव सर्वेश्वर प्रभो । मुझे पुत्र  
 दीजिये ॥२६॥ हे कमलनाथ । हे कमलनयन वासुदेव । हे जगन्नाथ श्रीकृष्ण ।  
 मैं आपकी शरण में आया हूँ, मुझे पुत्र प्रदान करिये ॥२७॥ हे अपने सेवकों की  
 कामना सिद्धि के लिये कल्पवृक्ष स्वरूप गोविन्द । भक्तों की इच्छा पूर्ति के निमित्त  
 चिन्तामणि रूप श्रीकृष्ण । मैं आपका शरणगत हूँ, मुझे पुत्र दीजिये ॥२८॥  
 हे पुण्डरीकाक्ष गोविन्द । हे लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण । हे महाप्रभो । मुझे पुत्र प्रदान  
 कीजिये, मैं आपके आश्रय में उपस्थित हूँ ॥२९॥ हे कमलापते । हे कमललोचन ।  
 हे मधुसूदन गोविन्द । हे जनार्दन । पुत्र रूप पत्र की प्राप्ति के लिये मैं आपकी  
 आराधना करता हूँ ॥३०॥

भवदीयपदाम्भोजे चिन्तयामि निरन्तरम् ।  
 देहि मे तनय सीताप्राणवल्लभ राधन ॥३१॥  
 राम मत्काम्यवरद पुत्रोत्पत्तिफलप्रद ।  
 देहि मे तनय श्रीगणकमलासनवन्दित ॥३२॥

राम राघव सीतेश लक्ष्मणानुज देहि मे ।  
 भाग्यवत्पुत्रसत्तान दशरथात्मज श्रीपते ॥३३॥  
 देवकीगभसजात यशोदाप्रियनन्दन ।  
 देहि मे तनय राम कृष्ण गोपाल माधव ॥३४॥  
 कृष्ण माधव गोविन्द वामनाच्युत शङ्कर ।  
 देहि मे तनय श्रीश गोमवालकनायक ॥३५॥  
 गोपाल महाधन्य गोविन्दाच्युत माधव ।  
 देहि मे तनय कृष्ण वासुदेव जगत्पते ॥३६॥  
 दिशतु दिशतु पुन देवकीनन्दनोऽय दिशतु दिशतु शीघ्र  
 भाग्यवत्पुत्रलाभम्  
 दिशतु दिशतु श्रीशो राघवो रामचन्द्रो दिशतु दिशतु पु  
 वशविस्तारहेतो ॥३७॥  
 दीयता वासुदेवेन तनयो मत्प्रिय सुत ।  
 कुमारो नन्दन सीत नायकेन सदा मम ॥३८॥  
 राम राघव गोविन्द देवकीसुत माधव ।  
 देहि मे तनय श्रीश गोपालवनायक ॥३९॥  
 वशविस्तारक पुत्र देहि मे मधुसूदन ।  
 सुत देहि सुत देहि स्वामह शरण गत ॥४०॥

हे राघव ! हे सीताजी के प्राणवल्लभ ! मैं आपके चरणारवि  
 के बिगड़न में रत हूँ आप मुझ पुत्र दीजिये ॥ ३१ ॥ मुझे अमिता  
 वर और पुत्रीलक्ष्मि रूप जन देने वाले हे श्रीराम ! प्रह्लादजी के इ  
 वदित हूँ श्रीपति ! आप मुझ पुत्र प्रदान कीजिये ॥ ३२ ॥ हे उदयण के ज  
 भ्राता ! ॥ सीताजी के प्राणपते ! हे दशरथ सुवन ! हे रघुनन्दन श्रीराम !  
 श्रीपति ! आप मुझ भाग्यगारी पुत्र दीजिये ॥ ३३ ॥ हे देवकी के उदर से अ  
 सीत हीन बरने गोपाल ! हे यशोदा के सुवन श्रीकृष्ण ! हे माधव ! हे रा  
 मुन पुत्र प्रणव कीजिये ॥ ३४ ॥ हे माधव ! हे गोविन्द ! हे वामन ! हे अच्यु  
 त वंशजगदारी लक्ष्मीपते ! हे गोमगुप्तों के अधिनायक ! हे श्रीकृष्ण ! मुझ



यः पठेत् पुत्रस्तोत्र सोऽपि सत्पुत्रवान् भवेत् ।

श्रीवासुदेवकथित स्तोत्ररत्न सुखाय च ॥५०॥

काले पठेन्नित्यं पुत्रलाभं धनं श्रियम् ।

ऐश्वर्यं राजसम्पन्नं सद्यो याति न संशयः ॥५१॥

पुत्र तथा सम्पत्ति के देने वाले, पुत्र-लाभ कराने वाले और देवताओं द्वारा पूजित गोविन्द श्रीकृष्ण का हम सदैव वन्दन करते हैं ॥४१॥ हे प्रभो ! ब्रह्मण्य के निधि गोपियो मे प्राणवल्लभ एव मुर नामक दैत्य के शत्रु हैं, आप पुत्र-लाभ के निमित्त मेरा नमस्कार है, आप मुझे पुत्र दीजिये ॥४२॥ सक्ष्मीपते ! हे रुक्मिणी के प्राणनाथ ! हे भगवान् श्रीकृष्ण ! आपकी नमस्क है । हे गोपबालकों के नायक श्रीपते ! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये ॥४३॥ स लक्ष्मीजी की इच्छा रखने वाले आप वासुदेव को मैं प्रणाम करता हूँ । पुत्र प्रदान करने वाले एव सर्वेन्द्र दोष की दृष्टि पर शयन करते हैं, आप श्रीरंगश भगवान् को मेरा नमस्कार है ॥४४॥ हे रंगशायी रमापते ! हे मंगल के वाले माधव ! हे गोपबालकों के नायक ! हे लक्ष्मीनाथ ! आप मुझे दीजिये ॥४५॥ हे दीनो के जल्पवृक्ष ! हे राघव ! मुझ दास को पुत्र प्रदान करिं हे रमापते ! मुझे पुत्र प्रदान करिये, मुझे पुत्र दीजिये, पुत्र दीजिये ॥४६॥ यशोदानन्दन ! हे मनोभिलषित पुत्र प्रदान में तत्पर श्रीकृष्ण ! मैं आपकी शरण आया हूँ, मुझे पुत्र प्रदान करिये ॥ ४७ ॥ हे मेरे इष्टदेव गोविन्द ! हे वासुदेव हे जगद्गुरु श्रीकृष्ण ! मुझे पुत्र प्रदान करिये, मैं आपकी शरण में आया हूँ ॥४८॥ हे भगवान् ! हे इन्द्र द्वारा पूजित वासुदेव ! आपकी कृपा से नीतिमान्, धनवान् और विद्यावान् पुत्र उत्पन्न होता है ॥४९॥ श्री वासुदेव कथित इस पुत्र स्तोत्र जो पाठ करता है, वह श्रेष्ठ पुत्र से युक्त होता है । यह स्तोत्र-रत्न प्राप्त कराने वाला भी है ॥५०॥ इसका प्रतिदिन पाठ करने वाले को सत्का पुत्र-लाभ होता है और वह दीर्घ ही धन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य एव राज से सम्पन्न होता है, दगमे सन्देह नहीं है ॥५१॥

# हरिवंश पर्व

॥ आदि-सृष्टि का वर्णन ॥

नारायण नमस्कृत्य नर चैव नरोत्तमम् ।

देवी सरस्वती चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥

द्वैपायनोष्ठपुटनि मृतमप्रमेय पुण्य पवित्रमथ पापहर शिव च ।

यो भारत समधिगच्छति वाच्यमान किं तस्य पुष्करजलैरभिषेच-  
नेन ॥२॥

जयति पराशरसूनु सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यास ।

यस्याम्यकमलगलित वाङ्मयममृत जगत्पिबति ॥३॥

यो गोशत वनकशृगमय ददाति विप्राय वेदविवुपे बहुविश्रु-  
ताय ।

पुण्या च भारततथा शृणुषाच्च तद्वत्तुल्य फल भवति तस्य  
च तस्य चैव ॥४॥

शताश्वमेघस्य यदस्य पुण्य चतुसहस्रस्य शतक्रतोश्च ।

भवेदनन हरिवशदानात्प्रकीर्तित व्यासमहर्षिणा च ॥५॥

यद्वाजपेयन तु राजसूयाद् दृष्टं फलं हस्तिरथेन चान्यम् ।

तत्तन्मयते व्यासवच प्रमाणं गीतं च वाल्मीकिमहर्षिणा च ॥६॥

यो हरिवशं सेवयति यथाविधिना महातपा सपदि ।

स जयति हरिपदकमलं मयुषा हि यथा रसेन सलुब्ध ॥७॥

पितामहाद्य प्रवर्तति पृष्ठं महर्षिमक्षय्यविभूतिमुक्त्वा ।

नारायणस्याशजमेकपुत्रं द्वैपायनं वेदमहानिधानम् ॥८॥

यो नारायण एव नरा म मी नरोत्तम, भगवान् क तत्त्व ज्ञान को प्रकाशित

बरो यानी भगवनी सरस्वती को नमस्कार करे ही जय का स्वाध्याय करे

॥१॥ भगवान् व्यासजी के ओंछा से निकल हुए, अद्भुत, पवित्र पाप नाश

एवं सुखदायक महाभारत को जो मनुष्य सुनता हो, उसे पुष्करादि तीर्थों में स्नान करने की क्या आवश्यकता है ? ॥२॥ पराशरनन्दन एवं सत्यवती के हृदय को आनन्द देने वाले उन भगवान् व्यासदेव की जय हो, जिनके पुत्र मुखारविन्द से निःसृत कषामृत का पान यह सम्पूर्ण विश्व करता है ॥३॥ जो मनुष्य स्वर्ण मडिन सींगों वाली सो पावें किसी बहुश्रुत एवं वेदज्ञाता ब्राह्मण को दान देता है अथवा जो परम पवित्र महाभारत की कथा श्रवण करता है उन दोनों का पुण्य समान ही है ॥४॥ जो मनुष्य सौ अश्वमेध यज्ञ करके यज्ञ में आगत चार सहस्र अतिथियों को भोजन कराता अथवा जो इन्द्रपद की प्राप्ति कराने वाले शतशत कर्म का अनुष्ठान करता है, उन दोनों से भी अनन्त गुण अधिक की प्राप्ति उसे होती है जो महर्षि व्यास कृप हरिवंश का दान करता । ॥५॥ जो फल वाञ्छेय यज्ञ से अथवा राजसूय यज्ञ से या ह्यथी युक्त रथ का दान करने से होता है, वही फल महर्षि वेद व्यास अथवा वाल्मीकिजी द्वारा कथा के श्रवण-श्रवण से प्राप्त हो जाता है ॥६॥ जो विधिवत् हरिवंश लिख पाता है, वह परमपत्नी रस के लोभी श्री के समान हरि चरखों को शीघ्र ही प्राप्त होता है ॥७॥ जिन महर्षि को रितामह से भी महान् समझा जाता था, जो अवरिमित योग रथी ऐश्वर्य से युक्त थे, जो साक्षात् भगवान् श्री नारायण के अग्रे उत्पन्न हुए थे, जिनके केवल एक पुत्र थे, उन द्वैपायन भगवान् श्री-व्यासजी को नमस्कार है ॥८॥

आद्यं पुराणमीशानं पुरातनं पुराष्टुतम् ।

श्रुतमेवाक्षरं ब्रह्म व्यवताप्यक्तं सनातनम् ॥९॥

धर्मव्य मद्गच्छेत् यद्विश्च सदगत्तरम् ।

परावराणां शृङ्गारं पुण्यं परमव्ययम् ॥१०॥

मन्त्राय मन्त्रं विष्णुं वरेणामनघं शुचिम् ।

नमस्तस्य हृषीकेशं पराचरगुरुं हरिम् ॥११॥

नैमिषं च कुरुक्षेत्रं शीतवस्तु महाभुनि ।

गौतमि पञ्चदश धर्माः मा गवशास्त्विक्षात् ॥१२॥

गौतमे गुह्यदद्यान् भवता परिकीर्तितम् ।

भरताना च सर्वेषां पार्थिवानां तथैव च ॥१३  
 देवाना दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।  
 दैत्यानामथ सिद्धानां गुह्यकानां तथैव च ॥१४  
 अत्यद्भुतानि कर्माणि विक्रमा धर्मनिश्चयाः ।  
 विचित्राश्च कथायोगा जन्म चाग्रचमनुत्तमम् ॥१५  
 कथितं भवता पुण्यं पुराण श्लक्ष्णया गिरा ।  
 मनःकर्णसुखं सौते प्रीणात्यमृतसमितम् ॥१६

जो शुद्ध चैतन्य स्वरूप एव आदि पुरुष थे, जो ईशान, पुरुहूत, पुरष्टुत, ह्यत, एक, अक्षर, ब्रह्म, अक्षर एव अव्यक्त, सनातन हैं ॥१३॥ जो अमन् एव हैं, अथवा जो सत् और असत् दोनों से परे हैं, जो विश्वरूप हैं, जो पर और पर के सृष्टा तथा परम अविनाशी हैं ॥१४॥ जो मंगल के देने वाले, मंगल, सर्वव्याप्त, वरेण्य और दोष-रहित हैं, जो स्वभावतः शुद्ध, इन्द्रियों के वर्णक, अग्निलज्जत के उपदेष्टा और सभी पापों के नाशक हैं, उन भगवान् पिकेश को नमस्कार करके अपने प्रतिपाद्य विषय को कहता है ॥१५॥ नैमिषा-ण्य में कुलपति महामुनि एव सम्पूर्ण शास्त्रों के पारंगत धर्मिणा शौनवजी ने तजी से प्रश्न किया ॥१६॥ शौनव बोले—हे सूतजी ! आपने अत्यन्त श्रेष्ठ व महान् आख्यान सुनाया, उसमें अनेक भरतवशी भूपानों, देवताओं, दानवों, पर्वों, सपों, राक्षसों, दैत्यों, मित्रों और यक्षों के अद्भुत कर्म तथा धर्म का विपादन करने वाले सामर्थ्य तथा अत्यन्त श्रेष्ठ जीवन चरित्रों का वर्णन हुआ ॥१३-१५॥ अतः मधुर वाणी में आपने अनेक पुराण भी कहे, आत्मी सुपा-मी वाणी हृदय और वाणों की अत्यन्त आनन्द देने वाली है ॥१६॥

सत्त जन्म कुरुणां वै त्वयोक्तं लोमहर्षणे ।  
 न तु वृष्णग्रन्थकानां च तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥१७  
 जनमेजयेन यत्पृष्टं शिष्यो व्यासस्य धर्मवित् ।  
 तत्तोऽहं सम्प्रवक्ष्यामि वृष्णीनां वंशमादित ॥१८  
 श्रुत्वेतिहासं कात्स्न्येन भरतानां स भारत ।  
 जनमेजयो महाप्राज्ञो वैशम्पायनमब्रवीत् ॥१९



एव मुमुक्षुः महाभारत को जो मनुष्य सुनता हो, उसे पुष्करादि तीर्थों में स्नान करने की वर्य आवश्यकता है ? ॥२॥ पराशरनन्दन एव सत्यवती के हृदय को आनन्द देने वाले उन भगवान् व्यासदेव की जय हो, जिनके पुण्य मुखारविन्द से निमृत्त कषामृत्त का पान यह सम्पूर्ण विश्व करता है ॥३॥ जो मनुष्य स्वर्णं मण्डितं सौम्यं बालीं सौम्यं किसी बहुधृत एव वेदज्ञाता ब्राह्मण को दान देता है अथवा जो परम पवित्र महाभारत की कथा श्रवण करता है, उन दोनों का पुण्य समान ही है ॥४॥ जो मनुष्य सौ अश्वमेध यज्ञ करके यज्ञ में भागत चार सहस्र अग्निषिखों को भोजन कराता अथवा जो इन्द्रपद की प्राप्ति कराने वाले शतशत कर्म का अनुष्ठान करता है, उन दोनों से भी अनन्त गुण अधिक की प्राप्ति उने होती है जो महर्षि व्यास कृत हरिवंश का दान करता है ॥५॥ जो फल वाजपेय यज्ञ से अथवा राजसूय यज्ञ से या ह्यषी पुक्क रथ का दान करने से होता है, वही फल महर्षि वेद व्यास अथवा बाल्मीकिजी कृत कथा के श्रवण-श्रवण से प्राप्त हो जाता है ॥६॥ जो विधिवत् हरिवंश लिख-वाता है, वह परमनरखी रत्न के लोभी भीरे के समान हरि परखी को शीघ्र ही प्राप्त होता है ॥७॥ जिन महर्षि को शितामह से भी महान् समझा जाता था, जो अश्रिमिष्ठ योग रुखी ऐश्वर्य से मुक्त थे, जो साक्षात् भगवान् श्री नारायण के वर्य में उलगा हुए थे, जिनके वेदों एवं पुत्र थे, उन दुर्पापन भगवान् श्री-व्यासजी को नमस्कार है ॥८॥

आद्य पुराणमीशान् पुरातन पुराणम् ।

श्रुतमंशुशर श्रुतं व्यवहार्यं सनातनम् ॥९॥

शमन्व गदमन्व यद्विश्च सदसात्परम् ।

परायराणां गृष्टार पुराण परमव्ययम् ॥१०॥

मन्त्राय मन्त्राय विष्णु वरेण्यमनघ शुचिम् ।

नमस्कृत्य ह्यपीषेत्र चराचरगुण हरिम् ॥११॥

नैमित्तिकं च कृतानि ध्यानवन्तु गतामुनि ।

गीर्तिं पश्यन् धर्मात्मा गयेनास्वविशाम् ॥१२॥

गीर्तिं मुमहृदोऽपानं भरता परिकीर्तितम् ।

भरताना च सर्वेषां परियवाना तथैव च ॥१३  
 देवाना दानवाना च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।  
 दैत्यानामथ सिद्धाना गुह्यकानां तथैव च ॥१४  
 अत्यद्भुतानि कर्माणि विक्रमा इर्मनिश्चयाः ।  
 विचित्राश्च कथायोगा जन्म चाग्रयमनुत्तमम् ॥१५  
 कथितं भवता पुण्यं पुराणं श्रुतदणया गिरा ।  
 मनःकर्णसुखं सौते प्रीणास्थमृतसमितम् ॥१६

जो शुद्ध चैतन्य स्वरूप एव आदि पुरुष थे, जो ईशान, पुरुषोत्तम, पुरन्दर, श्रेष्ठ, एक, अक्षर, ब्रह्म, अच्युत एव अन्यत्र, सनातन हैं ॥१॥ जो अमर एव सत् हैं, अथवा जो सत् और अमर दोनो से परे हैं, जो विश्वरूप हैं, जो पर और अवर के मृष्टा तथा परम अविनाशी हैं ॥१०॥ जो मंगल के देने वाले, मंगल रूप, सर्वव्याप्त, वरेण्य और दोष-रहित हैं, जो स्वभावतः शुद्ध, इन्द्रियो के प्रबल, अद्विज जगत् के उपदेष्टा और सभी पापों के नाशक हैं, उन भगवान् हृषिकेश को नमस्कार करके अपने प्रतिपाद्य विषय को कहता हूँ ॥११॥ नैमिषारण्य में कुतपति महामुनि एव सम्पूर्ण आश्रमों के पारंगत धर्मात्मा शौनवजी ने सूनजी से प्रश्न किया ॥१२॥ शौनव बोले—हे मूतजी ! आपने अत्यन्त श्रेष्ठ एव महान् आश्रम सुनाया, उसमें अनेक भरतवर्गी भूषणों, देवताओं, दानवों, गंधर्वों, सपों, राक्षसों, दैत्यों, मिथों और यक्षों के अद्भुत कर्म तथा धर्म का प्रतिपादन करने वाले मामर्य तथा अत्यन्त श्रेष्ठ जीवन श्रिष्टों का वर्णन हुआ है ॥१३-१५॥ अगली मधुर वाणी में आपने अनेक पुराण भी कह, आरभी सुधा-मयी वाणी हृदय और वाणी को अत्यन्त आनन्द देने वाली है ॥१६॥

तत्र जन्म कुरुणा वै त्वयोक्तं लोमहर्षणे ।  
 न तु वृष्ण्यन्धकानां च तद्भुवान्वक्तुमर्हति ॥१७  
 जनमेजयेन यत्पृष्टं शिष्यो व्यासस्य धर्मवित् ।  
 तत्तोऽहं सम्प्रवक्ष्यामि वृष्णोना वशमादित ॥१८  
 श्रुत्वेतिहासं कात्स्न्येन भरताना स भारत ।  
 जनमेजयो मया प्राक्तो वैशम्पायनमब्रवीत् ॥१९

महाभारतमाख्यान बह्वर्थं श्रुतिविस्तरम् ।  
 कायेत भवता पूर्व विस्तरेण मया श्रुतम् ॥२०॥  
 तत्र शूरा समाख्याता बहव पुरुषर्षभा ।  
 नाममि कर्मभिश्चैव वृष्णिन्धकमहारथा ॥२१॥  
 तेषा कर्माविदातानि त्वयोक्तानि द्विजोत्तम ।  
 तत्र तत्र समासेन विस्तरेणैव मे प्रभो ॥२२॥  
 न च मे तृप्तिरस्तीह कथ्यमाने पुरातने ।  
 एकश्चैव मतो राशिवृष्णय पाण्डवास्तथा ॥२३॥  
 भवाश्च वशकुशलस्तेषा प्रत्यक्षदर्शिवान् ।  
 कथयस्व कुल तेषा विस्तरेण तपोधन ॥२४॥

उन पुराणों में कुरुवंशियों का जन्म भी कहा गया, परन्तु वृष्णि और अश्वकवशियों के विषय में कुछ भी नहीं बताया गया । अब आप कृपापूर्वक वही कहिये ॥१७॥ सूतजी बोले—हे शौनक ! व्यासजी के शिष्य घर्मात्मा जनमेजय ने जो प्रश्न वृष्णिवंश के विषय में किये थे, उन्हीं के अनुसार वृष्णिवंश की कथा कहना है ॥१८॥ अत्यन्त मेधावी भरतवंशी राजा जनमेजय ने भरतवंश के इतिहास को पूर्ण रूप से श्रवण कर वैशम्पायनजी के प्रति कहा था ॥१९॥ जनमेजय बोले—हे भगवन् ! आपके द्वारा कहे गये अर्थ गाम्भीर्यपूर्ण, श्रुतिसम्मत तथा विस्तृत महाभारत की कथा मैंने श्रवण की है ॥२०॥ उसमें आपने प्रद्युम्न आदि अनेक नाम तथा कर्म द्वारा महान् वृष्णि एवं अश्वकवशी महारथियों के श्रेष्ठ चरित्र संक्षेप में तथा विस्तार में भी कहे ॥२१-२२॥ उन पुरातन पुरुषों के चरित्र के श्रवण से मेरी तृप्ति नहीं हो सकी । आपके कहने से प्रतीत हुआ कि पाण्डव और वृष्णिवंशियों का कुल एक ही था ॥२३॥ हे तपोधन ! आप ब्रह्मावलि वर्णन में निपुण तथा प्रत्यक्षदर्शी भी हैं, इसलिये वृष्णिवंश का सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तार सहित मेरे प्रति कहिये ॥२४॥

यस्य मस्यान्वये मे ये तास्तानिच्छामि वेदितुम् ।  
 स त्व सर्वमशेषेण वयस्य महागुणे ।

तेषा पूर्वविमृष्टि च विचिन्त्येमा प्रजापते ॥२५॥  
 सत्कृत्य परिपृष्टस्तु स महात्मा महातया ।  
 विस्तरेणानुपूर्व्या च कथयामास ता कथाम् ॥२६॥  
 शृणु राजन् कथा दिव्या पुण्या पापप्रमोचनीम् ।  
 कथ्यमाना मया चिरा बह्वर्था श्रुतिसम्मिताम् ॥२७॥  
 यश्चेमा धारयेत्तात शृणुयाद्वप्यभीक्ष्णश ।  
 स्ववशधारण वृत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥२८॥  
 अव्यक्त कारण यत्तन्नित्य सदसदात्मकम् ।  
 प्रधान पुरुष तस्मान्निर्ममे विश्वमीश्वरम् ॥२९॥  
 त वै विद्धि महाराज ब्रह्माणममितोजसम् ।  
 नष्टार सर्वभूताना नारायणपरायणम् ॥३०॥  
 अहङ्कारस्तु महत्तस्मैन्द्रूतानि जज्ञिरे ।  
 भूतभेदाश्च भूतेभ्य इति सर्ग सनातन ३१  
 विम्नरावयव चैव यथाप्रज्ञ यथाश्रुतम् ॥  
 कीर्त्यमान शृणु मया पूर्वेषा कीर्तिवर्द्धनम् ॥३२॥

ह महामुने ! आप भने प्रकार विचारपूर्वक प्रजापति से वृष्टियों तक के पूर्व जन्म के वृत्तान्तों के सहित, जिस जिस वश में जिसका जन्म हुआ, वह सब मुझे सुनाइये ॥२५॥ मूत्रजी बोले—महातप वैशम्पायन न उनमेजय के प्रश्न की सरहना करके वृष्टिवन के चरित्रों की त्रिस्त रपूर्वक कहना प्रारम्भ किया ॥२६॥ वैशम्पायन ने कहा—हे राजन् ! अब आपको मैं दिव्य, पवित्र, पाप नष्ट करने वाली, अद्भुत, अनेक अर्थ युक्त एवं श्रुति सम्मत कथा सुनाता हूँ ॥२७॥ जो मनुष्य इस कथा को बारबार श्रवण कर हृदयगम कर लेता है, वह अपने वश को अटल कर लेता तथा स्वर्ग पाकर वहाँ पूजित होता है ॥२८॥ जो अव्यक्त कारण, नित्य, सदसदात्मक एवं प्रधान पुरुष है, उसी से इस ईश्वर-मय जगत् की उत्पत्ति हुई है ॥२९॥ हे राजन् ! उन्हीं अव्यक्त पुरुष की अमित तेज सम्पन्न, सब जीवा का मृष्टा और नारायणपरायण समझो ॥३०॥ उमी

हान् ग्रहा से बहकार उत्पन्न हुआ अहकार से आवाशादि सूक्ष्मजीव हुए,  
 सूक्ष्मजीवों से पक्वत्व और जरायुज आदि चार प्रकार के जीवों की उत्पत्ति हुई,  
 इसी को सनातन सृष्टि कहते हैं ॥३१॥ अब अपनी बुद्धि के अनुसार उस सृष्टि  
 का वह वृत्तान्त विस्तार सहित कहूँगा, जिसको जान लेने पर यश वृद्धि होती है  
 ॥३२॥

धन्य यशस्य शत्रुघ्न स्वर्गमायु प्रवर्द्धनम् ।  
 कीर्तन स्थिरकीर्तीना सर्वेषा पुण्यकर्मणाम् ॥३३॥  
 तस्मात्कल्पाय ते कल्प समग्र शुचये शुचि ।  
 आवृष्टिगदशाद्दृश्यामि भूतसर्गमनुत्तमम् ॥३४॥  
 तत स्वयम्भूगवान् सिसृक्षुर्विविधा प्रजा ।  
 अप एव ससर्जदौ तामु धीर्यमवामृजत् ॥३५॥  
 आपो नारा इति प्रोक्ता आपो च नरसूतव ।  
 अयन तम्य ता पूर्व तेन नारायण स्मृत ॥३६॥  
 हिरण्यवर्णममवत्तदण्डमुददेशयम् ।  
 तप्त जज्ञे स्वयं ग्रहा स्वयम्भूरिति न श्रुतम् ॥३७॥  
 हिरण्यगर्भो भगवानुपित्वा परिवत्तारम् ।  
 यदण्डमवरोद्धैध दिव भुवमथापि च ॥३८॥  
 तयो शयनयोर्मध्ये आकाशममृजत्प्रभु ।  
 अणु पारिप्लवा पृथ्वी दिग्भान् दशधा दधे ॥३९॥  
 तप्त वात मनी धातु वाम क्रोध मनोरतिम् ।  
 ममजं सृष्टिं तद्रूपा सप्तमिच्छन्प्रजापतीन् ॥४०॥

इसका बीज नरों और शत्रुघ्न नरों से था तथा यश की वृद्धि होती  
 है, शत्रुघ्नों का नाम होना है आयु बढ़नी है और अ न मे स्वर्ग की प्राप्ति होनी  
 है ॥३१॥ आठ गुण और गुणगणों में सत्य है दमनिये में आपकी वृष्टिगद  
 सृष्टि और प्रजा की जीव सृष्टि का वृत्तान्त सुनाऊँगा ॥३२॥ भगवान् ने  
 गुण भूतों की प्रकट करने और प्रजा की भौतिक प्रजा उत्पन्न कराने  
 विचार से तप्त वात मनी धातु वाम क्रोध मनोरति की, फिर उगम अपना बीज हाता

॥३५॥ जल को 'नार' भी कहा गया है तथा वह जन नर का उत्पत्ति स्थान है, इसलिए नर रूपी भगवान् को नारायण कहा गया है ॥३६॥ भगवान् द्वारा तल में डाला गया वीर्य हिरण्य वर्ण का अण्ड होगया, उस अण्ड से स्वयम्भू बड़े बाने बाने ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई ॥३७॥ अण्ड में एक वर्ष रह कर ब्रह्माजी ने उसके दो खण्ड कर दिये, उन्होंने एक खण्ड में पृथिवी और दूसरे खण्ड से वैलोव की रचना की ॥३८॥ उन दोनों खण्डों के अन्तराल से आकाश की रचना करके पृथिवी को जन पर स्थापित किया फिर सूर्य और दशो दिशाओं की रचना की ॥३९॥ उसी अण्ड में उन्होंने रत्ति विषयक प्रीति के सहित पिण्ड सृष्टि की रचना के विचार में काल, मन, वचन, काम, क्रोध एवं अनुराग की सृष्टि की ॥४०॥

मनीषिमन्यद्भिरस पुलस्त्य पुलह कतुम् ।  
 वसिष्ठ च महातेजा सोऽमृतमप्य मानसान् ५१  
 सप्त ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयज्ञता ।  
 नारायणात्मकानां वै मत्तानां ब्रह्मजन्मानाम् ॥५२॥  
 ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मा रद्र रोपात्मसम्भवम् ।  
 सनत्कुमार च विभु पूर्वेषामपि पूर्वजम् ॥५३॥  
 स्पर्तते जनयन्ति स्म प्रजा रद्रश्च भारत ।  
 रद्रं सनत्कुमारश्च तेज सक्षिप्य तिष्ठत ॥५४॥  
 तेषां सप्त महावशा दिव्या देवगणान्विता ।  
 त्रियावन्त प्रजावन्तो मर्त्यपिभिरतृता ॥५५॥  
 विद्युतोऽशनिमेघाश्च रोहितेन्द्रधनू पि च ।  
 वयासि च ससर्जार्दो पर्जन्य च ससर्ज ह ॥५६॥  
 श्रुचो यजू पि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये ।  
 साध्यास्तेरयजन् देवानित्येवमनुशुश्रुम ।  
 मुषार्देवानजनयत्पितृ स्वेशोर्जपि वयम् ॥५७॥  
 प्रजनाच्च मनुष्यान् जघनान्निर्ममेऽनुरान् ।  
 साध्यानजनयद्देवानित्येवमनृणश्च म ॥५८॥

फिर उन्होंने अपने मन से मरीचि, अत्रि, अगिरा, पुनस्त्य, पुलह, ऋतु  
 एव वसिष्ठ इन सप्तर्षियों को प्रकट किया ॥४१॥ इन सप्तर्षियों ने अपने को  
 गृहस्थ ब्राह्मण मान कर ब्रह्माजी के द्वारा ही प्रकट सनकादि ऋषियों के  
 तिरस्कार पूर्वक इन्होंने वेद मार्ग को ही थोड़ा समझा ॥४२॥ फिर ब्रह्माजी ने  
 परम श्रेयी रुद्र को उत्पन्न किया तथा मरीचि आदि के भी पूर्वज सनत्कुमार  
 की उत्पत्ति की ॥४३॥ उपरोक्त सप्तर्षि और रुद्र सन्तानोत्पादन कर्म में लगे,  
 परन्तु सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, नारद और रुद्र ने अपने तेज को  
 नियमित कर ब्रह्मचर्य पालन किया ॥४४॥ सप्तर्षि और रुद्र इन आठों ब्रह्म-  
 पुत्रों ने दिव्य, महान्, कर्मवान् तथा सन्तानवान् सात वंशों की उत्पत्ति की,  
 जिनमें यज्ञ, आदित्यादि सुर और कश्यपादि महर्षि थे ॥४५॥ फिर उन्होंने  
 विष्णु, वज्र, मेघ, रोहित इन्द्र धनुष तथा गगनचर खगो की रचना की ॥४६॥  
 फिर यज्ञ कार्य की सम्पन्नता के लिए ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद की रचना  
 की । इन्हीं वेद मन्त्रों से देवताओं की प्रीति के लिये यज्ञ किया था, ऐसा सुनते हैं ।  
 फिर ब्रह्मा ने अपने मुख से देवगण, वक्ष स्थल से पितरगण, उपस्थ से मनुष्य-  
 गण और जघन भाग से असुरगण की रचना करके साध्यों की रचना की ॥४७ ४८॥

उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ।

अपवस्य प्रजासर्गं सृजतो हि प्रजापते ॥४९॥

सृज्यमाना प्रजा नैव विवर्द्धन्ते यदा तदा ।

द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत् ॥५०॥

अर्धेन नारी तस्या स ससृजे विविधा प्रजा ।

दिव च पृथिवी चैव महिम्ना व्याप्य तिष्ठत् ॥५१॥

विराजमसृजद्विष्णु सोऽसृजत्पुरुष विराट् ।

पुरुष त मनु विद्वि तद्वै मन्वन्तर स्मृतम् ॥५२॥

द्वितीयमापवस्यैतन्मनोरन्तरमुच्यते ।

स विराज प्रजासर्गं ससर्ज पुरुष प्रभु ।

नारायणविसर्गं स प्रजास्तस्याप्पोनिजा ॥५३॥

आयुष्मान्कीर्तिमान्धन्य प्रजावान्द्रुतवास्तथा ।

आदि सर्गं विदित्वेम यथेष्टा प्राप्नुयाद्गतिम् ॥५४॥

उप समय ब्रह्माजी के अन्यान्य वर्गों से अन्य अनेक प्रकार के प्राणी उत्पन्न हुए, उसी अवसर में वसिष्ठ नामक प्रजापति की सृष्टि की ॥४६॥ इस प्रकार विभिन्न सन्ततियों को मन से उत्पन्न करके भी जब ब्रह्मा ने प्रजा की वृद्धि होते हुए नहीं देखी, तो अपने देह के दो भाग करके एक से पुरुष, दूसरे से स्त्री हुए और विभिन्न प्राणियों की रचना की तथा अपने प्रभाव से ही पृथिवी और देवलोक को व्याप्त कर बैठे ॥४७-४९॥ इस प्रकार विष्णु भगवान् ने विराट् रचना की और विराट् ने पुरुष को रचा, पुष्ट्य मनु ये, जिन्होंने मन्वन्तर का क्रम चलाया ॥४९॥ भगवान् विष्णु द्वारा हिरण्यगर्भ से उत्पन्न सृष्टि आपव बही गयी, आपव से उत्पन्न होने वाली प्रजा अयोनिज थी, इसके पश्चात् विष्णु ने ही मनु के द्वारा योनिज सृष्टि की रचना की। इसलिये आपव और योनिज सृष्टि में स्त्री संज्ञक दूसरा अन्तर उपस्थित हो गया, इसीसे मन्वन्तर सञ्च चल पड़ा ॥५३॥ आदि सृष्टि विषयक इन बातों को जो मनुष्य जान लेता है, वह आयुष्मान्, कीर्तिमान्, धनवान्, पुत्रवान् और विद्वान् हो जाता है तथा उसे मनो-मिलापित गति की प्राप्ति होती है ॥५४॥

## ॥ स्वायम्भुव का वंश—दश को उत्पत्ति ॥

सृष्टासृ प्रजास्त्रैवमापवो वै प्रजापतिः ।

लेभे वै पुरुषः पत्नी शतरूपामयोनिजाम् ॥१॥

आपवस्य महिम्ना तु दिवमावृत्य तिष्ठतः ।

धर्मेणैव महाराज शतरूपा व्यजायत ॥२॥

सा तु वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ।

भर्तारं दीप्ततपसं पुरुषं प्रत्यपद्यत ॥३॥

स वै स्वायम्भुवस्तात पुरुषो मनुश्च्यते ।

तस्यैवमप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥४॥

वैराजात्पुरुषाद्वीरं शतरूपां व्यजायत ।

प्रियव्रतोत्तानपादौ वीरात्वाम्या व्यजायत ॥५॥



काम्या नाम महाबाहो यद्दमस्य प्रजापते ।  
 काम्यापुत्रास्तु चत्वारः सत्राद् कुक्षिविराट् प्रभु ।  
 प्रियव्रत समासाद्य पति सा सुपुत्रे सुतान् ॥६॥  
 उत्तानपाद जग्राह पुत्रमस्मि प्रजापति ।  
 उत्तानपादाच्चतुर सूनृताऽजनयत्सुतान् ॥७॥

वैशम्पायन जी ने कहा—इस प्रकार अयोनिज और योनिज दोनों प्रकार की सृष्टि उत्पन्न करने के पश्चात् आपन प्रजापति हुए, अयोनिजा शतरूपा नाम की कन्या उनकी पत्नी हुई ॥१॥ सर्वव्यापी आपन की महिमा और धर्म के प्रभाव से शतरूपा अनेक रूप वाली हुई ॥ ॥ इस हजार रूप तक उसने घोर तपस्या की और फिर सत्तान की कामना से वह अपने तेजस्वी पति के समीप पहुँची ॥२॥ हे जनमेजय ! स्वायम्भुव मनु को विराट् पुरुष कहा गया है, उनके कार्यकाल की इकहत्तर चतुर्दशी व्यतीत होने पर एक भवन्तर होता है ॥३॥ शतरूपा ने उन विराट् पुरुष के ससर्ग से वीर नामक एक पुत्र उत्पन्न किया, जिससे प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र तथा काम्या नाम की पुत्री उत्पन्न हुई ॥४॥ हे महाबाहो ! प्रियव्रत के ससर्ग से काम्या के चार पुत्र हुए, जिनके नाम सत्राट् कुक्षि, विराट् और प्रभु थे ॥५॥ प्रजापति अत्रि ने उत्तानपाद को अपना उत्तराधिकारी बनाया और उत्तानपाद ने अपनी पत्नी सूनृता से चार पुत्र उत्पन्न किये ॥६॥

धर्मस्य कन्या सुश्रोणी सूनृता नाम विश्रुता ।  
 उत्पन्ना याजिमेधेन ध्रुवस्य जननी शुभा ॥८॥  
 ध्रुव च कीर्तिमत च शिव शान्तमयस्पतिम् ।  
 उत्तानपादोऽजनयत्सूनृताया प्रजापति ॥९॥  
 ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि दिव्यानि भारत ।  
 तपस्तेपे महाराज प्रार्थयन्सुमहद्यश ॥१०॥  
 तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीत स्थानमप्रतिम भुवि ।  
 अचल चैव पुरते सप्तर्षीणा प्रजापति ॥११॥

तस्यानिमानामृद्धिं च महिमान निरीक्ष्य च ।  
 देवामुराणामाचार्यं श्लोक प्रागुक्ष्णना जगौ ॥१२॥  
 अहोऽस्य तपसो वीर्यमहो श्रुतमहो बलम् ।  
 यदेन पुरतः कृत्वा ध्रुव सप्तर्षय स्थिता ॥१३॥  
 तस्माच्छ्लिष्टि च भव्यं च ध्रुवाच्छम्भुर्व्यजायत ।  
 श्लिष्टे राघत्त सुच्छाया पञ्चा पुनानकल्मषान् ॥१४॥

ध्रुव की माना सूनृता धर्म की पुत्री थी, उसका जन्म अश्वमेध यज्ञ के द्वारा हुआ था ॥८॥ सूनृता के चार पुत्र ध्रुव, शीतिमान, शिव और अयस्पति नामक थे ॥९॥ हे भारत ! महान् यज्ञ की प्राप्ति के निमित्त ध्रुव ने तीन हजार दिव्य वर्ष तक घोर तपस्या की थी ॥१०॥ उन पर प्रमन्न होकर भगवान् ब्रह्माजी ने उन्हें सप्तर्षियों से भी उच्च, अचल एवं श्रेष्ठ लोक प्रदान किया था, जिसकी समता नहीं हो सकती ॥११॥ ध्रुव की समृद्धि और महिमा की महानता देख कर सुरामुर गुरु शुक्राचार्य जी ने कहा था ॥१२॥ अहा ! ध्रुव का तप, पराक्रम, बल तथा ज्ञान बितना ऊँचा है कि सप्तर्षि भी इसे अपने से आगे का स्थान देकर स्मित हैं ॥१३॥ ध्रुव के तीन पुत्र हुए—श्लिष्टि ने सुच्छाया नाम की भार्या से पाँच पुण्यात्मा पुत्रों की उत्पत्ति की ॥१४॥

रिपु रिपु जय पुण्य वृकल वृकतेजसम् ।  
 रिपोराघत्त बृहती चाक्षुष सवतेजसम् ॥१५॥  
 अजीजनत्पुण्यरिण्या वीरण्या चाक्षुषो मनुम् ।  
 प्रजापतेरात्मजायामरण्यस्य महात्मन ॥१६॥  
 मनोरजायन्त दश नड्वलाया महौजस ।  
 रन्यायामभवच्छ्रेष्ठा वैराजस्य प्रजापते ॥१७॥  
 ऊरु पूर दानद्युम्नस्तपस्वी मत्यवान्कवि ।  
 अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव ॥ १८॥  
 अभिमन्युश्च दशमो नड्वलाया सुता स्मृता ।  
 ऊगोरजनयत्पुत्रान्पट्वाग्नेयी महाप्रमान् ।  
 अन्न मुमनम ग्याति क्रतुमद्भिरस गयम् ॥१९॥

अङ्गात्सुनीथापत्य वै वेनमेकमजायत ।

अपचारात् वेतस्य प्रकोप सुमहानभूत ॥२०॥

प्रजार्थमृषयो यस्य ममन्धुर्दक्षिण करम् ।

वेनस्य पाणी मथिते वभूव मुनिभि पृथु ॥२१॥

उन पुत्रों के नाम रिपु, रिपुञ्जय, पुण्य, वृक्ल और वृक्तेजस् थे । पाँचों में धेठ रिपु की पत्नी वृहती हुई, जिसने सब देवताओं के तेज से सम्बाक्षुप नाम का पुत्र उत्पन्न किया ॥१५॥ चाक्षुप ने वीरसुता पुष्करिणी भार्या बना कर उसके गर्भ से मनु की उत्पत्ति की ॥१६॥ मनु ने अरण्या प्रपति की पुत्री नड्यला के गर्भ से दस पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम ऊरु, शतद्युम्न, तपस्वी सत्यवान, कवि, अग्निपुत्र, अतिरात्र, सुद्युम्न और अभि थे । ऊरु ने आग्नेयी के गर्भ से अङ्ग सुमनस, रपाति, कृतु, अगिरा और नामक महातेजस्वी छ पुत्र उत्पन्न किये । १७ १८॥ अग ने यम की पुत्री सुन के गर्भ से वेन न मक एक ही पुत्र को जन्म दिया । वेन देवताओं वर द्रोही हुआ जिससे क्रोधित हुए ऋषियों ने उसकी दक्षिण भुजा का भक्षण किया, जि पृथु नामक एक पुत्र की उत्पत्ति हुई ॥२० २१॥

त हृष्टा ऋषय प्राहुरेप वै मुदिता प्रजा ।

करिष्यति महातेजा यशश्च प्राप्स्यते महत् ॥२२॥

स धन्वी कवची खड्गी तेजसा निर्दहन्निव ।

पृथुर्वैन्द्यस्तदा चेमा ररक्ष क्षत्रपूर्वज ॥२३॥

राजसूयाभिषिक्तानामाद्य स वसुधाधिप ।

तस्मान्बैव समुत्तन्नो निगुणो सूतमागधो ॥२४॥

तेनेय गौर्महाराज दुग्धा सस्यानि भारत ।

प्रजाना वृत्तिवामेन देवैः सविगणैः सह ॥२५॥

पितृभिर्दानवैश्चैव गन्धर्वैः साप्सरोगणैः ।

सर्पैः पुण्यजनैश्चैव वीरुद्भिः पर्वतैस्तथा ॥२६॥

तेषु तेषु च पात्रे दुह्यमाना वभुन्धरा ।

प्रादाद्यथेप्सित क्षीर तेन प्राणानधारयन् ॥२७॥

पृथुपुत्रो तु धर्मज्ञो जज्ञातेऽन्तर्द्विपालिती ।  
शिखण्डिनीहविर्धानमन्तर्द्वानाद्वयजायता ॥२८॥

उसे देखकर वे ऋषि अत्यन्त प्रसन्न होते हुए बाने—यह पृथु प्रजाजन को प्रसन्न करने वाला तथा अत्यन्त यज्ञ वाला होगा ॥२२॥ इसके अनुसार उस अत्यन्त तेज वाले वेन पुत्र पृथु ने धनुष, कवच एवं खड्ग धारण करके पृथिवी की चिरकाल तक रक्षा की । २३॥ वह पृथु राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले प्रथम राजा हुए और उनके यज्ञ में अग्नि के द्वारा सून और मागध की उत्पत्ति हुई ॥२४॥ उन्होंने प्राणिया को जीवन देने के लिये द्रव्य, ऋषि, पितर, दानव, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, यक्ष, सत्ता, पर्वतादि से मिलकर और पुराणातरो में देवादि ने अपने सजातीयों को बढ़ावा बना कर गो रूप धारिणी पृथिवी का दोहन किया । तब पृथिवी ने उन्हें अग्नादि दुग्ध प्रदान किया जाकि उनकी जीविका हुई ॥२५-२७॥ राजा पृथु के अन्तर्धान और पाली नाम के दो पुत्र हुए । उनमें से अन्तर्धान के द्वारा शिखण्डिनी के गर्भ से हविर्धान नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई ॥२८॥

हविर्धानात्पडाग्नेयी धिपणाऽजनयत्सुनान् ।  
प्राचीनवर्हिष शुक्ल गय कृष्ण ब्रजाजिनी ॥२९॥  
प्राचीनवर्हिर्भगवान्महानासीत्प्रजापति ।  
हविर्प्रानान्महाराज येन सर्वाद्विता प्रजा ॥३०॥  
प्राचीनाग्रा कुशास्तस्य पृथिव्या जनमेजय ।  
प्राचीनवर्हिर्भगवान्पृथिवीतलधारिण ॥३१॥  
समुद्रतनयाया तु कृतदारोऽभवत्प्रभु ।  
महतस्त्वस पारे सवर्णाया महीपति ॥३२॥  
सुवर्णाऽऽत्त सामुद्री दक्ष प्राचीनवर्हिष ।  
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगा ॥३३॥  
अपृथग्धर्मचरणास्तेऽनप्यन्त महत्सव ।  
दशरूपसहस्राणि समुद्रमलिलेशया ॥३४॥

तपश्चरत्सु पृथिवी प्रचेत सु महीरहा ।

अरक्ष्यमाणामावब्रुवंमूवाथ प्रजाक्षय ॥३५॥

हविर्धान ने अग्नि की पुत्री विषणा के गर्भ से छ पुत्र उत्पन्न किये जिनके नाम प्राचीन बर्हि, शुक्ल, गय, कृष्ण, द्रज और अजिन थे ॥३६॥ हे राजन् ! प्राचीनबर्हि अपने पिता से भी अधिक सामर्थ्यवान् हुए, इसलिये उनके शासनकाल में प्रजा की बहुत वृद्धि हुई ॥३७॥ हे जनमेजय ! राजा प्राचीन बर्हि के द्वारा किये गये यज्ञों से पूर्व को अन्न भाग करके बिछे हुए कुशों से सम्पूर्ण पृथिवी आवृत्त हो गयी थी इसलिये भूतल में वे प्राचीन बर्हि नाम से प्रसिद्ध हुए । उनके प्रचेता नाम वाले दस पुत्र समुद्र में सोते हुए दस हजार वर्ष तक थोर तन करते रहे ॥ ३१-३४ ॥ इन कारण पृथिवी रक्षक-रहि हो गई और वन के रूप में दिखायी देने लगी तथा प्रजा नष्ट हो गई ॥३५॥

नाशकन्गारतो वातु वृत्त खममवद् द्रुमैः ।

दशवर्षसहस्राणि न शेकुश्चेष्टितुं प्रजा ॥३६॥

तद्गुणश्रुत्य तपसा युक्त सर्वे प्रचेतसः ।

मुपेभ्यो वायुमग्निं च तेऽसृजन्जातमन्यव ॥३७॥

उन्मूलानय तान्मृत्वा वृक्षान्वायुरशोपयत् ।

तानग्निरदहदोर एवमासीद्द्रुमक्षय ॥३८॥

द्रुमक्षयस्यो बुद्ध्या विन्चिच्छिष्टेषु शाखिषु ।

उपगम्याग्रवीदेतान् राजा सोम प्रजापतीन् ॥३९॥

योऽयं यच्छा राजान सर्वे प्राचीनबर्हिषः ।

वृक्षगूण्या वृता पृथ्वी शाम्येतामग्निमारुतौ ॥४०॥

रत्नभूता च वन्येय वृक्षाणा वरवणिनी ।

भविष्य जानता तत्त्व घृता गर्भेण वै मया ॥४१॥

मारिषा नाम वन्येय वृक्षाणामिति निमिता ।

भार्या योजन्तु महाभागा सोमवशविवर्दिनी ॥४२॥

उनके समय तक वायु का प्रवाह होना दना रहा और आकाश प  
मय दान १०, इन प्रकार दस हजार वर्ष तक प्रजा भी निश्चेष्ट पड़ी रही ॥३६॥

जब उन तपस्वी प्रचेताओं को यह वृत्तान्त विदित हुआ तो उन्होंने क्रोध करके अपने मुख से अग्नि और वायु को उत्पन्न किया ॥३७॥ उस वायु ने पृथिवी के वृक्षा को सुखा दिया और अग्नि उन्हें भस्म करने लगा ॥३८॥ जब कुछ वृक्ष भस्म होने से बचे थे तभी वृक्षों के अधिपति सोम प्रजापति ने उन प्रचेताओं के पास जाकर उनसे कहा ॥३९॥ हे प्रचेताओं ! अपने क्रोध का निवारण कीजिये, समस्त पृथिवी वृक्षा से रहित हो गई है, इसलिये अब आप अपने द्वारा उत्पन्न विद्ये हुए अग्नि और वायु को शान्त कर दोजिय ॥४०॥ भविष्य की इन घटनाओं को जान कर मैंने वृक्षों की रत्न रूपा मारिषा नाम की कन्या सुरक्षित रखी थी, इसका आप पाणिग्रहण कीजिय, इस कन्या के द्वारा ही व द्रव्य की वृद्धि होगी ॥४१॥ ४०॥

युष्माक तेजामोऽद्वेन मम चाद्वेन तेजस ।

अभ्यामुत्पस्यते पुनो दक्षो नाम प्रजापति ॥४३॥

य इमा दग्धभूयिष्ठा युष्मत्तेजोमयेन वै ।

अग्निनाऽग्निसमो भूय प्रजा सवर्दयिष्यति ॥४४॥

तत सोमस्य वचनाञ्जगृह्णस्ते प्रचतस ।

सहस्र कोष वृक्षेभ्य पत्नीधर्मेण मारिषाम् ॥४५॥

मारिषाया ततस्ते वै मनसा गर्भमादयु ।

दशम्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषाया प्रजापति ।

दक्षो जज्ञे महातेजा सोमस्याशेन भारत ॥४६॥

पुक्षानुत्पादयामास सोमवशविवर्दनान् ।

अचराश्च चराश्चैव द्विपदोऽयचतुष्पद ।

स दृष्ट्वा मनसा दक्ष पञ्चदप्यमृजत्स्त्रिय ॥४७॥

ददौ स दश घर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।

शिष्टा सोमाय राज्ञेऽथ नक्षत्राभ्या ददौ प्रभु ॥४८॥

तासु देवा यगा नागा गावो दितिर्जदानवा ।

गन्धर्वाप्सरसश्चैव जज्ञिरेऽन्याश्च जातय ॥४९॥

तत, प्रभृति राजेन्द्र प्रजा मेथुनसमवा ।

सकल्पादर्शनात्सर्गात्पूर्वेण सृष्टि रच्यते ॥५०॥

आपके आधे तपोव्रत तथा मेरे आधे तेज के मिश्रित होने से दक्ष प्र-  
पति की उत्पत्ति होगी ॥४३॥ हमारे तपोव्रत के कारण वह पुत्र अग्नि के स-  
त्त्व वाला होकर इस दग्ध प्राय पृथिवी और प्रजा की वृद्धि करेगा ॥  
चन्द्रदेव की आज्ञा से प्रसन्न होकर प्रचेतागण क्रोध से निवृत्त हुए और उ-  
मारिणा की भार्या के रूप में स्वीकार किया ॥४४॥ फिर उनके द्वारा मा-  
मे गर्भाधान किये जान पर उन दसो प्रचेताओ और चन्द्रमा के अंग से दक्ष प्र-  
पति उत्पन्न हुए ॥४५॥ उन दक्ष प्रजापति ने चन्द्रवश का विस्तार करने  
अनेक पुत्रो तथा दो पौत्र और चार पौत्र वाले स्यावर जपम प्राणियों की र-  
की और इसके पश्चात् कुछ कन्याओ को भी उत्पन्न किया ॥४७॥ उन्होंने :  
से दस पुत्रियो का विवाह धर्म के साथ, तेरह का वश्यप के साथ एवं नक्षत्र  
की कन्यायें चन्द्रमा को दे दी ॥४८॥ उन कन्याओ से देवता, पक्षी, गौ,  
दैत्य, गणवं, अप्सरा एवं अयान्य प्राणियों की उत्पत्ति हुई ॥४९॥ इसके  
मनन, दर्शन और स्पर्श द्वारा ही प्रजोत्पत्ति हो जाती थी, दक्ष प्रज  
की उत्पत्ति के पश्चात् मेघुनी सृष्टि होन लगी ॥५०॥

देवाना दानवाना च गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।  
संभव वधितं पूर्वं दक्षस्य च महात्मन ॥५१॥  
अ गुप्ताद्ब्रह्मणो जातो दक्ष प्रोक्तस्त्वयाऽनघ ।  
वामागुष्ठात्तथा चैव तस्य पत्नीव्यजायत ॥५२॥  
कथं प्राचेतसत्त्व स पुनर्लभे महातपा ।  
एतन्मे सशय विप्र सम्यगाख्या तुमर्हसि ।  
दौहिषश्चैव सोमस्य कथं श्रुश्रुता गत ॥५३॥  
उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्यो भूतेषु पार्थिव ।  
ऋषयोऽत्र न मुह्यन्ति विद्वांसश्चैव ये जना ॥५४॥  
युगे युगे भवन्त्येते सर्वे दक्षादयो नृपा ।  
पुनश्चैव निरुध्यन्ते विद्वास्तत्र न मुह्यति ॥५५॥  
ज्येष्ठस्य कानिष्ठस्यमप्येषा पूर्वं नासीञ्जनाधिप ।  
तप एव गरीयोऽभूत्प्रभावश्चैव कारणम् ॥५६॥

इमा विसृष्टि दक्षस्य यो विद्यात्मचराचराम् ।  
प्रजावानाम्युस्तीर्ण स्वर्गलोके महीयते ॥५७॥

जनमेजय ने कहा—हे द्विजथेष्ठ ! आपने पहिले देवता, दैत्य, गधर्व, सर्प, राक्षस और दक्ष की उत्पत्ति का वृत्तान्त कहते समय बताया था कि ब्रह्माजी के दक्षिण और बायें अंगुठों से दक्ष व उनकी भार्या उत्पन्न हुये थे ॥५१-५२॥ वे अब इन प्रचेताओं के पुत्र किस प्रकार हुए तथा दक्ष प्रजापति चन्द्रमा के घेवते होकर भी उनके धवमुर कैसे हो गये ? हममें मुझे अत्यन्त मसख हो रहा है, इस विषय को भली प्रकार समझा कर कहने की कृपा कीजिये ॥५३॥ वैशम्पायन ने कहा—हे राजन् ! इस विषय में उत्पत्ति और सहार नित्य का क्रम है, इसीलिये ऋषिगो और विद्वानों को इस विषय में कुछ मसख नहीं होना चाहिये ॥५४॥ युग-युग दक्षादि की उत्पत्ति और नाश होना रहता है, इसलिये विद्वानों को इन बातों में सगम नहीं होना ॥५५॥ उनमें लघुता एवं गुरुता नहीं होनी, तपोबल के न्यूनाधिक्य से ही इनमें छोटाई-बड़ाई मानी गयी है ॥५६॥ दक्ष प्रजापति की चराचर सृष्टि की जो जानता है, वह पुनःपुनः होकर अन्त में स्वर्गलोक को प्राप्त होता है ॥५७॥

## ॥ दक्ष द्वारा मरुतो की उत्पत्ति ॥

देवाना दानवाना य गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।  
उत्पत्ति विम्वरेणेमा वैशम्पायन कीर्तय ॥१॥  
प्रजा मृजेति दृष्टादिष्ट पूर्व दक्ष स्वयम्भुवा ।  
यया मसर्ज भूतानि तथा शृणु महीयते ॥२॥  
मानमान्येव भूतानि पूर्वमेतामृजत्प्रभु ।  
ऋषीन्देवान्सगन्धर्वान्मुरानय राक्षसान् ।  
यदाभूतपिशाचाश्च वय पशुमरीमृपान् ॥३॥  
यदाऽस्य ताम्बु मानस्यो न व्यवर्द्धन्त वै प्रजा ।  
अवस्थाता भगवता महादेवेन धीमता ॥४॥  
तदा सचिन्त्य तु पुन प्रजाहितो प्रजापति ।  
स मयुनेन धर्मेण सिमृशुर्विधा प्रजा ॥५॥



असिकनीभावहृत्पत्नी वीरणस्य प्रजापते ।  
 मुता मुतपसा युम्ना महती लोकधारिणीम् ॥६॥  
 अथ पुत्रसहस्राणि वीरण्या पञ्च वीर्यवान् ।  
 असिकन्या जनयामास दक्ष एव प्रजापति ॥७॥

जनमेजय बाने—हे वंशम्पायनजी ! आप देवता, देव, गधर्व, नाग व राक्षसों की उत्पत्ति का वृत्तान्त विस्तार सहित कहने की कृपा करें ॥१॥ वंशम्पायन ने कहा—हे राजन् ! स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजी के द्वारा सृष्टि कार्य आदेश प्राप्त कर जैसे जीवों की सृष्टि की थी, वह कहता हूँ, श्रवण कीजिये ॥ दक्ष प्रजापति ने प्रथम ऋषि, देवता, गधर्व, असुर, राक्षस, यक्ष, भूत, पिशु पक्षी, पशु और सर्पों की मांस सृष्टि की तो उन्हें प्रतीत हुआ कि उन मांजीवों की वृद्धि नहीं हो रही है ॥३-४॥ तब मैथुनी सृष्टि की उत्पत्ति को उन्होंने ठीक समझा ॥५॥ फिर उन्होंने वीरण प्रजापति की तपस्विनी असिकनी का गालिग्रहण किया ॥६॥ उन असिकनी के गर्भ से दक्ष ने पाँच हजार पुत्रों की उत्पत्ति की ॥७॥

तास्तु दृष्ट्वा महाभागान्सविवर्धयिषून्प्रजा ।  
 देवपि प्रियसवादो नारद प्राप्नवीदिदम् ।  
 नाशाय वचन तेषां शापार्थवात्मनस्तथा ॥८॥  
 य कश्यप सुतवर परमेष्ठी व्यजीजनत् ।  
 दक्षस्य वै दुहितरि दक्षशापभयान्मुनि ॥९॥  
 पूर्वं स हि समुत्पन्नो नारद परमेष्ठिना ।  
 असिकन्यामय वैरिण्या भूयो देवपिसत्तम ।  
 त भूयो जनयामास पितेव मुनिपुङ्गवम् ॥१०॥  
 तेन दक्षस्य पुत्रा वै हर्यश्वा इति विश्रुता ।  
 निर्मथ्य नाशिता सर्वे विधिना च न सशय ॥११॥  
 तस्योद्यतस्तदा दक्षो नाशायामितविक्रम ।  
 महर्षीन्पुरतः कृत्वा याचित परमेष्ठिना ॥१२॥

ततोऽमिसन्धिं चक्रुस्ते दक्षस्तु परमेष्ठिना ।

कन्याया नारदो मह्यं तव पुत्रो भवेदिति ॥१३

ततो दक्षस्तु ता प्रादात्कन्या वै परमेष्ठिने ।

स तस्या नारदो जज्ञे दक्षशापभयादपि ॥१४

नारद जी ने उन पुत्रों को प्रजा की वृद्धि करने की इच्छा वाला समझा उन्हें कुछ इस प्रकार समवाया कि जिसके कारण दश के शाप से उनके साथ द जी भी नष्ट हो गये ॥८॥ प्राचीनकाल में विनामह ब्रह्माजी ने प्रथम द जी को उत्पन्न किया था, परन्तु दक्ष प्रजापति के अमाचारण पराक्रमवाले श्व और श्वलाश्व नामक पुत्रों को उन्होंने शम्भोर्देन द्वारा विरक्त कर ा, इसमें वे गृह त्याग कर वनवासी हुए । इस बात की भुन कर दक्ष प्रजा- की अत्यन्त क्रोध हुआ और उन्होंने शाप देकर नारद का नष्ट कर डाला । े ब्रह्माजी मरीचादि ऋषियों के साथ दक्ष के पास पहुँचे और उन्होंने उनसे द जी को पुनर्जीवित करने का निवेदन किया ॥६ १२॥ तब दक्ष प्रजापति ने महर्षियों के साथ विचार-विमर्श करके एक कन्या प्रदान करने का निश्चय ा, जिसके द्वारा नारद जी की उत्पत्ति होगी ॥१३॥ ऐसा विचार कर दक्ष पति ने कश्यप के निमित्त वह कन्या ब्रह्माजी को दे दी । दक्ष के शाप-भय कारण महर्षि कश्यप ने दक्ष द्वारा दी गयी वह कन्या स्वीकार कर ली और े से न द जी का पुनर्जन्म हुआ ॥१४॥

यथ विनाशिता पुत्रा नारदेन महर्षिणा ।

प्रजापतद्विजश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वन ॥१५

दक्षस्य पुत्रा हर्यदना विवर्द्धयिषव प्रजा ।

समागता महावीर्या नारदन्नानुवाच ह । १६

वाल्लिशावत् यूय वै नाम्या जानीय वै भुव ।

प्रमाणं द्रष्टुकामा म्य प्रजा प्राचेतमात्मना ।

अन्मर्त्यमप्रश्चैव यथ म्ययय वै प्रजा ॥१७

ते तु तद्वचन श्रुत्वा प्रयाता सर्वतो दिशम् ।

प्रमाणं द्रष्टुकामास्ते गता प्राचेतमात्मना ॥१८

वायोरनशन प्राप्य गतारते वै पराभवम् ।  
 अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगा ॥१६॥  
 ह्यंश्वेष्वथ नष्टेषु दक्ष प्राचेतम पुन ।  
 वैरिण्यामेव पुत्राणा सहस्रमसृजत्प्रभु ॥२०॥  
 दिवद्वंयिषवस्ते तु शबलायना प्रजास्तदा ।  
 पूर्वोक्त वचन तात नारदेनैव नोदिता ॥२१॥

जनमेजय ने कहा—हे द्विजवर ! मैं यह जान अच्छी प्रकार जानना चाहता हूँ कि  
 महर्षि नारद ने दक्ष के पुत्रों का विनाश क्यों किया था ? ॥१५॥ दशम्पायनजी  
 बोले—हे राजन् ! जब दक्ष पुत्र ह्यंश्वदि प्रजा की वृद्धि के उद्देश्य से नारद के पास  
 गये, तब नारद ने उनसे कहा था ॥१६॥ हे ह्यंश्वगण ! तुम अत्यन्त मूर्ख हो  
 क्योंकि तुम्हें इस पृथिवी के उच्च, मध्य और निम्न भाग के विस्तार, परिमार  
 का ज्ञान नहीं है, तब तुम प्रजोत्पत्ति किस प्रकार कर सकोगे ? ॥१७॥ नारद ज  
 की बात सुन कर ह्यंश्वगण पृथिवी का विस्तार परिणाम जानने के हेतु स  
 दिशाओं में चल पड़े ॥१८॥ जैसे समुद्र में मिल कर नदियाँ धुन नहीं लौट पात  
 वैसे ही ह्यंश्वगण पुन नहीं लौटे, क्योंकि वे ऐसे स्थान पर पहुँच गये, जहाँ वायु ।  
 उपलब्ध न होने से श्वास रुक गया था ॥१९॥ इस प्रकार ह्यंश्वों के चले जा  
 पर दक्ष प्रजापति ने अपनी पत्नी अविमनी के द्वारा एक हजार पुत्र उत्पन्न कि  
 ॥२०॥ उनका नाम शालसाश्व हुआ, जब उन्होंने प्रजोत्पत्ति की इच्छा की त  
 नारद जी ने उनसे भी उसी प्रकार कहा, जो ह्यंश्वों से कहा था ॥२१॥

अन्योन्यमूचुस्ते सर्वे मम्यगाह महामुनि ।  
 भ्रातृणा पदवीं ज्ञातुं गन्तव्यं नात्र सशय ॥२२॥  
 ज्ञात्वा प्रमाणं पृथ्वाश्च सुखं सक्ष्यामहे प्रजा ।  
 एकाग्रा स्वस्थमनसा यथावदनुपूर्वश ॥२३॥  
 तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाता सर्वतो दिशम् ।  
 अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रादिव सिन्धव ॥२४॥

नष्टेषु शबलाश्वेषु दक्ष क्रुद्धोऽब्रुवच्च ।  
 नारद नाशमेहीति गर्भवास वसेति च ॥२५॥  
 तदाप्रभृति वै भ्राता भ्रातुर्वन्वेपथ नृप ।  
 प्रयातो नश्यति क्षिप्र तन्न कार्यं विपश्चिता ॥२६॥  
 ताश्चापि नष्टान्विज्ञाय पुत्रान्दक्ष प्रजापति ।  
 पण्डित भूयोऽमृजत्कन्या वरिण्यामिति न श्रुतम् ॥२७॥  
 तास्तदा प्रतिजग्राह भार्यार्थं कश्यपः प्रभु ।  
 सोमो धर्मश्च कौरव्य तथैवान्ये महर्षयः ॥२८॥

उनकी बात सुन कर शबलाश्वों ने परस्पर मन्त्रणा की और कहने लगे कि महामुनि का कथन सत्य ही है, हमें अपने भाइयों के मार्ग को अवश्य ही जानना चाहिये ॥२२॥ पृथिवी के परिमाण का ज्ञान होने पर द्रुम एकाग्र तथा स्वस्थ मन से प्रजोत्पत्ति का कार्य पूर्ण कर सकेंगे ॥२३॥ इस प्रकार विचार कर शबलाश्वगण भी सब दिशाओं को चले गये और समुद्र में मिली हुई नदियों के पुनरावर्तन न होने के समान शबलाश्वगण भी फिर नहीं लौटे ॥२४॥ जब शबलाश्वगण भी चले गये, तब दक्ष ने क्रोध पूर्वक नारद जी से कहा— हे नारद ! तुम इसी समय नाश को प्राप्त होओ और गर्भ में रहने के दुःखों का भोग करो ॥२५॥ हे राजन् ! उसी समय से भाई की खोज में जाने वाला भाई नाश को प्राप्त होने लगा, इसलिये विद्वानों को उचिन् है कि भाई की खोज के लिए भाई को कदापि न भेजे ॥२६॥ दक्ष-प्रजापति ने शबलाश्वों के पट होन के पश्चात् अपनी भार्या वरिणी के गर्भ से माठ पुत्रियों को उत्तम किया ॥२७॥ उन पुत्रियों का विवाह कश्यप, चन्द्रमा, धर्म तथा अन्यान्य ऋषियों के साथ किया गया ॥२८॥

ददौ स दक्ष धर्मयि कश्यपाय त्रयोदश ।  
 सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ॥२९॥  
 द्वे चैव भृगुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा ।  
 द्वे कृशाश्वाय विदुषे तासां नामानि मे शृणु ॥३०॥

अरुन्धती वसुयामी लम्बा भानुर्मन्वती ।  
 सकल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भारता ।  
 धर्मपत्न्यो दश त्वेतास्तास्वपत्यानि मे शृणु ॥३१॥  
 विश्वेदेवाश्च विश्वाया साध्यान्साध्या व्यजायत ।  
 मरुत्वत्या मरुन्वन्तो वसोस्तु वसवस्तथा ॥३२॥  
 भानोस्तु भानवस्तात मुहूर्ताया मुहूर्तजा ॥३३॥  
 लम्बायाश्चैव धोषोऽथ नागवीथी च यामिजा ।  
 पृथिवीविषय सर्वमरुन्धत्या व्यजायत ॥३४॥  
 सकल्पायास्तु सर्वात्मा जज्ञे सकल्प एव हि ।  
 नागवीथ्याश्च जामिन्या वृषलम्बा व्यजायत ॥३५॥

उनमे से दस पुनियाँ धर्म की, तेरह कश्यप की, मताईस चन्द्रमा की,  
 चार अरिष्टनेमि की, दो शृणु पुत्र की, दो अगिरा की तथा दो कृशाख की व्याही  
 गयी । अब उन पुत्रियों के नाम कहते हैं ॥२६३०॥ उनमे जो धर्म की भार्याएँ  
 हुई उनके नाम अरुन्धती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरुत्वती सकल्पा, मुहूर्ता,  
 साध्या और विश्वा ये । अब इनकी सम्मान सुनो—॥२१॥ विश्वा से विश्वेदेव  
 उत्पन्न हुए, साध्या से साध्वगण ने जन्म लिया मरुत्वती से मरुत्वाश्च हुए, वसु  
 से वसुगण उत्पन्न हुए ॥२२॥ भानु से भानुगण, मुहूर्ता से मुहूर्तगण, लम्बा से  
 धोष, यामी से नागवीथी तथा अरुन्धती से पृथिवी की सभी वस्तुएँ उत्पन्न हुई  
 ॥२३-२४॥ सकल्पा से सभी में निवास करने वाला सकल्प हुआ, यामी की  
 बच्चा नागवीथी से वृषलम्बा उत्पन्न हुई ॥२५॥

या राजन्सोमपत्न्यस्तु दक्ष प्राचेतसो ददौ ।  
 सर्वा नक्षत्रनाम्न्यस्ता ज्योतिषे ररिकीतिता ॥३६॥  
 ये त्वन्ये ख्यातिमन्तो वै देवा ज्योति पुरोगमा ।  
 वसवोऽष्टौ समाख्यातास्तेषा वक्ष्यामि विस्तरम् ॥३७॥  
 आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलानली ।  
 प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नाममि स्मृता ॥३८॥

आपस्य पुत्रो वैतण्ड्यः श्रमः शान्तो मुनिस्तथा ।  
 ध्रुवस्य पुत्रो भगवान्कालो लोकप्रकालनः ॥३६॥  
 सोमस्य भगवान्वर्चा वर्चस्वी येन जायते ।  
 धरस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा ।  
 मनोहरायाः शिशिरः प्राणोऽथ रमणस्तथा ॥४०॥  
 अनिलस्य शिवा भार्या यस्याः पुत्रो मनोजवः ।  
 अविजातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य तु ॥४१॥  
 अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे धियान्वितः ।  
 तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजाः । ४२  
 अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृतः ।  
 स्कन्दः सनत्कुमारश्च सृष्टः पादेन तेजसः ॥४३॥

{ हे 'जन्' प्रचेतापुत्र दक्ष ने चन्द्रमा की जो रत्न्याएँ दी थी, वह सभी ज्योतिप्रद नक्षत्रों के नाम से विख्यात हुई ॥३६॥ इनके अतिरिक्त अत्यन्त तेजस्वी एवं प्रसिद्ध देवता अष्टवमु हुए, आप, ध्रुव, सोम, धर, अनल, अनिल, प्रत्यूष और प्रभात यह उनके नाम हुए ॥३७-३८॥ वैनट्य, शान्त और मुनि यह चारों पुत्र आप नामक यमु के हुए । ध्रुव का पुत्र लोकनाशक काल हुआ ॥३९॥ चन्द्रमा के पुत्र भगवान् वर्चा हुए, इनके पिता होने से ही चन्द्रमा की वर्चस्वी नाम से प्रसिद्धि हुई । द्रविण, हुतहव्यवह तथा मनोहरा के गर्भ से धर के शिशिर, प्राण और रमण नामक पुत्र हुए ॥४०॥ शिवा के गर्भ में अनिल ने मनोजव और अविजातगति नामक दो पुत्र उत्पन्न किये ॥४१॥ अग्नि के पुत्र कुमार हुए, उनका पालन कृत्तिकारों के द्वारा हुआ, इसलिये उन्हें कार्तिकेय भी कहा गया । शाख, विशाख और नैगमेय यह तीनों उन कार्तिकेय के छोटे भाई हुए । स्कन्द और सनत्कुमार इन दोनों की उत्पत्ति अग्नि के चतुर्थांश से हुई थी, इसलिये यह कार्तिकेय के नाम भेद ही हैं ॥४२-४३॥

{ प्रत्यूषस्य विदुः पुष्यमृष्टि नाम्ना च देवतम् ।  
 द्वौ पुत्री देवलम्यापि दामावन्तौ तपस्विनौ ॥४४॥

बृहस्पतेस्तु भगिनी वरखी ब्रह्मचारिणी ।  
 योगसिद्धा जगत्कृत्स्नमसक्ता विचाचार ह ॥४५॥  
 प्रभासस्य च सा भार्या वसूनामष्टमस्य च ।  
 विश्वकर्मा महाभागस्तस्या जज्ञे प्रजापति ॥४६॥  
 कर्त्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च बद्धकिं ।  
 भूषणानां च सर्वेषां कर्त्ता शिल्पवता वर ॥४७॥  
 य सर्वाणां विमानानि देवतानां चकार ह ।  
 मनुष्याश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्प ॥४८॥  
 सुरभी कश्यपाद्द्रुद्रात्तुनेकादश विनिर्ममे ।  
 महादेवप्रसादेन तपस भाविता सती ॥४९॥  
 अर्जकपादहिबुं छ्यस्त्वष्टा रुद्राश्च भारत ।  
 त्वष्टुश्चैवात्मज श्रीमाविश्चरूपो महायशः ॥५०॥

प्रसूय के पुत्र देवल हुए, उन महर्षि देवल के दो पुत्र हुए, जो तपस और क्षमाशील थे ॥४४॥ देवताओं के गुरु बृहस्पति जी की बहिन योगसिद्धा एव ब्रह्मचारिणी नाम की थी, वह आसक्ति रहित भाव से ससार में भ्रमण करती, वह आठवें वसु प्रभास की भार्या थी, प्रजापति विश्वकर्मा की उत्पत्ति उनके गर्भ से हुई थी ॥४५-४६॥ उन विश्वकर्मा ने विश्व में सहस्रो प्रकार के शिल्प का आविष्कार किया था, उन्होने सब प्रकार के आभूषण और देवताओं के विमानों की रचना की वर्तमान काल में भी उन्ही की शिल्पकला के अनुसार द्वारा असंख्य मनुष्य जीविकोपार्जन करते हैं ॥४७-४८॥ सुरभी ने अपनी तपस के प्रभाव से भगवान् शंकर को प्रसन्न किया और कश्यप के द्वारा ग्यारह का पुत्र रूप में प्राप्त किया ॥४९॥ वे अर्जकपाद, अहिबुंछ्य, त्वष्टा और रुद्र नाम से प्रसिद्ध थे, त्वष्टा का पुत्र महातप विश्वरूप हुआ ॥५०॥

हरश्च बहुरूपश्च अम्रकश्चापराजित ।  
 वृषाकर्पिश्च शम्भुश्च कपदी रैवतस्तथा ॥५१॥  
 मृगश्यामश्च सर्पश्च कपाली च विशापते ।  
 एकादशैते वशिना रुद्रास्त्रिभुवनेश्वरा ॥५२॥

शत त्वेवं ममान्यात रुद्राणाममितीजसाम् ।  
पुराणे भरतश्रेष्ठ यैर्व्याप्ता सचराचरा ॥५३॥  
लौका भरतशार्दूल कश्यपस्य निबोध मे ।  
अदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्टा सुरमा खशा ॥५४॥  
सुरमिर्विनता चैव ताम्रा क्रौञ्चवशा इरा ।  
कद्रुमुनिश्च राजेन्द्र तास्वपत्यानि मे शृणु ॥५५॥  
पूर्वमन्वन्तरे श्रेष्ठा द्वादशासन्मुगेत्तमा ।  
तुपिता नाम तेऽन्योन्यमूचुर्वैवस्वतेऽन्तरे ॥५६॥  
उपस्थितेऽतियशमि चाश्रुपस्यान्तरे मनो ।  
हितार्यं सर्वमत्त्वाना ममागम्य परस्परम् ॥५७॥  
आगच्छन् द्रुत देवा अदिनि मप्रविश्य वै ।  
मन्वन्तरे प्रमुयामम्यन्न् श्रेयो भविष्यति ॥५८॥

ग्यारह रुद्र हर, बहुल्य, यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, दम्भु, कपर्दी, रैवत, मृगशान, मां और कपाली नामक थे, यह तीनों भुवन के अधीश्वर थे ॥५१-५२॥ हे भरत श्रेष्ठ ! इन रुद्रों के पुराणों सैकड़ों नाम कहे गये हैं तथा यह समस्त चराचर विद्व मे अमर्य रूपों मे विद्यमान रहते हैं ॥५३॥ हे भरत शार्दूल ! अब कश्यप की भार्याओं और उनकी सन्तान के नामों को श्रवण करो— अदिति, विनि, दनु अरिष्टा, सुरमा, खशा, सुरमि, विनता, ताम्रा, क्रौञ्चवशा, इरा, कद्रु और मुनि ॥५४-५५॥ चाश्रुप मन्वन्तर मे जो तुपित नामक बारह प्रमुख देवता हुए थे, उन्होंने वैवस्वत मन्वन्तर मे कहा था ॥५६॥ यह चाश्रुप मन्वन्तर अत्यन्त यशस्वी आया है, इसलिये हम सब एक साथ चलकर प्राणियों के कल्याण के लिए अदिति के गर्भ द्वारा जन्म ग्रहण करें, इसमें हमारा भी हित निहित है ॥५७-५८॥

एवमुक्त्वा तु ते सर्वे चाश्रुपस्यान्तरे मनो ।  
मारीचात्कश्यपाज्जातामन्तेऽदित्या दक्षकन्यया ॥५९॥  
तत्र विष्णुश्च शक्रश्च अजाते पुनरेव हि ।  
अयंमा चैन घाता च त्वष्टा पूषा च भारत ॥६०॥



विवस्वान्सविता चैव मित्रो वरुण एव च ।  
 अंशो भगश्चानितेजा आदित्या द्वादश स्मृता ॥६१॥  
 चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमासन् ये तुषिना सुरा ।  
 वैवस्वतेऽन्तरे ते वै आदित्या द्वादश स्मृता ॥६२॥  
 सप्तविंशति या प्रोक्ता सोमस्योऽथ सुव्रता ।  
 तासामपत्यान्यमवन्दीप्तान्यमिततेजसाम् ॥६३॥  
 अरिष्टनेमिपत्नोनामपत्यानीह षोडश ।  
 बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युन् स्मृता ॥६४॥  
 प्रत्यगिरसजा श्रेष्ठा ऋचो ब्रह्मर्षिसंस्कृता ।  
 कुशाक्षस्य तु राजर्षेर्देवप्रहरणानि च ॥६५॥  
 एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव ह ।  
 सर्वदेवगणास्नात् नर्यास्त्रिंशत् कामजा ॥६६॥

वैवस्वायन जी बोले—मह कहकर वे सब देवता वैवस्वत मन्वन्तर में  
 मरीचि पुत्र कश्यप के द्वारा अदिनि के गर्भ से प्रकट हुए ॥६१॥ इस प्रकार  
 इन्द्र, त्रिष्णु, अर्यमा, धाता, त्वष्ठा, पूषा, विवस्वान् सविता, मित्र, वरुण, अथ  
 और भग नामक बारह आदित्य उत्पन्न हुए ॥ ६०-६१ ॥ चाक्षुष मन्वन्तर के  
 तुषित नामक देवगण ही वैवस्वत मन्वन्तर में इस प्रकार के नाम वाले द्वादश  
 आदित्य हुए ॥६२॥ षण्द्रमा की जो सत्ताईस भार्याएँ हुई उनके गर्भ से भी  
 बहुत सी सन्तानोत्पत्ति हुई ॥६३॥ अरिष्टनेमि की भार्याओं के सोलह सन्तानें  
 हुई वसु मेघ, इन्द्र धनुष और विद्युत की उत्पत्ति अत्यन्त जानी और तेजस्वी  
 बहुपुत्र से हुई ॥६४॥ ब्रह्मर्षियों द्वारा सम्मानित सभी ऋक् प्रत्यगिरा के पुत्र थे ।  
 देवर्षि कुशाक्ष के सभी पुत्र दिग्गशास्त्रों के नामों से विख्यात हुए ॥६५॥ सहस्र  
 युग के व्यतीत होने पर देवगण पुनर्जन्म धारण करते हैं, वसु आदि जो तेतीस  
 देवता हैं, वे कामज बने गये हैं ॥६६॥

दित्या पुंसद्वय जज्ञे वश्यपादिति न श्रुतम् ।

हिरण्यवशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्यवान् ॥६७॥

सिंहिका चामवत्कन्या विप्रचित्तेः परिग्रहः ।  
 संहिकेया इति ख्यातास्तस्याः पुत्रा महावलाः ।  
 गर्णश्च सह राजेन्द्र दशसाहस्रमुच्यते ॥६८॥  
 तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रगः ।  
 असङ्ख्याता महाबाहो हिरण्यकशिपोः शृणु ॥६९॥  
 हिरण्यकशिपो पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः ।  
 अनुह्रादश्च ह्रादश्च प्रह्लादश्चैव वीर्यवान् ॥७०॥  
 संह्लादश्च चतुर्थोऽमृद्घ्रादपुनो हृदस्तथा ।  
 संह्लादपुत्रः सुन्दश्च निमुन्दन्नावुमौ स्मृतौ ॥७१॥  
 अनुह्लादसुतो ह्यायु शिविः कालस्तथैव च ।  
 विरोचनश्च प्राहृदिर्वलिर्जज्ञे विरोचनात् ॥७२॥  
 बलेः पुत्रशतं त्वासीद् बाणज्येष्ठं नराधिप ।  
 धृतराष्ट्रश्च मूर्यश्च चन्द्रमाश्चेन्द्रतापनः ॥७३॥  
 कुम्भनाभो गर्दभाक्ष कुक्षिरित्येवमादयः ।  
 बाणस्तेषामतिबलौ ज्येष्ठः पशुपतेः प्रियः ॥७४॥

सुना गया है कि दिति के गर्भ से कश्यप ने अत्यन्त बलवान् दो पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष हुए तथा सिंहिका नाम की एक कन्या भी उत्पन्न की, जिसका विवाह विप्रचित्ति के साथ हुआ । इन सिंहिका के गर्भ से दस हजार अत्यन्त बलवान् पुत्रों की उत्पत्ति हुई, वे सभी संहिकेय कहे गये हैं ॥६७-५८॥ उनके अमर्य्य पुत्र-पौत्र उत्पन्न हुए । अब हिरण्यकशिपु की सत्तति के विषय में कहना है ॥६९॥ हिरण्यकशिपु के चार पुत्र हुए, उन तेजस्वियों के नाम अनुह्लाद, ह्लाद, प्रह्लाद और सह्लाद थे । ह्लाद का पुत्र हृद और सह्लाद के दो पुत्र सुन्द-निमुन्द हुए ॥७०-७१॥ अनुह्लाद के तीन पुत्र हुए, जिनका नाम आयु, शिवि और काल हुआ । प्रह्लाद के एक ही पुत्र विरोचन नाम का उत्पन्न हुआ ॥७२॥ उस विरोचन का पुत्र बलि हुआ, जिसके बाण, धृतराष्ट्र, मूर्य, चन्द्र, इन्द्रतापन, कुम्भनाभ, गर्दभाक्ष और कुक्षि आदि भी पुत्र हुए । उनमें बाण सबसे बड़ा था, जो शिवजी का प्रिय भक्त हुआ ॥७३-७४॥

बाणस्य चेन्द्रदमनो लोहित्यामुदपद्यत ।  
 गणास्तथासुरा राजञ्छतसाहस्रसम्मिता ॥७५  
 हिरण्याक्षमुना पञ्च विद्राक्ष सुमहाबला ।  
 शक्रं शकुनिश्चैव भूनसन्तापनस्तथा ॥७६  
 महानाभश्च विक्रान्त कालनाभस्तथैव च ।  
 अभवन्धनुपुत्राश्च शत तीव्रपराक्रमा ।  
 तपस्विनो महावीर्या प्राद्यान्येन निवोत्र तान् ॥७७  
 द्विमूर्द्धा शकुनिश्चैव तथा शकुशिरा विभु ।  
 शक्रकर्णो विराघश्च गवेष्टी दुन्दुभिस्तथा ।  
 अगोमुख शम्बरश्च कपिलो वामनस्तथा ॥७८  
 मरीचिर्मघवाश्चैव इरा शङ्खुशिरा वृक ।  
 विक्षोभणश्च केतुश्च केतुवीर्यशतहृदो ॥७९  
 इन्द्रजित्सत्यजिह्वैव वज्रनाभस्तथैव च ।  
 महानाभश्च विक्रान्त कालनाभस्तथैव च ॥८०  
 एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबल ।  
 वैश्वानर पुलोमा च विद्रावणमहासुरी ॥८१  
 स्वर्मानुवृत्तपर्वा च तुह्युण्डश्च महासुर ।  
 सूक्ष्मश्चैवातिचन्द्रश्च ऊर्णनाभो महागिरि ॥८२  
 एते सर्वे दनो पुत्रा कश्यपादभिजज्ञिरे ।  
 विप्रचित्तिप्रधानास्ते दानवा सुमहाबला ॥८३  
 एतेषा यदपत्य तु तन्न शक्य नराधिप ।  
 प्रसङ्ग्यातु महीपाल पुत्रपौत्राद्यनन्तकम् ॥८४

उस बाणामुर की भार्या लोहिती के इन्द्रदमन नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, इस प्रकार हिरण्यकशिपु के सतति रूप में असुरय असुरों को वृद्धि हुई ॥७५॥ इसी प्रकार हिरण्याक्ष के भी पाँच पुत्र अत्यंत पराक्रमी हुए, वे शक्र, शकुनि, भून सन्तापन, महानाभ और कालनाभ नाम से प्रसिद्ध हुए । कश्यप की

गार्गा दनु से भी अत्यंत तेजस्वी एवं पराक्रमी सौ पुत्र हुए, उनमें जो प्रमुख थे उनके नाम कहता हूँ ॥७६-७७॥ द्विमूर्धा शकुनि, शकुनिरा शकुवर्ण, विराध, विव्ही, दुन्दुभि, अयोमुख, सम्बर, कपिल, वामन, मरीचि, मघवान्, इरा, गंशिरा, वृक्, विक्रोमन, वेतु, वेतुवीर्य, सतहृद, इन्द्रजित, सर्वजित, वज्रनाभ, विक्रान्त, महानाभ, कालनाभ, महाबाहु, एकचक्र, तारक, वैश्वानर, पुलोमा, विद्रावण, महाशिरा, स्वर्मानु, वृषपर्वा तुह्युड, सूक्ष्म, अतिचद्र, ऊर्णनाभ, महानेरि आदि ॥७७-८२॥ ये सभी दनु पुत्र, कस्यप के वधघर थे, जिनमें विप्रचित्ति सर्वश्रेष्ठ था, यह सभी दैत्य उत्पन्न बली थे ॥८२॥ पुत्र-गीतादि के क्रम से इन दैत्यों की वध वृद्धि की गणना नहीं की जा सकती ॥८४॥

## ॥ पृथु-उपाख्यान ॥

अभिपिच्याधिराज्ये तु पृथु वैन्य पितामह ।  
तत क्रमेण राज्यानि ब्रादेष्टुमुपचक्रमे ॥१॥  
द्विजाना वीरुधा चैव नक्षरग्रहयोस्तथा ।  
यज्ञाना तपसा चैव सोम राज्येऽभ्यपेचयत् ॥२॥  
अपा तु वरुण राज्ये राज्ञा वैश्रवण प्रभुम् ।  
वृहस्पतिं तु विश्वेपा ददावाङ्गिरस पतिम् ॥३॥  
भृगूणामधिप चैव काव्य राज्येऽभ्यपेचयत् ।  
आदित्याना तथा विष्णु वसूनामथ पावकम् ॥४॥  
प्रजापतीना दक्ष तु मरुतामथ वासवम् ।  
दैत्याना दानवाना च प्रह्लादममितोजसम् ॥५॥  
वैवस्वत च पितृणा यम राज्येऽभ्यपेचयत् ।  
मातृणा च व्रताना च मन्त्राणा च तथा गवाम् ॥६॥  
यक्षाणा राक्षसाना च पार्थिवाना तथैव च ।  
नारायण तु साध्याना रुद्राणा वृषभध्वजम् ॥७॥

वैतम्पायनजी बोलें—हे राजन् ! ब्रह्माजी ने वेन पुत्र राजा पृथु की त्र्य देवर, अन्यान्य पुरो को जो जो कार्य सौंपा उसे तुमसे कहता हूँ ॥१॥

ब्रह्माजी ने चन्द्रमा को सब ब्राह्मणों, वृक्ष, नक्षत्रों, ग्रहों, यक्षों और तपस्याओं का अधिपति बनाया ॥२॥ वरुण को जल का राजा, कुबेर को धनाधिपति तथा वृहस्पति को सम्पूर्ण विश्व का अधिपति नियुक्त किया ॥३॥ भृगुवशिष्ठों के अध्वक्ष ऋषि बनाये गये, आदित्यों के अधिपति विष्णु, और वसुओं के अध्वक्ष अग्नि बनाये गये ॥४॥ प्रजापतियों के अधिपति दक्ष, मरुतों के अधिपति इन्द्र और दैत्यों के अधिपति प्रह्लाद बनाये ॥५॥ सूर्य पुत्र यम पित्रों के अधिपति तथा पौंड्र्य मातृकाओं व्रती, मन्त्रों, गौत्रों, यक्षों, राक्षसों, राजाओं तथा साधुओं के अधिपति भगवान् विष्णु को बनाया तथा रुद्र के अधिपति भगवान् शिव को किया ॥६-७॥

विप्रचिन्ति तु राजान दानवानामथादिशत् ।  
 सर्वभूतपिशाचाना गिरिष शूलपाणिनम् ॥८॥  
 शीलाना हिमवन्त च नदीनामथ सागरम् ।  
 गन्धाना मरुता चैव भूतानामशरीरिणाम् ।  
 शब्दाकाशवता चैव वायु च बलिना वरम् ॥९॥  
 गन्धर्वाणामधिपतिं चक्रे चित्ररथ प्रभुम् ।  
 नागाना वासुकिं चक्रे सर्पाणामथ तक्षकम् ॥१०॥  
 वारणाना च राजानमैरावतमथादिशत् ।  
 उच्चं श्रवसमश्राना गरुडं चैव पक्षिणाम् ॥११॥  
 मृगाणामथ शार्दूल गोवृष च गवा पतिम् ।  
 वनस्पतीना राजान पक्षमेवादिशत्प्रभुम् ॥१२॥  
 सागराणा नदीना च मेघाना वर्षणस्य च ।  
 आदित्यानामधिपतिं पर्जन्यमभिविक्तवान् ॥१३॥  
 सर्वेषा दष्टिणा शेष राजानमभ्यपेक्षयत् ।  
 सरीसृपाणा सर्पाणा राजान चैव तक्षकम् ॥१४॥

इसी प्रकार विप्रचित्ति दानवों के और शिवजी सब भूत पिशाचों -  
 स्वामी हुए ॥८॥ सब पर्वतों का राजा हिमवान्, नदियों का अधिपति

धो, वायुओं, अशरीरी प्राणियों और शब्दों का राजा प्रबल पराक्रम वाले वायु  
 ी बनाया ॥६॥ गधों का राजा चित्ररथ नागों का राजा वायुकी और सर्पों  
 १ राजा तक्षक किया गया ॥१०॥ हाथियों का राजा ऐरावत, घोड़ों का राजा  
 चर्च, श्रवा और पक्षियों का राजा गरुड हुआ ॥११॥ मृगों का राजा सिंह,  
 तैश्रो का राजा वृषभ और सब वृक्षों का राजा पीपल वृक्ष को बनाया ॥१२॥  
 ॥ समुद्रों, नदियों, मेघों और आदित्यों का अविपति पर्जन्य हुआ ॥१३॥ सन-  
 तीत वाले प्राणियों का राजा शेष और रेंग बर चलने वाले सर्पों का राजा  
 तक्षक हुआ ॥१४॥

गन्धर्वाप्सरसा चैव कामदेवं तथा प्रभुम् ।  
 ऋतूनामथ मामाना दिवसाना तथैव च ॥१५॥  
 पक्षाणा च क्षपाणा च मुहूर्तंतिथिपर्वणाम् ।  
 कलाकाष्ठाप्रमाणानामृतोरयनयोस्तथा ॥१६॥  
 गणितम्याथ योगस्य चक्रे सवत्सर प्रभुम् ।  
 एव विभज्य राज्यानि क्रमेण न पितामह ॥१७॥  
 दिशापालानथ तत स्यापयामास भारत ।  
 पूर्वस्या दिशि पुन तु वंराजस्य प्रजापते ॥१८॥  
 दिशापाल मुघन्वान राजान चाभ्यपेचयत् ।  
 दक्षिणस्या महात्मान वह्मस्य प्रजापते ॥१९॥  
 पुन शम्भुपद नाम राजान सोऽभ्यपेचयत् ।  
 पश्चिमाया दिशि तथा राजान पुनमच्युतम् ॥२०॥  
 केतुमन्त महात्मान राजान सोऽभ्यपेचयत् ।  
 तथा हिरण्यरोमाणं पर्जन्यस्य प्रजापते ॥२१॥  
 उदीच्या दिशि दुर्द्धपं राजान सोऽभ्यपेचयत् ।  
 तैरिय पृथिवी सर्वा मप्लद्वीपा सपर्वता ॥२२॥  
 यथाप्रदेशमद्यापि घर्मेण परिपाल्यते ।  
 राजसूयाभिपिबतस्तु पृथुरेभिर्नराधिपै ।  
 वेददृष्टेन विधिना राजराज्ये नराग्रिय ॥२३॥

ततो मन्वन्तरेऽतीते चाक्षुषेऽमिततेजसि ।  
 वैवस्वताय मनवे ब्रह्मा राज्यमथादिशत् ।  
 तस्य विस्तरमाख्यास्ये मनोर्वैवस्वतस्य ह ॥२४॥

गणधर्षो और अप्सराओं का राजा कामदेव तथा ऋतु, मास पक्ष, दिन, रात, मूर्त, तिथि, पर्व, कला, काष्ठा, ऋतु अयन, योग एवं गणित का अधिपति सवस्वर हुआ इस प्रकार कार्य विभाग करके ब्रह्माजी ने दिक्पालों को नियुक्त किया । वैराज प्रजापति के पुत्र सुधन्वा को पूर्व दिशा का, कर्दम के पुत्र नक्षत्रपदम को दक्षिण का, रजपुत्र अश्व्युत केतुमान को पश्चिम का और पर्जन्य प्रजापति के पुत्र दुधंधं हिरण्य रोमा को उत्तर दिशा का दिक्पाल बनाया । उसी समय से यह सभी यज्ञाभिषिक्त महाराज पृथु की आधीनता स्वीकार कर अपने-अपने कार्य-भार को वहन करते तथा ग्रामों, नगरों और द्वीपों युक्त पृथिवी का धर्म पूरक पालन करते आ रहे हैं ॥१५-२३॥ इस प्रकार चाक्षुष मन्वन्तर के अन्तिम होन पर वैवस्वत मनु को कार्य-भार सौंपा, अब मैं उसी वैवस्वत मन्वन्तर का वर्णन करता हूँ ॥२४॥

विस्तरेण पृथोर्जन्म वेशम्पायन कीर्तय ।  
 यथा महारमना तेन दुग्धा चैव वसुन्धरा ॥२५॥  
 हत ते वयमिष्यामि पृथोर्वैवस्वतस्य विस्तरम् ।

एवाग्र प्रयतश्चैव शृणुष्व जनमेजय ॥२६॥  
 नाशुचे धुद्रमनस कृशिष्यायावताय च ।  
 पीतनीयमिदं राजन्वृन्ध्नायाहिताय वा ॥२७॥  
 स्वर्ग्यं यज्ञस्यमायुष्यं धर्म्यं वेदेन सम्मितम् ।  
 रहरयमृषिभिः श्रोतुं नृणु राजन्ययातयम् ॥२८॥  
 मश्चेन वयमेन्नित्यं पृथोर्वैवस्वतस्य विस्तरम् ।  
 ब्राह्मणेभ्यो नमस्तृण्य न ॥ शोनेत्कृतावृत्ते ॥२९॥

जनमेजय ने कहा—हे वेशम्पायनजी ! महाराज पृथु ने जन्म और उनके

।रा पृथिवी का दोहन किये जाने वाले वृत्तान्त को आप मेरे प्रति विस्तार-  
ब्रंक कहिये ॥२५॥ वैशम्पायनजी बोले—हे राजन् ! वेनपुत्र राजा पृथु का  
चरित्र विस्तार से कहता है, तुम एकाग्र चित्त से श्रवण करो ॥२६॥ यह  
शाख्यान अपवित्र, सुद्र कुशिष्य, वन से हीन, वृत्तचन और अहितकर मनुष्य को  
।भी न सुनाने ॥२७॥ ऋषि द्वारा कहा गया यह वेद के समान गूढ़ तत्त्व है,  
इसके श्रवण से स्वर्ग, यश एव दीर्घायु मिलती है, इमनिये अब मैं राजा पृथु  
का चरित्र कहता हूँ ॥२८॥ इस चरित्र को जो मनुष्य ब्राह्मणा को नमस्कार  
करके श्रवण करता है, उसे अपने द्वारा किये हुए अच्छे या बुरे कर्म के लिये  
।शवात्ताप नहीं करना पड़ना ॥२९॥

### ॥ वेन का विनाश-पृथु का जन्म ॥

आमीदमस्य गोप्ता वै पूर्वमनिसम प्रभु ।  
अतिवशममुत्पन्नस्त्वङ्गो नाम प्रजापति ॥१॥  
तस्य पुत्रोऽभवद्वेनो नात्यर्थं धर्मकोविद ।  
जातो मृत्युमुनाया वै मुनीयाया प्रजापति ॥२॥  
स मातामहदोषेण वेन कालाजात्मज ।  
स्वधर्मं पृच्छन् वृत्तं कामान्लोभेष्ववर्तत ॥३॥  
मर्यादा स्थापयामास धर्मपिता स पार्थिव ।  
वेदधर्मानतिक्रम्य सोऽग्रमनिरतोऽभवत् ॥४॥  
नि स्वाध्यायवपट्कारास्तस्मिन् राजनि शासति ।  
प्रवृत्ता न पपु सोम हृत यज्ञेषु देवता ॥५॥  
न यष्टन्य न होतव्यमिति तस्य प्रजापते ।  
आमीत्पतिज्ञा क्रूरेय विनाशे प्रत्युपस्थिते ॥६॥  
अहमिज्यश्च यष्टा च यज्ञश्चेति कुम्बह ।  
ममि यज्ञो विघातन्यो मयि होतव्यमित्यपि ॥७॥

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! प्राचीनकाल की बात है, अतिवश  
। अग नामक एक प्रजापति हुए थे । वे महर्षि अत्रि के समान ही सामर्थ्यवान



और धर्म रक्षा में तत्पर रहते थे ॥१॥ मृत्यु मुता सुनीया के गर्भ से उनके वे नामक एक पुत्र हुआ वह धर्म-मत्त्व से अनभिज्ञ था ॥२॥ वह अपने नाम के दोष से धर्म-च्युत होकर अपनी कुत्सित वृत्तियों को तृप्त करने के लिये अत्यन्त चंचल हो उठा था ॥३॥ उसने वैदिक धर्म को त्याग दिया और धर्म-रहित होकर उसने अधार्मिक शासन चलाया ॥४॥ उसने सामन में वेदाध्ययन और ओङ्कार का उच्चारण सभ्य नहीं था, इसलिये यज्ञ में देवताओं का सोमपान रुक गया ॥५॥ उसने अपनी मृत्यु को शीघ्र करण करने के लिये यज्ञ और हवन न करने की आज्ञा प्रसारित की ॥६॥ मैं ही यज्ञ हूँ मैं ही यज्ञकर्त्ता एव सब का साध्य देवता हूँ, इसलिये आज से सभी मनुष्य मेरे निमित्त ही यज्ञ तथा हवन करें ॥७॥

तमतिक्रान्तमर्यादमाददानमसाम्प्रतम् ।  
 ऊचुर्महर्षय सर्वे मरीचिप्रमुखास्तदा ॥८॥  
 वय दीक्षा प्रवेक्ष्याम सवत्सरगणान्वहून् ।  
 अधर्मं कुरु मा वेन नैष धर्मं सनातन ॥९॥  
 निवनेऽस्ते प्रसूतस्त्व प्रजापतिरसशयम् ।  
 प्रजाश्च पालयिष्येऽहमिति ते समयं कृत ॥१०॥  
 तास्तदा ध्रुवत सर्वान्महर्षीन्प्रवोत्तदा ।  
 वेन प्रहस्य दुर्बुद्धिरिममर्थमनर्थवित् ॥११॥  
 स्रष्टा धर्मस्य कश्चान्य श्रोतव्य कस्य वै मया ।  
 श्रुतधीर्यतप सत्यैर्मया वा क समो भुवि ॥१२॥  
 प्रभव सर्वभूतानां धर्माणां च विशेषतः ।  
 समूढा न विदुर्न भवन्तो मामचेतसः ॥१३॥  
 इच्छन्दहेय पृथिवी प्लावयेय तथा जलैः ।  
 स भुव चैव रुध्रेय नान कार्या विचारणा ॥१४॥

इस प्रकार सर्वथा मर्यादा-रहित हुआ राजा वेन लोक निन्दित कार्यों को करने लगा, तब मरीच्यादि ऋषियों ने उसके पास जाकर कहा ॥८॥ हे राजन ! हे वेन ! हम बहुत वर्षों तक चलने वाले यज्ञ की दीक्षा लेने को हैं, इसलिए तुम यज्ञ में मा त्याग करो, यही सनातन धर्म है ॥९॥ हे राजन् ! तुम महर्षि अत्रि

शिवर हो और तुमने राजधर्म तथा राजपालन की प्रतिज्ञा भी ले रखी है ॥१०॥  
उन ऋषियों की बात सुन कर दुर्भति वेन हँस पड़ा और बोला कि धर्म का  
स्रष्टा मेरे अतिरिक्त अन्य कौन है ? मैं जिसकी बातों पर ध्यान दूँ ? इस भूतल  
पर मेरे अतिरिक्त अन्य कौन व्यक्ति शास्त्रज्ञ, पराक्रमी तथा तपस्वी है ? ॥११-  
१२॥ तुम परिम्यितियों की नहीं जानते इसलिये अत्यन्त मूर्ख हो, तुम्हें ज्ञात  
नहीं है कि मैं ही सब जीवों के धर्म की उत्पन्न करने वाला हूँ ॥१३॥ मैं पृथिवी  
को मरम कर देने अथवा जल में प्रवाहित करने में समर्थ हूँ, मैं आकाश और  
पृथिवी को अवरुद्ध कर सकता हूँ, इसमें सन्देह नहीं है ॥१४॥

यदा न शक्यते मोहादबलेपाञ्च पार्थिवः ।  
अनुनेयं तदा वेनस्ततः क्रुद्धा महर्षय ॥१५॥  
निगूह्य त महात्मानो विष्णुर्गन्त महाबलम् ।  
ततोऽस्य सव्यमूर्धं ते ममन्पुत्रातिमन्भवः ॥१६॥  
तस्मिंस्तुमथ्यमाने वै राज्ञ ऊरी प्रजज्ञिगन् ।  
ह्रस्वोऽतिमानः पुरुष कृष्णाश्चातिवभूव ह ॥१७॥  
स भीतः प्राञ्जलिर्भूत्वा स्थितवाञ्जनमेजय ।  
तमन्निविल्लसं दृष्ट्वा निपीदेत्यग्रवीत्तदा ॥१८॥  
निपादवंशकर्ताऽग्नी वमूत्र वदता वर ।  
धीवपानसृजच्चाय वेनकल्मषमम्भवान् ॥१९॥  
ये चान्ये विन्ध्यनिलयास्तुपागन्तुम्बुरास्तथा ।  
अग्रमर्हवधो ये च विद्धि तान्बेनमम्भवान् ॥२०॥  
ततः पुनर्महात्मानः पाणि वेनस्य दक्षिणम् ।  
अरणीमिव सरब्धा ममन्युस्ते महर्षय ॥२१॥

हे राजन् ! जब मोह और अहंकार के वशीभूत हुआ राजा वेन उन  
मुनियों के प्रति शिष्टाचार भी प्रदर्शित न कर सका तो वे सभी मुनि अत्यन्त  
विषीत हुए ॥१५॥ तथा वे राजा वेन को पकड़ कर उन्की दक्षिण जाँघ की  
रफने लगे, इस कारण वह बहुत छटपट या ॥१६॥ इस प्रकार कुछ देर तक  
जाँघ का मन्थन करने पर उन्की जाँघ से एक बीजा और काने वर्ण का पुरुष

उत्पन्न हुआ ॥१७॥ वह पुरुष उत्पन्न होने ही उन मुनियों के सामने हाथ जोड़-  
कर भयपूर्वक खड़ा हो गया । उसे अत्यन्त भयभीत देख कर महर्षि अत्रि ने  
'निषीद' अर्थात् बैठ जाओ कहा ॥१८॥ उस निषीद शब्द के कारण ही वह  
पुरुष निषाद वंश का वर्त्ता हुआ । राजा वेन के पाप से उसी के द्वारा धीवर  
जाति उत्पन्न हुई ॥१९॥ उसी के द्वारा तुषार-तुम्बर आदि अघातिका एवं असम्भ्य  
जातियाँ उत्पन्न होकर विन्ध्य पर्वत पर निवास करने लगी ॥२०॥ इनके पश्चात्  
क्रीषिउ हुए वे ऋषि वेन की दक्षिण भुजा की अरणी के समान मथने लगे ॥२१॥

पृथुस्तस्मात्समुत्तस्यो कराज्ज्वलनसन्निभः ।

दीप्यमान स्ववपुषा साक्षादग्निरिव ज्वलन् ॥२२॥

स धन्वी कश्चो जात पृथुरेव महायशा ।

आद्यमाजगव नाम धनृगं ह्य महारवम् ।

दाराश्च दिव्यान् रक्षार्थं कवचं च महाप्रभम् ॥२३॥

तस्मिन्जातेऽस्य भूतानि सम्प्रहृष्टानि सर्वश ।

समापेतुमंहाराज वेनश्च त्रिदिव गत ॥२४॥

समुत्पन्नेन कौरव्य सत्पुत्रेण महात्मना ।

ज्ञान स पुष्पव्याघ्र पुनाम्नो नरकात्तादा ॥२५॥

त ममुद्राश्च नद्यश्च रत्नान्धादाय सवश ।

तोयानि चाग्निपेवाय सर्वं एवोपतस्थिरे ॥२६॥

पितामहश्च भगवान्देवैराङ्गिरसं सह ।

स्वायराणि च भूतानि जङ्गमानि तथैव च ॥ २७॥

समागम्य नश वैन्यमभ्यपिञ्चवन्नराधिपम् ।

महता राजराजेन प्रजापाल महाद्युतिम् ॥२८॥

उगमे अग्नि के भगवान् अत्यन्त तेज्र वाला एक पुरुष प्रगट हुआ ॥२२॥  
यह प्रजा की रक्षा के लिये धनुष, बाण और बबल धारण किये हुए ही उत्पन्न  
हुआ था, उगमा नाम पृथु हुआ ॥२३॥ इन राजा पृथु के जन्म का समाचार सु-  
कर सभी प्रजाजन सब ओर से आ-आकर यहाँ एकत्र हुए और राजा वेन स्वयं  
गामी हो गया ॥२४॥ हे कौरव ! उग : पुष्प महारथ पृथु के उत्पन्न होने

कारण ही वेन पु नामक नरक को प्राप्त होने से बच सका ॥२५॥ उस समय समस्त नदियाँ और समुद्र विभिन्न प्रकार के रत्न और अमिषेक के लिये जल ले-लेकर वहाँ आगये और सभी देवताओं के लोक गितामह ब्रह्माजी भी वहाँ आ पहुँचे और सब चराचर प्राणी भी आकर एकत्र हो गए ॥२५ २७॥ इस प्रकार सब प्राणियों ने एकत्रित होकर अत्यन्त तेजस्वी राजा पृथु को प्रजा का पालन करने के लिये पृथिवी के राज्य पद पर अभिषिक्त किया ॥२८॥

सोऽभिषिक्तो गृहातेजा विधिवद्धमंकोविदै ।  
 आदिराज्ये तदा राजा पृथुर्वै न्य प्रतापवान् ॥२८॥  
 पिताऽपरञ्जितास्तस्य प्रजाम्नेनानुरञ्जिता ।  
 अनुरागात्ततस्तस्य नाम राजेन्यजायत ॥३०॥  
 आपस्तस्तम्भिरे चाम्य समुद्रमभियाम्यत ।  
 पर्वताश्च ददुर्मांसं ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥३१॥  
 अकृष्टपच्या पृथिवी सिद्धग्रन्थन्नानि चिन्तया ।  
 सर्वकामदुष्वागाव पुटके पुटके मयुः ॥३२॥  
 एतस्मिन्नेव काले तु यज्ञे पैतामहे शुभे ।  
 सृत मूत्रा ममुत्पन्न मीत्येऽहनि मग्नमनि ॥३३॥  
 तस्मिन्नेव महायज्ञे जज्ञे प्राज्ञोऽय मागय ।  
 पृथो स्तवार्थे ती तप्तममाहूनी मुग्धभिः ॥३४॥  
 तावूचुर्मुपय सर्वे म्भूयतामेव पात्रिव ।  
 कर्मस्तदनुष्प वा पात्र चाय नराक्षिप ॥३५॥  
 तावूचनुस्तदा सर्वान्मानृपोन्मूनमाग्री ।  
 आवा देवानृषीश्चैव प्रीणयाव स्वकर्मभिः ॥३६॥  
 न चाम्य विद्वो वै कर्म न तथा लक्षण यश ।  
 स्तोत्र येनाम्य कुर्याव राजम्नेजम्विनो द्विजा ॥३७॥

इस प्रकार विद्वाना द्व रा राज्य पद पर अभिषिक्त हुए अ यन्न पराक्रमी महाराज पृथु अपन पिता स असन्तुष्ट हुए प्रजा को प्रन्न करन के यत्न म लगे और प्रजा रजन के कारण यथाय रूप म राजा हुए ॥३६ ३७॥ जब महाराज

पृथु रणक्षेत्र में जाने का उद्यत होते थे, तब समुद्र, पर्वत और वृक्षादि उन्हें रथ में ही मार्ग दे देते थे, इस प्रकार महाराज पृथु ने रथ की ध्वजा युद्ध के मार्ग में कभी भी नत नहीं हुई ॥३१॥ उनके राज्यकाल में पृथिवी जोने लगी थी अन्न से परिपूर्ण रहती थी, गायें कामधनु बन गयी और वृक्षों के पत्ते पत्तों से मधु धार प्रवाहित होती थी ॥३२॥ ऐसे ही समय में राजा पृथु ने ब्रह्म यज्ञ का प्रारम्भ किया उस यज्ञ में जो कुण्ड सोम रस से भरा हुआ था, उससे अत्यन्त मेघावी सूत मागध उत्पन्न हुए ॥३३॥ ऋषियों ने उन सूत-मागध को बुला कर कहा—तुम दोनों स्तुति के योग्य महाराज पृथु की स्तुति करो, तुम इस कार्य के सर्वथा योग्य हो ॥३४-३५॥ सूत मागध बोले— हे भगवन् ! हम अपने श्रेष्ठ कर्म से सब देवताओं और ऋषियों को तो प्रसन्न कर सकते हैं, परन्तु इन महाराज के यश, कार्य और लक्षण से अनभिज्ञ होने के कारण इनकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं ॥३६-३७॥

ऋषिभिस्ती नियुक्तौ च भविष्ये स्तूयतामिति ।  
 यानि कर्माणि कृतवापृथु पश्चान्महाबल ॥३८  
 सत्यवाग्दानशीलोऽय सत्यसन्धो नरेश्वर ।  
 श्रीमाञ्जैत्र क्षमा शीलो विकान्तो दुष्टशासन ॥३९  
 धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च दयावान्प्रियभाषण ।  
 मान्यो मानयिता यज्वा ब्रह्मण्य सत्सङ्गः ॥४०  
 शम शान्तश्च निरतो व्यवहारस्थितो नृप ।  
 तत प्रभृति लोकेषु स्तवेषु जनमेजय ।  
 आशीर्वादा प्रयुज्यते सूतमागधबन्दिभि ॥४१  
 तयो स्तवन्ते मुप्रीत पृथु प्रादात्प्रजेश्वर ।  
 अनुपदेश सूताय मगधान्मागधाय च ॥४२  
 त दृष्ट्वा परमप्रीता प्रजाश्चाहुर्महर्षय ।  
 वृत्तीनामेव वो दाता भविष्यति जनेश्वर ॥४३  
 ततो वैश्य महाराज प्रजा समभिदुद्रुवु ।  
 न्य नो वृत्त विघट्म्वेति महर्षिवचनात्तदा ॥४४

ऋषियो ने कहा—इहोने जो वार्य पूर्व करण मे लिये थे, वही हम बल्क  
 । करेंगे, इसलिये तुम इनके भविष्य के गुणों को कहते हुए स्तुति करो ॥३८॥  
 अब वे दोनों बन्दीजन राजा पृथु को लक्ष्य कर कहने लगे—हे अत्यन्त पराक्रम  
 सम्पन्न वेन पुन महाराज पृथु ! आपके गमान सत्यवक्ता, सत्यप्रतिज्ञ और दान-  
 शील अन्य कोई नहीं है, आप श्रीमान्, विजययुक्त, क्षमाशील, पराक्रमी तथा  
 दुष्टों पर शासन करने वाले हैं ॥३९॥ आप धर्म के ज्ञाता, कृत्त, दयालु, प्रिय  
 शीलने वाले, माननीय, मान देने वाले, यज्ञशील, ब्राह्मणभक्त एवं सत्य प्रतिज्ञ  
 हैं ॥४०॥ आप दान्त, व्यवहार कुशल तथा अपने कर्म में तत्पर रहने वाले हैं  
 हे राजन् ! हे जन्मजमेय ! मृत मागध ने हम प्रकार स्तुति की, इसलिये यह बन्दी-  
 जन कहे गये और सभी ने इन्हें आशीर्वाद देन का अधिकार प्राप्त हुआ ॥४१॥  
 उनके द्वारा की गई स्तुति से प्रसन्न होकर राजा पृथु ने मृत को अनूप देश तथा  
 मागध को मगध देश प्रदान किया ॥४२॥ राजा पृथु को देख कर अत्यन्त प्रमत्त  
 हुए ऋषियों ने उपमित जगता से कहा—देवो ! यह महाराज पृथु अब तुम्हारी  
 जीविका का प्रबन्ध करेंगे ॥४३॥ ऋषियों की बात सुन ही मन्त्र लोग दौड़  
 पड़े और महाराज को घेर कर बोले कि हे महाराज ! आप हमारे लिये जीविका  
 का प्रबन्ध कीजिये ॥४४॥

सोऽमिद्रुन प्रजामिस्तु प्रजाहितचिकीर्षया ।

धनुर्गृह्य पृषत्काम्च पृषित्रीमार्हयद्वली ॥४५॥

ततो वैन्यभयसप्त गोभूत्वा प्राद्रवन्मही ।

ता पृथुर्धनुरादाय द्रवन्तीमन्वधावत ॥४६॥

सा लोकान्द्रह्यलोकादीन्गता वैन्यभयात्तदा ।

प्रददर्शाग्रतो वैन्य प्रगृहीतशरासनम् ॥४७॥

ज्वलद्भिनिशितैर्वर्षिर्दीप्ततेजसमच्युतम् ।

महायोग महात्मान दुर्धर्षममरैरपि ॥४८॥

अनभन्ती तु सा त्राण वैन्यमेवान्वपद्यत ।

कृताञ्जलिपुटा भूत्वा पूज्या लोकैस्त्रिभि सदा ॥४९॥

उवाच वैश्य नाधर्म्यं स्त्रीवध वतुं महंसि ।

कथं धारयिता चासि प्रजा राजन्विना भया ॥५०॥

मयि लोका स्थिता राजन्मयेदं धार्यन्ते जगत् ।

मद्विनाशे विनश्येयुः प्रजा पार्थिव त्रिद्वि तत् ॥५१॥

यह सुन कर महाराज पृथु ने प्रजा के ममत्वार्थं धनुष बाण धारण किया और पृथिवी को पीड़ित करने लगे ॥४५॥ तब पृथिवी महाराज पृथु से भयभीत होकर गौ का रूप धारण करके भागने लगी और महाराज उसका पीछा करने लगे ॥४६॥ इस प्रकार भय से भागती हुई पृथिवी भूलोक आदि समस्त लोकों को लाँघती हुई ब्रह्मलोक में जा पहुँची परन्तु उसे वहाँ भी धनुष-बाण धारी महाराज पृथु सामने खड़े दिखाई दिये ॥४७॥ महापोषी महात्मा और देवताओं से भी न जीते जाने वाले महाराज पृथु के हाथों में चमकते हुए तीक्ष्ण बाण लगे हुए थे ॥४८॥ जब तीनों लोकों में पूज्या पृथिवी को वही भी धारण नहीं मिल सकी तब वह महाराज पृथु की ही धारण में जाकर वरबद्ध निवेदन करने लगी ॥४९॥ हे राजन् ! आप स्त्री-हत्या रूपी पाप कर्म न करिये, यदि मैं ही नष्ट हो जाऊँगी तो आप अपनी प्रजा की किस स्थान पर रहेंगे ? ॥५०॥ सभी लोक मुझ पर आधारित हैं, क्योंकि मैं सम्पूर्ण विश्व को अपने ऊपर धारण विये हुए हूँ, यदि मेरा नाश होगा तो सशपूर्ण प्रजा का ही नाश हो जाएगा ॥५१॥

न त्वमहंसि मा हन्तु श्रेयश्चेत्त्वा चिकीर्षसि ।

प्रजानां पृथिवीपाल शृणु चेद वचो मम ॥५२॥

उपायत समारब्धा सर्वे सिद्धयन्त्युपक्रम ।

उपाय पश्य येन त्वं धारयेथा प्रजा नृप ॥५३॥

हत्वाऽपि मा न शक्तस्त्वं प्रजा धारयितुं नृप ।

अनुभूता भविष्यामि यच्छ कोप महाद्युते ॥५४॥

अवध्या च स्त्रियं प्राहुस्त्रिर्यग्योनिगतेष्वपि ।

सत्त्वेषु पृथिवीपालनं धर्मं त्यक्तमहंसि ॥५५॥

एव बहुविधं वाक्यं श्रुत्वा राजा महामना ।

कोपं निगृह्य धर्मात्मा वसुधामिदमब्रवीत् ॥५६॥

इसलिये हे भूगल ! यदि आप अपनी प्रजा का श्रित चाहते हैं तो मेरा वचन श्रवण करिये ॥१२॥ भली प्रकार विचार कर किया जाने वाला कार्य ही सफल होता है, इसलिये आप अपनी प्रजा की रक्षा का उपाय सोचिये ॥१३॥ मेरा वध करके भी आप अपनी प्रजा की रक्षा करने में समर्थ न होंगे और फिर मेरी याद करके पश्चात्ताप करेंगे, इसलिये अपने क्रीर की शान्त करिये ॥१४॥ फिर पशु-पक्षी योनि वाली स्त्री का वध भी निषिद्ध है, अतः हे राजन् ! आप अपने धर्म का त्याग मत करिये ॥१५॥ पृथिवी के वचन सुन कर मनस्वी पृथु ने अपने को स्वस्थ किया और पृथिवी से कहने लगे ॥१६॥

॥ पृथु द्वारा पृथ्वी-दोहन ॥

एकस्यार्थाय यो हन्यादात्मनो वा परस्य वा ।  
 बहूनां प्राणिनोऽयं भवेत्तस्येह पानरम् ॥१॥  
 सुक्लमेग्रन्नि बहवो यस्मिन्तु निहते सति ।  
 तस्मिन्नास्ति हते भद्रं पातकं चोपपातकम् ॥२॥  
 एकस्मिन्मयत्र निधनं प्रापिते दुष्टकारिणि ।  
 बहूनां भवति क्षेमः तत्र पुण्यप्रदो वधः ॥३॥  
 साऽहं प्रजानिमित्तत्वा हनिष्यामि वसुपुरे ।  
 यदि मे वचनं नाद्य करिष्यमि जगद्धितम् ॥४॥  
 त्वा निहत्वाद्य वाणेन मच्छासनं राडमुखीम् ।  
 आत्मानं प्रययित्वाऽहं प्रजा धारयिता स्वयम् ॥५॥  
 सा त्वा शासनमास्थाय मम धर्ममृता वरे ।  
 सञ्जीवय प्रजा सर्वां समर्था ह्यसि धारणे ॥६॥  
 दुहितृत्वं च मे गच्छ एनमहं शरम् ।  
 नियच्छेय त्वद्वधार्थमुद्यतं घोरदर्शनम् ॥७॥

पृथु ने कहा— हे वसुन्धरे ! अपने या पराये उपकार के लिये जो एक  
 ॥ अनेक जीवों की हत्या करता है, वह अवश्य ही पापी होता है ॥१॥ परन्तु,



यदि किसी ०व की हत्या से बहुत से लोगो को सुख प्राप्त होता हो तो उसे मार डालने पर कोई पाप अथवा उपाप नहीं लगना ॥२॥ यदि किसी एक दुष्ट की मृत्यु से अनेक व्यक्तियों को सुख हो तो उसे मारने में पुण्य ही होगा ॥३॥ इसलिये, यदि तुम मेरी बात न मानोगी तो मैं तुम्हारा घघ अवश्य कर डालूँगा ॥४॥ मेरे आदेश को न मानने पर तुम्हें अपने बाण से सहार कर समस्त प्रजा की रक्षा करूँगा ॥५॥ तुम धर्मिणा तथा सब लोको के धारण में सामर्थ्य वाली हो, इसलिये तुम्हें मेरी आज्ञा का पालन करके मेरी प्रजा की रक्षा करनी चाहिये ॥६॥ तुम मेरी कन्या बनो तो तुम्हारे मारने के लिये जो याण मैंने ग्रहण किया है, उसे तूणीर में रख सकूँगा ॥ ॥

सर्वमेतदहं वीर विधास्यामि न शयः ।

उपायत समारब्धा सर्वे सिद्धयन्त्युपक्रमा ॥८॥

उपाय पश्य येन त्व धारयेया प्रजा इमा ।

वत्स तु मम सम्पश्य क्षरेय येन वत्सला ॥९॥

समा च कुरु सर्वं मा त्व धर्मभृता वर ।

यथा विस्पन्दमान मे क्षीर सर्वं भावयेत् ॥१०॥

तत्र उत्सारयामास शैलाञ्जलसहस्रश ।

धनुष्कोट्या तदा वैभ्यस्तेन शैला विवर्द्धिता ॥११॥

पृथुर्वैन्यस्तदा राजा मही चक्रे समा तत ।

मन्वन्तरेष्वतीतेषु विपमाऽऽसीदमुन्धरा ॥१२॥

स्वभावेनाभवन्हास्या समानि विपमाणि च ।

चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमासीदेव तदा किल ॥१३॥

न हि पूर्वविसर्गे वै विपमे पृथिवीतले ।

प्रविभाग पुराणा च ग्रामाणा वा तदाऽभवत् ॥१४॥

न सस्यानि न गोरक्षा न कृषिर्न वणिक्पथ ।

नैव सरयानृत तल न लोमो न च मत्सर ॥१५॥

पृथिवी ने कहा—हे महीपाल ! तुमने जो कहा है, वह मैं करूँगी, परन्तु उपाय के अभावमें पूर्णक किया जाने वाला कार्य सफल होता है, इसलिये आप

पहिले प्रजा रक्षण वाले कार्य को स्थिर करिये । सन स पहिले एक ऐसा बछड़ा बनाइये, जिसे देख कर मेर हृदय मे स्नह उमड पडे और स्तनों में दूध उत्पन्न हो ॥८-६॥ इसके पश्चात् आप मुझे समतल करें, जिससे मेरे स्तन से निकलने वाला दूध समान भाग स सब ओर पँन जाय ॥१०॥ वंगम्पायनजी बाल—हे राजन् ! पृथिवी के वचन सुन कर वेन पुत्र पृथु ने भूपृष्ठ को समतल करने के निमित्त अपने धनुष के अग्रभाग से घन-सहस्र पर्वतों को उठा उठा कर नीचे ऊपर के क्रम से पृथक् रख दिया, जिससे वे पयत अत्यन्त ऊँचे हो गय ॥११॥ इस प्रकार उन महाराज ने पृथिवी को समतल किया । आक्षुप मन्वन्तर म पृथिवी के ऊँची-नीची होन व कारण उस समय नगर तथा ग्राम का विभाग नहीं था, एव गोरक्षा, वृषि, बालिष्ठ, मार्ग, सत्य, मिथ्या, लोभ, मात्सर्य कुछ भी नहीं था ॥१२-१॥

वैवस्वतेऽन्नरे चाग्निन्साम्प्रत समुपस्थिते ।  
 वैन्यात्प्रभृति राजेन्द्र सर्वस्यैतस्य सम्भव ॥१६॥  
 यत्र यत्र सम त्वस्या भूमेऽसीदिहानव ।  
 तत्र तत्र प्रजा सर्वा सवास समरोचयन् ॥१७॥  
 आहार फलमूलानि प्रजानामभवत्तदा ।  
 पृच्छ्रेण महता युक्त इत्येवमनुशुश्रुम ॥१८॥  
 सक्त्पयित्वा वत्स तु मनु स्वायम्भुव प्रभुम् ।  
 स्वपाणी पुरुषथोष्ठ दुदोह पृथिवी तत ।  
 सस्यजतानि सर्वाणि पृथुर्वैन्य प्रतापवान् ॥१९॥  
 तेनान्नेन प्रजास्तात वर्तन्तेऽद्यापि नित्यश ।  
 ऋषिभि श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।  
 वत्स सोमोऽभवत्तेषा दोग्धा चाङ्गिरस सुन ॥२०॥  
 बृहस्पतिर्महातेजा पात्र छन्दामि भारत ।  
 क्षीरमासीदनुपम तपो ब्रह्म च शाश्वतम् ॥२१॥  
 पुनर्देवगणै सर्वै पुरन्दरपुरोगमै ।  
 काञ्चन पात्रमादाय दुग्धेय श्रूयते मही ॥२२॥

वैवस्वत मन्वन्तर मे भी पृथु के राज्य-काल से इन सब की उपलब्धि हुई थी ॥१६॥ इस समय समस्त हुए उस भाग पर प्रजाजन अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार जाकर रहने लगे ॥१७॥ इससे पहिले फल भूल के अतिरिक्त अन्य कोई साधन आहार के लिये नहीं था, इसलिये अत्यन्त कष्ट पूर्वक लोगों का जीवन चल पाता था । १८ । पृथिवी के परामर्श से राजा पृथु ने स्वायम्भुव मनु को बध्ना बनाया और स्वयं पृथिवी से सब प्रकार के अन्न रूप दूध का दोहन किया ॥१९॥ उसी काल से उन अन्नो के द्वारा प्रजा अपना जीवन-यापन करती चली आ रही है । ऋषियों का कहना है कि पृथु के पश्चात् जब ऋषियों ने पृथिवी का दोहन किया तब अगिरापुत्र बृहस्पति बुझने वाले, चन्द्रमा बछड़ा, चारी वेद दोहन-पात्र और तप रूप शाश्वत ब्रह्म दूध बना ॥२०-२१॥ इसके पश्चात् इन्द्रादि देवताओं ने स्वर्णपात्र लेकर पृथिवी का दोहन किया ॥२२॥

वत्सस्तु मधवानासीदोग्धा च सविता प्रभु ।

क्षीरमूर्जस्कर चैव वर्तन्ते येन देवता ॥२३॥

पितृभिः श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।

राजत पात्रमादाय स्वधाममितविकर्म ॥२४॥

यमो वैवस्वतस्तेषामासीद्वत्स प्रतापवान् ।

अन्तकश्चाभवदोग्धा कालो लोक्प्रकालन ॥२५॥

नार्गश्च श्रूयते दुग्धा वत्स कृत्वा तु तक्षकम् ।

अलाबु पात्रमादाय विष क्षीर नरोत्तम ॥२६॥

तेषामनरावतो दोग्धा घृतराष्ट्र प्रतापवान् ।

नागानां भरतश्चेष्ट सर्पाणां च महीपते ॥२७॥

तेनैव वर्तयन्त्युग्रा महाकाया विषोल्बणा ।

तदाहारास्तदाचारास्तद्वीर्यास्तदुपाश्रया ॥२८॥

असुरैः श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।

आयस पात्रमादाय माया शत्रुनिर्वहिणीम् ॥२९॥

विरोचनस्तु प्राह्लादिवत्सस्तेषामभूत्तदा ।

ऋत्विग्भिर्मूर्धा दैत्यानां मधुर्दोग्धा महाबल ॥३०॥

उस समय सूर्य दोग्गा और इन्द्र बठठा हुआ, उन्होंने उसने देवताओं के जीविका रूप यज्ञीय हवि स्वल्प दुग्ध का दोहन किया ॥२४-२५॥ इसके बाद जब पृथिवी का दोहन किया गया तब नागों ने तक्षक को बठठा बनाया और ऐरावत एव घ्नराष्ट्र ने दुहने वाला बन कर तुम्बी-गात्र में विष रूपी दूध को दुहा ॥२६-२७॥ उसी विष के प्रभाव से सर्पों का स्वभाव अत्युग्र होगया, क्योंकि उनका आहार, व्यवहार, चल और आग्रह सभी कुछ विष था ॥२८॥ इसके पश्चात् असुरों ने पृथिवी-दोहन किया तो उन्होंने लोह-गात्र लेकर विरोधन को बतल बनाया और दैत्य-पुरोहित ऋषभा मधु दैत्य उसमें दोग्गा हुआ, जिसने पृथिवी से माया रूपी दूध का दोहन किया ॥२९-३०॥

तयैते माययाऽद्यापि सर्वे मायाविनोऽमुरा ।  
वर्तयन्त्यमितप्रज्ञास्तदेपाममित वलम् ॥३१॥  
यक्षश्च श्रूयते तात पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।  
आमपाने महाराज पुराञ्जतर्दानमक्षयम् ॥३२॥  
वत्स वैश्रवण कृत्वा यक्ष पुण्यजनस्तदा ।  
दोग्धा रजतनामस्तु पिता मणिवरस्य य ॥३३॥  
यक्षानुजो महातेजास्त्रिणीर्य मुमहातपा ।  
तेन ते वर्तयन्तीति परमर्पित्वा च ह ॥३४॥  
राक्षसश्च पिशाचश्च पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।  
शाव कपालमादाय प्रजा भोक्तु नरर्पम ॥३५॥  
दोग्धा रजतनामस्तु तेषामासीत्कुरुद्रह ।  
वत्स सुमाली कौरव्य क्षीर रघिरमेव च ॥३६॥  
तेन क्षीरेण यक्षाश्च राक्षसाश्च मरोऽपि ।  
वर्तयन्ति पिशाचाश्च भूतमङ्गाम्स्तथैव च ॥३७॥

उसी के प्रभाव से असुरगण मायावी तथा अत्यन्त पराक्रमी होकर जीवन-यापन करते हैं ॥३१॥ इसके पश्चात् यक्षों ने पृथिवी को दुहा और दुहने को बच्चा पात्र लिया, उसमें कुम्ह बठठा और मणिवर के पिता रजतनाम

दोग्धा हुए, उन्होंने अविनाशी दुग्ध का दोहन किया । उस अतर्धान विद्या के प्रभाव से ही यक्षगण पर-देह में अप्रत्यक्ष रूप से प्रविष्ट होकर स्वच्छन्द रूप से रहते हैं ॥३२-३४॥ इसके बाद राक्षसों और पिशाचों ने मृत्यु के कपाल में रुधिर रूप दूध का दोहन किया उस समय सुमारी बछड़ा और रजतनाभ दोग्धा हुआ ॥३५-३६॥ इस प्रकार रुधिर के प्रभाव से ही यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच सब देवताओं के समान सुखी रहते हैं ॥३७॥

पद्मपत्रे पुनर्दुग्धा गन्धर्वे साप्सरोगणं ।  
वत्स चित्ररथं कृत्वा शुचीन्गन्धान्नरपंभ ॥३८॥  
तेषां च सुरचिस्त्वासीद्दोग्धा भरतसत्तम ।  
गन्धर्वराजोऽतिबलो महात्मा सूर्यसन्निभ ॥३९॥  
शैलेश्च श्रूयते राजन्पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।  
औपधीर्वै मूर्तिमती रत्नानि विविधानि च ॥४०॥  
वत्सस्तु हिमवानासीन्मेरुर्दोग्धा महामिरि ।  
पाल तु शैलमेवासीत्तेन शैला प्रतिष्ठिता ॥४१॥  
वीरङ्गि श्रूयते राजन्पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ।  
पालाश पात्रमादाय दग्धच्छिन्नप्ररोहणम् ॥४२॥  
दुदोहं पुष्पितं सालो वत्सं प्लक्षोऽभवत्तदा ।  
सेयं धात्री विघात्री च पावनी च वसुन्धरा ॥४३॥

फिर गंधर्वों और अप्सराओं ने पद्म पत्र रूपी पात्र में अत्यन्त पवित्र गन्ध द्रव्य रूपी दुग्ध का दोहन किया, उस समय सूर्य के समान तेजस्वी गन्धर्व-राज सुरचि दोग्धा और चित्ररथ वत्स बने ॥३८-३९॥ फिर जब पर्वतों ने शिला को पाल बना कर पृथिवी को दुहा, तब हिमाश्रय बछड़ा और सुमेरु दोग्धा बने, उन्होंने विभिन्न प्रकार औपधियों और रत्नों को प्राप्त किया ॥४०-४१॥ फिर वृक्षों ने पलाश पत्र म पृथिवी का दोहन किया तो शालवृक्ष दोग्धा और प्लक्ष वृक्ष बछड़ा बना, इससे पृथिवी से छिन्न-दग्धावुर रूपी दुग्ध की उत्पत्ति हुई । हे राजन् ! यह पृथिवी के समान ही सब की पोषक अत्यन्त पवित्र है

चराचरस्य सर्वस्य प्रतिष्ठा योनिरेव च ।  
 सर्वकामदुघा दोग्ध्री सर्वस्यप्ररोहिणी ॥४४  
 आसीदिय समुद्रान्ना मेदिनीति परिश्रुता ।  
 ययुकंठमयो कृत्स्ना मेदसाऽग्निपरिप्लुता ।  
 तेनेय मेदिनी देवी प्रोच्यते ब्रह्मवादिभि ॥४५  
 ततोऽभ्युपगमाद्राज्ञ पृथोर्वैन्यस्य भारत ।  
 दुहितृत्वमनुप्राप्ता देवी पृथ्वीति चोच्यते ।  
 पृथुना प्रविभक्ता च शोधिता च वसुधरा ॥४६  
 सस्याकरवती स्फीता पुरपत्तनमालिनी ।  
 एवप्रभावी वैन्य स राजाऽऽसीद्राजसत्तम ॥४७

यह चराचरमय जगत् की आश्रयरूपा है, अन्नादि सभी पुष्ट करने वाले द्रव्य इससे उत्पन्न होते हैं, यह कामधनु के समान सभी की कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ है ॥४४॥ यह पृथिवी समुद्र तक विस्तार वाली है, किसी एक समय यह मधु कंठ के मेद से व्याप्त हुई थी, इसलिये ब्रह्मवादी मुनिगो द्वारा मेदिनी कही जाने लगी ॥४५॥ राजा पृथु द्वारा इसे अपनी कन्या मान लेने के कारण ही इसका नाम पृथिवी हुआ । उन राजा ने इस पृथिवी का यथाविधि विभाग कर इसकी सार-सभार की, सब से यह अन्न उत्पन्न करने लगी और सभी इस पर खानो, नगरो और राजधानियो की रचना हुई, राजा पृथु का इतना भारी प्रभाव था ॥४६ ४७

## ॥ मन्वन्तर-वर्णन ॥

मन्वन्तराणि सर्वाणि विस्तरेण तपोधन ।  
 तेषा पूर्वविसृष्टि च वैशम्पायन कीर्तय ॥१  
 यावन्तो मनवश्चैन यावन्त कालमेव च ।  
 मन्वन्तरमह ब्रह्मब्रह्मोतुमिच्छामि तत्त्वत ॥२  
 न शक्यो विस्तरस्तात वक्नु वर्षशतैरपि ।  
 मन्वन्तराणा कौरव्य संक्षेप त्वेव मे शृणु ॥३

स्वायम्भुवो मनुस्तात मनु स्वारोचिपस्तथा ।

औत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुपस्तथा ॥४॥

वैवस्वतश्च कौरव्य साम्प्रतो मनुरुच्यते ।

सार्वणिश्च मनुस्तात भौत्यो रौच्यस्तथैव च ॥५॥

तथैव मेरुसावर्णाश्चत्वारो मनव स्मृता ।

अतीता वर्त्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ॥६॥

कीर्तिता मनवस्तात मयैते तु यथाश्रुतम् ।

ऋषीस्तेषां प्रवक्ष्यामि पुनान्देवगणास्तथा ॥७॥

जनमेजय बोले—हे तपोधन ! अब मैं सब मनुजों और मन्वन्तरो का काल परिमाण और सृष्टि क्रम सुनना चाहता हूँ इसलिये आप इसका विस्तार से बखान करिये ॥१२॥ वैशम्पायन ने कहा—हे राजन् ! सब मन्वन्तरो का विस्तृत बखान तो सौ वर्षों में भी पूर्ण नहीं हो सकेगा, इसलिये संक्षेप में ही सब कहता हूँ ॥३॥ स्वायम्भुव, स्वारोचिष औत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुप, वैवस्वत, सार्वणि, भौत्य, रौच्य, ब्रह्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, मेरुसावर्णि तथा दक्ष सार्वणि इस प्रकार चौदह मनु हैं । इनमें से छह मनुजों का कार्यकाल व्यतीत हो चुका, अब सातवौं वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है और शेष सात आगे होंगे इन मनुजों के पुत्रों, तत्कालीन ऋषियों और देवताओं को तुम्हें बताता हूँ ॥४७॥

मरीचिरनिर्भंगवानङ्गिरा पुलह क्रतु ।

पुलस्त्यश्च बसिष्ठश्च सर्पते श्रद्धाण सुता ॥८॥

उत्तरस्या दिशि तणा राजन्सप्तपंथोऽपरे ।

यामा नाम तथा देवा आसन्स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥९॥

आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च मेघा मेघातिथिवंसु ।

ज्योतिष्मान्द्रुतिमान्हव्य सवन पुत्र एव च ॥१०॥

मनो स्वायम्भुवस्यैते दश पुत्रा महोजस ।

एतत्ते प्रथम राजन्मन्वन्तरमुदाहृतम् ॥११॥

और्वो वसिष्ठपुत्रश्च स्तम्भ काश्यप एव च ।  
 प्राणो बृहस्पतिश्चैव दत्तोऽग्निश्च्यवनस्तथा ॥१२  
 एते महर्षयस्तात वायुप्रोक्ता महाव्रता ।  
 देवाश्च तुषिता नाम स्मृता स्वारोचिषेऽन्तरे ॥१३  
 हविध्र सुऋतिज्योतिरापोमूर्तिरयस्मय ।  
 प्रथितश्च नभस्यश्च नभ ऊर्जस्तथैव च ॥१४  
 स्वारोचिषस्य पुनास्ते मनोस्तात महात्मन ।  
 कीर्तिता पृथिवीपाल महावीर्यपराक्रमा ॥१५

स्वायम्भुव मन्वन्तर मे भरोचि, अग्नि, अगिरा, पुनस्त्य, पुनह, ऋतु और वसिष्ठ यह सातों ब्रह्मपुत्र ऋषि थे ॥८॥ उत्तर म सप्तर्षि स्थित हैं, वे इनसे भिन्न हैं, इस मन्वन्तर म याम नामक देवता होते हैं ॥९॥ स्वायम्भुव मनु के आग्नीध्र, अग्निवाह, मेधा, मेधातिथि, वसु, ज्योतिष्मान्, धृतिमान्, हव्य सवन और पुन यह पुत्र होते हैं, इस प्रकार यह प्रथम मन्वन्तर का वर्णन हुआ जो मैंने तुमसे कहा है ॥१०-११॥ स्वारोचिष मन्वन्तर मे और्व, स्तम्भ, काश्यप, प्राण, बृहस्पति, दत्त, अग्नि और च्यवन ऋषि होने हैं तथा तुषित नामक देवता रहते हैं । स्वारोचिष मनु के पुन हविध्र, सुऋति, ज्योति, आप, मूर्ति, अय, स्म, प्रथित, नभस्य, नभ और ऊर्ज होते हैं ॥१२-१५॥

द्वितीयमेतत्प्रथित तव मन्वन्तर मया ।  
 इदं तृतीयं वक्ष्यामि तन्निबोध नराधिप ॥१६  
 वसिष्ठपुना सप्तासन्वासिष्ठा इति विश्रुता ।  
 हिरण्यगर्भस्य सुता ऊर्ज्वा नाम महोजस ॥१७  
 श्रपयोऽन मया प्रोक्ता वीर्यमानान्निबोध मे ।  
 ओत्तमेयान् महाराज दश पुत्रान्मनोरमान् ॥१८  
 ईष ऊर्जस्तनूजश्च मधुर्माधव एव च ।  
 शुचि शुक सहश्चैव नभस्यो नभ एव च ॥१९  
 भानवस्तत्र देवाश्च मन्वन्तरमुदाहृतम् ।  
 मन्वन्तर चतुर्थं ते कथयिष्यामि तच्छृणु ॥२०



काव्य पृथुस्तथैवाग्निर्जह्नुर्घाता च भारत ।  
 कपीवानकपीवाश्च तत्र सप्तर्षयोऽपरे ॥२१॥  
 पुराणे कथितास्तात पुत्रा पीत्राश्च भारत ।  
 सत्या देवगणाश्चैव तामसस्यान्तरे मनो ॥२२॥

इस प्रकार यह दूसरे मन्वन्तर का विवरण हुआ, अब तीसरे मन्वन्तर का वर्णन कहता हूँ, उसे सुनो ॥१६॥ हे राजन् ! बसिष्ठ के जो सात पुत्र बहे गये हैं, वे ही ऋषा के द्वारा उत्पन्न होकर ऊग्र नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥१७॥ इस मन्वन्तर के ऋषि यही हैं, अब उत्तम मनु के पुत्रों को बताता हूँ—ईष, ऊर्ज, तनूज, मधु माधव, शुचि, शुक, सह, नमस्थ और नम यह उत्तम मनु के पुत्र हैं ॥१८-१९॥ इस मन्वन्तर के देवता भानुगण होते हैं, यह तीसरे मन्वन्तर का वर्णन किया, अब चौथे का करता हूँ ॥२०॥ इसमें सात ऋषि काव्य, पृथु अग्नि, जह्नु घाता, कपिवाद् एव अकपिवाद् नामक होते हैं ॥२१॥ इनके धतिरिक्त पुराणों में इनके अनेकों पुत्र तथा पीत कहे गये हैं, इस मन्वन्तर में सत्य देवता रहते हैं ॥२२॥

पुत्राश्चैव प्रवक्ष्यामि तामसस्य मनोर्नृप ।  
 द्युतिस्तपस्य सुतपास्तपोमूलस्तपोधन ॥२३॥  
 तपोरतिरकल्माषस्तन्वी धन्वी परन्तप ।  
 तामसस्य मनोरेते दश पुत्रा महाबला ॥२४॥  
 वायुप्रोक्ता महाराज पञ्चम तदनन्तरम् ।  
 वेदबाहुयंदुघ्नश्च मुनिर्वेदशिरास्तथा ॥२५॥  
 हिरण्यरोमा पञ्चन्य ऊर्ध्वबाहुश्च सोमज ।  
 सत्यनेत्रस्तथाऽऽप्रेय एते सप्तर्षयोऽपरे ॥२६॥  
 देवाश्च भूतरजसस्तथा प्रवृत्तयोऽपरे ।  
 पारिप्लवश्च रम्यश्च मनोरन्तरमुच्यते ॥२७॥  
 अथ पुत्रानिमास्तस्य निबोध गदतो मम ।  
 धृतिमानव्ययो युत्तमस्तत्त्वदर्शी निरुत्सुक् ॥२८॥

अरण्यश्च प्रकाशश्च निर्मोह सत्यवान् कृती ।  
 रैवतस्य मनो पुनः पञ्चम चैतदन्तरम् ॥२८॥  
 पष्ठ ते सप्रवक्ष्यामि तन्निबोध नराधिप ।  
 भृगुर्नमो विवस्वान् सुग्रामा विरजाम् तथा ॥३०॥  
 अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तैते वै महर्षयः ।  
 चाक्षुपस्यान्तरे तात मनोर्देवानिमाञ्छृणु ॥३१॥

इन तामस मनु के छुति, तपस्य, सुनपा, तपोमूय तपोधन, तपोरति, अरुमाप, तन्वी, धन्वी और परन्तप नाम के पुत्र होत हैं ॥२३-२४॥ पाँचवें मन्वन्तर में वेदकाहु, यदुध्न वेदशिरा, हिरण्यरोमा, पञ्चम्य, ऊर्ध्वकाहु और सरयनश्च यह सात ऋषि होते हैं ॥२५-२६॥ इन मन्वन्तर में सभी देवता रजोगुणी होत हैं । इनका नाम पारिपल्व और रैव्य होता है ॥२७॥ पाँचवें रैवत मनु के धृतिमान, अव्यय युक्त, तत्त्वदर्शी, निष्कृष्ट, अरण्य, प्रकाश, निर्मोह, सत्यवान् और कृती नामक पुत्र होते हैं ॥२८-२९॥ अब छठवें मन्वन्तर का वृत्तान्त सुनो । भृगु नम, विवस्वान् सुग्रामा, विरजा, अतिनामा और सहिष्णु यह सात ऋषि होते हैं । अब चाक्षुप स अगने मन्वन्तर के दवताश्री के नाम सुनो ॥३०-३१॥

आद्या प्रभूता ऋषभ पृथग्भावा दिवीकम ।  
 लेखाश्च नाम राजेन्द्र पञ्च देवगणा स्मृता ।  
 ऋषेरङ्गिरस पुनः महात्मानो महौजस ॥३२॥  
 नाड्वलेया महाराज दश पुनश्च विश्रुता ।  
 ऊरुप्रभृतयो राजन्यष्ठ मन्वन्तर स्मृतम् ॥३३॥  
 अत्रिर्वसिष्ठो भगवान्कश्यपश्च महानृषि ।  
 गौतमोऽथ भरद्वाजो विश्वामित्रस्तथैव च ॥३४॥  
 तथैव पुत्रो भगवानृचीकस्य महात्मन ।  
 सप्तमो जगदग्निश्च ऋषयः साम्प्रत दिवि ॥३५॥  
 साध्या रुद्राश्च विश्वे च मरुतो वमवन्तया ।  
 आदित्याश्चाश्विनौ चाग्नि देवो वैवस्वती स्मृता ॥३६॥

मनोर्व्वस्वतस्यैते वर्तन्ते साम्प्रतेऽन्तरे ।

इक्ष्वाकुप्रमुखाश्चैव दश पुत्रा महात्मन ॥३७

एतेषा कीर्तिताना तु महर्षीणा महोजसाम् ।

राज-पुत्राश्च पौत्राश्च दिक्षु सर्वासु भारत ॥३८

मन्वन्तरेषु सर्वेषु प्राग्दिश सप्तसप्तका ।

स्थिता लोकव्यवस्यार्थं लोकसरक्षणाय च ॥३९

आद्य, प्रभूत, ऋषि, ऋषभ और लेखा यह पांच देवता होते हैं, महर्षि अगिरा के ऊह आदि दस पुत्र ही छठवें मनु के पुत्र कहे जाते हैं, इस प्रकार छठवें मन्वन्तर का वृत्तान्त पूर्ण हुआ ॥३२-३३॥ अब सातवें मन्वन्तर का वर्णन सुनो—अग्नि, वसिष्ठ, कश्यप, गोतम, भरद्वाज विश्वामित्र और जमदग्नि इस मन्वन्तर के सप्तर्षि हैं ॥३४-३५॥ साध्यगण, विश्वेदेवगण, रुद्रगण, वसुगण, मरुगण, आदित्यगण, और अश्विद्वय देवता हैं तथा वैवस्वत मनु के इक्ष्वाकु, आदि दस पुत्र हैं ॥३६-३७॥ हे राजन् ! जिन परम प्रतापी महर्षियों के विषय में मैंने कहा है, उनके पुन पौत्रादि वंशधर सब दिशाओं में व्याप्त हैं ॥३८॥ उपरोक्त सभी मन्वन्तरों में लोकों की व्यवस्था और रक्षा के लिये उनचास वामु स्थित रहते हैं ॥३९॥

मन्वन्तरे व्यतिक्रान्ते चत्वारः सप्तका गणाः ।

कृत्वा कर्म दिव यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम् ॥४०

ततोऽप्ये तपसा युक्ता स्थानमापूरयन्त्युत ।

अतीता वर्तमानाश्च क्रमेणैतेन भारत ॥४१

एतान्युक्तानि कीरव्य सप्तातीतानि भारत ।

मन्वन्तराणि षट् चापि नियोधानागतानि मे ॥४२

सावर्णा मनवस्तात पचाताश्च निबोध मे ।

एवो वैवस्वतस्तेषा चत्वारस्तु प्रजापतेः ॥४३

परमेष्ठिमुत्तास्तात मेरमावर्णता गता ।

दशस्यैते हि दोहिताः प्रियायास्तनया नृप ।

महान्तस्तपसा युक्ता मेरपृष्ठे महोजसः ॥४४

रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नाम मनुः स्मृतः ।  
 भूत्यां चोत्पादितो देव्यां भौत्यो नाम रुचेः सुतः ॥४५॥  
 अनागताश्च सप्तैते स्मृता दिवि महर्षयः ।  
 मनोरन्तरमासाद्य सावर्णस्य ह ताञ्छृणु ॥४६॥  
 रामो व्यासस्तथानेयो दीप्तिमानिति विश्रुतः ।  
 भारद्वाजस्तथा द्रोणिरश्वत्थामा महाद्युतिः ॥४७॥  
 गौतमस्यात्मजश्चैव शरद्धान्नाम गौतमः ।  
 कौशिको गालवश्चैव ररुः काश्यप एव च ॥४८॥

एक मन्वन्तर के समाप्त होने पर चतुःप्लवक अपने-अपने कार्य का पूर्ण निर्वाह करके अक्षय ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं ॥४०॥ उनके चले जाने पर श्रम्यान्म महापुरुष अपने-अपने तपोबल के द्वारा उनके रिक्त स्थान की पूति करते हैं । इस प्रकार सप्त मन्वन्तरों का चक्र चलता रहता है ॥४१॥ इस प्रकार सात मन्वन्तरों का विषय-वर्णन हुआ, अब अन्य मन्वन्तरों को भी बताता हूँ ॥४२॥ सावर्णि मनु पाँच बड़े गये हैं, इनमें प्रथम र्ववस्वत सावर्णि सूर्यपुत्र माने गये हैं, दोष चारों सावर्णि ब्रह्माजी के पुत्र हैं । मुमेर पर्वत पर तप करने के कारण मेरु सावर्णि के नाम से इनकी प्रसिद्धि हुई । यह दक्ष मुता प्रिया के पुत्र होने से दक्ष के दौहित्र हुए, यह अत्यन्त तेजस्वी और तपस्वी थे ॥४३-४४॥ रुचि प्रजापति के पुत्र रौच्य और भूति प्रजापति के पुत्र भौत्य, यह भी मनु हुए, दोष मनुओं की उत्पत्ति भूति के गर्भ से हुई इसलिये उनकी प्रसिद्धि भौत्य रूप में हुई ॥४५॥ अब आतामी आठवें सावर्णि में होने वाले ऋषियों का वृत्तान्त कहता हूँ ॥४६॥ राम, व्यास, दीप्तिमान्, भारद्वाज, अश्वत्थामा, शरद्धान्, गालव, ररु नामक ब्रह्म के समान तेजस्वी ऋषि होंगे ॥४७-४८॥

वरीयांश्चावरीयांश्च संमतो धृतिमान्वसु ।  
 चरिष्णुरप्यघृष्णुश्च वाजः सुमतिरेव च ।  
 सावर्णस्य मनोः पुत्रा भविष्या दश भारत ॥४९॥  
 प्रथमे मेरुसावर्णे प्रवक्ष्यामि मुनोञ्छृणु ।  
 मेघातिथिस्तु पौलस्त्यो वसु काश्यप एव च ॥५०॥

ज्योतिष्मान्भार्गवश्चैव द्युतिमानङ्गिरास्तथा ।  
 सवनश्चैव वासिष्ठ आक्षेपो हव्यवाहन ॥५१॥  
 पौलह सप्त इत्येते मुनयो रोहितेऽन्तरे ।  
 देवतानां गणास्तत्र तत्र एव नराधिप ॥५२॥  
 दक्षपुत्रस्य पुत्रास्ते रोहितस्य प्रजापते ।  
 मनो पुक्षो घृष्टकेतु पचहोत्रो निराकृति ॥५३॥  
 पृथु श्रवा भूरिघामा ऋचाकोष्ठहतो गय ।  
 प्रथमस्य तु सावर्णेनैव पुत्रा महौजस ॥५४॥

वरीयान्, अवरीयान्, सम्मत्, द्युतिमान्, वसु, चरिष्णु, अघृष्णु, आर्य  
 वाज और सुमति यह दस सावर्णि मनु के पुत्र होंगे ॥५६॥ अब प्रथम सावर्णि  
 के मुनियों के नाम सुनो—भेमातिथि, वसु, ज्योतिष्मान् अगिरा, सवन, हव्य  
 वाहन और पौलह यह सप्तर्षि होंगे । इस मन्वन्तर में देवता तीन होंगे ॥५०-  
 ५२॥ वे तीनों दक्ष तनय रोहित के पुत्र होंगे । प्रथम सावर्णि के घृष्टकेतु  
 पचहोत्र, निराकृति, पृथु, श्रवा, भूरिघामा, ऋचीक, वृहत् और गय यह नौ पु-  
 त्र होंगे ॥५३-५४॥

दशमे त्वथ पययि द्वितीयास्यान्तरे मनो ।  
 हविष्मान्पौलहश्चैव सुकृतिश्चैव भार्गव ।  
 भयोमूर्तिस्तथाऽत्रेयो वसिष्ठश्चाष्टम स्मृत ॥५५॥  
 पौलस्त्य प्रमितिश्चैव नभगश्चैव काश्यप ।  
 अगिरा नभम सत्य सप्तैते परमर्षय ॥५६॥  
 देवतानां गणो द्वौ तौ ऋषिमन्त्राश्च ये स्मृता ।  
 मनो सुतौ तप्तौजाश्च निकुण्डजश्च वीर्यवान् ॥५७॥  
 शतानीको निरामित्रो वृषसेनो जयद्रथ ।  
 भूरिद्युम्न सुवर्चाश्च दश त्वेते मनो सुता ॥५८॥  
 एकादशेऽप्य पययि तृतीयस्यान्तरे मनो ।  
 सस्य सप्त ऋषीश्चापि कीर्त्यमानान्निबोध मे ॥५९॥

हविष्मान्काश्यपश्चाणि हविष्माम्यश्च भार्गव ।  
तरुणश्च तथाऽऽत्रेयो वासिष्ठस्तत्रनघस्तथा ॥६०॥  
अगिराश्चोदधिष्ण्यश्च पौलस्त्यो निश्चरस्तथा ।  
पुलहश्चाग्नितेजाश्च मान्या सप्त महर्षय ॥६१॥

दसवें मन्वन्तर में हविष्मान्, सुहृनि, अयोमूर्ति, अष्टम, प्रमति, नमोग और सत्य यह ऋषि होंगे, इस मन्वन्तर में दक्षिण तथा उत्तर पक्ष के अमिमानी दो ही देवता होंगे, यह देवता मन्त्र प्रतिपाद्य माने जायेंगे । दक्ष सार्वणि के दस पुत्र सुत, उत्तमीजा, निरूपज, वीर्यवान्, शतानीक, निरमित्र, वृषसेन, जयद्रथ, भूरिद्युम्न एवं सुवर्चा होंगे ॥६५-६८॥ अब तीसरे सार्वणि के स्यारहवें मन्वन्तर में जो ऋषि हुए उनके नामों को सुनों—काश्यप पुत्र हविष्मान्, भृगुपुत्र हविष्मान्, आप्रेय तद्वण, अनघ, उदधिष्ण्य, निश्चर और अग्नि-तेजा नाम के सात ऋषि होंगे ॥६९-७१॥

ब्रह्मणस्तु सुता देवा गणास्नेपा त्रय स्मृता ।  
सर्वर्तकं मुशर्मा च देवानीक पुण्ड्रह ॥६२॥  
क्षेमघन्वा दृढायुश्च आदशं पण्डकी मनु ।  
सावर्णस्य तु पुत्रा वै तृतीयस्य नव स्मृता ॥६३॥  
चतुर्थस्य तु सावर्णेऋषीन्मप्त निबोध मे ।  
द्युतिर्वसिष्ठपुत्रश्च आत्रेयः सुतपास्तथा ॥६४॥  
अगिरास्तपसो भूतिस्तपस्वी काश्यपस्तथा ।  
तपोशनश्च पौलस्त्य पौलहश्च तपो रवि ॥६५॥  
भार्गव सप्तमस्नेपा विश्वेपस्तु तपो धृति ।  
पचदेवगणा प्रोक्ता मानसा ब्रह्मणश्च ते ॥६६॥  
देववायुरद्वारश्च देवश्रेष्ठो चिद्वरय ।  
मित्रवान्मित्रदेवश्च मित्रसेनश्च मित्रकृत् ।  
मित्रबाहु सुवर्चाश्च द्वादशस्य मनो सुता ॥६७॥  
त्रयोदशेऽथ पयसि भान्ये मन्वन्तरे मनो ।  
अगिराश्चैव धृतिमान्पौलस्त्यो हव्यपस्तु य ॥६८॥

पीलहस्तस्त्वदर्शी च भागंवश्च निरत्सुक ।  
 निष्प्रकम्पस्तथाऽऽजेयो निर्मोह कश्यपस्तथा ॥६६॥  
 सुतपाश्चैव वासिष्ठ सप्तैते तु महर्षय ।  
 त्वय एव गणा प्रोक्ता देवताना स्वयभुवा ॥७०॥

इस मन्वन्तर में ब्रह्मा के पुत्र तीन सम्प्रदायो में बँट कर देवता बनेंगे तथा सवर्तक, सुशर्मा, देवानीक, पुरुद्वह, क्षेमघन्वा, हठामु, आठरां, पण्डक और मनु यह इस तीसरे वृद्ध सार्वणि के नौ पुत्र होंगे ॥६२-६३॥ अब चौथे सार्वणि के ऋषि सुनो—छुति, सुतपा, अगिरा, तपस्वी, तपोशन, तपोरवि और विक्षेप नामक सप्तर्षि होंगे तथा पाँच भागों में विभक्त ब्रह्माजी के मानस पुत्र इस मन्वन्तर में देवता होंगे ॥६४-६६॥ द्वादश सार्वणि के पुत्र देवबाहु, अङ्गूर, देव-श्रेष्ठ, विङ्गूरय, मित्रवान्, मित्रदेव, मित्रसेन, मित्रवृत्, मित्रबाहु और सुवर्चा होंगे ॥६७॥ तेरहवें रौच्य मन्वन्तर में धृतिमान् हव्यप, तत्त्वदर्शी, निरत्सुक, निष्प्रकम्प, निर्मोह और सुतपा सप्त ऋषि होंगे तथा ब्रह्माजी के तीन पुत्र देवता होंगे ॥६८-७०॥

तयोदशस्य पुत्रास्ते विज्ञेयास्तु रुचे सुता ।  
 चित्रसेनो विचित्रश्च नमो धर्मभूतो धृत ॥७१॥  
 सुनेस सप्तवृद्धिश्च सुतग निर्भयो वृद्ध ।  
 रौच्यस्यैते मनो पुत्रा अन्तरे तु तयोदशे ॥७२॥  
 चतुर्दशेऽथ पर्याये भीत्यस्यैवान्तरे मनो ।  
 भागवो ह्यतिबाहुश्च शुचिरागिरसस्तथा ॥७३॥  
 मुक्ताश्व तथाऽऽजेयो शुक्रो वासिष्ठ एव च ।  
 अजित पीलहर्षश्च अन्त्या सप्तपयश्च ते ॥७४॥  
 एतेषा कल्पमुत्थाय कीर्तनात्सुखमेतरे ।  
 यदाश्चाप्नोति गुमहदायुश्चैव भवेत्तथा ॥७५॥  
 अनीतानागताना ये महर्षोणा सदा नरः ।  
 देवगाना गणा प्रोक्ता पञ्च ये भरतपुंभ ॥७६॥

तरगभीरवंप्रश्च तरस्वानुग्र एव च ।  
 अभिमानी प्रवीणश्च जिष्णु सक्रन्दनस्तथा ॥७३॥  
 तेजस्वी सजलश्चैव भोत्यस्येते मनो मुना ।  
 भोत्यस्यैवाधिकारे तु पूर्णं कल्पस्तु पूर्यते ॥७४॥  
 इत्येते नामतोऽतीता मनव कीर्तिता मया ।  
 तैरिय पृथिवी तात समुद्रान्ता सपत्तना । ७५॥  
 पूर्णं युगसहस्रं तु परिपात्या नरात्रिप ।  
 प्रजामिदं चैव तपसा सहारस्तेषु नित्यश ॥७६॥

विश्वसेन, विविध, नय, धर्मभूत, घृष्ट, मुनेत्र, क्षत्रवृद्धि, मुतपा, निर्मय और वृद्ध यह शेष्य मनु के पुत्र होंगे ॥७१-७२॥ चौदहवें मन्वन्तर में अनीश्वर, भार्गव, अतिबाहु, शुचि, युक्ता, द्रुक, और अक्षित सप्तपि होंगे ॥७३-७४॥ इन मनुओं, सप्तपियों और मनु पुत्रों का निम्न प्रति प्रातःकाल नाम-कीर्तन करने वाला सु गी होता है तथा दीर्घायु की प्राप्ति होती है ॥७५॥ इस प्रकार भूत-काल में हुए तथा आग होने वाले ऋषियों और देवताओं का वृत्तान्त मैंने कहा है ॥७६॥ शेष्य मनु के पुत्र तरग, भीर, वप्र, तरस्वान्, उग्र, अभिमानी, प्रवीण, जिष्णु, सक्रन्दन, तेजस्वी और सजल नाम वाले होंगे । भोत्य मनु के कार्य काल की समाप्ति होने पर एक कल्प की पूर्ति हो जायगी ॥७७-७८॥ हे राजन् ! हे जनमेजय ! इस प्रकार चौदह मनुओं का नामावलि युक्त वृत्तान्त मैंने तुम्हारे प्रति कहा है । ये मनु ही तप तथा प्रजा सृजन करते हुए नगर, ग्राम, सागर आदि से परिपूर्ण पृथिवी का पालन करते हैं, तथा उग्री की उपस्थिति में लोक-संहार भी हो जाता है ॥७९-८०॥

॥ वैवस्वत मनु और यम की उत्पत्ति ॥

विवस्वान्कश्यपाज्जज्ञे दाक्षायण्यामरिदम ।  
 तस्य भार्याऽमवत्सज्ञा त्वाप्ती देवी विवस्वत ॥१॥  
 सुरैर्णुरीरत विरश्राता त्रिषु लोकेषु भार्मनी ।  
 सा वै भार्या भगवतो मार्तण्डस्य महात्मन ॥२॥



भृतरूपेण नातुष्यद्रूपयौवनशालिनी ।  
 सज्ञा नाम सुतपसा दीप्तनेह समन्विता ॥३॥  
 आदित्यस्य हि तद्रूप मण्डलस्थस्य तेजसा ।  
 गात्रेषु परिदग्ध वै नातिशान्तमिवाभवत् ॥४॥  
 न खल्वय मृतोऽण्डस्थ इति स्नेहादभापत ।  
 अजानात्कश्यपस्तस्मान्मार्त्तण्ड चोच्यते ॥५॥  
 नेजस्त्वभ्यधिक तात नित्यमेव विवस्वत ।  
 येनातितापयामास त्रीलोकान्कश्यपात्मज ॥६॥  
 क्षीणपत्यानि कौरव्य सज्ञाया तरता वर ।  
 आदित्यो जनयामास कन्या द्वौ च प्रजापती । ७

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! कश्यप की भार्या दाक्षायणी के गर्भ से सूर्य की उत्पत्ति हुई, जिनका विवाह विश्वकर्मा की पुत्री सज्ञा के साथ सम्पन्न हुआ ॥१॥ छोटी स्वभाव वाली सज्ञा सुरेणु के नाम से प्रसिद्ध थी वह अत्यन्त रूप-यौवन सम्पन्न होने के कारण भगवान् सूर्य के ताप से असह्य थी ॥२॥ सूर्य के तेज से उसका समस्त शरीर दग्ध होने के कारण लावण्य नष्ट हो गया ॥४॥ एक समय की बात है भिक्षार्थ बुध कश्यप के आश्रम पर गये, परन्तु गर्भवती अदिति ने आलस्य के कारण उसे भिक्षा नहीं दी, इस कारण क्रुपित होकर बुध ने उनकी गर्भ नष्ट होने का शाप दे डाला । शाप सुनकर अदिति रोने लगी, यह देख कर कश्यप ने स्नेहपूर्वक कहा कि तुम्हारे गमन शिथिल नष्ट नहीं हुआ है, वह अण्ड में सुरक्षित धँसा है कश्यप के इस प्रकार कहने के कारण सूर्य मार्त्तण्ड नाम से प्रसिद्ध हुए ॥५॥ शनै-शनै सूर्य के तन में इतनी बृद्धि हुई कि उसके कारण सम्पूर्ण त्रैलोक्य परितप्त हो गया ॥६॥ सज्ञा के गर्भ से सूर्य के द्वारा एक कन्या और दो पुत्रों की उत्पत्ति हुई ॥७॥

मनुर्ववस्वत पूर्वं थाददेव प्रजापति ।  
 यमश्च यमुना चैव यमजो सम्भूवतु ॥८॥  
 सा विवर्णतु तद्रूप दृष्ट्वा सज्ञा विवस्वत ।  
 असहन्ती च स्वा छाया सवर्णा निर्ममे तत ॥९॥

मायामयी तु सा मत्ता तस्याश्छाया समुत्थिता ।  
 प्राञ्जलि प्रणता भूत्वा छाया सज्ञा नरेश्वर ॥१०॥  
 उवाच किं मया कार्यं कथयस्व शुचिस्मिते ।  
 स्थिताऽस्मि तव निर्देशे शाधि मा वरवर्णिनि ॥११॥  
 अहं यास्यामि भद्र ते स्वमेव भवनं पितु ।  
 त्वयेह भवने मह्यं वस्तव्यं निर्विकारया ॥१२॥  
 इमी च बालकौ मह्यं कथ्या चेयं सुमध्यमा ।  
 सम्माख्यास्ते न चान्येयमिदं भगवते क्वचित् ॥१३॥  
 आकचग्रहणाद्देवि आशापाशं व कर्हिचित् ।  
 आद्यास्यामि मतं तुभ्यं गच्छ देवियं यासुखम् ॥१४॥

उनमें कथ्या का नाम यमुना हुआ और पुत्रों का आद्यदेव तथा यम हुआ,  
 ही आद्यदेव वैश्वरूप मनु हुए । यम और यमुना यमज रूप से अर्थात् एक साथ  
 उत्पन्न हुए थे ॥१०॥ सूर्य के तेज को सहन न करने के कारण सज्ञा ने अपने ही  
 समान रूप लावण्य, वयादि युक्त एक छाया की रचना की, तब वह छाया  
 उसने सामने हाथ जोड़ कर स्थित हुई ॥११-१०॥ छाया ने कहा—मैं आपकी  
 आज्ञाकारी हूँ, मुझ क्या करना है, इस विषय में आज्ञा करिय ॥११॥ सज्ञा  
 ने कहा—मैं अपने पिता के यहाँ जा रही हूँ इसलिए तुम्हें यहाँ निर्विकारचित्त  
 से मेरे दोनों पुत्रों और इस कथ्या का परिपालन करना है । किन्तु यह भेद सूर्य  
 भगवाद् को कभी न बताना ॥१२ १३॥ छाया बोली—ह देवि । जब तक मेरे  
 केश पड़क कर कोई मुझे शाप न देगा, तब तक यह बात किसी पर प्रकट नहीं  
 करूँगी, इसलिए आप सुखपूर्वक जाइय ॥१४॥

समादिश्य सवर्णां तु तथेत्युक्ता च सा तथा ।  
 त्वष्टु समीपमगमद्व्रीडितेव तपस्वनी ॥१५॥  
 पितु समीपगा सा तु पित्रा निर्भोत्सता तदा ।  
 भर्तु समीप गच्छेति नियुक्ता च पुन पुन ॥१६॥  
 अगच्छद्ब्रह्मा भूत्वाऽऽच्छाद्य रूपमनिन्दिता ।  
 कुरुनयोत्तरान्गत्वा तृणान्येव चचार ह ॥१७॥

द्वितीयाया तु सज्ञाया सज्ञेयमिति चिन्तयन् ।  
 आदित्यो जनयामास पुत्रमात्मसमं तदा ॥१८  
 पूर्वजस्य मनोस्तात सदृशोऽयमिति प्रभु ।  
 सवर्णत्वान्मनोभूय सावर्णं इति चोक्तवान् ॥१९  
 मनुरेवाभवन्ताम्ना सावर्णं इति चोच्यते ।  
 द्वितीयो य सुतस्तस्या स विज्ञेय शर्नश्चर ॥२०  
 सज्ञा तु पाथिवो तात स्वस्य पुत्रस्य वै तदा ।  
 चकाराभ्यधिक स्नेह न तथा पूर्वजेषु वै ॥२१

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! छाया को समझा कर सज्ञा इस प्रकार अपने पिता के घर पहुँची, परन्तु उसके पिता विश्वकर्मा ने सज्ञा को अपने पति के पास चले जाने को कहा ॥१५-१६॥ तब पिता के बहुत बार आग्रह करने पर सज्ञा ने छोड़ी का रूप धारण किया और वहाँ से उत्तर कुल प्रदेश में जाकर घूमने लगी ॥१७॥ इधर सूर्य ने छाया को सज्ञा ही समझा और उससे अपने समान तेजस्वी एक पुत्र उत्पन्न किया, वह पुत्र वैवस्वत मनु के समान आकार-प्रकार वाला ही हुआ, इसलिए उसकी प्रसिद्धि सवर्ण नाम से हुई । सूर्य द्वारा छाया के गर्भ से शर्नश्चर नामक द्वितीय पुत्र उत्पन्न हुआ । १८-२०॥ अब छाया का स्नेह अपने पुत्रों पर अधिक हो गया, सना भी सतनि पर उसका वैसा स्नेह नहीं रहा ॥२१॥

मनुतस्या क्षमत्तत्तु यमस्तस्या न वक्षमे ।  
 ता सरोषाञ्च वात्याञ्च भाविनोऽर्थस्य वै वसात् ।  
 तदा मतर्जयामास सज्ञा वैवस्वतो यम ॥२२  
 त शशाप तत ओघात्मावर्णं जननी नृप ।  
 चरण पनतामेप तवेति भृशदुःखिता ॥२३  
 यमस्तु तत्पितु सर्वं प्राञ्जलि प्रत्यवेदयत् ।  
 भृश शापमयोद्विग्न मज्ञापाक्यप्रसीदित ॥२४  
 शापोऽयं त्रिनिर्गतेत प्रोवाच पितर तदा ।  
 मात्रा स्नेहेन गर्वेण वर्तितव्यं गुणेषु वै ॥२५

सेयमस्मानपाहाय यवीयास बुभूयति ।

तस्या मथोद्यत पादो न तु देहे निपातित ॥२६

वाल्याद्वा यदि वा मोहात्तद्भ्रवान्क्षन्तुमर्हति ।

यस्मात्ते पूजनीयाऽहं लघिताऽस्मि त्वया सुते ॥२७

तस्मात्तवेप चरणं पतिष्यति न सशय ।

अपत्यं दुरपत्यं स्यान्नाम्वा कुजननी भवेत् ॥२८

अपनी विमाता का यह व्यवहार वैवस्वत मनु ने तो सहन कर लिया, परन्तु यम इसे सहन नहीं कर सके । वह बालमुलभ चंचलता और रोप के कारण छाया को लात मारने को तत्पर हो गये ॥२२॥ छाया को यम का यह व्यवहार दुःखप्रद लगा और उसने उसे शाप दिया कि तुम्हारा पैर इसी समय कट कर गिर सके ॥२३॥ 'छाया' की 'माता' से 'आपि' और 'शाप' से 'भयाकुल' यम ने अपने पिता के पास जाकर कहा कि पिताजी ! शाप निवृत्ति का कुछ उपाय कीजिये, माता को अपने सभी पुत्रों पर समान स्नेह रखना चाहिये ॥२४-२५॥ परन्तु हमारी माता अपने छोटे पुत्र का अधिक आदर और हमारी उपेक्षा करती है, इसलिए मैंने अपना पैर उठाया था, परन्तु पदाघात नहीं किया ॥२६॥ मेरे द्वारा यह अनर्थ बाल-स्वभाव वश ही हो गया था, इसे क्षमा कीजिये । माता ने मुझसे क्षेम मे कहा था कि मैं तुम्हारी माता हूँ, पूजन के योग्य हूँ, तुमने मुझे मारने के लिये अपना पाँव उठा कर मर्यादा भंग की है, इसलिये तुम्हारा वह पाँव गिर जायगा । परन्तु हे पिताजी ! पुत्र तो कुपुत्र हो जाता है, परन्तु माता कभी भी कुमाता होती नहीं देखी गई ॥२७-२८॥

शप्तोऽहमस्मि लोकेश जनन्या तपता वर ।

तव प्रसादाच्चरणी न पतेन्मम गोपते ॥२९

असशयं पुनः महद्भ्रविष्यत्यत्र कारणम् ।

येन त्वामाविशत्क्रोधो धर्मज्ञ सत्यवादिनम् ॥३०

न शक्यमन्यथा कर्तुं मया मातुर्वचस्तव ।

कृमयो मासमादाय यास्यन्ति धरणीतलम् ॥३१

तव पादान्महाप्राज्ञ ततस्त्व प्राप्स्यसे सुखम् ।  
 कृतमेव वचस्तथ्य मातुस्तव भविष्यति ॥३२  
 शापस्य परिहारेण त्व च त्रातो भविष्यसि ।  
 आदित्योऽथाब्रवीत्सज्ञा किमर्थं तनयेषु वै ॥३३  
 तुल्येष्वभ्यधिक स्नेहः क्रियतेऽति पुनः पुनः ।  
 सा तत्परिहरन्ती तु नाचक्षे विवस्वते ॥३४  
 आत्मानं सुसमाधाय योगात्तथ्यमपश्यत् ।  
 तां शप्नुकामो भगवान्नाशाय कुरुनन्दन ॥३५

मुझे माता ने शाप दिया है, परन्तु यदि आप मुझ पर प्रसन्न हो जायें और मेरा अपराध क्षमा कर दें तो मेरा पाँव गिरने से बच जायगा ॥२६॥ भगवान् सूर्य ने कहा—हे पुत्र ! निस्सन्देह किसी महाव् कारण से तुम्हारे जैसे सत्यवक्ता और धर्मात्मा की कोष की प्राप्ति हुई होगी, परन्तु मैं तुम्हारी माता के शाप को अग्यथा नहीं कर सकता, अनेको कीट तुम्हारे पाँव का मांस लेकर पृथिवी तल में समा जायेंगे, ऐसा होने से तुम्हारी माता के वचन की भी रक्षा होगी और तुम भी शाप से मुक्त हो जाओगे ॥३०-३१॥ इसके पश्चात् सूर्य ने सज्ञा रूपिणी छाया से कहा—माता का स्नेह सभी बालको के प्रति समान होना चाहिये, फिर तुम छोटे बालक पर ही अत्यधिक स्नेह रखती हो, इसका क्या कारण है ? पर तु छाया ने अपना अभिप्राय प्रकट न करके, बात को आई-गई कर दिया ॥३२-३४॥ तब भगवान् सूर्य ने योग के बल से सब भेद जान लिया और छाया को नष्ट करने के लिए तत्पर हुए ॥३५॥

मूर्धं जेषु च जग्राह समयेऽतिगतेऽपि च ।  
 सा तत्सर्वं ययावृत्तमाचक्षे विवस्वते ॥३६  
 विवस्वानय तच्छ्रुत्वा क्रुद्धस्त्वष्टारमभ्यगात् ।  
 त्वष्टा तु त ययान्यायमचंयित्वा विभावसुम् ।  
 निदंशुकाम रोपेण सान्त्वयामास वै तदा ॥३७  
 तथाति तेजसाऽऽविष्टमिदं रूपं न शोभते ।  
 असहन्ती च तत्सज्ञा वने चरति शाद्वले ॥३८

द्रष्टा हि तां नमानद्य स्वा भार्या शुभचारिणीम् ।  
 नित्य नपस्यमिरता बहवाभ्याग्निमीम् ॥३६  
 पर्णाहारा वृक्षा दीना जटिला श्रद्धाचारिणीम् ।  
 हस्निहस्नपग्निपिष्टा व्याधुना पचिनीमिव ।  
 श्लाघ्या योगप्रलोपेना योगमास्थाय गोपते ॥३७  
 अनुकूल तु ते देव यदि म्याग्मम तन्मनम् ।  
 न्य निर्वनयाम्यद्य तव कान्तमग्निदम ॥३८  
 न्यं विवम्बनन्वासीत्तिपंगूवंधम तु वै ।  
 तेनागी मभूतो देवन्पेग तु विभावगु ॥३९  
 तन्मात्तप्टु म वै यावय बहू मेने प्रजापति ।  
 गमनुज्ञानयाग्चं त्वष्टार न्यनिदये ॥४०

दुखित होकर उन्होंने छाया के बेज पकट लिये, दगसे मत्ता के प्रति उतरी  
 तो यथन दिया था, वह पुण्ड्र हो गया और उसने सब कृत्तान्त बहू गुनाया ॥३३॥  
 छाया की आठ परछोपित हुए मूर्धं विश्वकर्मा के पाग पट्टे, विश्वकर्मा ने उनका  
 वेधियन् पूजन करके ओष सात्त किया ॥३४॥ ये बोले—आपके अत्यधिक तेजो-  
 त्व स्वल्प में दुखित हुई मत्ता घोंरी के रूप में, धन में विचरण करती हुई  
 राग भरण करती है ॥३५॥ आप अपनी उम गुनायगा यानी भार्या को  
 स्वयं देगिये, वह बहवा न्य चारिणी मत्ता तन्मया-नरापण होकर बेवत पत्नी  
 का आहार करती हुई वृक्षा, दीना, जटिला, हाथी की सूँट में मलिन कमिनी के  
 तमान व्याधुना हो रही है । तथा दग समय न्य प्रष्टाचारिणी योग धन में सम्पन्न  
 है ॥३६-४०॥ हे देव ! यदि आप मेरी सम्पत्ति मानें तो मैं आपकी अपत्य सुन्दर  
 एवं कान्तिमय बना दूँ ॥४१॥ उस समय तब मूर्धं की आहृति कुछ भगुन्दर एवं  
 समान थी, इसलिए दगुर के कहने से सुन्दरता प्राप्त करने के लिए गहनत  
 हो गए और विश्वकर्मा की सेवा करने की प्रवृत्ति दे दी ॥४२-४३॥

गुणोऽन्यदगमात्तप्टा मात्तप्टम्य विवम्बनः ।

अनिमागोव्य तनेज शानयामाम भारत ॥४४

ततो निर्भासित रूप तेजसा सहतेन वै ।  
 कान्तात्कान्ततर द्रुष्टुमधिक शुशुभे तदा ॥४५॥  
 मुखे निर्वर्तित रूप तस्य देवस्य गोपते ।  
 तत प्रभृति देवस्य मुपमासीत्तु लोहितम् ।  
 मुखराग तु यत्पूर्वं मार्तण्डस्य मुखच्युतम् ॥४६॥  
 आदित्या द्वादशैवेह सम्भृता मुखसम्भवा ।  
 धाताऽर्यमा च मित्रश्च वह्णोऽशो भगस्तथा ॥४७॥  
 इन्द्रो विवस्वानूपमा च पर्जन्यो दशमस्तथा ।  
 ततस्त्वष्टा ततो विष्णुरजघन्यो जघन्यज ॥४८॥  
 हर्ष लेभे ततो देवो दृष्ट्वाऽऽदित्यान्वदेहजान् ।  
 गन्धं पुष्परलकारैर्भास्विता मुकुटेन च ॥४९॥  
 एव सम्पूजयामास त्वष्टा वाक्यमुवाच ह ।  
 गच्छ देव निजा भार्या कुरु चरति सोत्तरान् ॥५०॥  
 वडवारूपमास्थाय वने चरति शाद्वले ।  
 स तयारूपमास्थाय स्वभार्यारूपलीलया ॥५१॥  
 ददर्श योगमास्थाय स्वा भार्या वडवा तत ।  
 अधृष्या सर्वभूताना तेजसा नियमेन च ॥५२॥

तब विश्वकर्मा ने उन्हे सान पर चढ़ा कर घिसना आरम्भ  
 प्रकार घर्षण करने से सूर्य की उग्रता कम होने लगी और उषका  
 कर मुख पर घमकने लगा । तभी से उनके मुख का वर्ण लाल हो गया । उनके  
 मुख से निकलने वाले पहिने तेज से घाता, अर्यमा, मित्रावरुण, अश, भग,  
 विवस्वान्, पूमा, पर्जन्य, अजघन्य, त्वष्टा और अजघन्य विष्णु नामक बारह  
 आदित्य उत्पन्न हुए ॥४५-४८॥ अपने ही देह से अविर्भूत हुए उन आदित्यों को  
 देत कर सूर्य को अत्यन्त प्रसन्नता हुई । तब विश्वकर्मा ने पुष्प, चन्दन, अलंकार,  
 आभूषण आदि से उनका सत्कार करके कहा—हे आदित्य ! आप अपनी भार्या  
 के पास जाइये, इस समय वह वडवा रूप में उत्तर कुश प्रदेश में, वन में चर रही  
 है । तब सूर्य ने भी अश्व का रूप धारण किया और वहाँ जाकर सत्ता को अपने

ल मे सम्पन्न होकर सभी प्राणियों के लिए दुर्घपं होते हुए बड़ा रण मे रण करते हुए देना ॥४६-४८॥

यद्यथावपुषा राजंश्चरन्तीमकुतोभयान् ।  
 सोऽश्वम्पेण भगवांन्तां मुखे ममभावयत् ॥४३  
 मंथुनाय विचेष्टन्ती परपुंमोपशङ्कया ।  
 सा तन्निरयमच्छुक्रं नामिकाया विवस्वतः ॥४४  
 देवी तन्म्यामजायतामश्विनी भिषजा वरी ।  
 नामत्यज्ज्ञेय दग्धश्च स्मृतां द्वावश्विनाविति ॥४५  
 मातृण्डमूय्यात्मजावेनावष्टमस्य प्रजापतेः ।  
 सा तु ऋषेण कान्तेन दग्धायमान भास्करः ॥४६  
 सा च दृष्ट्वैव भर्तारं नृनोप जनमेजय ।  
 यमस्तु कर्मणातेन भूण पीडितमानसः ॥४७  
 धर्मेण यज्जवाभाम धर्मराज इमाः प्रजाः ।  
 तंभे न कर्मणा तेन परमेण महाद्युतिः ॥४८  
 पितृणामाधिपत्यं च लोकपालत्वमेव च ।  
 मनुः प्रजारनिस्वार्मान्मायणः स तपोधनः ॥४९  
 भाग्यः सोऽनागते काले मनुः सार्वगिरेःन्तरे ।  
 मेरुपृष्ठे तपो पौरमद्यापि चरति प्रभुः ॥५०

गर्भ मूर्धे उगरी और अत्यधिक आवृणित हुए, परन्तु बड़ा ने पर पुत्र मातृ कर उनके श्वेद की अग्ने नमुनों मे बाहर निशान दिया, प्रियते दो तिनोकुमार उचलने हुए, उनका नाम दत्त और नागेश था ॥४३-४४॥ इनके पश्चात् मूर्धे ने अपना यषाम रूप अग्नी भाषा गन्ध की दिग्गया और सभी गे न कुमारों के दिग्ग मूर्धे और माता मूर्धे-अग्नी हुई ॥४५॥ हे जनमेजय ! अपने पिता दत्त ने गन्ध अद्वय प्रमन्न हुई । उपर छाया के पाप से दुहित यम मंथुनाय प्रजा पर शासन करने अने, हमने ये तिनो के अपिर्ति और मोह-ति हो गए । तपोधन मनु मूर्धे पर पर पौर शासन कर रहे हैं, वे गार्ति विरार मे प्रजा-शासन का कार्य निभाते ॥४७-५०॥



भ्राता शनैश्चरश्चास्य ग्रहत्वमुपलब्धवान् ।  
 नासत्यो यो समाप्यातो स्वर्वेद्यो तो बभूवतु ॥६१  
 सेवतोऽपि तथा राजन्नश्चाना शान्तिदोऽभवत् ।  
 त्वष्टा तु तेजसा तेन विष्णोश्चक्रमकल्पयत् ॥६२  
 सदप्रतिहृत युद्धे दानवान्तचिकीर्षया ।  
 यधीयसी तयोर्या तु यमी कन्या यशस्विनी ॥६३  
 अभवत्सा सरिच्छ्रेष्ठा यमुना लोकभाविनी ।  
 मनुरित्युच्यते लोके सावर्ण इति चोच्यते ॥६४

यमराज का भाई शनैश्चर ग्रह बने और दोनों अश्विनीकुमार वैद्य हुए  
 हे राजन् । वे घोड़ों को स्वरथ करते हैं । विश्वकर्मा ने सूर्य का जो तेज बना  
 किया था, उस निकले हुए तेज से भगवान् विष्णु का चक्र बनाया, उसी चक्र  
 विष्णु ने असत्य असुरों का नाश किया । यम और आद्यदेव की बहिन यम  
 यमुना नदी बन गई, आद्यदेव मनु और सावर्णि नाम से प्रसिद्ध हुए ॥६१-६४॥

॥ वैवस्वत मनु के वंशज ॥

मनोर्वैवस्वतस्यासंपुत्रा वै नवतत्समा ।  
 इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्णु शर्यातिरेव च ॥१  
 नरिष्यश्च तथा प्राशू नाभागारिष्टसप्तमा ।  
 करुषश्च पृषधश्च नवैते भरतर्षभ ॥२  
 अकरोत्पुत्रकामस्तु मनुरिष्टि प्रजापति ।  
 मिलावरुणयोस्तात पूर्वमेव विशापते ॥३  
 अनुत्पन्नेषु नवसु पुत्रेष्वेतेषु भारत ।  
 तस्या तु वर्तमानायामिष्टया भरतसत्तम ॥४  
 मिलावरुणयोरशे मुनिराहुतिमाजुहोत् ।  
 आहुत्या हूयमानाया देवगन्धर्वमानुषा ॥५  
 तुष्टि तु परमा जग्मुर्मुनयश्च तपोधना ।  
 अहोऽस्य तपसो वीर्यमहोऽस्य श्रुतमद्भुतम् ॥६

तस्य दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता ।

दिव्यसंहनना चैव इडा जज्ञे इति श्रुतिः ॥७

तामिडेत्येव होवाच मनुर्दण्डधरस्तदा ।

अनुगच्छस्व मां भद्रे तामिडामित्युवाच ह ।

धर्मयुक्तमिदं वाक्यं पुत्रकामं प्रजापतिम् ॥८

वंशम्पायन जी ने कहा—हे जनमेजय ! विवस्वत मनु के नौ पुत्र थे,

उनका नाम इक्ष्वाकु, नाभाग, घृष्णु, नरिष्यन्, प्राशु, नाभागारिष्ट, कर्षप और

पृषध्र था ॥१-२॥ जब वैवस्वत के कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ था, तब उन्होंने

मित्र और वरुण की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए पृथेष्टि यज्ञ किया, जिसमें

मित्रावरुण के निमित्त मुनियो ने जब आहुति दी तो सब देवताओं, गंधर्वों और

मुनियो की अत्यन्त प्रसन्नता हुई, वे बोले—इन महाराज मनु का तप, पराक्रम

और शास्त्रज्ञान अद्भुत है ॥३-६॥ सुनते हैं कि उस यज्ञ में इडा नाम की एक

कन्या उत्पन्न हुई, वह दिव्य वस्त्रालकारों और दिव्य अस्त्रों से सम्पन्न थी । मनु

ने उसका नाम इडा रखा और धर्मयुक्त बात उसके प्रति कही—हे पुत्री ! मुझ

पुत्र की कामना वाले प्रजापति की बातों का तुम अनुसरण करो ॥७-८॥

मित्रावरुणयोरंशे जातोऽस्मि वदतांवर ।

तयो. सकाशं यास्यामि न मां धर्मो हृतोऽवधीत् ॥९

सैवमुक्त्वा मनुं देवं मित्रावरुणयोरिडा ।

गत्वाऽन्तिकं वरारोहा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥१०

अंशोऽस्मि युवयोर्जाता देवौ किं करवाणि वाम् ।

मनुना चाहमुक्ता वै अनुगच्छस्व मामिति ॥११

तां तथावादिनो साव्वी इडां धर्मनराथणाम् ।

मित्रश्च वरुणश्चोभावूचतुयन्निबोध तत् ॥१२

अनेन तव धर्मेण प्रश्रयेण दमेन च ।

सत्येन चैव सुश्रोणि प्रीतौ स्वो वरवर्णिनि ॥१३

आवयोस्त्वं महामागे स्याति कन्येति यास्यसि ।

मनोर्वशधरः पुत्रस्त्वमेव च भविष्यसि ॥१४

सुद्युम्न इति विरयातस्त्रिषु शोभने ।

जगत्प्रियो धर्मशीलो मनोर्वंशविवर्द्धन ॥१५॥

इडा बोली—मैं मित्रावरण के अश्व से अविभूत होने के कारण उनके पास ही जाऊँगी, ऐसा न करन से मेरा धर्म नष्ट हो जायगा और मैं भी नाग को प्राप्त हूँगी ॥१६॥ इस प्रकार कह कर इडा मित्रावरण के पास जाकर बरबद कहने लगी—हे देव ! मैं आप देना के अश्व से उत्पन्न हुई हूँ, इसलिये आप मुझे मेरे कर्त्तव्य का निर्देश करें महाराज मनु अपनी आज्ञा का पालन करने को कहते हैं ॥१७-१८॥ इडा की बात सुन कर मित्रावरण ने उस धर्मपरायण से जो कहा उसे सुनी ॥१९॥ मित्रावरण बोले—हे वरवर्णिनि तुम्हारे इस प्रकार के धर्म, सत्य और दम आदि गुणों को देख कर हम दोनों ही अत्यन्त प्रसन्न हैं ॥२०॥ हे महाभागे ! तुम सम्पूर्ण जल्लोक्य में हमारी कन्या और महाराज मनु के वरद्वार के पुत्र रूप से विख्यात होते ॥२१॥ तुम ससार के लिये प्रिय और धर्मात्मा होगी तथा सुद्युम्न नाम से बंधवस्वत मनु के वश को विस्तृत करोगी ॥२२॥

निवृत्ता सा तु तच्छ्रुत्वा गच्छन्ती पितुरतिकम् ।

बुधेनातरमासाद्य मैथुनायोपमक्षिता ॥१६॥

सोमपुत्राद्बुधाद्राजस्तस्या जज्ञे पुरुरवा ।

जनयित्वा तत सा तमिडा सुद्युम्नता गता ॥१७॥

सुद्युम्नस्य तु दायादास्त्रय परमधार्मिका ।

उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्वश्च भारत ॥१८॥

उत्कलस्योत्कला राजन्विनताश्वस्य पश्चिमा ।

दिक्पूर्वा भरतश्चेष्ट गयस्य तु गयापुरी ॥१९॥

प्रविष्टे तु मनो तात दिवाकरमरिदमम् ।

दशधा तद्दधत्क्षन्तमकरोत्पृथिवीमिमाम् ॥२०॥

पूयाङ्किता वसुमती यस्येय सवनाकरा ।

इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठदायादो मध्यदेशमवाप्तवान् ॥२१॥

वन्धाभावाच्च सुद्युम्नो नैन गुणमवाप्तवान् ।

वसिष्ठवचनाच्च्रासीत्प्रतिष्ठानं सहास्रम् ॥२२॥

उन देवताओं के वचन मनु नर इडा अपने पिता मनु के पास जा रही थी, तभी मार्ग में चन्द्रमा का पुत्र बुध मिला और उसने इडा को अपने पास बुलाया ॥१६॥ तब बुध से उसने पुरुरवा नामक एक पुत्र उत्पन्न किया । पुरुरवा को जन्म देने के पश्चात् इडा का स्त्रीत्व नष्ट हो गया और वह पुरुष होकर मुद्युम्न नाम से प्रसिद्ध हुई ॥१७॥ और उसके तीन पुत्र उत्पन्न, गया और विनीताश्व नामक हुए यह तीनों धर्मात्मा थे ॥१८॥ उत्कल को उत्तर का राज्य मिला, विनीताश्व को पश्चिम का तथा गया को पूर्व का राज्य प्राप्त हुआ । गया । की राजधानी का नाम गया हुआ ॥१९॥ प्रजापति मनु के इक्ष्वाकु आदि दस पुत्रों के उत्पन्न होने के पश्चात् जब मनु मृत्यु में प्रविष्ट हो गये थे, तब उनके पुत्रों ने वन, गान आदि युक्त पृथिवी के दस विभाग कर लिये, जिसमें से मध्य-प्रदेश का राज्य इक्ष्वाकु को प्राप्त हुआ ॥२०-२१॥ मुद्युम्न में बग्या भाव के विद्यमान रहने से उसे मध्य प्रदेश प्राप्त नहीं हुआ । उसने गुरु वसिष्ठ के निर्देश से प्रतिष्ठानपुर का राज्य शासन संभाला ॥२२॥

प्रतिष्ठा धर्मराजस्य मुद्युम्नस्य कुत्सह ।  
तत्पुरुषसे प्रादाद्राज्य प्राप्य महायशाः ॥२३॥  
मुद्युम्नः कारयामास प्रतिष्ठाने नृपक्रियाम् ।  
उत्कलस्य त्रयः पुत्रास्त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ।  
धृष्टकश्याम्बरीपञ्च दण्डरचेति मुनास्त्रयः ॥२४॥  
यञ्चकार महात्मा वै दंडकारण्यमुत्तमम् ।  
यत्नं तत्तल्लोकविप्लानं तानसानामनुत्तमम् ॥२५॥  
तत्र प्रविष्टमात्रस्तु नरः पापात्प्रमुच्यते ।  
मुद्युम्नश्च दिवं यात ऐलमुत्पाद्य भारत ॥२६॥  
मानवेयो महाराज स्त्रीषु सोलंक्षणैर्मुतः ।  
धृतवान्ग डलेत्येव मुद्युम्नश्चोति विश्रुतः ॥२७॥  
नरिष्यतः शकाः पुत्रा नाभागस्य तु भारत ।  
अम्बरीषोऽभवत्पुत्रः पार्थिवर्षभमतमः ॥२८॥

महायश मुद्युम्न ने प्रतिष्ठानपुर का राज्य कुछ समय ही किया और

पुहुरवा को राज्य देकर उसी से शासन कराने लगा । उत्तम के तीन पुत्र घृष्टक, अम्बरीष और दण्ड तीनों लोको में प्रसिद्ध थे ॥२३-२४॥ हे राजन् ! दण्ड-कारण्य नामक जिस प्रसिद्ध वन में तपस्वीमण्डल स्वच्छन्द तपस्या करते हैं और जिसमें जाने से ही प्राणी पवित्र हो जाते हैं वह दण्डकारण्य इन्हीं राजा दण्ड के नाम पर विख्यात हुआ है । इस प्रकार पुहुरवा को उत्तम करके सुद्युम्न स्वर्ग लोको को प्राप्त हुआ ॥२५-२६॥ हे राजन् ! मनु पुत्र सुद्युम्न में स्त्रीत्व और पुरुषत्व दोनों भाव विद्यमान थे और वह सुद्युम्न और इला दोनों ही नाम से प्रसिद्ध था ॥२७॥ गरिष्यत के पुत्र शक और नामाग के पुत्र अम्बरीष हुए ॥२८॥

धृष्णोस्तु घार्ष्टक क्षत्र रणघृष्ट बभूव ह ।  
 शर्यातिमिधुन चाक्षीदानर्त्तो नाम विश्रुत ॥२९॥  
 पुत्र कन्या सुकन्या च या पत्नी च्यवनस्य ह ।  
 आनर्त्तस्य तु दायादो रेवो नाम महाद्युति ॥३०॥  
 आनर्त्तविषयश्चासीत्पुरी वास्य कुशस्थली ।  
 रेवस्य रेवत पुत्र ककुभी नाम धार्मिक ॥३१॥  
 ज्येष्ठ पृत्रघातस्यासीद्राज्यं प्राप्य कुशस्थलीम् ।  
 स कन्यासहितं श्रुत्वा गाधर्वं ब्रह्मणोऽन्तिके ॥३२॥  
 मुहूर्त्तभूत देवस्य गत बहुयुग प्रभो ।  
 आश्रमगम युवेवाथ स्वा पुरी यादवैर्वृताम् ॥३३॥  
 वृता द्वारवती नाम्ना बहुद्वारा मनोरमाम् ।  
 भोजवृष्ण्यन्धर्वगुप्ता वासुदेवपुरोगमै ॥३४॥  
 ततः स रेवतो ज्ञात्वा ययातस्त्रभारि दम ।  
 कन्यां तां यलदेवाय सुत्रता नाम रेवतीम् ॥३५॥  
 दत्त्वा जगाच्च शिखर मेरोस्तपसि सस्थित ।  
 रेमे रामोऽपि धर्मात्मा रेवत्या सहित सुखी ॥३६॥

धृष्णु के पुत्र मुद में न जीते जाने वाले घार्ष्टक हुए, शर्याति के आनर्त्त नामक पुत्र और सुकन्या नाम की पुत्री हुई, वही महर्षि च्यवन की भार्या हुई । आनर्त्त का पुत्र अत्यन्त तेज वाला रेव हुआ ॥२९-३०॥ वह आनर्त्त देश में

होना हुआ और उसकी राजधानी कुनस्थली हुई, उस राजा के सौ पुत्र हुए, जिनमें सबसे बड़ा ककुद्मी हुआ । कुछ समय पश्चात् रैवत (ककुद्मी) पुत्री को साथ लेकर सगीत सुनने के लिये ब्रह्मलोक में गया, वहाँ वे ब्रह्मा के एक मुहूर्त्त तक ठहरे, परन्तु गत्यलोक में इतने समय में कई युग व्यतीत हो गये, जब वह अपनी राजधानी द्वारका को लौट तब वह यादवी से परिपूर्ण थी । उन्होंने दृष्टा कि उस नगरी में यादवा न अनेक फाटक लगा कर उस अत्यन्त सुन्दर बना लिया है और उसका नाम द्वारावती रख लिया है वासुदेव आदि वृष्णि, भोज और अधिक वशीय कीर उसकी रक्षा में तत्पर हैं ॥३१-३४॥ महाराज रैवत ने उस समय की परिस्थिति को मत्ती प्रकार समझ कर अपनी श्रेष्ठ व्रत वाली पुत्री रेवती बलराम जी के साथ विवाह दी और स्वयं सुमेरु पर्वत पर तप करने के लिये चले गये । इधर रेवती को प्राप्त कर बलराम अत्यन्त आनन्दपूर्वक रहने — ॥३५-३६॥

## ॥ धुन्धु का वध ॥

कथं बहुयुगे काले समतीते द्विजोत्तम ।  
न जरा रेवती प्राप्ता रैवत च ककुच्चिनम् ॥१॥  
मेव गतस्य तस्य शर्याति सतति कथम् ।  
स्थिता पृथिव्यामद्यापि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वत ॥२॥  
न जरा क्षुत्पिपासे वा न मृत्युर्भरतर्षभ ।  
श्रुतुचक्रं न भवति ब्रह्मलोके सदाऽनघ ॥३॥  
ककुच्चिनस्तु तं लोकं रैवतस्य गतस्य ह ।  
हृता पुण्यजनैस्नातं राक्षसेष्वच कुशस्थली ॥४॥  
तस्य भ्रातृघात चासीद्दामिकस्य महात्मन ।  
तद्वध्यमानं रक्षोभिर्दिशं प्राद्रवदच्युतम् ॥५॥  
विद्रुतस्य तु राजेन्द्र तस्य भ्रातृघनस्य वै ।  
तेपा तु ते भयाक्रान्ता क्षत्रियास्तत्र तत्र ह ॥६॥  
अन्धकारस्तु सुप्तस्तत्र तत्र विषागते ।  
येपामेते महाराज शार्याना इति विश्रुता ॥७॥

जनमेजय ने कहा—हे द्विजोत्तम ! रैवत और रेवती बड़ी युग तक ब्रह्मलोक में रहे तो भी बृद्धावस्था ने उनका स्पर्श भी नहीं किया ऐसा कैसे हुआ ? ॥ १ ॥ जब राजा रैवत सुमेरु पर्वत पर तप करने को चले गये तब पृथिवी पर उनका वंश अब भी कैसे स्थित है ? यह बात मैं भली प्रकार जानने को उत्सुक हूँ ॥ २ ॥ वंशध्यायन जो बोले—हे अनघ ! ब्रह्म लोक में भूख, प्यास, जरा, मृत्यु और ऋतुपरिवर्तन आदि कुछ भी नहीं होता ॥ ३ ॥ ककुप्पान रैवत जब ब्रह्मलोक चले गये थे तब पुण्यजन मामक राक्षसों ने उनकी राजधानी कुशस्थली को उजाड़ दिया ॥ ४ ॥ राजा रैवत सौ भाई थे, ३ राक्षसों के विनाश से डर कर चारों दिशाओं में भाग निकले ॥ ५ ॥ यह भाई जहाँ जाकर बस गये, वही उनकी सन्तान-वृद्धि हुई और क्षयति के वंशज कहाँ लगे ॥ ६ ॥

क्षत्रिया भरतश्रेष्ठ दिक्षु सर्वासु विश्रुता ।  
 सर्वंश पर्वतगणाप्रविष्टा कुरुनन्दन ॥ ८  
 नाभागारिष्टपुत्रौ द्वौ वीर्यौ ब्राह्मणता गतौ ।  
 यरूपस्य च कारूपा क्षत्रिया युद्धदुर्मदा ॥ ९  
 प्राशोरेकोऽभवत्पुत्र प्रजातिरिति न श्रुतम् ।  
 पृपधो हिंसयित्वा तु गुरोर्गां जनमेजय ॥ १०  
 शापाच्छूद्रत्वमापन्नो नवैते परिकीर्तिता ।  
 वैवस्वतस्य तनया मनोर्वे भरतर्षभ ॥ ११  
 क्षुवतश्च मनोस्तात इक्ष्वाकुरभवत्सुत ।  
 तस्य पुत्रशत त्वासीदिक्ष्वाकोभूरिदक्षिणम् ॥ १२  
 तेषां विकुक्षिज्येष्ठस्तु विकुक्षित्वादयोधताम् ।  
 प्राप्न परमघर्मज्ञ सोऽयोध्याधिपति प्रभु ॥ १३  
 शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्रा पञ्चाशदुत्तमा ।  
 उत्तरापथदेशस्था रक्षितारो महीपते ॥ १४  
 चत्वारिंशदथाष्टौ च दक्षिणस्या तथा दिशि ।  
 शशादप्रमुखाश्चान्ये रक्षितारो विज्ञापते ॥ १५

हे राजन् । वे सभी क्षत्रिय मित्राओ मे भ्रमते हुए पर्वतो पर जाकर बस गये ॥८॥ नाभागारिष्ट के दो पुत्र वैश्य पत्नी से उत्पन्न हुए थे वे ब्रह्म मे लीन हो गये । कश्यप के सब पुत्र युद्ध कुशल क्षत्रिय थे उनकी काश्यप नाम से प्रसिद्धि हुई ॥९॥ प्राशु के प्रजाति नामक एक ही पुत्र हुआ । पृषघ्न ने अपन गुरु की गाय की हत्या कर दी, इसलिये गुरु शाप के कारण उसे शूद्रत्व की प्राप्ति हुई । हे जनमेजय । इस प्रकार मनु के नौऔ पुत्रो का वृत्तान्त मैं तुमसे कह चुका ॥१०-११॥ एक समय की बात है—मनु को स्त्री आने से एक और पुत्र उत्पन्न हुआ, इस इक्ष्वाकु के सो पुत्र उत्पन्न हुए ॥१२॥ उन सो पुत्रो में विकुक्षि सबसे बड़ा था, उसका पेट बहुत बड़ा हुआ था, इसलिये वह खीर नहीं घन सका, परन्तु सामान्य धर्मरिमा होने के कारण वह अयोध्या का राजा हुआ ॥१३॥ उसके शकुनि आदि पचास पुत्र हुए, वे सब उत्तरापथ मे, देश मे रह कर वहाँ की रक्षा करने लगे ॥१४॥ उनके शशाद आदि अठतालीस भाइयो ने दक्षिण दिशा मे रह कर उधर के प्रदेशो का रक्षा-कार्य किया ॥१५॥

शशादस्य तु दायाद ककुत्स्थो नाम वीर्यवान् ।  
 इन्द्रस्य वृषभूतस्य ककुत्स्थोऽजयतामुरान् ॥१६॥  
 पूर्वमाडीवके युद्धे ककुत्स्थस्तेन हि स्मृत ।  
 अनेनास्तु ककुत्स्थस्य पृथुरानेन स स्मृत ॥१७॥  
 विण्टराश्व पृथो पुत्तस्तस्मादाद्रस्त्वजायत ।  
 आद्रस्य युवनाश्वस्तु श्रावस्तस्य तु चात्मज ॥१८॥  
 जज्ञे श्रावस्तको राजा श्रावस्ती येन निर्मिता ।  
 श्रावस्तस्य तु दायादो वृहदश्वो महायशा ॥१९॥  
 कुबलाश्व सुतस्तस्य राजा परमधार्मिक ।  
 स स धुन्धुवघाद्राजा धुन्धुमारत्वमागत ॥२०॥  
 धुन्धोर्वधमह ब्रह्मञ्छोतुमिच्छामि तत्त्वत ।  
 यदर्थं कुबलाश्व सन्धुन्धुमारत्वमागत ॥२१॥

शशाद के पुत्र ककुत्स्थ ने एक बार देवासुर संग्राम मे वृष रूपधारी इन्द्र के ऊपर वंठ कर असुरो को जीता था, इसीलिये उसका नाम ककुत्स्थ हुआ ।



उसका पुत्र अनेना, अनेना का पुत्र पृथु का पुत्र विष्णुशिव का बादर का युवनाश्व और युवनाश्व का पुत्र थावस्त हुआ ॥१६-१८॥ इसी थावस्त द्वारा थावस्तपुरी का निर्माण हुआ था । थावस्त के पुत्र बृहदश्व हुए तथा बृहदश्व के पुत्र राजा कुबलाश्व हुए, जिन्होंने धन्धु को मारा था, इसलिये उनका नाम धुन्धुमार भी हो गया ॥ १९-२० ॥ जनमेजय ने कहा—हे ब्रह्मन् ! राजा कुबलाश्व ने धुन्धु को क्यों मारा, जिससे उन्हें धु धुमार नाम की प्राप्ति हुई, वह वृत्तान्त जानने की मेरी इच्छा है ॥२१॥

कुबलाश्वस्य पुत्राणां शतमुत्तमघन्विनाम् ।

सर्वविद्यासु निपुणा बलवन्तो दुरासदा ॥२२

बभूवुर्धार्मिका सर्वे यज्वानो भूरिदक्षिणा ।

कुबलाश्व सुत राज्ये बृहदश्चो न्ययोजयत् ॥२३

पुत्रसक्रामितश्चीस्तु वन राजा समाविशत् ।

तमुत्तङ्कोऽय विप्रपि प्रयात प्रत्यवारयत् ॥२४

भवता रक्षण कार्यं तत्तावत्कृतुमर्हसि ।

निरुद्विग्नस्तप कर्तुं न हि शक्नोषि पार्थिव ॥२५

त्वया हि पृथिवी राजनूरक्षमाणा महात्मना ।

भविष्यति निरुद्विग्ना नारण्य गन्तुमर्हसि ॥२६

वंशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! कुबलाश्व के सौ पुत्र हुए थे, वे सभी धार्मिक, याज्ञिक, विद्वान्, दानी तथा धनुर्वेद में पारंगत थे । जब राजा बृहदश्व कुबलाश्व को राज्य सौंप कर वानप्रस्थी हो गये थे, तभी ब्रह्मर्षि उत्तङ्क ने आकर उन्हें वैमा न करने को कहा ॥२२-२४॥ उत्तङ्क बोले—हे राजन् ! हमारी रक्षा करना आपका प्रमुख कर्म है, इसलिये आप यही कार्य कीजिये, अन्यथा आप वान-प्रस्थाश्रम ग्रहण करने भी निर्द्वन्द्व भाव से तपस्या में लीन नहीं हो सकेंगे ॥२५॥ आप जैसे महात्मा से यह पृथिवी सुरक्षित एवं उद्वेग शून्य रह सकती है, इसलिये आप वन को गमन मत कीजिये । २६॥

ममाश्रमसमीपे हि समेषु मरुधन्वसु ।

ममृद्रो बानुवापूर्णं उज्जानक इति श्रुत ।

देवनानामवध्यश्च महाकायो महाबल ॥२७

अन्तर्भूमिगतस्तत्र बालुकान्नहिनो महान् ।  
 राक्षसस्य मधो पुत्रो धुन्धुनामा महामुर ।  
 शोने लोकविनाशाय तप आस्याय दारुणम् ॥२८॥  
 भवत्परस्य पश्यन्ते स निश्वास प्रमुञ्चन्ति ।  
 यदा तदा भ्रूश्चलति सशैलवनकानना ॥२९॥  
 तस्य निश्वासवातेन रज उद्धूयते महत् ।  
 आदित्यपयमावृत्य मत्ताह भूमिकम्पनम् ॥३०॥  
 सविस्फुलिङ्ग साङ्गार सधूममनिदारुणम् ।  
 तेन तात न श्वनोमि तस्मिन्स्थातु स्वकाश्रमे ॥३१॥  
 त मारय महाकाय लोकानां हितकाम्यया ।  
 लोका स्वम्या भवन्त्यद्य तस्मिन्निनिहतेऽसुरे ॥३२॥

मेरे आश्रम के पास बालू युक्त समतल मरु-भूमि है, वहीं बालू से भरा उज्जानक नामक एक समुद्र है, जिसमें देवताओं द्वारा न मारा जाने वाला, महाकाय तथा अत्यंत बलवान मधु पुत्र धुन्धु पृथिवी तल में बालू के भीतर छिप कर रहता हुआ लोक के विनाशार्थ घोर तपस्या कर रहा है ॥२८॥ २९॥ वह वर्ष में एक बार ही जब घाँस लेता है, तब वनों और पर्वतों से युक्त यह पृथिवी हिलने लगती है । ॥२९॥ उसके द्वास से जो धूल उड़ती है, उसनी भीषणता से मूर्ख छिप जाता और एक सप्ताह तक नृक्ष्य होता रहता है ॥३०॥ उसके द्वाँम से भयानक चिंगारियाँ, अगार और गगनचुम्बी धूम निकलता है, इसीलिये मुझसे आश्रम पर नहीं रहा जाता ॥३१॥ इसलिए लोकहितार्थ उम महाकाय अमुर को तुम मार डालो क्योंकि उसके मरते ही वहाँ के सब प्राणी स्वस्थ हो जायेंगे ॥३२॥

स एवमुक्तो राजर्षिस्तत्वेन महात्मना ।  
 बुबलाश्व सुत प्रादात्तस्मै धुन्धुनिवारणे ॥३३॥  
 भगदन्वन्तशस्त्रोऽहमय तु तनयो मम ।  
 भविष्यति द्विजथेष्ट धुन्धुनारो न सशय ॥३४॥  
 स त व्यादिश्य तनय राजर्षिपुंनुमारणे ।  
 जगाम पर्वतार्थं तपसे नृशिश्रत ॥३५॥

कुबलाश्वस्तु पुत्राणां शतेन सह पारिव. ।  
 प्रायादुत्तङ्कसहितो धु धोस्तस्य विनिग्रहे ॥३६॥  
 तमाविशत्तादा विष्णुर्भगवास्तेजसा प्रभुः ।  
 उत्तङ्कस्य नियोगाद्दे लोकस्य हितकाम्यया ॥३७॥  
 तस्मिन्प्रायाते दुर्द्धर्षे दिवि शब्दो महानमूत् ।  
 एष श्रीमानवधोऽज्य धुन्धुमारो भविष्यति ॥३८॥  
 दिव्यैर्मर्त्यैश्च त देवा. समतात्ममवाकिरन् ।  
 देवदुन्दुभयश्चापि प्रणेदुर्भरतर्पणम् ॥३९॥

महारमा उत्तङ्क द्वारा ऐसा कहे जाने पर राजपि बृहदश्व ने धुन्धु को मारने के लिये अपना पुत्र कुबलाश्व उन्हे सौपते हुए कहा—भगवन् । मैंने शस्त्र का त्याग कर दिया है, इसलिये इस पुत्र को दे रहा हूँ, यही धुन्धु को मारेगा । यह कह कर राजपि बृहदश्व तप करने के लिये पर्वत शिखर पर चले गये ॥३३॥ ३५॥ इधर कुबलाश्व अपने सौ पुत्रों के सहित महारमा उत्तङ्क के साथ धुन्धु को मारने के लिये चल दिये ॥३६॥ तभी उत्तङ्क के प्रार्थना करने पर भगवान् विष्णु ने कुबलाश्व के देह में प्रवेश किया ॥३७॥ उस समय अरुन्धत गडगडाहट के साथ आकाशवाणी हुई कि आज कुबलाश्व धुन्धुमार बन जायेंगे ॥३८॥ उस समय देवताओं ने दिव्य पुष्पमालाओं की वृष्टि की और दुन्दुभिर्मा बजने लगी ॥३९॥

स गत्वा जयता श्रेष्ठस्तनयै सह वीर्यवान् ।  
 समुद्रं खानयामास बालुकाण्वमव्ययम् ॥४०॥  
 नारायणेन कौरव्य तेजसा व्यापितः स वै ।  
 यमूय स महातेजा भूयो बलसमन्वित. ॥४१॥  
 तस्य पुत्रैः छनद्भिस्तु बालुकान्याहितस्तदा ।  
 धुंधुरामादितो राजन्दिशमावृत्य पश्चिमाम् ॥४२॥  
 मुग्धजेनाग्निना क्रोधात्लोकानुद्धर्तयन्निव ।  
 यारि मुग्धाव वेगेन महोदधिरिवोदये ॥४३॥

सोमस्य भरतश्चेष्टघारोमिक्कलिलमहत् ।

स्य पुनग्न दग्ध त्रिभिस्तन तु रक्षमा ॥४४

तन स राजा कौरव्य राक्षस त महाधनम् ।

आसमाद महातेजा पुष्टुं घुघुनिर्वहण ॥४५

तस्य वारिमय वेगमपिवत् सनराधिप ।

योगी योगेन बह्वि च शमयामाम वारिणा ॥४६

निहत्य त महाकाय वलेनोदक्कराक्षमम् ।

उत्ताक् दशयामाम कृतकर्मा नराधिप ॥४७

उत्तक्मनुवर प्रादात्तम्मै राज्ञे महात्मने ।

ददौ तस्याक्षय वित्तं शत्रुभिश्चापराजयम् ॥४८

धर्मं रतिं च सततं स्वर्गनाम तथाक्षयम् ।

पुत्राणां चाक्षयं लोकान्स्वर्गं ये रक्षमा हता ॥४९

कृबलाश्व ने वहाँ पहुँचने ही अपने पुत्रों से उन बालू के समुद्र को खुद-  
 । जारग्न किया ॥४०॥ उस समय कृबलाश्व विष्णु तेज से अत्यन्त तेजस्वी  
 ५ पराक्रमी हो गये थे ॥४१॥ उनके पुत्रों ने बालू खोदते हुए देखा कि घुघु  
 स्वम की ओर के म्यान पर लेटा है, उन राजकुमारों को देखते ही घुघु की  
 प्राग्नि प्रदीप्त हो गई, जिससे कृबलाश्व के मत्तानके पुत्र भस्म हो गये, केवल  
 न पुत्र शेष रह । इसके पश्चात् चन्द्रोदय होने पर समुद्र की अत्यन्त वेग-वृद्धि  
 ने के समान, घुघु का क्रोध अधिक बदन पर उसकी देह से अत्यन्त वेग सहित  
 तयार प्रवाहित होने लगी, उस समय वह सम्पूर्ण पृथिवी को जलमान करने  
 १ लिए वृत्त मक्ष-सा प्रतीत होने लगा ॥४२-४३॥ हे कुम्भन्दन ! इसके पश्चात्  
 पञ्चा कृबलाश्व ने उसके पास जाकर सब जलधारा का पान कर लिया और  
 पान योग बन से जल की वर्षा करके उसका अग्नि बल भी समाप्त कर दिया  
 ॥४५-४६॥ फिर उन्होंने बलपूर्वक उसे मार डाला और उसका मृतदेह महर्षि  
 तत्त्व को दियाया ॥४७॥ उनके ऐसे पराक्रम से प्रसन्न हुए महर्षि उत्तङ्क ने  
 पञ्चाश्व को अशय धन, विजय, धर्मानुराग, स्वर्ग प्राप्ति तथा उनके मरे हुए  
 पुत्रों को भी अशय लोकों की प्राप्ति का कर दिया ॥४८-४९॥

## ॥ महर्षि गालव की उत्पत्ति ॥

तस्य पुत्रास्त्रय शिष्टा दृढाश्चो ज्येष्ठ उच्यते ।  
 चन्द्राश्चकपिलाश्चौ तु कुमारी द्वौ कनीयसौ ॥१॥  
 धौन्धुमारिहंढाश्चस्तु हर्षश्चस्तस्य चात्मज ।  
 हर्षश्चस्य निकुम्भोऽभूत्क्षानघर्मरत सदा ॥२॥  
 सहताश्चो निकुम्भस्य पुत्रो रणविशारद ।  
 अकृशाश्च कृशाश्चश्च सहताश्चसुतौ नृप ॥३॥  
 तस्य हैमवती कन्या सता माता दृपद्वती ।  
 विद्यता त्रिपु लोकेषु पुनश्चास्या प्रसेनजित् ॥४॥  
 लेभे प्रसेनजिद्भार्या गौरी नाम प्रतिव्रताम् ।  
 अभिशप्ता तु सा भर्ता नदी वै बाहुदाऽभवत् ॥५॥  
 तस्या पुत्रो महानासीद्युवनाश्चो महीपति ।  
 मान्धाता युवनाश्चस्य निलोकविजयी सुत ॥६॥  
 तस्य चैत्ररथी भार्या शशबिन्दो सुताऽभवत् ।  
 साध्वी बिन्दुमती नाम रूपेणासदृशी भुवि ॥७॥  
 वैशम्पायनभी बोले—हे राजन् ! राजा कुवलाश्व से बचे

पुत्रो मे दृढाश्व ज्येष्ठ था तथा चन्द्राश्व और कपिलाश्व छोटे थे ॥१॥  
 बा पुत्र हर्षश्व और हर्षश्व का पुत्र निकुम्भ हुआ, जो सदा क्षानघर्म पालन में  
 तत्पर रहता था ॥२॥ निकुम्भ का पुत्र सहताश्व हुआ, वह अत्यन्त युद्ध कुशल  
 था, उसके अकृशाश्व और कृशाश्व नामक दो पुत्र हुए ॥३॥ सहताश्व के दृपद्वती  
 नाम की एक कन्या हुई, उस विध्व विख्यात पुत्री का प्रसेनजित् नामक पुत्र  
 हुआ ॥४॥ प्रसेनजित् की गौरी नाम की पतिव्रता भार्या थी, वह पति के साथ  
 वन बाहुदा नाम की नदी होगई थी ॥५॥ गौरी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र युवनाश्व  
 एक महान् राजा था तथा उस युवनाश्व का पुत्र निलोकविजयी राजा मान्धाता  
 हुआ ॥६॥ उसका विवाह शशबिन्दु की कन्या चैत्ररथी के साथ हुआ, जो  
 अपने नाम गुण से विख्यात साध्वी स्त्री थी ॥७॥

पनिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातृणामयुतन्य सा ।  
 तस्यामुत्पादयामास भान्वाता द्वौ पुत्रौ नृप ॥८॥  
 पुरुकुत्स च धर्मज्ञ मुचुकुन्द च धार्मिकम् ।  
 पुरुकुत्समुतश्चासीत्प्रमदस्युर्महीपति ॥९॥  
 समंदायामयोत्पन्नः सम्भूतस्मत्स्य चात्मजः ।  
 सम्भूतस्य तु दायाद मुधन्वा नाम पार्थिव ॥१०॥  
 मुधन्वनः सुनश्चासीत्प्रिन्वा रिपुमर्दन ।  
 राज्ञस्त्रिन्वनस्तन्नामीदृष्ट्वाभ्युत्थयत् सुत ॥११॥  
 तस्य सत्यव्रता नाम कुमारोऽभून्महाबलः ।  
 पाणिग्रहणमन्त्राणां विघ्नं चक्रे मुदुर्मनि ॥१२॥  
 येन भार्याऽऽहूता पूर्वं कृताद्वाहा परस्य वै ।  
 बाल्यात्कामान्च मोहाच्च सहर्षाच्चापलेन च ॥१३॥  
 जहार कन्या कामाननं कस्यचित्तुरवासिनः ।  
 अधर्मज्ञकुलात्तेन राजा त्रय्यारणोऽवजत् ॥१४॥  
 अपध्वसेति बहूनां वदन्त्रोघसमन्वितः ।  
 पितरः सोऽनवीत्यक्तं नव गच्छामीति वै मुहुः ॥१५॥

वह भी महान् पतिव्रता अपन दस हजार भाइयों की सबसे बड़ी अकेली  
 हेल थी, उसका गम स भान्वाता न दो पुत्र उत्पन्न किया ॥८॥ प्रथम पुत्र का  
 नाम पुरुकुत्स और दूसरे का नाम मुचुकुन्द हुआ । पुरुकुत्स का पुत्र राजा प्रसहस्यु  
 था ॥९॥ प्रसहस्यु ने अपनी नाया नमदा से सम्भूत नामक पुत्र उत्पन्न किया,  
 न सम्भूत का पुत्र मुधन्वा हुआ ॥१०॥ मुधन्वा ने त्रिषन्वा नामक पुत्र हुआ,  
 त्रिषन्वा के जो पुत्र हुआ, वह त्रय्यारण नामक अत्यन्त विद्वान् था ॥११॥ उसने  
 प्रव्रत नामक एक अत्यन्त वनवान् पुत्र हुआ उसने एक नागरिक के वैवाहिक  
 में विघ्न उत्पन्न किया था ॥१२॥ एक समय की बात है—एक नागरिक  
 विवाह में घर बसू सप्तपदी चोल रह था, मन्त्र बनी पूरा नहीं हुआ था, तभी  
 तदुत्तम चक्षुःशाली, बुद्धिहीनता और कामुकता के बगोन्तूट हुए सत्यव्रत ने उस  
 का अपहरण किया और उस अपनी नाया बना लिया । उसको उच्छ्वस

खलता से कुण्ठित हुए महाराज प्रय्यारण ने उससे कहा—अरे पातकी ! दुः  
हो । इस बात को महाराज ने अनेक बार दुहरा कर उसे त्याग दिया तब सत्य  
व्रत ने बारबार अपने पिता से कहा कि आपने मुझे त्याग दिया है तो मैं बह  
जाऊँ ? ॥१६-१५॥

पिता त्वेनमथोवाच श्वपाकै सह वर्तय ।  
नाह पुत्रेण पुत्रार्थी त्वयाऽस्य कुलपासन ॥१६  
इत्युक्त स निराक्रामन्नगराद्वचनात्पितु ।  
न च त वारयामास वसिष्ठो भगवानृषि ॥१७  
स तु सत्यव्रतस्तात श्वपाकावसयान्तिके ।  
पिता त्यक्तोऽवसद्धीर पिता तस्य वन गयी ॥१८  
ततस्तस्मिस्तु विषये नावर्षपाकशासन ।  
समा द्वादश राजेन्द्र तेनाघर्मेण वै तदा ॥१९  
दारास्तु विषये विश्वामित्रो महातपा ।  
सन्यस्य सागरानूपे चचार विपुल तप ॥२०  
तस्य पत्नी गले बद्ध्वा मध्यम पुंसमौरसम् ।  
शेषस्य भरणार्थाय ध्यक्त्रीणादगोशतेन वै ॥२१  
त तु बद्ध गले दृष्ट्वा विक्रीयन्त नृपात्मज ।  
महर्षिपुत्र घर्मात्मा मोचयामास भारत ॥२२  
सत्यव्रतो महाबाहुभरण तस्य चावरोत् ।  
विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुवम्प्यार्थमेव च ॥२३  
सोऽभवद्गालवो नाम गलवन्धान्महातपा ।  
महर्षि यौतिकस्तात तेन वीरेण मोक्षित ॥२४

इत पर पिता ने कहा—मैं तुझ मोच वा पिता बहलवाना उचित नहीं समझता।  
इसलिये तू अब आण्डालो ने साथ निवात कर ॥१६॥ पिता की बात सुन क  
सत्यव्रत मगर छोड़ कर बाहर होगया, महर्षि वसिष्ठ ने भी उसे निवारण न  
दिया ॥१७॥ तब सत्यव्रत आण्डालो की बस्ती में रहने लगा और द्वादश प्रय्यार  
ण की त्याग कर वन में चले गये ॥१८॥ एक विवाह में विष्णु शासन

पि के कारण इन्द्र ने उस राज्य में वर्षा नहीं की ॥१६॥ इसी समय विश्वामित्र अपनी भार्या को त्याग कर समुद्र के एक जल रहित स्थान में जाकर तीर तपस्या करने लगे ॥२०॥ तब विश्वामित्र की भार्या ने अपने बीच के पुत्र कठ में रस्सी बाँधी और कुटुम्ब की जीविका के लिये उसे सौ गौआ के मूल्य देने के लिए चल पड़ी ॥२१॥ राजपुत्र सत्यव्रत ने मुनिपुत्र को इस प्रकार देख कर उसे ले लिया और विश्वामित्रजी की कृपा प्राप्त करने के लिये सका भरण पापण करने लग ॥२२ २३ उस बालक के गले में रस्सी बाँधने के कारण उसका नाम गालव हुआ ॥२४॥

### ॥ लिशकु की कथा ॥

सत्यव्रतस्तु भक्त्या च कृपया च प्रतिज्ञया ।  
विश्वामित्रकलत्र तद्वभार विषये स्थित ॥१॥  
उपाशुव्रतमास्याय दीक्षा द्वादशवापिकीम् ।  
पितुर्नियोगादवसत्तस्मिन्वनगते नृपे ॥२॥  
अधोऽध्या चैव राष्ट्रं च तथैवान्त पुर मुनि ।  
याज्योपाध्यायसुवन्धाद्वसिष्ठ पर्यरक्षत ॥३॥  
सत्यव्रतस्तु वाल्याद्वा भाविनोऽर्थस्य वा वलात् ।  
वसिष्ठेऽभ्यधिक मन्यु धारयामास वै तदा ॥४॥  
पित्वा तु त तदा राज्यं त्यज्यमान स्वमात्मजम् ।  
न वारयामास मुनिर्वसिष्ठ कारणेन ह ॥५॥  
पाणिग्रहणमन्त्राणा निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे ।  
न च सत्यव्रतस्तस्य तमुपाशुमबुध्यत ॥६॥  
जानन्धर्मं वसिष्ठस्तु न मा स्नातीति भारत ।  
सत्यव्रतस्तदा रोषं वसिष्ठे मनसाऽकरोत् ॥७॥  
गुणबुद्ध्या तु भगवान्वसिष्ठं कृतवास्तथा ।  
न च सत्यव्रतस्तस्य तमुपाशुमबुध्यत ॥८॥

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! विश्वामित्रजी के प्रति भक्ति और उनकी कृपा प्राप्ति से वसिष्ठजी का महत्व दूर करने के लिये विश्वामित्र-



पत्नी का स्वयं ही भरण-पोषण करने लगे ॥१॥ पिता द्वारा वन-गमन किं जाने पर भी राजा सत्यव्रत ने बारह वर्षों तक जनहीन वन में निवासपूर्वक व्रतादि नियमों का पालन किया ॥२॥ इस समय में वसिष्ठजी ने पुरोहित और आचार्य होने के कारण अयोध्या के राज्य एवं अंतपुर का रक्षण-कार्य किया ॥३॥ राजा सत्यव्रत बाल-चपलता यश भावी अनर्थ का कारण वसिष्ठ के मानकर उनसे अत्यन्त रुष्ट थे ॥४॥ क्योंकि जब उनके पिता ने उनका त्याग किया था, तब वसिष्ठजी ने उन्हें बैसा करने से नहीं रोका, अग्न्या बुद्धि समझ में उनके पाप का प्रायश्चित्त हो जाना ॥५॥ पाणिग्रहण की पूर्णता सन्तुष्ट होने पर ही सिद्ध होती है, उसके बिना नहीं होती, इसलिये सत्यव्रत ने परतार हारण नहीं, परकन्या हरण किया, जिसका पाप बारह वर्षों तक वनवास करने से दूर हो जायगा, तब सत्यव्रत को पुनः राज्य पर पर अभिषिक्त कर दिया जायगा, वसिष्ठ के इन मनोभावों को उन्होंने नहीं समझा ॥६॥ उनका क्रोध इसी लिये था कि इस प्रकार का दण्ड देते हुए पिताजी को महर्षि ने रोका था ॥७॥

तस्मिन्नरितोपो य पितुरासीन्महात्मन ।  
 तेन द्वादश वर्षाणि नावर्यत्पाकशासन ॥६॥  
 तेन त्विदानीं बहता दीक्षा ता दुर्वहा भुवि ।  
 कुलस्य निष्कृतिस्तात कृता सा वै भवेदिति ॥१०॥  
 न त वसिष्ठो भगवान्पित्रा त्यक्त न वारयत् ।  
 अभिषेक्ष्याम्यह पुत्रमस्येत्येव मतिमुने ॥११॥  
 स तु द्वादश वर्षाणि दीक्षा तामुद्वहद्वली ।  
 उपाशुव्रतमास्थाय महत्सत्यव्रतो नृप ॥१२॥  
 अविद्यमाने भासे तु वसिष्ठस्य महात्मन ।  
 सर्वकामदुघा दोग्ध्री ददर्श स नृपात्मज ॥१३॥  
 ता वै क्रोधाच्च मोहान्च थमाच्चैव क्षुधादित ।  
 दशधर्मान्गतो राजा जघान जनमेजय ॥१४॥  
 मत्त प्रमत्त उन्मत्त ध्रान्त क्रुद्धो बुभुक्षित ।  
 त्वरमाणश्च भीरश्च लुब्ध वामी च ते दश ॥१५॥

तच्च मांसं स्वयं चैव विश्वामित्रस्य चात्मजान् ।  
 भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठोऽप्यस्य चुक्रुधे ।  
 क्रुद्धस्तु भगवान्वाक्यमिदमाह नृपात्मजम् ॥१६  
 पातयेयमहं क्रूर तत्र शंकुमसंशयम् ।  
 यदि ते द्वाविमौ शंकू न स्थाता वैकृती पुनः ॥१७  
 पितुश्चापरितोयेण गुरोर्दोग्ध्रीवधेन च ।  
 अप्रोक्षितोपयोगाच्च निविद्यस्ते व्यतिक्रमः ॥१८  
 एवं त्रीण्यस्य शंकूनि तानि दृष्ट्वा महातपाः ।  
 त्रिशंकुरिति होवाच स त्रिशंकुरिति स्मृतः ॥१९

हे राजन् ! सत्यव्रत के उम दुष्कर्मों से उसके पिता को जो दुःखानुभूति हुई, उसके कारण इन्द्र ने बारह वर्ष तक उनके राज्य में जन वृष्टि नहीं की ॥११॥ इधर सत्यव्रत को वनवास करते हुए बारह वर्ष हो रहे थे, तभी उनके शीश्रम में अन्न नहीं रहा, देव-वशान् तभी वसिष्ठ की दुधार गाय को उन्होंने चरते हुए देखा ॥१०-१३॥ तब हे जनमेजय ! क्रोध, मोह, श्रम से मत्त, उन्मत्त, प्रमत्त और क्षुधार्त होने के कारण सत्यव्रत ने उस गौ का वध कर दिया और उसका मांस स्वयं भक्षण किया और विश्वामित्र के पुत्रों को भी भक्षण कराया । यह सुन कर अत्यन्त क्रोधपूर्वक महर्षि वसिष्ठ ने सत्यव्रत से कहा— यदि तूने पुनः यह पाप न किया होता तो तेरे पहिले पाप को क्षमा कर दिया जाता, परन्तु अब तो तूने तीन पाप किये हैं—पिता का असंतोष, गुरु की गौ की हत्या और असंस्कृत मांस भक्षण । इन तीन शकुओं (पापों) के कारण वसिष्ठ ने सत्यव्रत का नाम त्रिशंकु रख दिया, तब से उसकी इस नाम से प्रसिद्धि होगई ॥१४-१९॥

विश्वामित्रस्तु दाराणामागतो भरणे कृते ।  
 स तु तस्मै वरं प्रादान्मुनिः प्रीतस्त्रिषङ्कवे ॥२०  
 छन्दमानो वरेणाय वरं वव्रे नृपात्मजः ।  
 सशरीरो ब्रजे स्वर्गमित्येवं याचितो मुनिः ॥२१

अनावृष्टिभये तस्मिन्गते द्वादशवर्षिके ।  
 राज्येऽभिषिच्य त्रिभ्यो तु याजयामास तं मुनिः ॥२२॥  
 मिपता देवताना च वसिष्ठस्य च कौशिकः ।  
 सशरीर तदा तं तु दिवमारोपयत्प्रभुः ॥२३॥  
 तस्य सत्यरथा नाम भार्या कैकयवंशजा ।  
 कुमार जनयामास हरिश्चन्द्रमकरमपम् ॥२४॥  
 स वै राजा हरिश्चन्द्रस्त्रैशङ्कुव इति स्मृतः ।  
 आहर्ता राजसूयस्य स सम्राडिति विश्रुतः ॥२५॥

तपस्या पूर्ण करके जब विश्वामित्रजी अपने घर आये तब उन्हें सत्य-  
 व्रत के द्वारा परिवार के भरण-पोषण की बात ज्ञात हुई, जिससे प्रसन्न होकर  
 उन्होंने सत्यव्रत से वर माँगने को कहा और उनके अनुरोध पर त्रिशकु ने इसी  
 देह से स्वर्ग प्राप्ति का वर माँगा ॥२०-२१॥ अयोध्या में जब अनावृष्टि सम्भूत  
 होगई, तब विश्वामित्र ने उसको राज्य पर अभिषिक्त किया और फिर उसने  
 यज्ञ का अनुष्ठान कराया ॥२२॥ अनुष्ठान के पूर्ण होने पर विश्वामित्रजी  
 वसिष्ठजी तथा सब देवताओं के देखते-देखते त्रिशकु को स्वर्ग में भेज दिया  
 ॥२३॥ कैकय नरेश के वंश में उत्पन्न हुई सत्यरथा त्रिशंकु की भार्या हुई,  
 उससे हरिश्चन्द्र उत्पन्न हुए ॥२४॥ हरिश्चन्द्र त्रिशकु के पुत्र होने से त्रैशङ्कु भी  
 कहे गये और राजसूय यज्ञ करने के कारण सम्राट् बन गये ॥२५॥

हरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद्रोहितो नाम वीर्यवान् ।  
 येनेद रोहितपुर कारित राज्यसिद्धये ॥२६॥  
 कृत्वा राज्यं स राजर्षिः पालयित्वा त्वय प्रजाः ।  
 ससारासारता ज्ञात्वा द्विजेभ्यस्तत्पुर ददौ ॥२७॥  
 हरितो रोहिनस्याथ चञ्चुर्हारीत उच्यते ।  
 विजयश्च सुदेवश्च चञ्चुपुत्री बभूवतु ॥२८॥  
 जेता क्षत्रस्य सर्वस्य विजयस्तेन संस्मृतः ।  
 रुक्मस्तनयस्तस्य राजा धर्मार्थकोविदः ॥२९॥

रुक्मस्य वृक पुत्रो वृकाद्वाहुस्तु जज्ञिदान् ।  
 शक्यैर्वनकाम्बोजं पारदै पल्लवै सह ॥३०॥  
 हैहयास्तालजङ्घाश्च निरस्यन्ति स्म त नृपम् ।  
 नात्यर्थं धर्मिकस्तात स हि धर्मयुगेऽभवत् ॥३१॥  
 सगरस्तु सुतो वाहोर्जज्ञे सह गरेण च ।  
 और्वस्याथममागम्य भार्गवेणाभिरक्षित ॥३२॥  
 आग्नेयमस्र लब्ध्वा च भार्गवात्सगरो नृप ।  
 जिगाय पृथिवीं हत्वा तालजङ्घान्सहैहयान् ॥३३॥  
 शकाना पल्लवाना च धर्मं निरसदच्युत ।  
 क्षत्रियाणा कुरुश्रेष्ठ पारदाना म धर्मवित् ॥३४॥

हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहित हुए, जिन्होंने रोहितपुर नामक नगर बसाया ॥२६॥ राजर्षि रोहित चिरकाल तक राज-कार्य और प्रजा-पालन करते रहे । फेर उन्होंने वह नगर ब्राह्मणों को दान कर दिया ॥२७॥ रोहित के पुत्र हरित और हरित के चञ्चु और चञ्चु के विजय तथा मुदेव नामक दो पुत्र हुए ॥२८॥ वे पुत्र विजय ने समस्त क्षत्रिय जाति पर विजय प्राप्त की थी, इसीलिये उसे राजप कहा गया । विजय के जो पुत्र हुआ, वह धर्म अर्थ का उत्वजाता रुक्म ॥२९॥ रुक्म के वृक और वृक के बाहु नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई । यह बाहु अत्यन्त अधार्मिक राजा हुआ, इसलिये वह शक, यवन, काम्बोज, पारद, पल्लव, हैहय एवं तालजङ्घ आदि म्लेच्छ राजाओं के द्वारा राग्यच्युत किया गया ॥३०-३१॥ बाहु के सगर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, वह विप (गर) के साथ उत्पन्न होने से सगर कहलाया, उसका पालन भृगुवशी महर्षि और के आश्रम में हुआ था ॥३२॥ कुछ समय बाद सगर ने महर्षि और के आश्रम प्राप्त करके तालजङ्घ, हैहय आदि राजाओं को मार कर भूमि पर विजय प्राप्त की और शक, पल्लव तथा पारदादि राजाओं को क्षात्र-धर्म से हीन कर दिया ॥३३-३४॥

॥ सगर की उत्पत्ति और सागर बनना ॥

यथ स सगरो जातो गरेणैव सहाच्युत ।  
 किमर्थं च शकादीना क्षत्रियाणा महीजसाम् ॥१॥

धर्मं कुलोचितं ब्रुद्धो राजा निरसदच्युत ।  
 एतन्मे सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण तपोधन ॥२  
 बाहोर्व्यंसनिनस्तात हृत राज्यमभूत्किल ।  
 हैययंस्तालजघैश्च शकं साद्धं विशाम्पते ॥३  
 यवना पारदाश्चैव काम्बोजा प्लवा खशा ।  
 एते ह्यपि गणा पञ्च हैहयार्ये पराक्रमन् ॥४  
 हृतराज्यस्तदा राजा स वै बाहुर्वनं ययौ ।  
 पत्न्या चानुगतो दुःखी स वै प्राणानवासृजत् ॥५  
 पत्नी तु यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतोऽन्वगात् ।  
 सपत्न्या च गरस्तस्यै दत्त पूर्वमभूत्किल ॥६  
 सा तु भर्तुश्चित्ता कृत्वा वने तामघ्यरोहत ।  
 और्वस्ता भार्गवस्तात कारुण्यात्समवारयत् ॥७

जनमजय ने कहा—महाराज सगर की उत्पत्ति विप के साथ हुई तो वै  
 कित प्रकार जीवित रहे और उन्होंने शक आदि के क्षत्रियोचित धर्म को क्यों  
 नष्ट किया ? यह मुझे विस्तार सहित बताइये ॥१२॥ वैशम्पायनजी बोले—है  
 राजन् । जब राजा बाहु दुव्यसनो में लिप्त होगया था तब शक, यवनादि ने उसे  
 जीत कर उसका राज्य छीन लिया था और राज्य से भ्रष्ट होने के कारण दुःखित  
 होकर वह भार्या सहित वन को चला गया वही उसकी मृत्यु हुई ॥३५॥ जब  
 बाहु की भार्या अपने स्वामी के साथ वन को चली तभी उसकी सौत ने उसे  
 विप पान करा दिया ॥६॥ जब उसका पति मर गया तब वह उसके साथ सती  
 होना चाहती थी परन्तु महर्षि और्व ने उसे वैसा नहीं करने दिया ॥७॥

तस्याश्रमे च न गर्भं गरेणैव सहाच्युत ।  
 व्यजायत महाबाहु सगर नाम पार्यिवम् ॥८  
 और्वस्तु जातवर्मादि तस्य कृत्वा महात्मन ।  
 अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त प्रत्यपादयत् ॥९  
 आग्नेयं त महाबाहुरभरंरपि दुःसहम् ।  
 स तनास्ववलेनाजी वलेन च समन्वित ॥१०

हैहयान्निजघानाशु क्रुद्धो रद्र पशूनिव ।  
 आजहार च लोकेषु कीर्ति कीर्तिमता वर ॥११॥  
 तन शकान्सयवनान्काम्बोजान्पारदास्तथा ।  
 पल्लवाश्चैव नि शेषान्कतुं व्यवमितस्तदा ॥१२॥  
 ते वध्यमाना वीरेण मगरेण महात्मना ।  
 वसिष्ठ शरण गत्वा प्रणिपेतुर्मनीषिणम् ॥१३॥  
 वसिष्ठस्त्वय तान्दृष्ट्वा समयेन महाद्युति ।  
 सगर वारयामास तेषा दत्त्वाऽभय तदा ॥१४॥

उन्ही के आश्रम में उसने विष खाव के माघ सगर को उत्पन्न किया ॥८॥ महर्षि धीरं ने सगर का जात-धर्म सत्कारादि करके वेद विद्या और युद्ध विद्या की शिक्षा देकर आग्नेयास्त्र प्रदान किया । उस अस्त्र के धल से सगर ने ह्यो को बंसे ही नष्ट कर डाला जैसे रष्ट हुए भगवान शंकर ने पशुओं को नष्ट कर डाला था । इस कारण सगर की महान यश की प्राप्ति हुई ॥९-११॥ तब उन्होंने शक, यवन, काम्बोज, पारद और पल्लव आदि के नष्ट करने का वार दिया ॥१२॥ परन्तु वह राजागण वसिष्ठजी की शरण में जाकर रक्षा-ार्थना करने लगे ॥१३॥ वसिष्ठजी ने उन्हें अभयदान देकर राजा सगर से नका श्हार न करने को कहा ॥१४॥

सगर स्वा प्रतिज्ञा च गुरोर्वक्त्रि निगम्य च ।  
 धर्मं जघान तेषा वै वेपान्यत्वं चकार ह ॥१५॥  
 अद्धं शकाना शिरमो मुण्डं कृत्वा व्यमर्जयत् ।  
 यवनाना शिर सर्वं काम्बोजाना तथैव च ॥१६॥  
 पारदा मुक्तकेशाश्च पल्लवा श्मश्रुधारिण ।  
 नि म्वाध्यायवपट्कारा कृत्वास्तेन महारथा. ॥१७॥  
 स धर्मविजयी राजा विजित्येमा वमुन्धराम् ।  
 अश्वं वै प्रेरयामास वाजिमेघाय दीक्षित ॥१८॥  
 तस्य चारयन सोऽश्व समुद्रे पूर्वदक्षिणे ।  
 येलामभीषेज्जहत्तो भूमि चैव प्रवेशित ॥१९॥

स त देश तदा पुन्रै खानयामास पार्थिव ।

आसेदुस्ते ततस्तस्य चान्यमाने महार्णवे ॥२०॥

तमादिपुरुष देव हरिं कृष्ण प्रजापतिम् ।

विष्णु कपिलरूपेण स्वपन्त पुरुषोत्तमम् ॥२१॥

तब राजा सगर ने गुरु की बात रखने और अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा करने के लिये उन राजाओं का वध न करके उनके धर्म और वेदा में परिवर्तन कर दिया ॥१५॥ उसके अनुसार दाको को अर्द्ध मुण्डित किया, यवनो और काम्बोजो को पूर्ण मुण्डित, पारदो को वेश-रहित तथा पल्लवों की मूर्द्धधारि बनाया, और सभी को वेदाध्ययन के अधिकार से वंचित कर दिया ॥१६॥ इस प्रकार राजा सगर ने सम्पूर्ण पृथिवी पर विजय प्राप्त कर अवशेष व दोषा ली और यज्ञ का घोड़ा छोड़ कर उसकी रक्षा के लिये स्वयं उसके पीछे चले ॥१८॥ जब वह अश्व समुद्र तट पर आ रहा था, तभी इन्द्र ने उसका अश्व हरण कर लिया और भूतल में समा गये ॥१९॥ तब राजा सगर ने अपने पुत्रों से पृथिवी की खुदवाना प्रारम्भ किया और खोदते-खोदते उनके पुत्रों ने भगवान् विष्णु की महर्षि कपिल के रूप में योगमग्न बैठे देखा ॥२०-२१॥

तस्य चक्षु समुत्प्रेन तेजसा प्रतिबुध्यत ।

दग्धास्ते वै महाराज चत्वारस्त्ववशेषिता ॥२२॥

बहकेतु सुकेतुश्च तथा धर्मरथो नृप ।

शूर पञ्चजनी नाम तस्य वशकरो नृप ॥२३॥

प्रादाञ्च तस्मै भगवान्हरिर्नारायणो वरान् ।

अक्षय वशमिधवाको कीर्ति चाप्यनिवर्तनीम् ॥२४॥

पुत्र समुद्र च विभु स्वर्गवास तथाऽक्षयम् ।

पुत्राणा चाक्षर्याल्लोकास्तस्य ये चक्षुषा हता ॥२५॥

समुद्रश्चाप्यमादाय ववन्दे त महोपतिम् ।

सागरत्वं च लेभे स कर्मणा तेन तस्य वै ॥२६॥

त चाश्वमेधिक सोऽश्व समुद्रादुपलब्धवान् ।

आजहाराश्वमेधाना शत स सुमहायसा ।

पुत्राणा च सहस्राणि पष्टिस्तस्येति न श्रुतम् ॥२७॥

उन्हें देखते ही सब सगर-पुत्रों ने वहाँ जाकर उनकी योग-निद्रा भग कर ली, तब नेत्र खोलते ही कपिल भगवान् के नेत्रों से अग्नि निकलने लगी, जिसमें अगर पुत्र भस्म होगए । परन्तु, उनमें से चार पुत्र बह्वेत्तु, सुवेतु, धर्मरथ और चजन भस्म होने से बच रहे ॥२२-२३॥ तभी भगवान् ने प्रकट होकर सगर ने वर दिया—तुम्हारा वंश अक्षय तथा यश स्थायी होगा, यह समुद्र तुम्हारा पुत्र होगा और अन्त में तुम्हें तथा तुम्हारे सभी पुत्रों को अविनाशी लोक की प्राप्ति होगी ॥२४-२५॥ इस प्रकार का वर देते ही समुद्र दोनों हाथों में अर्घ्य ग्रहण लेकर राजा के समक्ष उपस्थित हुआ, महाराज ने उसे तभी से अपना पुत्र माना और उसका नाम सागर हो गया ॥२६॥ उसी समुद्र में महाराज को अपना श्व प्राप्त होगया, जिससे अश्वमेध यज्ञ की निर्विघ्न रूप से समाप्ति हुई सुना गया है कि राजा सगर के साठ हजार पुत्र थे ॥२७॥

### ॥ सूर्य-वंश का वर्णन ॥

सगरस्यात्मजा वीरा कथं जाता महात्मनः ।  
 विक्रान्ताः पण्डिताह्व्या विधिना केन वा द्विज ॥१॥  
 द्वे भार्ये सगरस्यास्ता तपसा दग्धकित्विषे ।  
 ज्येष्ठा विदमंदुहिता केशिनी नाम विद्युत्ता ॥२॥  
 कनीयसी तु या तस्य पत्नी परमधर्मिणी ।  
 अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिभा भुवि ॥३॥  
 और्वस्ताभ्यां वर प्रादात्तं निबोध जनाधिप ।  
 पष्टि पुत्रसहस्राणि गृह्णात्वेका तपस्विनी ॥४॥  
 एकं वंशधर त्वेका यथेष्टं वरयत्विति ।  
 तत्तंका जगृहे पुत्रान्नुद्या शूरान्वहूस्तया ॥५॥  
 एकं वंशधर त्वेका तथेत्याह च ता मुनिः ।  
 केशिन्यमूत सगरादसमञ्जसमात्मजम् ॥६॥  
 राजा पञ्चजनो नाम बभूव सुमहाबलः ।  
 इतरा सृपुत्रे तुम्बी बीजपूर्णमिति श्रुतिः ॥७॥

जनमेजय बोले—हे ब्रह्मन् ! महाराज सगर के साठ हजार पुत्र जिस



प्रकार हुए । ॥१॥ वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! महाराज सगर के दो रानियाँ थी, उनमें विदमंराज पुत्री केशिनी बड़ी थी ॥२॥ छोटी रानी अरिष्ट-नेमि की अत्यन्त सुन्दरी बन्धा थी ॥३॥ एक दिन महर्षि और वे ने उन्हें बुला कर कहा—तुम में से एक रानी साठ हजार पुत्र का, और दूसरी केवल एक ही पुत्र होने का वर माँगे ॥४॥ छोटी रानी ने साठ हजार और बड़ी ने एक पुत्र वं याचना की, इसके अनुसार केशिनी ने असमजस नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥५-६॥ असमजस को पञ्चजन भी कहते थे, वह असामान्य वीर था और छोटी रानी के गर्भ से एक तूम्बे की उत्पत्ति हुई ॥७॥

तत्र पष्टिसहस्राणि गर्भास्ते तिलसमिता ।  
 सबभूयुंथाकाल ववृधुश्च यथाक्रमम् ॥८  
 घृतपूर्णेषु कुम्भेषु तान्गर्भान्निदधे पिता ।  
 धात्रीश्चकैकश प्रादात्तावतीरेव पोषणे ॥९  
 ततो दशसु मासेषु समुत्तस्युर्यथासुखम् ।  
 कुमारस्ते यथाकाल सगरप्रीतिवर्धना ॥१०  
 पष्टिपुत्रसहस्राणि तस्यैवभवन्नुप ।  
 गर्भादलाबुमध्याद्वा जातानि पृथिवीपते ॥११  
 तेषां नारायण तेज प्रविष्टानां महात्मनाम् ।  
 एक पञ्चजनो नाम पुत्रो राजा बभूव ह ॥१२  
 स्मृत पञ्चजनस्यासीदशुमान्नाम वीर्यवान् ।  
 दिलीपस्तनयस्तस्य खट्वाङ्ग इति विश्रुत ॥१३  
 येन स्वर्गादिहागत्य मुहूर्त्तं प्राप्य जीवितम् ।  
 त्रयोऽनुसंधिता लोका बुद्ध्या सत्येन चानघ ॥१४

उस तूम्बे से तिल के बराबर साठ हजार पुत्र हुए, वे धीरे-धीरे वृद्धि में प्राप्त होने लगे ॥८॥ सगर ने एक-एक पुत्र को एक एक घृत-घट में रखवा व प्रत्येक पुत्र के लिये एक धाय की नियुक्ति करदी ॥९॥ दस महीने व्यतीत हो पर सभी बालक परिपुष्ट होकर राजा सगर की सुख वृद्धि करने लगे ॥१०

१ जनमेजय ! इस प्रकार तूम्हें से राजा सगर के साठ हजार पुत्रों की उत्पत्ति हुई ॥११॥ उन सब राजपुत्रों में नारायण का तेज था, परन्तु राज्यपद पर पंचजन का ही अभिषेक हुआ था ॥१२॥ उस पंचजन का पुत्र अंगुमान हुआ, अंगुमान के पुत्र दिलीप हुए, इन्हें सट्वाग भी कहा गया है ॥१३॥ ये सट्वाग स्वर्ग से पृथिवी तल पर केवल एक मुहूर्त के लिये आये थे और इतने ही समय में उन्होंने अपने ध्यान बल से सम्पूर्ण त्रैलोक्य को ब्रह्ममय जान लिया ॥१४॥

दिलीपस्य तु दायामो महाराजो भगीरथः ।  
यः स गङ्गा सरिच्छ्रेष्ठमवतारयत् प्रभुः ॥१५॥  
कीर्तिमान्स महाभागः शक्रतुल्यपराक्रमः ।  
समुद्रमानयच्चैनां दुहितृत्वेन कल्पयत् ।  
तस्माद्भागीरथी गङ्गाः कथ्यते वंशवितर्कः ॥१६॥  
भागीरथसुतो राजा श्रुत इत्यभिविश्रुतः ।  
नाभागस्तु श्रुतस्यासीत्पुत्रः परमधार्मिकः ॥१७॥  
अम्बरीषस्तु नाभागिः सिन्धुद्वीपपिताभवत् ।  
अयुताजित् दायामः सिन्धुद्वीपस्य वीर्यवान् ॥१८॥  
अयुताजित्सुतस्त्वासीदनुपर्णो महायशः ।  
दिव्यासहृदयज्ञो वै राजा नलसखो बली ॥१९॥  
श्रुतुपर्णसुतस्त्वासीदातुं पणिमंहीपतिः ।  
सुदासस्तस्य तनयो राजा त्विन्द्रमग्नोऽभवत् ॥२०॥  
सुदासस्य सुतस्त्वासीत्सौदासो नाम पार्थिवः ।  
ख्यातः कल्पापपादो वै नाम्ना मितमहस्तथा ॥२१॥

दिलीप के पुत्र भगीरथ हुए, उन्होंने ही पृथिवी पर गंगाजी को अवतरित किया ॥१५॥ यदस्वी भगीरथ ने गंगाजी को पुत्री रूप में प्राप्त करके उसे समुद्र तक पहुँचा दिया, इसीलिये गंगा भागीरथी के नाम से प्रसिद्ध हुई ॥१६॥ भगीरथ के पुत्र श्रुत और श्रुत का पुत्र नाभाग हुआ ॥१७॥ नाभाग के पुत्र अम्बरीष, अम्बरीष के सिन्धुद्वीप और सिन्धुद्वीप के अयुताजित हुआ ॥१८॥ अयु-

ताजित का पुत्र ऋतुपर्ण हुआ वह छूत क्रीडा के मर्म का ज्ञाता और परम यशस्वी था, राजा नल के साथ उसका अत्यन्त सख्य भाव था ॥१६॥ ऋतुपर्ण के आर्तुर्पण हुआ, आर्तुर्पण का पुन सुदास हुआ वह इन्द्र का सखा था ॥२०॥ सुदास का पुन सौदास था, उसे कल्मापपाद और मित्रसह भी कहते थे ॥२१॥

कल्मापपादस्य सुत सर्वकर्मैति विश्रुत ।  
 अनरण्यस्तु पुनोऽभूद्विश्रुत सर्वकर्मण ॥२२॥  
 अनरण्यसुतो निघ्नो निघ्नपुत्री बभूवतु ।  
 अनमित्रो रघुश्चैव पार्थिवर्षभसत्तमौ ॥२३॥  
 अनमित्रस्य धर्मात्मा विद्वान्दुलिदुहोऽभवत् ।  
 दिलीपस्तनयस्तस्य रामस्य प्रपितामह ॥२४॥  
 दीर्घबाहुर्दिलीपस्य रघुर्गुण्माऽभवत्सुत ।  
 अयोध्याया महाराजो रघुश्चासीन्महाबल ॥२५॥  
 अजस्तु रघुतो जज्ञे अजादृशरथोऽभवत् ।  
 रामो दशरथाज्जज्ञे धर्मात्मा सुमहायशा ॥२६॥  
 रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुत ।  
 अतिथिस्तु वृशाज्जज्ञे निपद्यस्तस्य चात्मज ॥२७॥  
 निपद्यस्य नल पुत्रो नभ पुत्रो नलस्य तु ।  
 नभस्य पुण्डरीवस्तु क्षेमधन्वा तत स्मृत ॥२८॥

कल्मापपाद का पुत्र सर्वकर्मा हुआ तथा सर्वकर्मा का पुत्र अनरण्य हुआ ॥२२॥ अनरण्य का पुत्र निघ्न हुआ, उस निघ्न ने अनमित्र और रघु नामक दो पुत्र हुए ॥२३॥ अनमित्र ने दुर्निदुह और दुर्लिदुह के दिलीप हुए, यही श्री रामचन्द्रजी के प्रपितामह थे ॥२४॥ दिलीप के पुत्र रघु हुए, इन्हें अयोध्या के राज्यासन पर अभिषिक्त किया गया ॥२५॥ रघु के पुत्र अज और अज के पुत्र दशरथ हुए, इन्हीं दशरथ के परम यशवान् एक धर्मात्मा भगवान् राम ने जन्म लिया था ॥२६॥ राम के पुत्र कुश हुए, कुश के पुत्र अतिथि, अतिथि के पुत्र

हुए ॥२७॥ नियम के नल, नल के पुत्र नम, नम के पुण्डरीक तथा पुण्ड-  
के पुत्र क्षेमघन्वा हुए ॥२८॥

क्षेमघन्वमुनस्त्वामीदेवानोक् प्रतापवान् ।  
आमीदहीनगुर्नाम देवानोक्मुन प्रभुः ॥२९॥  
अहीनगोम्नु दायाद नुमन्त्रा नाम पार्थिव ।  
सुधन्वनः सुतश्चैव ततो जज्ञेऽनलो नृप ॥३०॥  
उक्तो नाम स घर्मात्माऽनलपुत्रो धर्मव ह ।  
वज्रनामः मुनस्त्वस्य ऊक्त्यस्य च महात्मन ॥३१॥  
शङ्खस्तस्य मुनो विद्वान्व्युपिनाश इति श्रुत ।  
पुष्यस्त्वस्य मुनो निद्वानर्थमिद्विमु तत्पुन ॥३२॥  
सुदर्शनः मुनस्त्वस्य अग्निवर्णं सुदर्शनात् ।  
अग्निवर्णस्य शीघ्रस्तु शीघ्रस्य तु मर मुन ॥३३॥  
मरुस्तु योगमाम्याय कनापदोपमास्थित ।  
तस्यासीद्विश्रुतवतः पुत्रो राजा बृहदलः ॥३४॥  
नलो द्वावेव विख्यातो पुराणे भरतपुत्र ।  
वीरसेनात्मजश्चैव मन्वेक्ष्वाकु कुलोद्बह ॥३५॥  
इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः प्रधान्येनेह कीर्तिता ।  
एते विवस्वतो वशे राजानो भूरितेजस ॥३६॥  
पठन्सम्यगिमा सृष्टिमादित्यस्य विवस्वतः ।  
श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजानां पुष्टिश्च ॥३७॥  
प्रजावानेति मायुज्यमादिन्यस्य विवस्वनः ।  
विषाम्ना विरजाश्चैव आयुष्माश्च भवत्युन ॥३८॥

क्षेमघन्वा के पुत्र देवानोक्, देवानोक् के अहीनगुहा के मुघन्वा तथा  
घन्वा के पुत्र अनल हुए ॥२९-३०॥ अनल का पुत्र उक्त हुआ, उक्त का वज्र-  
नाम और वज्रनाम का पुत्र शङ्ख हुआ, शङ्ख को व्युपिनाश भी कहते थे शङ्ख  
। पुत्र पुष्य और पुष्य का पुत्र सुदर्शन हुआ ॥३१-३२॥ सुदर्शन का पुत्र  
अनल, सुदर्शन का अग्निवर्ण, अग्निवर्ण का शीघ्र और शीघ्र का पुत्र मर हुआ,

उसने कलापद्वीप में जाकर योगाभ्यास किया, उसका पुत्र बृहद्वन हुआ ॥३३॥ ३४॥  
पुराणों में नल नाम के दो राजाओं का वृत्तांत उपलब्ध है, उनमें एक वीरसेन  
का पुत्र हुआ और दूसरा इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुआ था ॥३५॥ इस प्रजा-  
पति प्रधान इक्ष्वाकु वंशीय राजाओं का नाम मैं तुम्हें कह दिये हैं। यह सभी  
राजागण सूर्यवंश में उत्पन्न हुए थे ॥३६॥ जो लोग प्रजाजनों के लिये पुष्टिकर  
आदित्य की वंशावली का पाठ करते हैं वे पाप रहित तथा आयुष्मान और पुत्र-  
वान् होकर अंत में आदित्य लोक को प्राप्त होते हैं ॥३७-३८॥

### ॥ वराह, नृसिंह आदि अवतार ॥

प्रादुर्भवान्पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः ।  
सता कथयतामेव वाराह इति न श्रुतम् ॥१॥  
न जाने तस्य चरितं न विधिं नैव विस्तरम् ।  
न कर्मगुणसतानं न हेतुं न मनीषितम् ॥२॥  
विस्तरेणैव कर्माणि सर्वाणि रिपुघातिनः ।  
श्रोतुमिच्छाम्यशेषेण हरे कृष्णस्य धीमतः ॥३॥  
कर्मणामानुपूर्व्यान्व प्रादुर्भावाच्च या विभो ।  
या चास्य प्रकृतिर्ब्रह्म स्ता च व्याख्यातुमर्हसि ॥४॥  
कथं च भगवान्विष्णुं सुरशत्रुनिषूदनं ।  
धनुर्देवकुले धीमान्वासुदेवत्वमागतं ॥५॥  
अमरैरावृतं पुण्यं पुण्यकृद्भिर्निषेवितम् ।  
देवलोकं समुत्सृज्य मर्त्यलोकमिहागतं ॥६॥  
देवमानुषयोनेता यो भुवः प्रभवो विभुः ।  
किमर्थं दिव्यमात्मानं मानुष्ये सन्धयोजयत् ॥७॥  
यश्च वत्सल्येको मानुषाणामनामयम् ।  
मानुष्ये स कथं बुद्धिं चक्रं चक्रभृता वरः ॥८॥  
गोपायनं यं कुरुते जगत् सर्वलोचिकम् ।  
स कथं गा गतो देवो विष्णुर्गोपत्वमागतः ॥९॥



सुवसोम शूर्पमुशल प्रोक्षण दक्षिणायनम् ।  
 अध्वर्युं सामग विप्र सदस्यसदन सद ॥६  
 गूप समित्कुश दर्वी चमसोलूखलानि च ।  
 प्राग्वश यज्ञभूमि च होतार चयन च यत् ॥७  
 हत्वान्यतिप्रमाणानि चराणि स्थावराणि च ।  
 प्रायश्चित्तानि चार्थं च स्थण्डिलानि कुशास्तथा ॥८

वंशम्पायन जी ने कहा—हे राजन ! तुमने मुझ पर कठिनाई से ढोए जाने वाला प्रश्न भार लाद दिया है । आज आपने सोभाग्यवश श्रीकृष्ण की कप सुनने की इच्छा की है, इसलिये मैं उनकी कथा तुम्हारे प्रति कहता हूँ, मुझे ॥१-२॥ वेद के जानने वाले ब्राह्मण जिसे सहस्राक्ष, सहस्रास्य सहस्रभुज, अव्यय सहस्रशिर, सहस्रकर, सहस्रजिह्व, सहस्रमुकुट, सहस्रवत, सहस्रादि आदि कहते हैं ॥३-४॥ जो अक्षय सवन, हवन, हव्य, होता, पवित्र पात्र, यज्ञवदी, दीक्षा, सुव, सोम, सूर्य, मुसल प्रोक्षणी पात्र तथा दक्षिणायन हैं, जो सामगान करने वाले विप्र, यज्ञ के सदस्य, यज्ञ सदन सभा, गूप, समिधा, कुश, चमस, उलूखल प्राग्वश, यज्ञभूमि, ऋत्विज्, स्थण्डिल, शकट इत्यादि हैं तथा जो सोमक्रयार्थ स्थावर, जगम, प्रायश्चित्त, अर्घ्य और कुश हैं ॥५ ॥

मन्त्र यज्ञवह बर्हि भाग भागवह च यत् ।  
 अग्नेभुज सोमभुज धृताचिपमुदायुधम् ॥६  
 आहुर्वेदविदो विप्रा य यज्ञे शाश्वत विभुम् ।  
 तस्य विष्णो सुरेशस्य श्रीवत्साङ्गस्य धीमत ॥१०  
 प्रादुर्भाजिसहस्राणि अतीता न सशय ।  
 भूयश्चैव भविष्यन्तीत्येवमाह प्रजापति ॥११  
 यत्पृच्छसि महाराज पुण्या दिव्या कथा शुभाम् ।  
 यदर्थं भगवान्विष्णु सुरेशो रिपुसूदन ।  
 देवलोकं समुत्सृज्य वसुदेवकुलेऽभवत् ॥१२  
 यत्तेऽहं सप्रवक्ष्यामि शृणु सर्वमशेषतः ।  
 वासुदेवस्य माहात्म्यं चरितं च महाद्यते ॥१३

हितार्थं मुरमत्वांना लोकाना प्रमवाय च ।  
 बहुश सर्वभूतात्मा प्रादुर्भवनि वार्यत ॥१४  
 प्रादुर्भावाश्च वदयामि पुण्यान्दिव्यगुणैर्युतान् ।  
 छान्दसीमिरुदाराभि श्रुतिभि समलकृतान् ॥१५  
 शुचि प्रयतयाभूत्वा निराध जनमेजय ।  
 इद पुराण पश्य पुण्य वेदैश्चनमितम् ॥१६  
 हन्त ते कथयिष्यामि विष्णोर्दिव्या कथा गृणु ।  
 यदायदा हि धर्मस्य ग्नानिर्भवति भारत ।  
 धर्मसंस्थापनार्थाय तदा सम्भवति प्रभु ॥१७

जो मन्त्र, यज्ञग्रह, बलि, जाग, भागवद्, अग्नेमुख, सोनमुख, हुतादि, उदायुष, एग शास्त्रन विमु है, उन श्रीवाराकित भगवान् देवदेव श्री नारायण का अवतार आ-व बार हो चुका है और अभी प्रजापति के द्वारा मुना है कि ये पुनः अवतार धारण करेगे ॥१-११॥ ह महाराज ! भगवान् विष्णु उग दिव्य देह और देवलोक को छोड़ कर बभुदर के यहाँ बसों अवतीर्ण हुए, तुम्हारा यह प्रश्न आयत्त खेप्ट है ॥१२॥ इन प्रश्न के समाधान स्वरूप मैं तुम्हें उनका माहात्म्य एवं चरित्र आदि ग अन्त तक मुनाता हूँ, तुम राज मन ग ध्यान करो ॥१३॥ ये भगवान् सभी भूतों के आत्मा हैं तथा देवताओं और मनुष्यों के कल्याण के निमित्त आम्बार अवतीर्ण होत हैं ॥१४॥ भगवान् विष्णु के पवित्र चरित्र का गुनना पुराण और बद् के समान पुण्यकृत का देने वाला है, इसलिये तुम क्षाि नपूर्वक समय बित्त से इस आम्भान का समो, भगवान् का अवतार धमी होजा है जब जगत् में धर्म का हास होजा है । उस समय के धर्म का पुन स्थापन करते हैं ॥१५-१७॥

तस्य त्पे वा महाराज भूतिर्भवनि सत्तमा ।  
 नित्य दिविष्टा या राजगमश्चरति दुश्चरम् ॥१८  
 द्वितीया साम्य दायने निद्रायोगमुपास्यौ ।  
 प्रजागहारसर्गाय विमल्यारनविषिन्नायम् ॥१९



सुप्त्वा युगसहस्रं स प्रादुर्भवति कार्यतः ।  
 पूर्णं युगसहस्रं तु देवदेवो जगत्पतिः ॥२०॥  
 पितामहो लोकपालाश्चन्द्रादित्यौ हुताशनः ।  
 ब्रह्मा च कपिलश्चैव परमेष्ठी तथैव च ॥२१॥  
 देवाः स्तपयश्चैव त्र्यम्बकश्च महायशः ।  
 वायु समुद्राः शैलाश्च तस्य देहः समाश्रिताः ॥२२॥  
 सनत्कुमारश्च महानुभावो मनुर्महात्मा भगवान्प्रजाकरः ।  
 पुराणदेवोऽयं पुराणि चक्रे प्रदीप्तवैश्वानरतुल्यतेजाः ॥२३॥  
 येन चार्णवमध्यस्थो नष्टे स्थावरजङ्गमे ।  
 नष्टे देवासुरगणे प्रनष्टोरगराक्षसे ॥२४॥  
 योद्धुकामी सुदुर्धर्षो दानवीं मधुकंठभी ।  
 हतौ प्रभवता तेन तयोर्दत्त्वाऽमितं वरम् ॥२५॥

धर्म के पुनर्स्थापन के लिये भगवान् की जो मूर्ति प्रादुर्भूत होती है वह उनकी राजसी मूर्ति कही जाती है और जो थोड़ी मूर्ति देवलोक में स्थित रह कर सदा तप-रत रहती है, वह सात्विक कहलाती है ॥१८॥ उनकी जो मूर्ति सृष्टि के सहाय्य सदा योगनिद्रा का अवसम्भन किये रहती है, वह लामसी मूर्ति है ॥१९॥ योगनिद्रा के आश्रम में वे भगवान् एक हजार युग तक ध्यान करते रहते हैं । इसके पश्चात् पुनः सृष्टि-रचना में लग जाते हैं ॥२०॥ उस समय ब्रह्माजी, सभी लोकपाल, सूर्य-चन्द्र, अग्नि, कपिलमुनि, सप्तर्षि, त्र्यम्बक, वायु, चारों समुद्र, सनत्कुमार और प्रजापालक मनु उन भगवान् से ही उत्पन्न होते हैं, तभी प्रदीप्त अग्नि के समान अत्यन्त तेज वाले वे पुराण पुरुष शम, नगर आदि की भी रचना करते हैं ॥२१-२३॥ जब एक हजार युग व्यतीत हो जाते हैं, तब सम्पूर्ण सृष्टि उन्हीं के देह में विलीन हो जाती है । इस प्रकार सभी स्थावर-जगम जीव, देवता, असुर, राक्षस, उरग आदि के नाश को प्राप्त होने पर जब दो दुर्दान्त दैत्य मधुकंठभ भगवान् श्री विष्णु से युद्ध करने के लिये उपस्थित हुए, तब उन्होंने उन दानवी को मोक्ष प्राप्त कराने वाला वर देकर समुद्र में हनष्ट कर दिया ॥२४-२५॥

पुरा वमननाभस्य स्वपन. सागराभमनि ।  
 पुष्करे यत्र मन्मता देवा सपिणगा. पुरा ॥२६॥  
 एष पौष्करको नाम प्रादुर्भावो महात्मनः ।  
 पुराणे वक्ष्यते यत्र देव श्रुतिममाहिन ॥२७॥  
 वाराहस्तु श्रुतिमुजः प्रादुर्भावो महान्मनः ।  
 यत्र विष्णु. मुरत्येष्टो वाराह रूपमास्थितः ।  
 मही सागरपर्यन्ता मर्शलवनकाननाम् ॥२८॥  
 वेदपादो यूयदष्टः ऋतुदन्तश्चिनीमुखः ।  
 अग्निजिह्वो दमरोमाग्रहृणीर्षो महातपाः ॥२९॥  
 महोरात्रे क्षणो दिव्यो वेदाङ्गश्रुतिभूषण ।  
 आज्यनाम. श्रुवतुष्टः सामधोपश्वनी महान् ॥३०॥

एक समय जब भगवान् योगनिद्रा के आश्रय में क्षीरगिष्णु में ली रहे थे, वी उनकी नाभि से एक कमल उत्पन्न हुआ, जिसमें ब्रह्मादि देवताओं और गुरियों की उत्पत्ति हुई । इसलिए भगवान् के उक्त अवतार को पुष्करावतार कहते हैं ॥२६-२७॥ हे राजन् ! नारायण का बाणहवतार मुनने में अद्भुत मशुर है । इन अवतार में नारायण ने वाराह रूप धारण किया था और उन्होंने मनुष्य में प्रविष्ट होकर जब में दृढी हुई वन परंतों से कुक्ष पृथिवी को धरने दाँतों से निकाला था ॥२८॥ बाणहवतार के समय चारों वेद उनके पाँव से, मूल दन्त, यज्ञ हाथ, बिजि मुग, अग्नि जिह्वा, कुम रोम, दिव्य-रात्रि मेन, वेदाङ्ग कानों से मानुष्य, पुत्र नादिका, श्रुवानुग और सामान्य उनका वस्तु स्वर था ॥२९-३०॥

परमं तत्त्वमय श्रीमान्मन्त्रविक्रममन्त्रतः ।  
 प्राप्तिरित्तनयो योग. पशुमानुसंहाभुजः ॥३१॥  
 उद्गातन्तो होमतिङ्ग. पनवीत्रमहोपधि ।  
 यान्तराभा मन्त्रगिरिविहृत. मोमशोपितः ॥३२॥  
 येश्वरान्तो हृषिकेन्तो हृषिकेन्त्यावेगवान् ।  
 प्राप्तिरित्तनयो पृथिव्यान्नानाशोकाभिराशितः ॥३३॥

दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो महान् ।  
 उपाकर्मोष्ठरुचक प्रवर्ग्यवित्तभूषण ॥३४  
 नानाछन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासन ।  
 छायापत्नीसहायो वै मेरुशृङ्ग इवोच्छ्रित ॥३५  
 मही सागरपर्यन्ता सशलवनकाननाम् ।  
 एकार्णवजले भ्रष्टामेकार्णवगता प्रभु ॥३६  
 दष्टया य समुद्धृत्य लोकाना हितकाम्यया ।  
 सहस्रशीर्षो देवादिश्चत्वार पृथिवी पुन ॥३७  
 एव यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना ।  
 उद्धृता पृथिवी सर्वा सागराम्बुधरा पुरा ॥३८

धर्म और सत्य श्री वे, पशु दोनों जगह, कार्य विक्रम सत्क्रिय, प्रायश्चित्त  
 अत्यन्त धीर मन्त्र, उद्गाता अन्न, होम उत्पन्न, सब औपधियाँ दीर्घ, बामु अतः रात्म  
 मन्त्र स्फिक, विवृत सोम रगत, वेदी स्कन्ध, हवि गध, हव्य-कव्य वेग, प्रा-वश श्रेष्ठ  
 दक्षिण हृदय, स्वाध्याय स्वीकार, ओष्ठ भूषण तथा धर्म स्थापना के लिये महा-  
 धीर रूप में परिणति हो उनके आभूषण थे ॥३१-३४॥ विविध छन्द मार्ग हुए,  
 गुप्त उपनिषद् आसन, छाया पत्नी रूपा हुई। उस समय इस प्रकार का यज्ञ वाराह  
 रूप धारण करने वाले दीक्षाचित, योगी, सत्यधर्ममयात्मक सहस्र  
 शीर्ष भगवान् विष्णु ऐसे देह को धारण करके सुमेरु शृङ्ग के समान अत्यन्त  
 ऊँचे हो गए, फिर उन देवादिदेव भगवान् ने लोककल्याणार्थ जल में प्रवेश करके  
 पर्वतों और वनों से परिपूर्ण पृथिवी को समुद्र से निकाला ॥३५-३८॥

धाराह एष वयितो नारासहमत शृणु ।  
 यत्र भूत्वा मृगेन्द्रेण हिरण्यवशिपुर्हत ॥३९  
 पुरा वृत्तयुगे राजन्सुरारिवलदपित ।  
 दैत्यानामादिपुरपञ्चचार तप उत्तमम् ॥४०  
 दश वर्षसहस्राणि क्षतानि दश पञ्च च ।  
 जलोपवासनिरत स्यान्मोनदृढव्रत ॥४१

ततः शमदमाम्यां च ब्रह्मचर्येण चानघ ।  
 ब्रह्मा प्रीतोऽभवत्तस्य तपसा नियमेन च ॥४२॥  
 तं ये श्रव्यंभूमेगवान्श्रवमागन्ध भूपते ।  
 विमानेनावं वर्णेन हंसयुक्तेन भाम्बता ॥४३॥  
 आदित्येयंमुनिः साध्वैर्मरिद्भिर्यद्वैतैः सह ।  
 रत्नं विश्वमहायज्ञं यदाराक्षमकिन्नरैः ॥४४॥  
 दिशामिविदिनाभिश्च नदीभिः सागरैस्तथा ।  
 नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च येचरैश्च महाग्रहैः ॥४५॥  
 देवपिभिन्नपोवृद्धैः मिदं मज्जपिभिस्तथा ।  
 राजपिभिः पुण्यतमैर्गन्धर्वैश्चाप्सरोगणैः ॥४६॥  
 चराचरगुरुः श्रीमान्नृतः नवैः मुरैस्तथा ।  
 ब्रह्मा ब्रह्मपिदां श्रेष्ठो देव्यं यचनमब्रवीत् ॥४७॥

। यह भगवान् के बारहावतार का वर्णन हुआ, अब उस नृसिंहावतार का जिन ब्रह्मा हैं जिसे धारण करते भगवान् विष्णु ने हिरण्यवर्णिनु का महार या था ॥१३॥ प्राचीनकाल की बात है, मथुरा में देवराज हिरण्यवर्णिनु ने तब जब-भगवान् के महारे ग्राह्य हुआ बरों तक शमदमपूर्वक धार तपस्या की थी १०-४१॥ उसके शम-दमादि गुण, ब्रह्मचर्य, व्रत, तप आदि बरों ने ब्रह्मात्री चक्र प्रगल्भ हुए । ४२॥ फिर आदित्य, वसु, माध्य, मरु, रत्न, यज्ञ, यज्ञाग, गता, किन्नर, दिग्, विदिग्, नदी, मरुद्, नक्षत्र, मुहूर्त, मेघर, महाग्रह, देवर्गि, ष, मज्जपि, राजर्गि एवं मयवों गति देवीपमान ब्रह्मात्री करने हगमय शिमान : ४३ कर हिरण्यवर्णिनु के साथ जाकर बने लगे ॥४३-४७॥

प्रीतोऽग्नि तव मनस्य तपसाज्जेन मुद्रन ।  
 यर यय भद्रं ते यदेष्टं वाममाप्नुहि ॥४८॥  
 न देवानुरगन्धर्वा न दक्षोन्मगाशनाः ।  
 न मानुषाः पिताचार्य निहन्तुर्ना पचंचन ॥४९॥  
 श्रव्यं या न मां शानं ब्रूया मोरनिनामह ।  
 तत्तुङ्गारमा दृग्ग वरनेन शृतीभ्यहम् ॥५०॥

न शस्त्रेण न चास्त्रेण गिरिणा पादपेन वा ।  
 न शुष्केण न चार्द्रेण स्यान्न चान्येन मे वध ॥५१॥  
 पाणिप्रहारेणैकेन सभृत्यवसवाहनम् ।  
 यो मा नाशयितुं शक्तं स मे मृत्युर्भविष्यति ॥५२॥  
 भवेयमहमेवार्कं सोमो वायुर्हताशनः ।  
 सलिलं चान्तरिक्षं च नक्षत्राणि दिशो दश ॥५३॥  
 अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवो यमः ।  
 धनदश्च घनाध्यक्षो यक्ष किंपुरुषाधिप ॥५४॥

हे श्रेष्ठ वरुण ! मैं तुम्हारे तप से अत्यन्त प्रसन्न हूँ, तुम इच्छित  
 माँगो, तुम्हारी कामना अवश्य पूरी होगी ॥५८॥ हिरण्यवक्षिपु ने कहा—हे  
 पितामह ! मुझे ऐसे वर की कामना है, जिससे देवता, वधुर्व, असुर, यक्ष, उरग,  
 राक्षस, पिशाच और मनुष्य मे से कोई भी मेरा वध न कर सके ॥५६॥ तपो  
 से युक्त ऋषि भी रूष्ट हो जायें तो मुझे शाप न दे सकें और शस्त्रास्त्र, पर्व  
 वृक्ष या शुष्क अथवा आद्र कोई भी पदार्थ मेरी मृत्यु का कारण न हो ॥५०-५१॥  
 जो एक घण्टा मार बर ही भृश सेना, वाहनादि के सहित मुझे नष्ट कर सके,  
 मैं उसी के हाथ से मृत्यु को प्राप्त होऊँ, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, जल, आकाश,  
 नक्षत्र, दश दिशाएँ, काम, क्रोध, वरुण, इन्द्र, यम, कुबेर, यक्ष और किम्पुष्य  
 का अधीश्वर भी मैं ही हो जाऊँ ॥५३ ५४॥

एवमुक्तस्तु दैत्येन स्वयभूभंगवास्तदा ।  
 उवाच दैत्यराज तं प्रहसन्नूपसत्तम ॥५५॥  
 एते दिव्या वरास्तात मया दत्तास्तवाद्भुता ।  
 सर्वान्कामानिमास्तात प्राप्स्यसि त्वं न शक्य ॥५६॥  
 एवमुक्त्वा तु भगवाञ्जगामावाशमेव हि ।  
 वैराज ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥५७॥  
 श्रुत्वा देवा वरं तं च दत्तं सलिलयोनिना ।  
 विभुं विज्ञापयामासुर्देवा शक्रपुरोगमा ॥५८॥

ततो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा मुनयश्च यः ।  
 वत्सदानं श्रुत्वा ते पितामहमुपनिश्चिता ॥५८॥  
 वरेणानेन भगवन्वध्निष्यन्ति न नोऽमुर ।  
 ततः प्रसीद भगवन्वधोऽप्यस्य विचिन्त्यनाम् ॥५९॥  
 भगवान्मवंभूतानां स्वयम्भूरादिकृद्विभु ।  
 नृपता च हृष्यकृत्त्यानामव्यक्तः प्रकृतिध्रुवः ॥६०॥  
 सर्वलोभहिनः वाक्यं श्रुत्वा देवः प्रजापतिः ।  
 प्रोवाच भगवान्वाक्यं सर्वान्देवगणान्मदा ॥६१॥  
 अवश्यं त्रिदशान्तेन प्राप्स्यस्य तपसः फलम् ।  
 तपसोऽज्जेऽस्य भगवान्वत्प्रविष्णुः करिष्यति ॥६२॥  
 एवञ्च श्रुत्वा सुराः सर्वे वाक्यं पञ्चजस्रमवान् ।  
 म्यानि म्यानानि दिव्यानि जग्मुस्ते वै मुदान्विता ॥६३॥

हिरण्यकशिपु, के इस प्रकार कहन पर स्वयम्भू ब्रह्माजी ने हँसते हुए कहा ५५॥ ब्रह्माजी बोले—मैं तुम्हें यह अद्भुत वर देता हूँ, तुम्हारी सब इच्छायें पूर्ण होगी, इसमें शक नहीं है ॥५६॥ यह कह कर ब्रह्माजी आकाश मार्ग से उन ऋषियों द्वारा मेवित ब्रह्मलोक को चले गये ॥५७॥ ब्रह्माजी द्वारा दिये गये वरदान की बात सुन कर इन्द्रादि देवता, नाग, गन्धर्व और मुनिगण ब्रह्माजी पास पहुँचे ॥५८-५९॥ उन्होंने कहा—७ भगवन् ! आपन उस देव को जो रक्षित है उनके प्रभाव से वह देव हमें भय करेगा, इसलिए अब आप मार कर प्रसन्न होकर उनका महार का कोई उपाय कीजिए ॥६०॥ हे प्रभो ! वह स्वयम्भू है जगत् के सम्पूर्ण जीव आपन ही उत्पन्न हुए हैं, सब हृष्यकृत्त्या गण आप ही हैं, अनेक प्रकृति तन्त्र को आपन में कोई मनस नहीं है ॥६१॥ वे लोभ का हिन करने वाली इस बात को सुन कर निश्चिन्त ब्रह्माजी ने कहा—  
 देवराज ! हिरण्यकशिपु को उसकी तपस्या का फल तो अवश्य ही मिलना पड़ेगा, परन्तु फल प्राप्ति के पश्चात् भगवान् विष्णु स्वयं ही उसका महार करेंगे ॥६२-६३॥ ब्रह्माजी ने सुन गे इस प्रकार का आश्वासन प्राप्त कर सभी आत्मा देव-  
 तादि भगवन्-भगवन् लोभ को प्रमत्ततापूर्वक गये ॥६४॥

लब्धमाने वरे चापि सर्वा सोऽबाधत प्रजा ।  
 हिरण्यकशिपुर्देत्यो वरदानेन दर्पित ॥६५॥  
 आश्रमेषु महाभागान्मुनीन्वे शसितव्रतान् ।  
 सत्यधर्मरतान्दान्तापुरा धर्पितवास्तु स ॥६६॥  
 देवास्त्रिभुवनस्थान्तास्तु पराजित्य महासुरः ।  
 नैलोक्य वशमानीय स्वर्गे वसति दानव ॥६७॥  
 यदा वरमदोन्मत्तो न्यवसद्दानवो भूवि ।  
 यज्ञियान्कृतवान्देत्यान्देवाश्चैवाप्ययज्ञियान् ॥६८॥  
 आदित्याश्च ततो रुद्रा विश्वे च मरुतस्तथा ।  
 शरण्य शरण विष्णुमुपाजग्मुर्महाबलम् ॥६९॥  
 वेदयज्ञमय ब्रह्म ब्रह्मदेव सनातनम् ।  
 भूत मध्य भविष्य च प्रभु लोकनमस्कृतम् ।  
 नारायण विभु देवा शरण शरणागता ॥७०॥  
 सायस्व नोऽद्य देवेश हिरण्यकशिपोर्भयात् ।  
 त्वहि न परमो धाता ब्रह्मादीना सुरोत्तम ॥७१॥  
 त्वहि न परमो देवस्त्वहि न परमो गुरु ।  
 उत्फुल्लाम्बुजपत्राक्ष शत्रुपक्षभयकर ॥७२॥  
 क्षयाय दितिवशस्य शरण त्व भवस्व न ॥७३॥

दैत्यराज हिरण्यकशिपु वरदान प्राप्त होते ही मदान्ध हो गया और उसने  
 अठपरायण सत्य धर्म रत आश्रमवासी मुनियों को सतप्न करना आरम्भ किया  
 ॥६५॥ ६६॥ फिर त्रैलोक्याधिपति देवताओं को परास्त कर लिया तथा स्वर्ग को  
 जीत कर, उसी में निवास करने लगा ॥६७॥ तब उसने देवताओं को यज्ञ भाग  
 से च्युत करने दैत्यों को यज्ञ भागाधिकारी बनाया ॥६८॥ यह देख कर आदित्य,  
 रुद्र, विश्वदेवा, भरद्गण आदि तीनों लोकों के पूजनीय भगवान् विष्णु की शरण  
 में जाकर निवेदन करने लगे—ह देवेश । आपने ही हमको रचा है, आप ही  
 हमारे परमदेव तथा परमगुरु हैं, हम हिरण्यकशिपु से डर कर आपकी शरण में

स्थित हुए हैं, थाय उसका सहार कीजिये, जिस प्रकार भी समझ हो, उसके त्यागारों से हमारी रक्षा करिये ॥६६-७२॥

भयं त्यजध्वममरा ह्यभयं वो ददाम्यहम् ।  
 तथैव क्षिदिवं देवाः प्रतिपत्स्यथ मा चिरम् ॥७४  
 एष तं नगणं दैत्यं वरदानेन दपितम् ।  
 अवध्यममरेन्द्राणां दानयं तं निहन्यहम् ॥७५  
 एवमुक्त्वा स भगवान्विमृग्य त्रिदशेश्वरान् ।  
 हिरण्यरुनिनो राजन्नाजगाम हरिः सुभाम् ॥७६  
 नरस्य कृत्वाऽघंतनुं सिंहस्याघंतनुं प्रभुः ।  
 नारमिहेण वपुषा पाणि मंस्पृश्य पाणिना ॥७७  
 जीमूतघनमंकाशो जीमूतघननिःस्वनः ।  
 जीमूतघनदीप्तोजा जीमूत इव वेगवान् ॥७८  
 दैत्यं सोऽतिवसं दीप्तं दृष्ट्वाऽहं तविक्रमन् ।  
 दृष्ट्वाँदैत्यगणैर्गुप्तं हतयानेकपाणिना ॥७९  
 नृनिह एषः कथिनो भूयोऽयं वामनोऽपरः ।  
 यत्न वामनमाश्रित्य रूपं दैत्यविनाशकृत् ॥८०  
 यत्नेवंनयनो यज्ञे यतिना विष्णुना पुरा ।  
 विक्रमं मित्रभिरद्योम्यः क्षोभितान्ते महामुराः ॥८१

भगवान् विष्णु ने कहा—हे देवगण ! भय का त्याग करो, तुम मरने में अबच डेठा है, तुम्हें भीड़ ही स्वर्ग के राज्य की पुनः प्राप्ति होगी ॥७४॥ दानकरति हिरण्यरुनिनु दर प्राण करने मुंहारे द्वारा मारा नहीं जा सकता, हमने वह अत्यन्त अभिमानो हो गया है, परन्तु मैं समझे सब अनुपायों का प्रयत्न कर दायेंगा ॥७५॥ वेगवत्पवन जो बोले—हे राजन् यह आश्वासन देकर भगवान् ने देपताओं को बिदा किया और स्वयं अर्द्ध नाग में अनुप्य और अर्द्ध नाग में सिंह देह धारण करते हरिण्यरुनिनु को मना में मरे, उग मलय उनका देह मगाइ मेघ जैसा था । मेघ के समान हो उनकी मजेना सो, वेगा ही वेग था ।



वही उन्होंने बस के दर्प से परिपूर्ण दंत्यों से घिर हुए सिंह के समान पराक्रम, तथा दुर्धन वीर हिरण्यनसिपु को एका ही क्षण में मार कर समाप्त कर दिा ॥७६-७६॥ यह नृसिंहावतार की कथा हुई, अब वामनावतार का वर्णन करता जिसमें वामन रूप धारण करके भगवान् ने दंत्या का सहार किया था ॥८० पूर्वकाल की बात है—राजा बलि ने कारण उन्होंने वामन रूप धारण कर अप तीन पगो से दंत्यों में अत्यन्त शोभ उपस्थित कर दिया ॥८१॥

नानाप्रहरणा घोरा नानावेपा महाजवा ।  
 कूर्मकुवकुटवक्त्राश्च शशोलूकमुखास्तथा ॥८२  
 खरोष्ट्रवदनाश्चैव वराहवदनास्तथा ।  
 भीमा मकरवक्त्राश्च क्रोष्टुवक्त्राश्च दानवा ।  
 आबुदुर्गवक्त्राश्च घोरा वृकमुखास्तथा ॥८३  
 मार्जारगजवक्त्राश्च महावक्त्रास्तथाऽपरे ।  
 नक्रमेघानना शूरा गोजाविमहिपानना ॥८४  
 गोधाशल्यकवक्त्राश्च क्रौञ्चवक्त्राश्च दानवा ।  
 गरुडानना खड्गमुखा मयूरवदनास्तथा ॥८५  
 गजेन्द्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनाम्बरा ।  
 चीरसवृतदेहाश्च तथा वल्कलवाससा ।  
 ढष्णीषिणो मुकुटिनस्तथा कुण्डलिनोऽसुरा ॥८६  
 किरीटिनो लम्बशिखा कम्बुग्रीवा सुवर्चसा ।  
 नानावेपधरा दंत्य नानामाल्यानुलेपना ॥८७  
 स्वान्यायुधानि सगृह्य प्रदीप्तान्यतितेजसा ।  
 क्रममाण हृषीकेशमुपावर्तन्त सर्वश ॥८८

उन दंत्यों के पास विभिन्न प्रकार के शस्त्रास्त्र थे और वेशभूषा अत्यन्त भयानक थी, उनमें भारी उत्साह था, उनमें से कोई भुर्गे के मुख वाला, कोई कछुए जैसा, कोई खरगोश जैसा और कोई उल्लू जैसे मुख वाला था ॥८२॥ कोई गधे जैसा, कोई सूअर से मुख का, कोई भगर, सियार, चूहा, मेढक, भेड़िय जैसा था तो कोई बिलाव, हाथी अथवा बड़े मुख का था । कोई मकर, भेड़, गाय,

पत्नीया भेन जेने मुग बासा या तो कोई गोहू अथवा हौव पक्षी के समान  
 ॥८३-८४॥ किसी ने शेर की गाल जोड़ रखी थी, कोई काने मृग का चर्म  
 लिए किये हुए था, किसी ने बन्कन ही पहन रखा था, किसी के मिर पर पाग  
 : तो किसी के शींग पर मुट्ठ या और बानों में कुट्टन सटक रहे थे ॥८६॥ कोई  
 ज़ोटपारी था, किसी की जिन्हा टूटन जम्बी थी, किसी का नठ दाँत जंझा था,  
 ३ प्रकार के दंत अथवा तेजसी सग रह थे, उनकी विभिन्न प्रकार की वेग-  
 श थी और ये अनेक प्रकार के गन्धादि धारण किये हुए थे ॥८७॥ अपने अस्त्र-  
 ङों में मुमग्जित हुए वे दंत अथवा तेजस्वी दिखाई देते थे, उन्होंने वामन  
 पवान् के वही पट्टे ही उन्हें सब ओर में घेर लिया ॥८८॥

प्रमथ्य सर्वान्दिनेयान्पादहन्मननं प्रभु ।  
 म्य वृत्ता महाभीम जहाराणु स मेदिनीम् ॥८९॥  
 तस्य त्रिमनो भूमि चन्द्रादिव्या म्नान्तरे ।  
 नम प्रक्रममाणस्य नाभ्या किं ममान्वितौ ॥९०॥  
 पर प्रक्रममाणस्य जानुदेगे स्थितापुमौ ।  
 विष्णोरतुनवीर्यस्य वदन्त्येव द्विजातय ॥९१॥  
 दत्ता न पृथिवी वृन्ना जित्वा चासुरपुङ्गवान् ।  
 ददौ शक्राय सिद्धिं विष्णुर्वनवता वरः ॥९२॥  
 एष ते वामनो नाम प्रादुर्भासो महात्मन ।  
 यद्विद्विद्विजंनेत्र मध्यते वंत्ताय वन ॥९३॥  
 भूयो भूतामरा विष्णो प्रादुर्भावो महात्मन ।  
 दत्तामेव इति गदान क्षमया परया मुता ॥९४॥  
 तेन नष्टेषु वेदेषु प्रक्षिप्तासु मणेषु च ।  
 चानुर्यण्ये नु मकीर्णे धर्मे निधित्वा गने ॥९५॥  
 अभियदंति चाधर्मे मन्दे नष्टेऽनृते स्थिते ।  
 प्रत्रासु शौर्यमात्मानु धर्मे चाकृत्ता गने ॥९६॥

तभी वामन देव ने अनेको आर्हन् की विद्वान् बना कर पण्ड और  
 तन्मार् कर ही उन देवों की पृथिवी पर दिये दिवा और इस प्रकार

पृथिवी का भार दूर हुआ ॥८६॥ वेदविद् ब्राह्मणों का बहना है कि जब वे भगवान् अपना पराक्रम दिखाते हुए पृथिवी पर रहते थे तब उनके यश-स्थान सूर्य और चन्द्रमा दिखाई देते थे । जब वे आकाश में स्थित रहते तब सूर्य-चन्द्राभि में होते थे तथा साधारण ऊँचाई पर स्थित होने से सूर्य-चन्द्र उनके प्रादेश में देखे जाते थे ॥८७-८९॥ इस प्रकार वामन भगवान् ने भीषण भमुरों को सहार करके पृथिवी का भार हरण किया और स्वर्ग राज्य इन्द्र को पुनः दिया । वेद विद् ब्राह्मण का गुणानुवाद इसी प्रकार करते आये हैं, यह भगवान् वामन देव की कथा सुनने सुनायी है ॥८२-८३॥ अब ॥ उनके दत्तात्रेय अवतार का वृत्तान्त कहता है ॥८४॥ हे राजन् ! जब वेद और वेदोक्त धर्मों का लो हो गया और चारों वरों के मनुष्यों के विचार सकीर्ण हो गये तथा धर्म के क्षियित होने से अधर्म की वृद्धि हो गई, सत्य के स्थान पर असत्य आ गया तो प्रजा छिन्न भिन्न होन लगी और धर्म भी अत्यन्त अशुभ हो गया ॥८५-८६॥

सहयज्ञक्रिया वेदा प्रत्यानीता हि तेन वै ।  
 चातुर्वर्ण्यमसकीर्णं कृतं तेन महारमना ॥८७॥  
 तेन हैहयराजस्य कार्तवीर्यस्य धीमत ।  
 वरदेन वरो दत्तो दत्तात्रेयेण धीमता ॥८८॥  
 एतद्बाहुद्वय यत्तो मृधे मम कुनेऽनघ ।  
 शतानि दश बाहूना भविष्यन्ति न सशय ॥८९॥  
 पालयिष्यसि कृत्स्ना च वसुधा वसुधाधिप ।  
 दुर्निरीक्ष्योऽरिवृन्दानां धर्मज्ञश्च भविष्यसि ॥९०॥  
 एष ते वैष्णव श्रीमान्प्रादुर्भावोऽद्भुत शुभ ।  
 कथितो वै महाराज यथाश्रुतमरिन्दम ।  
 भूयश्च जामदग्न्योऽयं प्रादुर्भावो महात्मन ॥९१॥  
 यत्र बाहुसहस्रेण विस्मित दुर्जय रणे ।  
 रामोऽर्जुनमनीकस्य जघान नृपतिं प्रभु ॥९२॥  
 रथस्य पायिव राम पातयित्वाऽर्जुन युधि ।  
 धर्पयित्वा यथाकाम क्रोधमानं च मेघवत् ॥९३॥

ऐसे समय में भगवान् दत्तात्रेय ने अवतार लेकर पुनः वेदोक्त कर्म, यज्ञानुष्ठान, विचार-विस्तार एवं चारों आश्रमों को व्यवस्थित किया ॥६७॥ श्री दत्तात्रेय जी ने कार्तवीर्य को वर दिया कि समय-समय पर तुम्हारे यह दो हाथ ही सहस्र हाथ हो जायें करेंगे ॥६८-६९॥ हे कार्तवीर्य ! तुम समस्त पृथिवी का पालन करोगे, तुम धर्म के राजा होंगे और शत्रुओं की दृष्टि तुम्हारी ओर कभी न उठ सकेगी ॥१००॥ जिस प्रकार सुना था, वैसे ही तुम्हें दत्तात्रेय जी का वृत्तान्त सुना दिया, अब परशुराम जी का वृत्तान्त सुनो ॥१०१॥ इस अवतार में भगवान् ने परशुराम रूप से युद्ध में अजेय सहस्रभुज कार्तवीर्य का सहार किया था ॥१०२॥ उन्होंने रघुरूढ़ कार्तवीर्य को पृथिवी पर गिरा दिया और पकड़ कर घसीटा, तब वह मेघ के समान गज्जने और चीत्कार करने लगा ॥१०३॥

कृत्स्नं बाहुसहस्रं च चिच्छेद भृगुनन्दनः ।

परश्वधेन दीप्तेन ज्ञातिभिः सहितस्य वै ॥१०४॥

कीर्णा क्षत्रियकोटोभिर्मरुमन्दरभूषणा ।

स्निप्तकृत्वः पृथिवी तेन निःक्षत्रिया कृता ॥१०५॥

कृत्वा निःक्षत्रिया चैव भार्गवः सुमहातपाः ।

सर्वपापविनाशाय वाजिमेधेन चेष्टवान् ॥१०६॥

तस्मिन्त्यजे महादाने दक्षिणां भृगुनन्दनः ।

मारीचाय ददौ प्रीतः कश्यपाय वसुंधराम् ॥१०७॥

वारणांस्तुरगाञ्छीघ्रान् रथं च रथिनां वरः ।

हिरण्यमक्षयं धेनूगर्भजेन्द्रांश्च महामनाः ।

ददौ तस्मिन्महायजे वाजिमेधे महायथाः ॥१०८॥

अद्यापि च हितार्थाय लोकानां भृगुनन्दनः ।

चरमाणस्तपो दीप्तं जामदग्न्यः पुनः पुनः ।

तिष्ठते देववद्वीमान्महेन्द्रे पर्वतोत्तमे ॥१०९॥

एष विष्णोः सुरेशस्य शाश्वतस्याव्ययस्य च ।

जामदग्न्य इति ध्यातः प्रादुर्भावो महात्मनः ॥११०॥

इस अवस्था में ही परशुराम ने अपने फरसे से उधकी हजारों भुजाएँ

काट कर उसके साथियों को भी भार डाला ॥१०४॥ उन्होंने अपने एक परसे से ही करोडो करोड क्षत्रियों से युक्त इस पृथिवी को इक्कीस बार क्षत्रिय-विहीन कर दिया ॥१०५॥ इस प्रकार क्षत्रिय विहीन करने के पश्चात् उन्होंने उस पाप की निवृत्ति के लिए अश्वमेध यज्ञ किया ॥१०६॥ जिसमें उन्होंने हाथी, घोड़े, रथ, अपरिमित स्वर्ण, गौ आदि विविध दक्षिणार्थ दी और फिर मरीचिपुत्र कश्यप को सम्पूर्ण पृथिवी दान कर दी ॥१०७-१०८॥ वे अब भी लोक कल्याणार्थ घोर तपस्या करते हुए देवताओं के समान, महेन्द्र पर्वत पर निवास करते । ॥१०९॥ हे राजन् ! यह शाश्वत और अव्यय भगवान् विष्णु के परशुरामावतार की कथा मैंने कही है ॥११०॥

चतुर्विंशे युगे चापि विश्वामित्रपुर सर ।  
 राज्ञो दशरथस्यार्थं पुत्रं पद्मायतेक्षण ॥१११॥  
 कृत्वाऽऽत्मानं महाबाहुश्चतुर्धा प्रभुरीश्वर ।  
 लोके राम इति ख्यातस्तेजसा भास्करोपम ॥११२॥  
 प्रसादनार्थं लोकस्य रक्षसा निधनाय च ।  
 धर्मस्य च विवृद्धार्थं जज्ञे तप्त महायशा ॥११३॥  
 तमप्याहुर्मनुष्येन्द्र सर्वभूतपतेस्तनुम् ।  
 यस्मै दत्तानि चास्त्राणि विश्वामित्रेण धीमता ॥११४॥  
 वधार्थं देवशस्त्राणां दुर्धराणि सुगैरपि ।  
 यज्ञविघ्नवरो येन मुनीनां भावितात्मनाम् ॥११५॥  
 मारीचश्च सुबाहुश्च बलेन बलिनां वरो ।  
 निहतो च निराशी च कृतो तेन महात्मना ॥११६॥  
 वत्समाने मये येन जनकस्य महात्मन ।  
 भग्न माहेश्वर चापं श्रीडत्ता लीलया पुरा ॥११७॥

चौबीसवें युग में भगवान् विष्णु ने महामुनि विश्वामित्र को आगे बरके अपने को चार भाग में विभक्त किया और राजा दशरथ के घर अवतरित हुए ।  
 गर्भ में तमान तेजस्वी भगवान् राम ने इस अवतार में सोच रंजन, राक्षसोन्मूलन

सा धर्म-वृद्धि साधन किया था ॥१११-११२॥ ससारी व्यक्ति उन्हें राजा कहते  
देवताओं के शत्रु राक्षसा को मारने के लिये विश्वामित्र जी न उन्हें देवताओं  
के भी दुलभ महान् अस्त्र प्रदान किया, उन अस्त्रों के प्रभाव से उन्होंने यज्ञ-  
विध्वंसक मारीच-मुवाहु नामक राक्षसा को अपने बाणों की मार से दूर फेंका  
॥११४-११५॥ राजा जनक द्वारा किये गये यज्ञ में सम्मिलित होकर उन्होंने  
श्रीशङ्खचक्र ही शिव धनुष को तोड़ दिया ॥११७॥

य समा सर्वधर्मज्ञश्चतुर्दश वनेऽवसत् ।  
लक्ष्मणानुचरो राम सबभूतहिते रत ॥११८  
रुनिणी यस्य पार्श्वस्था सीतेति प्रयिता जने ।  
पूर्वोचिता तस्य लक्ष्मीर्भर्तारमनुगच्छति ॥११९  
चतुर्दश तपस्तप्त्वा वने वर्षाणि राघव ।  
जनस्थाने वसन्कार्यं त्रिदशाना चकार ह ।  
सीताया पदमन्विच्छत्तल्लक्ष्मणानुचरो विभु ॥१२०  
विराध च कश्यप च राक्षसी भीमविक्रमी ।  
जघान पुरपद्म्याघ्री गधवौ शापवीक्षितौ ॥१२१  
हुताशनाकैन्दुतडिदनाभं प्रतप्नजाम्भूनदचित्रपुच्छं ।  
महेन्द्रवज्राग्रनितुल्यसारं शरं क्षपीरेण विमोजितौ बलात् ॥१२२  
सुग्रीवस्य कृते येन वानरेन्द्रो महाबल ।  
बाली विनिहतो मुद्धे सुग्रीवश्चाभिषेचित ॥१२३  
देवासुरगणानां हि यज्ञगधर्वमोगिनाम् ।  
अवध्य राक्षसेन्द्रं तं रावण युधि दुर्जयम् ॥१२४  
मुक्त राक्षसकोटीभिर्नीलाजनचमोपमम् ।  
शूलोन्मयरावणं घोरं रावणं राक्षसेश्वरम् ॥१२५  
दुर्जयं दुर्धरं दृष्ट्वा शार्दूलसमविक्रमम् ।  
दुर्निरोक्ष्य सुरगणं वरदानेन दर्पितम् ॥१२६  
जघान सचिवं सादं ससैन्यं रावण युधि ।  
महाध्रुवनसकाशं महाकायं महाबलम् ॥१२७

तमागस्कारिणं घोरं पीलस्थं युधि दुर्जयम् ।  
 सप्तातृपुत्रसचिवं ससैन्यं क्रूरनिश्चयम् ॥१२८॥  
 रावणं निजधानाशु रामो भूतपतिः पुरा ।  
 मधोश्च तनयो दृप्तो लवणो नाम दानवः ॥१२९॥  
 हतो मधुवने वीरो वरहृष्टो महामुरः ।  
 समरे युद्धशीर्षेण तथा चान्यैर्जपि राक्षसा ॥१३०॥  
 एतानि कृत्वा कर्माणि रामो धर्मभृता वरः ।  
 दशाश्वमेधावृजास्थ्यानाजहार निरर्गलान् ॥१३१॥

किर सब प्राणिमो के कल्याण कर्म मे सगे हुए श्रीराम ने, सहस्रम सहि चौदह वर्ष वनवास किया ॥११८॥ भगवती लक्ष्मी सीता के रूप मे अवतार ग्रहण कर राम की भाषा हुई और वनवास के समय उनके साथ ही गई ॥११९॥ चौदह वर्ष तक वन मे रह कर श्रीराम ने देवताओं को पूरा किया । सीताजी को भी लक्ष्मण के सहित जाते हुए उन्होंने, विराध, और बन्ध नामक राक्षसों को अपने अमोघ बाणों से मार कर दिया, जिससे उन राक्षसों को गंधर्वों के पुत्र प्राप्ति हुई ॥१२०-१२१॥ अत्यन्त बली बालि का वध करके राम उसने भाई गुपीक के राज्य पर अभिषिक्त किया ॥१२२॥ जो राक्षस रावण देवता, दैत्य, यक्ष, राक्षस और गंधर्वों द्वारा भी नहीं मारा जा सकता था । रावण राक्षस जिसकी रक्षा मे सदा तत्पर रहते थे, जो वर प्राप्ति के बाद सर्वोत्तम हो गया था और जो सिंह के समान पराक्रमी तथा भीलाजित और भील मेघ के समान विराजताय था उस वरहृष्ट, दुराचारी, अपराधी और अजेय रावण को उसने भाई, पुत्र, भन्नी और सेना के सहित श्रीराम ने मार कर दिया । उन्हीं राम ने मधुवनय सवणागुर एव अग्न्याय राक्षसों को भी मार तथा इन महान जायों को पूर्ण करने उन्हीं अयोध्या जाकर दत्त अश्वमेध दिये ॥१२४-१३१॥

नाथ्य मन्ताशुभा बाधो नाशुल मास्ती वयो ।

न विनहरणं त्वासीदामे राज्यं प्रशासति ॥१३२॥

पर्यदेवन्न विधवा नानयाश्चाभवस्तदा ।  
 सर्वमासीज्जगद्दन्त रामे राज्य प्रशासति ॥१३३॥  
 न प्राणिना भय चापि जलानिलनिघातजम् ।  
 न च स्म वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते ॥१३४॥  
 ब्रह्म पर्यचरत्क्षत्र विश क्षत्रमनुव्रता ।  
 नार्यो नात्यचरन्मर्त्यन्मार्गो नात्यचरत्पति ॥१३५॥  
 सर्वमासीज्जगद्दन्त निर्देम्युरभवन्मही ।  
 राम एकांशमवद्भूतो राम पालयिताऽभवत् ॥१३६॥  
 आयुर्वर्षसहस्राणि तथा पुत्रमहसिंघ ।  
 अरोगा प्राणिनश्चासन्नरामे राज्य प्रशासति ॥१३७॥

ह राजन् ! उस रामराज्य में कभी कोई अशुभ बात सुनने की नहीं मिली थी, ममीर सदैव अनुकूल प्रवाहित होती थी, कभी कोई स्त्री विधवा नहीं मिली और चोरी का नाम भी न था, कभी किसी को जल या वायु से कष्ट नहीं मिला, कभी किसी वृद्ध की अपनी सन्तान का प्रेत-कार्य नहीं करना पड़ता था, त्रिय ब्राह्मणों की सेवा करते, वैश्य क्षत्रियों की और शूद्र तीनों वर्णों की सेवा तत्पर थे, पति-पत्नी में भी कभी कोई किसी पर परस्पर अश्याचार नहीं करता था ॥१३२-१३५॥ एवमान राम ही सबके राजा और पालक थे, इसलिये सम्पूर्ण देव सुखी तथा दस्युओं से हीन था ॥१३६॥ मनुष्यों की परमायु हजार वर्ष की थी, एक एक मनुष्य के हजार-हजार पुत्र होते थे, रामराज्य में सभी लोग-हित रहते थे ॥१३७॥

देवतानामृषीणा च मनुष्याणा च सर्वश ।  
 पृथिव्या समवायोऽमूद्रामे राज्य प्रशासति ॥१३८॥  
 गाया अप्यत्र गायन्ति ये पुराणविदो जना ।  
 रामे निबद्धतत्त्वार्था माहात्म्य तस्य धीमता ॥१३९॥  
 श्यामो युवा लोहिताक्षो दीप्तास्यो मितभाषिता ।  
 आजानुवाह सुमुखः सिंहस्कन्धो महाभुजः ॥१४०॥





छिन्नं बाहुसहस्रं च वाणस्यादभुतकर्मणः ।

नरकश्च हतः संप्ये यवनश्च महाबलः ॥१४८॥

हृतानि च महोपानां सर्वरत्नानि तेजसा ।

दुराचाराश्च निहताः पार्थिवाश्च महीतले ॥१५०॥

नवमे द्वापरे विष्णुरष्टाविशे पुराऽभवत् ।

वेदव्यासस्तथा जज्ञे जातूकर्ण्यपुरःसरः ॥१५१॥

एको वेदश्चतुर्धा तु कृतस्तेन महात्मना ।

जनितो भारतो वंश सत्यवत्याः सुतेन च ॥१५२॥

एते लोकहितार्थाय प्रादुर्भावा महात्मनः ।

अतीता. कथिता राजन्कथ्यन्ते चाप्यनागताः ॥१५३॥

वंशम्पावन जी ने कहा—हे राजन् ! भगवान् ने माधुर कल्प में लोक कल्याणार्थ अवतार ग्रहण कर महात्मा धीकृष्ण के रूप में जी कार्य किये, का वर्णन करता है ॥१४६॥ कृष्णावतार में उन्होंने शाल्व, मन्द, द्विविद, स, अरिष्ट, वृषभ, केसी, पूतना, कुबलयापीड हाथी, चाणूर, मुष्टिक आदि अनेक मनुष्य रूपधारी दैत्यो का सहार किया था । उन्होंने बाणासुर की हजार जाएँ काट डाली और अत्यन्त बली यवनराज और नरकासुर को भी मारा था ॥१४७-१४८॥ उन्होंने अनेक दुराचारी नरेशो का वध करके उनका धन, रत्नादि लीन लिया ॥१५०॥ अट्ठाईसवें द्वापर युग में भगवान् नारायण का नौवाँ अवतार हुआ था, उस समय वे जातूकर्ण्य के साथ वेदव्यास के रूप में अवतीर्ण हुए ॥१५१॥ उन सत्यवती-पुत्र ने वेद को चार भागो में विभक्त किया तथा भरत-जी को उत्पन्न किया था ॥१५२॥ हे राजन् ! मैंने इस प्रकार तुम्हें भगवान् अतीत में हुए अवतारो का वृत्तान्त सुनाया, अब आगे होने वाले अवतारो वर्णन कर रहा हूँ ॥१५३॥

कल्किविष्णुयुगा नाम शम्भलग्रामके द्विजः ।

सर्वलोकहितार्थाय भूयश्चोत्पत्स्यते प्रभुः ॥१५४॥

दशमो भाव्यसंपन्नो पाञ्चवल्क्यपुरःसरः ।

क्षपयित्वाच तान्सर्वान्भाविनाऽर्थेन चोदितान् ॥१५५॥

दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च ।

, अयोध्याद्विपत्तिर्भूत्वा रामो राज्यमकारयत् ॥१४१

श्रवसामयजुषा धोषो ज्याधोपश्च महात्मन ।

अव्युच्छिन्नोऽभवद्राज्ये दीयता भुज्यतामिति ॥१४२

सत्त्ववान्गुणसपन्नो दीप्यमान स्वतेजसा ।

शक्तिचन्द्र च सूर्य च रामो दाशरथिर्वभौ ॥१४३

ईजे क्रतुशतं पुण्यं समाप्नवरदक्षिणं ।

हित्वाऽयोध्यां दिव यातो राघव स महाबल ॥१४४

एवमेष महाबाहुरिक्वाकुकुलनन्दन ।

रावणं सगणं हत्वा दिवमाचक्रमे प्रभु ॥१४५

उस समय देवता, मनुष्य और ऋषि सब एक ही समान में साधु-साधु बैठते थे । पुराणवेत्ताओं ने उनका यशगान करते हुए कहा है कि राम ने अयोध्या राज्य का समावेश था । उनका श्याम वर्ण, लाल नेत्र और भुल तेजसा था, वे मितभाषी और लम्बी भुजाओं वाले थे, उनका स्कन्ध प्रदेश सिंह के समान उन्नत था, वे पुषा, बलवान और गुणवान थे, उन्होंने श्यारह हजार अर्घ्य अयोध्या का राज्य किया था ॥१३८॥ उनके राज्य में प्रत्यक्षा की टकार तम ऋक्, साम और यजुर्वेद की ध्वनि सदा होती रहती थी, सर्वत्र दान दो अन्न भोग करो की ध्वनि षण्णगोचर होती थी, राम के शीर्ष के समस्त सूर्य-चन्द्र लज्जते थे ॥१४२-१४३॥ हे राजन् ! इस प्रकार राघवेन्द्र राम ने अनुचरो सहित रावण को मारा और प्रचुर दक्षिणा वाले सौ यज्ञों को करके वे परम धर्म पपाते ॥१४४-१४५॥

अपर केशवस्याय प्रादुर्भावो महात्मनः ।

विस्थातो माथुरे कल्मे सर्वलोकहिताय च ॥१४६

यत्र सात्व च मैन्द च द्विविद कसमेव च ।

अरिष्टमृषम केशि पूतना दैत्यदारिकाय ॥१४७

नाग वृवलयापीड चाणूर मुष्टिक तथा ।

दैत्यान्मानुषदेहस्यान्सूदयामास वीर्यवान् ॥१४८

छिन्नं बाहुसहस्रं च वाणस्याद्भुतकर्मणः ।  
 नरकश्च हतः संत्ये यवनश्च महाबलः ॥१४८॥  
 हृतानि च महोपानां सर्वरत्नानि तेजसा ।  
 दुराचाराश्च निहताः पार्थिवाश्च महीतले ॥१५०॥  
 नवमे द्वापरे विष्णुरष्टाविंशे पुराऽभवत् ।  
 वेदव्यासस्तथा जज्ञे जातूकपर्णपुरःसरः ॥१५१॥  
 एको वेदश्चतुर्धा तु कृतस्तेन महात्मना ।  
 जनितो भारतो वंश सत्यवत्याः सुतेन च ॥१५२॥  
 एते लोकहितार्थाय प्रादुर्भावा महात्मनः ।  
 अतीताः कथिता राजन्कथ्यन्ते चाप्यनागताः ॥१५३॥

वंशम्पादन जी ने कहा—हे राजन् ! भगवान् ने मायुर कल्प में लोक-  
 कल्याणार्थं अवतार ग्रहण कर महात्मा श्रीवृष्ण के रूप में जो कार्य किये,  
 व वर्णन करता हूँ ॥१४६॥ वृष्णावतार में उन्होंने शाल्व, मैन्द, द्विविद,  
 अरिष्ट, वृषभ, केशी, पूतना, कुवलयपीड हाथी, चाणूर, मुष्टिक आदि  
 ५ मनुष्य रूपधारी दैत्यों का सहार किया था । उन्होंने बाणासुर की हजार  
 एं काट डाली और अत्यन्त धली यवनराज और नरकासुर को भी मारा था  
 ४७-१४६॥ उन्होंने अनेक दुराचारी मरेशों का वध करके उनका धन, रत्नादि  
 लिया ॥१५०॥ अट्ठाईसवें द्वापर युग में भगवान् नारायण का नौवां अव-  
 दूश था, उस समय वे जातूकर्ण के साथ वेदव्यास के रूप में अवतीर्ण हुए  
 ५१॥ उन सत्यवती-पुत्र ने वेद को चार भागों में विभक्त किया तथा भरत-  
 को उत्पन्न किया था ॥१५२॥ हे राजन् ! मैंने इस प्रकार तुम्हें भगवान्  
 तीव्र में हुए अवतारों का वृत्तान्त सुनाया, थक आये होने वाले अवतारों  
 वर्णन कर रहा हूँ ॥१५३॥

कल्किविष्णुयशा नाम शम्भलग्रामके द्विजः ।

सर्वलोकहितार्थाय भूयश्चोत्पत्स्यते प्रभुः ॥१५४॥

दशमो भाव्यसंपन्नो याज्ञवल्क्यपुरःसरः ।

क्षपयित्वाच तान्सर्वान्माविनाऽर्थेन चोदितान् ॥१५५॥

गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठा प्राप्स्यति सानुग ।  
 तत कुले व्यतीते तु सामात्ये सहसैनिके ॥१५६॥  
 नपेध्वथ प्रनष्टेषु तदा त्वप्रग्रहा प्रजा ।  
 क्षणेन निवृत्ते चैव हत्वा चान्योन्यमाहवे ॥१५७॥  
 परस्परहतस्वाश्च निराक्रन्दा सुदु खिता ।  
 एव कष्टमनुप्राप्त कलिसध्याशके तदा ।  
 प्रजा क्षय प्रयास्यन्ति साद्धं कलियुगेन ह ॥१५८॥  
 क्षीणे कलियुगे तस्मिस्तत कृतयुग पुन ।  
 प्रपत्स्यते यथान्याय रवभावादेव नान्यथा ॥१५९॥  
 एते चान्ये च बहवो दिव्या देवगुण्युक्ता ।  
 प्रादुर्भावा पुराणेषु गीयन्ते ब्रह्मादिभि ॥१६०॥  
 यत्र देवापि मुह्यन्ति प्रादुर्भावानुकीर्तने ।  
 पुराण वर्तते यत्त वेदश्च तिसमाहितम् ॥१६१॥  
 एतद्वृक्षमात्रेण प्रादुर्भावानुकीर्तनम् ।  
 वीर्यं कीर्तनीयस्य सर्वलोकगुरो प्रभु ॥१६२॥  
 प्रीयन्ते पितरस्तस्य प्रादुर्भावानुकीर्तनात् ।  
 विष्णोरतुलवीर्यं यं शृणोति कृताञ्जलि ॥१६३॥  
 एतास्तु योगेश्वरयोगमाया श्रुत्वा नरो मुच्यति सर्वपापै ।  
 श्रद्धां समृद्धिं विपुलाश्च भोगान्प्राप्नोति सर्वं भगवत्प्रसादात् ॥१६४॥

इसमें अवतार का वायंवाल पूछें होने पर भगवान् लोक बलवा  
 समस्त ग्राम में विष्णुयज्ञा नामक ब्राह्मण घर बत्की नाम से अवतीर्ण होगे ॥१॥  
 उस समय यथाशक्त्य के साथ क्षत्रियवादी बौद्धों को पहिले शास्त्रार्थ में  
 युद्ध में जीतेंगे और भावी बायों को सम्पन्न करन के लिये मगा-यमुना के  
 बाहिरे प्रदेश में शान्ति-साम करेंगे । फिर नारी आदि के अपहरण जैसे कि  
 में पट कर उस समय के राजा, मंत्री और सैनिक आदि परस्पर युद्ध कर  
 जायेंगे तब विद्वत् में अराजकता का साम्राज्य हो जायगा, । इसलिये प्र  
 परस्पर लड़ेंगे और जो बलवान् होंगे वे निर्वंशों से सर्वस्व छीन लेंगे । या

स्त्वित्वात् के सध्याश का होगा, इसलिये उपाय हीन, अत्यन्त दुःख और कष्ट  
म मत्पुत्र हृद् प्रजा कलियुग की समाप्ति के साथ ही समाप्त हो जायगी ॥१५५-  
१५८॥ इस प्रकार कलियुग के समाप्त होने पर सत्ययुग का पुन आरम्भ होगा  
और प्रजाजन स्वभाव से ही न्यायप्रिय हो जायेंगे, इसमें संशय नहीं है ॥१५९॥  
ग्रहावादी ऋषियो ने भगवान् विष्णु के ऐसे अनेक अवतारों का पुराणों में वर्णन  
किया है, जिन्हें सुन कर देवगण भी चकित हो जायेंगे तथा वेद सम्मत् पुराणों  
का अधिकाधिक प्रसार होगा ॥१६०-१६१॥ सब के गुण एव कीर्तन के योग्य  
भगवान् विष्णु के अवतारों को यहाँ मैं सक्षेप में कहा है ॥१६२॥ जो मनुष्य  
इन असीमित पराक्रम वाले विष्णु की अवतार गाथाओं को विनीत भाव से श्रवण  
करता है, उसके पितरगण प्रसन्न होते हैं ॥१६३॥ जो हाथ जोड़ कर श्रद्धा-  
पूर्वक भगवान् की योगमाया का वृत्तान्त श्रवण करते हैं, वे सभी पापों से छूट  
जाते हैं और भगवत्कृपा से उन्हें विपुल समृद्धि की प्राप्ति होती तथा सब प्रकार  
के काम्य भोग सुलभ होते हैं ॥१६४॥

## ॥ भगवान् का ईश्वरत्व और तारकामय संग्राम ॥

विश्वत्वं शृणु मे विष्णोर्हरित्वं च कृते युगे ।  
वैकुण्ठत्वं च देवेषु कृष्णात्वं मानुषेषु च ॥१॥  
ईश्वरत्वं च तस्येदं च तस्येदं गहता कर्मणा गतिम् ।  
सप्रत्यतीता भाव्या च शृणु राजन्ययातयम् ॥२॥  
अव्ययनी व्यवनलिङ्गस्थो यक्षेप भगवान्प्रभुः ।  
नारायणी ह्यनन्तात्मा प्रभवोऽन्यथ एव च ॥३॥  
एष नारायणी भूत्वा हरिरासीत्कृते युगे ।  
ब्रह्मा शक्रश्च सोमश्च घर्मं शुक्रो बृहस्पति ॥४॥  
अदितेरपि पुत्रत्वं मेत्य यादवनन्दन ।  
एष विष्णुरिति ध्यात इन्द्रादवरजोऽभवत् ॥५॥  
वृत्ते वृत्रघ्ने तात वर्त्तमाने कृते युगे ।  
आसीत्त्रैलोक्यविध्यात संग्रामस्तारकामय ॥६॥

तत्रासन्दानवा घोरा सर्वे संग्रामदर्पिताः ।

घ्नन्ति देवगणान्सर्वान्सयक्षोरगराक्षसान् ॥७॥

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! अब भगवान् विष्णु के सत्पुत्र, विश्वदेव, देवलोक में वंशुष्ठत्व और मर्त्यलोक में कृष्णत्व तथा विभिन्न युगों में किये गये उनके कार्यों का वर्णन करता हूँ ॥१-२॥ वही अविनाशी भगवान् विश्व के स्रष्टा, अनन्तात्मा एवं अमरत्व है, देह धारण करके वही 'हरि' कहे गये, ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्रमा, धर्मराज, शुक्र, और बृहस्पति यह सब उसी के रूप हैं, वही अदिति के गर्भ से उत्पन्न इन्द्रानुज विष्णु हुए थे ॥३-५॥ सत्पुत्रों ने वृत्रासुर वध के पश्चात् विश्व-विस्तार एक सारकामय संग्राम हुआ था, उनमें दानवी ने रणोन्मत्त होकर देवता, गधर्व, यक्ष, रक्ष और नागादि का वध करना आरम्भ किया ॥६-७॥

ते वध्यमाना विमुखा क्षीणप्रहरणा रणे ।

ज्ञातार मनसा जग्मुर्देव नारायण हरिम् ॥८॥

एतस्मिन्नन्तरे मेघा निर्वाणाङ्गारवर्षिण ।

सार्कचन्द्रग्रहगण छादयन्तो नभस्तलम् ॥९॥

चञ्चद्विद्युद्गणाविद्धा घोरा निर्हार्दिकारिण ।

अन्योन्यवेगाभिहता प्रववु सप्त मास्ता ॥१०॥

दीप्ततोयाशनीपातैर्वज्रवेगानिलाकुलैः ।

ररास घोरैरुत्पातैर्दह्यमानमिवाम्बरम् ॥११॥

पेतुर्गुल्कासहस्राणि मुहुराकाशगान्धपि ।

ग्युज्जानि च विमानानि प्रपतन्त्युत्पतन्ति च ॥१२॥

तान्धनौघान्सतिमिरान्दोर्भ्यामुत्क्षिप्य सः प्रभुः ।

धपुः सदर्शयामास दिव्यं कृष्णवपुर्हरिः ॥१३॥

हयंश्चरयमयुवते सुपणं ध्वजशोभिते ।

चन्द्रार्कचक्ररचिते मन्दराक्षयतान्तरे ॥१४॥

उन दैत्यों ने अथर्व प्रहारों से व्याकुल एवं निरस्त्र हुए देवता, गधर्व आदि मुदक्षेत्र की छोड़ कर भाग पड़े और भगवान् विष्णु की शरण में पहुँचे ॥८

उक्त समय आकाश में काले-काले बादल छा गये जिसमें ग्रहों के सहित सूर्य-चन्द्र भी आच्छादित हो गये ॥६॥ सप्तवायु अत्यन्त वेग से प्रवाहमान् हुए, मेघों के पारस्परिक सघर्ष से भयानक विद्युत चमकने लगी और घोर गर्जन होने लगा ॥१०॥ एक साथ ही बजपात एवं उल्कापात होने लगा, तप्त जल की वर्षा होने लगी, इन उत्साहों से प्रनीत होता था कि आकाश जल रहा है और पिघल-पिघल कर नीचे आ रहा है, आकाश में उड़ने हुए विमान ढाँवाडोल होने लगे ॥११-१२॥ ऐसे समय में ही भगवान् विष्णु उस अन्धकार रात्रि को चीर कर दिव्य रूप में प्रकट हुए ॥१३॥ वे दिव्य रूप पर आञ्जये, उमरूप में हरे रंग के घीसे युक्त थे, ध्वजा पर गरुड विराजमान थे, चन्द्रमा और सूर्य उभय रूप के चक्र थे, मंदरा-चल पर्वत उनका घुरा था ॥१४॥

अनन्तरश्मिसयुक्ते ददृशे मेरुकूबरे ।  
 तारकाचिनकुमुमे ग्रहनक्षत्रागुरे ॥१५॥  
 भयेष्वभयद व्योम्नि देवा दंत्यपराजिना ।  
 ददृशुस्ते स्थित देव दिव्यलोकमये रये ॥१६॥  
 ते कृताञ्जलय सर्वे देवा शक्रपुरोगमा ।  
 जयशब्द पुरस्कृत्य शरण्य शरण गता ॥१७॥  
 स तेषां ता गिर श्रुत्वा विष्णुर्दयितदेवत ।  
 मनश्चक्रे विनाशाय दानवानां महामृधे ॥१८॥  
 आकाशे तु म्रियतो विष्णु मोक्षमे पुरपोत्तम ।  
 उवाच देवता सर्वा सप्रतिज्जमिद वच ॥१९॥  
 शान्तिं भजत भद्रं वो मा भैष्ट भस्ता गणा ।  
 जिता मे दानवा सर्वे वैलोक्य प्रतिगृह्यताम् ॥२०॥  
 ते तस्य सत्यसन्धस्य विष्णोर्वाक्येन तोषिता ।  
 देवा प्रीतिं पराजम्पु प्राप्येवागृन्मुत्थितम् ॥२१॥  
 ततस्तम सह्यते विनेशुश्च बलाहका ।  
 प्रववुश्च शिवा वाता प्रसन्ताश्च दिशो दश ॥२२॥



भगवान् शेष अश्वो की रास थे, सुमेरु पर्वत बूबर था, तारागण उसने  
 अद्भुत बेल बूटे थे, ग्रह-नक्षत्र बधन थे ॥१५॥ देवता से हारे हुए देवताओं ने  
 जब उन अभयदाता प्रभु को देखा तभी उच्च स्वर से जय-जयकार करते हुए  
 शरण में गये ॥१६ १७॥ उन सब की आत्तवाणी सुन कर भगवान् ने युद्ध में  
 दैत्यों का वध करने की प्रतिज्ञा करते हुए कहा ॥१८-१९॥ हे देवगण ! भय  
 मत करो, इन दैत्यों को मैं अभी हरा दूंगा, तब तुम त्रैलोक्य के राज्य पर पुनः  
 अधिकार करोगे ॥२०॥ भगवान् की वाणी सुन कर देवगण को वंसा ही  
 आनन्द प्राप्त हुआ जैसा क्षीरसागर से अमृत प्राप्त करने पर हुआ था ॥२१॥  
 इसके पश्चात् अधिकार दूर हुआ मेष छिन भिन्न हो गये, सुखदायक वायु प्रवा  
 हित होने लगा और दशों दिशाओं स्वच्छ हो गयी ॥२२॥

### ॥ देवासुर-संग्राम ॥

ताभ्या बलाभ्या सज्जे तुमुलो विग्रहस्तदा ।  
 सुराणामसुराणा च परस्परजयैषिणाम् ॥१  
 दानवा दैवसै सार्द्धं नानाप्रहरणोद्यता ।  
 समीपयुर्ध्वमाना वै पर्वता पर्वतरिव ॥२  
 तत्सुरासुरसयुक्त युद्धमत्यद्भुत बभौ ।  
 धर्माधर्मसमायुक्त दर्पेण विनयेन च ॥३  
 ततो रथं प्रजविर्नवाहिनैश्च प्रचोदितं ।  
 उत्पतद्भिश्च गगन सासिहस्तै समन्तत ॥४  
 विक्षिप्यमाणं भुंक्तै सप्रेप्यद्भिश्च सायकै ।  
 चापैर्विस्फायमाणैश्च पात्यमानैश्च मुद्गरै ॥५  
 तद्य दममवदधोर देवदानवसकुलम् ।  
 जगतस्तासजनन युगसवर्त्त कोपमम् ॥६  
 स्वहस्तमुक्ते परिपै क्षिप्यमाणैश्च पर्वतै ।  
 दानवा समरे जघ्नुर्देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥७  
 ते वध्यमाना वलिभिर्दानवैर्जितकाशभि ।  
 विषण्णममलो देवा जघ्नुरिति पश्य भूदे ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! इसने पश्चात् देवताओं और दैत्यों में घोर युद्ध हुआ ॥१॥ जैसे पर्वत पर पर्वत टूट रहा हो, उस प्रकार देवताओं और दैत्यगण विभिन्न प्रकार के शस्त्रास्त्र धारण कर टूट पड़े ॥२॥ जैसे धर्म और अधर्म में अथवा दण्ड और विनय में द्वन्द्व होता है, उसी प्रकार देवता-दैत्यों में भीषण और अद्भुत युद्ध होने लगा ॥३॥ वेगवत् रथ, दौड़ते हुए वाहन, हाथ में तलवार लेकर उछलते हुए और फेंक हुए भूगल, छोड़े हुए बाण तथा गिरते हुए मुद्गर आदि सर्वत्र दिखाई दे रहे थे, सम्पूर्ण विश्व में प्रलय जैसा आनक छा गया, दानवों ने परिधों तथा शिलान्गण्डा से भी देवताओं पर प्रहार किये । त्रिजयो-न्मुख दैत्यों द्वारा पीड़ित हुए देवता युद्ध स्थल में विपण्णमुक्त खड़े हो गये ॥४-८॥

तेऽस्त्रजालैः प्रमथिता परिधौर्भिन्नमस्तका ।  
 भिनोरम्वा दितिसुतैर्वैमू रवत व्रणैर्मुहुः ॥६  
 स्यन्दिता पाशजालैश्च नियन्ताश्च शरैः कृता ।  
 प्रविष्टा दानवी माया न शेकुस्ते विचेष्टितुम् ॥१०  
 सस्तम्भितमिवाभाति निष्प्राणसदृशकृति ।  
 बल सुराणामसुरैर्निष्प्रयत्नायुध कृतम् ॥११  
 मायापाशाद्विकर्षश्च भिन्दन्वज्रेण ताञ्शरान् ।  
 शक्रो दैत्यबलं घोरं विवेश बहुलोचन ॥१२  
 स दैत्यान्प्रमुखे हत्वा तद्दानवबलं महत् ।  
 तामसेनास्त्रजालेन तमोभूतमथाकरोत् ॥१३  
 तेऽन्योन्यं नावबुध्यन्त देवान्स्तान्दानवानपि ।  
 घोरेण तमसाविष्टा पुरुहूतस्य तेजसा ॥१४  
 मायापार्श्वविमुक्ताश्च यत्नवन् सुरोत्तमा ।  
 वपूः पि दैत्यसघाना तमोभूतान्यपातयन् ॥१५  
 अपह्णस्ता विसृज्याश्च तमसा नीलवर्चस ।  
 पेतुस्ते दानवगणाश्छिन्नपक्षा इवाचला ॥१६

दानवों के परिध-प्रहार से अनेक देवताओं के मस्तक फट गए बहुतांश के हृदय विदीर्ण होगये जिससे रक्त की धारा प्रवाहित हो चली, देव सेना

दानवी के पाशजालो में बँध कर चेष्टाहीन हो गई और दानवी माया के प्रभाव-  
वश वह नितान्त अशक्त होगये ॥६१०॥ मृतक के समान निश्चेष्ट भाव से  
खड़े हुए देवताओं के सभी सत्त्वास्त्र व्यर्थ होगये, दैत्यों ने उनका सभी पराक्रम  
हर लिया ॥६११॥ यह देख कर इन्द्र अपने वज्र को लेकर दैत्य-सेना पर दूट पड़े,  
जो उनके सामने आया उसी को मार दिया और फिर तामस अस्त्र समूह से  
उन्होंने घोर अघकार कर दिया, जिसके कारण यह पता लगना ही कठिन था  
कि कौन देवता और कौन दैत्य है ? ॥६१२-६१४॥ इस प्रकार दानवी माया से  
मुक्त होकर पूर्ण प्रयत्न पूर्वक देवगण दैत्यों को नष्ट करने लगे, उस घोर अघ-  
कार कारण भयभीत हुए राक्षस धरासायी होगये ॥६१५-६१६॥

तद्धनीभूतदैत्यानामन्धकारमहार्णवम् ।  
प्रविष्ट बलमुत्त्रस्त तमोभूतमिवावभौ ॥१७॥  
तदाऽसृजन्महामाया मयस्ता तामसी दहन् ।  
युगान्ताग्निमिवात्युग्रा सृष्टामौर्वेण वह्निना ॥१८॥  
सा ददाह तम सर्व माया मयविकल्पिता ।  
दैत्याश्च दीप्तवपुष सद्य उत्स्थूराह्वे ॥१९॥  
मायामौर्वी समासाद्य दह्यमाना दिवौकस ।  
भेजिरे चन्द्रविपय शीताशुषलिलेशयात् ॥२०॥  
ते दह्यमाना ह्यौर्वेण तेजसा भ्रष्टतेजस ।  
शशसुर्वज्रिणो देवा सनप्ता शरणैपिण ॥२१॥  
सतपते मायया सैन्ये दह्यमाने च दानवी ।  
चोदितो देवराजेन वरुणो वाक्यमब्रवीत् ॥२२॥

यस्य भयभीत दानवी के अघकार में विलीन होने पर सर्वत्र अघकार  
धामया और प्रलयकाल उपस्थित होने पर और्व अग्नि जिस लोक-दाहिनी माया  
को उत्पन्न करता है, उसी माया की मय दानवी ने रचना की ॥६१७-६१८॥ उसके  
प्रभाव से सम्पूर्ण अघकार विट गया और दैत्यों ने तुरन्त आक्रमण कर दिया ।  
जय मायामयी अग्नि से रक्षा पाने के लिये देवगण ने चन्द्रमा की शरण ली  
॥६१९-६२०॥ उस और्व अग्नि से देवगण निस्तेज और सन्तप्त होगये थे । शरण

शक्ति के लिये उन्होंने इन्द्र से उसका वर्णन किया ॥२१॥ इस प्रकार जब उस राया से देवसेना व्याकुल हो उठी, तब इन्द्र के सब बात कहने पर जलपति वरुण उनसे बोले ॥२२॥

सैषा दुर्विपहा माया देवैरपि दुरासदा ।  
 और्वेण निर्मिता पूर्ण पावकेनोर्वमूनुना ॥२३॥  
 तस्मिस्तु व्युत्थिते दैत्ये निर्धैर्येपा न सशय ।  
 शापो ह्यस्या पुरा दत्त सृष्टा येनैव तेजसा ॥२४॥  
 यद्य पा प्रतिहन्तव्या कर्तव्यो भगवान्सुखी ।  
 दीयता मे सखा शक्र तोययोर्निनिशाकर ॥२५॥  
 तेनाह सह सगम्य यादोमिश्र समावृत ।  
 मायामेता हनिष्यामि त्वत्प्रसादान्न सशय ॥२६॥

वरुण ने कहा—हे देवराज ! पूर्वकाल मे ऊर्व पुत्र अग्नि ने जिस माया को रचा था, यह वही दुर्लभ माया है ॥२३॥ इस माया के रचयिता और्व अग्नि का कथन है कि यह माया जीवन पर्यन्त अधुण्य प्रभाव वाली होकर हरिण्य-कशिपु के पास रहेगी ॥२४॥ यदि इस माया को नष्ट करके सब को सुखी करना है तो जल से उत्पन्न हुए चन्द्रमा को मेरे साथ करिये, तब चन्द्रमा और सभी जल जन्तुओं को साथ लेकर मैं इस माया को निःसन्देह नष्ट कर दूंगा ॥२५-२६॥

॥ देवताओं का दैत्यो को विफल करना ॥

एवमस्त्विति सहृष्ट शक्रस्त्रिदशवर्द्धन ।  
 सदिदेशाग्रत सोम युद्धाय शिशिरायुधम् ॥१॥  
 गच्छ सोम सहायत्व कुरु पाशघरस्य वै ।  
 असुराणां विनाशाय जयाय च दिवौकसाम् ॥२॥  
 त्वमप्रतिमवीर्यश्च ज्योतिषा चेश्वरेश्वर ।  
 त्वन्मय सर्वलोकानां रस रसविदो विदुः ॥३॥  
 क्षयवृद्धी तवाव्यक्ते सागरस्येव मण्डले ।  
 परिवर्त्तस्यहोरात्र काल जगति योजयन् ॥४॥

श्वेतभानुर्हिमतनुज्योतिषामधिपः शशी ।  
 अब्दकृत्कालयोगात्मा इज्यो यज्ञरसोऽज्यय ॥५॥  
 ओषधीषा क्रियायोनिरम्भोयोनिरनुष्णभाक् ।  
 शीताशुरमृताधारश्चपल श्वेतवाहन ॥६॥  
 त्व कान्ति कान्तवपुषा त्व सोम सोमवृत्तिनाम् ।  
 सौम्यस्त्व सर्वभूताना तिमिरघ्नस्त्वमृक्षराट् ॥७॥  
 तद्गच्छ त्व सहानेन वरुणेन वरूथिना ।  
 शमयस्वासुरी माया यया दह्याम सगरे ॥८॥  
 यन्मा वदसि युद्धार्थं देवराज जगत्पते ।  
 एष वर्षामि क्षिशिर दैत्यमायापकर्षणम् ॥९॥  
 एतान्मच्छीतनिदंघ्रान्पश्य त्व हिमवेष्टितान् ।  
 विमायान्विमदाश्चैव दानवास्त्व महाभूषे ॥१०॥

वैराग्यायनजी ने कहा—हे राजन् । देवताओं के आनन्द की वृद्धि कर  
 वाले इन्द्र न वरुण की बात सुन कर चन्द्रमा से कहा ॥१॥ इन्द्र बोले—  
 चन्द्र । तुम भूमरों के विनाश और देवताओं की जीत के लिये युद्ध में वरुण के  
 सहायता करो ॥२॥ क्योंकि तुम महाबली और प्रकाशदाताओं के अधीनवर हैं  
 रसज्ञों ने तुम्हें सम्पूर्ण प्राणियों का रस कहा है ॥३॥ समुद्र के समान तुम्हारा  
 शय और वृद्धि दुर्जय है, तुम विश्व में दिन-रात्रि को प्रवृत्त करते हुए अपने ही  
 मण्डल में भ्रमण करते हो ॥४॥ तुम श्वेत, भानु तथा हिमज्योति हो, तुम मक्षरों  
 के स्वामी तथा सक्तर के प्रवर्धक हो, तुम वास योगात्मक, यज्ञ, यज्ञरस  
 ओषधियों के स्वामी, शीतल, शीतांशु, अमृताधार, श्वेतोयोन, श्वेतवाहन, चपल,  
 गोमगामी को राम रस तथा जगत् के प्राणियों को सौम्य रूप हो, तुम अम्भरा  
 के नाशक और मक्षरों के अविपत्ति हो ॥५-७॥ अन् तुम सेनाध्यक्ष वरुण के  
 साथ गमा करो, जिसने हम शीघ्र हो हरा दण्ड करने वालों आगुरी माया से  
 मुक्त हो गए ॥८॥ चन्द्रमा ने कहा—हे देवेन्द्र । मैं युद्ध स्थल में जाकर शीघ्र  
 ही हिम की वर्षा करवा दूँ, जिससे प्रभाव से आपने देखते-देखते ही यह माया  
 नष्ट हो जायगी । थाप हन सब देखों की अभी हिमाच्छादित तथा सर्व-संश्रित  
 देखें ॥९-१०॥

ततो हिमकरोत्सृष्टा. सवाप्सा हिमवृष्टायः ।  
 वेष्टयन्ति स्म तान्धोरान्देत्यान्मेघगणा इव ॥११  
 तौ पाशशुक्लाशुधरो वरुणेन्द्र महारणे ।  
 जघ्नतुहिमपातेश्च पाशघातेश्च दानवान् ॥१२  
 द्वावम्बुनाथौ समरे तौ पाशहिमयोधिनी ।  
 मृधे चेतुरम्भोमि क्षुब्ध्राविव महार्णवी ॥१३  
 ताम्भ्यामाप्तावितं सैन्य तद्दानवमदृश्यत ।  
 जगत्सर्वतकाम्भोदः प्रवृष्टैरिव सवृतम् ॥१४  
 ताबुद्धताशुपाशौ द्वौ शशाकवरणौ रणे ।  
 शमयामामतुर्माया देवौ दैतेयनिर्मिताम् ॥१५  
 शीताशुजलनिदग्धा पाशश्च प्रसिता रणे ।  
 न शोकश्चलितु दैत्या विशिरस्का इवाद्रयः ॥१६  
 शीताशुनिहतास्ते तु पेतुर्दैत्या हिमादिताः ।  
 हिमप्रावृतसर्वाङ्गा निरुष्माण इवाग्नयः ॥१७

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! इसके पश्चात् चन्द्रमा ने हिम वर्षा की, जिससे मेघ के समान वे दुर्दान्त दैत्य डँक गये ॥११॥ इस प्रकार पाशधारण करने वाले वरुण और हिम की वर्षा करने वाले चन्द्रमा, दोनों ही अपने शत्रुओं पर प्रहार करते हुए उमड़ते हुए समुद्र के समान युद्ध स्थल में घूमने लगे ॥१२-१३॥ सर्वतक मेघ द्वारा जल वृष्टि होन से जैसे सम्पूर्ण विश्व जल में बहने लगा है, वैसे ही उनकी अस्त्र वर्षा से सम्पूर्ण दैत्य-सेना प्लावित होगई और उस प्रकार वरुण ने पाश से और चन्द्रमा ने हिम से दानवी माया को छिन्न-मन्न कर दिया ॥१४-१५॥ इस स्थिति में दैत्यगण छिन्न मस्तक के समान लने की शक्ति से हीन होकर निष्क्रिय होगये ॥१६॥ चन्द्रमा द्वारा हिम वर्षा करने से वे ठंडे हुए अगारो के समान घराशायी होगये ॥१७॥

तेषां तु दिवि दैत्यानां विपरीतप्रभाणि च ।  
 विमानानि विचित्राणि निपतन्त्युत्पतन्ति च ॥१८

तान्पाशहस्तग्रथिताञ्छादितान्हिमरश्मिना ।  
 मयो ददशं माया वै दानवान्दिवि दानवः ॥१९॥  
 स शिलाजालवितता गण्डशंलाट्टहासिनीम् ।  
 पादपोत्कटकूटाग्रा कन्दराकीर्णकाननाम् ॥२०॥  
 सिंहव्याघ्रगजाकीर्णा नदन्तीमिव यूथपैः ।  
 ईहामृगगणाकीर्णा पवनाधूर्णितद्रुमांम् ॥२१॥  
 निर्मिता स्वेन पुत्रेण क्रौञ्चेन दिवि कामगाम् ।  
 प्रसृता पार्वती माया ससृजे दानवोत्तमः ॥२२॥  
 साश्मशब्दैः शिलावर्षैः सपतद्भिश्च पादपैः ।  
 निजघ्ने देवसङ्घांस्तान्दानवांश्चाप्यजीवयत् ॥२३॥  
 नैशाकरी वारणी च मायेऽन्तर्दधतुस्ततः ।  
 अश्मभिश्चायसघनैः किरन्देवगणानुरणे ॥२४॥

उस समय दैत्यों के सब विमान नीचे गिरने लगे ॥१८॥ जब मय दानव  
 ने दैत्यों को वरुणपाश में बद्ध और चन्द्रमा द्वारा किये गये हिमपात से आर्तार्थ-  
 दित देखा तो उसने अपने पुत्र क्रौंच द्वारा बनाये हुए मायामय पर्वताश्रय ॥  
 प्रयोग किया । उस अश्रय पर शिलायें, पाटियाँ, सिंह और व्याघ्रों के समूह  
 स्थित थे । उस पर्वत का अगला भाग वृक्षों और कन्दराओं वाले वनों से घन-  
 था, जगहें वृक्ष बाधु के वेग से हिल रहे थे ॥१९-२०॥ उस माया के प्रयुक्त होते  
 ही पर्वत से बड़ी बड़ी शिलाओं और वृक्षों की वर्षा होने लगी, जिसके कारण  
 देव-सेना द्वारा संतप्त दैत्य सेना में जीवन आगया और चन्द्रमा तथा वरुण की  
 माया भङ्ग होगई तथा शिला खण्डों की वर्षा से देव-सेना आच्छादित होगई  
 ॥२१-२४॥

मायमसुपानविपमा द्रुमपर्वतगङ्कटा ।  
 अभयटोरगङ्गारा पृथिवी पर्वतरिव ॥२५॥  
 गानाहृतोऽश्मभिः कञ्चिच्छिन्नाग्निष्पाप ताहितः ।  
 गानिरटो द्रुमगणदंबोऽह्नयत समुगे ॥२६॥

तदाभ्रष्टनुप भग्नप्रहरणाविलम् ।  
 नि प्रयत्न सुरानोक् वज्रैर्यित्वा गदाधरम् ॥२७॥  
 स हि युद्धगत श्रीमानीशो न स्म व्यकम्पत ।  
 सहिष्णुत्वाञ्जगत्स्वामी न बुक्कोऽ गदाधर ॥२८॥  
 कालज्ञ कालमेधाभ समैक्षत्कालमाहवे ।  
 देवामुरविमदं स द्रष्टुकामो जनार्दन ॥२९॥  
 ततो भगवताऽऽदिष्टो रणे पावकमास्तौ ।  
 शमनार्थं प्रवृद्धाया मायाया मयसृष्टया ॥३०॥  
 तत प्रवृद्धावन्योन्य प्रवृद्धौ ज्वालचाहिनी ।  
 चोदितौ विष्णु वाक्येन ता माया व्यङ्ग्यपंताम् ॥३१॥  
 गम्भ्यामुद्भ्रान्तवेगाभ्या प्रवृद्धाभ्या महाहवे ।  
 दग्धा सा पार्वतीमाया भस्मीभूता ननाश ह ॥३२॥  
 (सोऽनिलोऽनलसयुक्त सोऽनलश्चानिलाकुल ।  
 इत्यसेना ददहतुर्गुगान्त इव मूर्च्छिती ॥३३॥

१/ पर्वतीय स्वान के ऊँचा-नीचा होने के समान ही पृथिवी भी शिला खडों  
 से दुर्गम होगयी ॥२५॥ कुछ देवता शिखाखंडी और चट्टानों की मार  
 विक्षत होगये, कोई भी देवता कुशलपूर्वक न बच सका ॥२६॥ विष्णु के  
 इन सभी देवगण निराश हो रहे थे ॥२७॥ परंतु भगवान् विष्णु तनिक  
 झलित नहीं हुए, उनकी किंचित् क्रोध भी नहीं आया ॥२८॥ वे युद्ध का  
 ॥ करते हुए आक्रमण के लिये उपयुक्त अवसर देख रहे थे ॥२९॥ मय  
 की उस माया की वृद्धि होते हुए देव वर भगवान् ने वायु और अग्नि को  
 कने का संकेत किया ॥३०॥ उनकी आज्ञा पाते ही वायु और अग्नि दानवों  
 को समाप्त करने में जुट गये । तब अग्नि और वायु के संयोग से प्रलय के  
 वृद्धि को प्राप्त होती हुई दैत्य सेना नष्ट होने लगी और दानवों द्वारा  
 १/ पर्वतीय माया का अंत होगया ॥३१ ३२॥

१/ वायु प्रधावितस्तत्र अश्वादिभिस्त्व मास्तात् ।

चैरतुर्दानवानीके क्रोडन् ननानिलौ ॥३४॥



धूम्रवेशो हरिच्छ्मश्रुदंष्ट्रालोष्ठपुटानन ।  
 सैलोक्यान्तरविस्तारो धारयन्निपुल वपु ॥५०॥  
 बाहुभिस्तुलयन्व्योम क्षिपन्पद्भ्या महीधरान् ।  
 ईरयन्मुखविषवासैर्वृष्टिमन्तो बलाहकान् ॥५१॥  
 तिर्यंगाद्यतरक्ताक्ष मन्दरोदग्रवर्चसम् ।  
 दिग्धक्षन्तमिवायान्त सर्वान्देवगणाभृधे ॥५२॥  
 तज्जयन्त सुरगणाश्छादयन्त दिशो दश ।  
 सवर्तकाले क्षुधित दृष्ट मृत्युमिवोत्थितम् ॥५३॥  
 सुतलेनोच्छ्रितवता विपुलागुलिपर्वणा ।  
 भाल्याभरणपूर्णेन किञ्चिच्चलितवर्मणा ॥५४॥  
 उच्छ्रितेनाग्रहस्तेन दक्षिणेन वपुष्मता ।  
 दानवान्देवनिहतानुत्तिष्ठध्वमिति श्रुवन् ॥५५॥  
 त कालनेमि समरे द्विपता कालसन्निभम् ।  
 वीक्षन्ति स्म सुरा सर्वे भयविक्लवलोचना ॥५६॥  
 त स्म वीक्षन्ति भूतानि क्रमन्त कालनेमिनम् ।  
 त्रिविक्रम विक्रमन्त नारायणमिवापरम् ॥५७॥  
 श्रीकृष्णस्तथापि पात्रं शङ्कतस्तानिनामस्य ।

रव देवताओं को युद्ध में भस्म कर डालेगा ॥५०-५२॥ वह देवताओं को भयभीत करता और दसा दिशाओं को अवच्छेद करता चलता हुआ ऐसा प्रतीत होता था, जैसे प्रलयकाल में क्षुधार्त मृत्यु सामने से आरही हो ॥५३॥ देवताओं के हाथ से जो दैत्य मारे गये थे उन्हें कालनेमि ने उठाने का संकेत दिया ॥५४-५५॥ उस समय शत्रुओं के चित्तों में डाल के समान उस कालनेमि को देख कर दिव्य अत्यन्त भयभीत हुए और सांसारिक प्राणियों ने समझा कि यह द्वितीय त्रिविक्रम भगवान् रण क्षेत्र में विचरण कर रहे हैं ॥५६-५७॥ जब उस अमुर ने अपना दक्षिण पग बढ़ाया तब देवगण व्याकुल हो उठे और उनके शस्त्रास्त्र बाधु से हिल उठे । उसी समय दानवराज मय ने वहाँ आकर कालनेमि को बठ से जगा लिया उस समय वह मन्दर पर्वत जैसा लगने लगा ॥५८-५९॥ यम के समान घोर भयानक कालनेमि को युद्ध क्षेत्र में उतरता देख कर इंद्रादि देवता प्रत्यक्ष भयभीत और व्यथित हो गये ॥६०॥

## ॥ कालनेमि के साथ देवताओं का युद्ध ॥

दानवाश्चापि पिप्रीषु कालनेमिर्महासुर ।  
व्यवर्धत महातेजास्तपान्ते जलदो यथा ॥१॥  
त्रैलोक्यान्तगंत तं तु दृष्ट्वा ते दानवेश्वरा ।  
उत्तस्युरपरिश्रान्ता प्राप्येवामृतमुत्तमम् ॥२॥  
ते भीता भयसन्वस्ता मयतारपुरोगमा ।  
तारकामयसग्रामे सतत जयकाङ्क्षिण ।  
रेजुरायोधनगता दानवा युद्धकाङ्क्षिण ॥३॥  
अस्त्रमभ्यस्यता तैपा व्यूह च परिधावताम् ।  
प्रेक्षता चाभवत्प्रीतिर्दानव कालनेमिनम् ॥४॥  
ये तु तत्र मयस्यासन्मुखा युद्धपुर मरा ।  
तेऽपि सर्वे भय त्यक्त्वा हृष्टा योद्धुमुपस्थिता । ५

वंशम्पायन ने कहा—हे राजन् ! महा अमुर कालनेमि दानवों को प्रसन्न होने के लिए नवीन मेघ के समान वृद्धि को प्राप्त होने लगा ॥१॥ तीनों लोकों

में प्रसिद्ध कालनेमि को अपने मध्य देख कर दानवगण प्रसन्नचित्त से उठ खड़े होगए, मानो उन्हें श्रेष्ठ अमृत की प्राप्ति होगई हो ॥२॥ मय तथा तार... दानवों का मय दूर होगया । ॥३॥ मय तथा तारादि के युद्ध में सभी दानव विरग से प्रसन्न हो उठे ॥३॥ सेना के सभी सैनिक, जो बुद्धाम्याम तथा व्यूह निर्माण आदि में व्यस्त थे, वे एकट्ठी बाधकर, कालनेमि को देखने लगे तथा उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुई ॥४॥ मय दानव के युद्ध में निपुण सैनिक भय छोड़कर उत्साह पूर्वक तथा प्रसन्नचित्त से युद्ध के लिए एकत्र होगए ॥५॥

मयस्तारो वराहश्च हयग्रीवश्च वीर्यवान् ।  
 विप्रचित्तिसुतः श्वेत खरसम्बावुभावपि ॥६॥  
 अरिष्टो बलिपुत्रस्तु किशोरोष्टौ तथैव च ।  
 स्वर्भानुश्चामरप्रख्यो वक्रयोधी महाबलः ॥७॥  
 एतेऽस्तविदुषः सर्वे सर्वे तपसि सुव्रताः ।  
 दानवाः कृत्तिनो जग्मुः कालनेमिनमुत्तमम् ॥८॥  
 ते गदामिश्रं गुर्वींमिश्रं कंश्च सपरश्वधैः ।  
 अश्रममिश्रं चाद्रिसदृशं गण्डशैलेश्च दशितैः ॥९॥  
 पट्टिशैर्मिन्दिपालैश्च परिषैश्चोत्तमायुधैः ।  
 धातिनीभिश्च गुर्वीभिः शतघ्नीभिस्तथैव च ॥१०॥  
 कालकल्पैश्च मुसलैः क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः ।  
 युगैर्यन्त्रैश्च निमुं कृत्तैरगलैश्चाग्रताडितैः ॥११॥  
 दोभिश्चायतपीनासैः पाशैः प्रासैश्च मूर्च्छितैः ।  
 सर्पैर्लेलिह्यमानैश्च विसर्पैर्द्विजैश्च सायकैः ॥१२॥  
 वज्रैः प्रहरणीयैश्च दीप्यमानैश्च तोमरैः ।  
 विकोशंश्चासिभिस्तोदणैः शूलैश्च शितनिर्मलैः ॥१३॥  
 ते वै सन्दीप्तमनसः प्रगृहीततोमायुधाः ।  
 कालनेमिं पुरस्कृत्य तस्थुः सङ्ग्राममूर्धनि ॥१४॥

मय, तार, वराह, हयग्रीव, विप्रचित्तिसुत श्वेत, खर, सम्ब, बलि, अरिष्ट, बलिपुत्र, उष्ट्र, देवताओं में प्रख्यात वक्रयोधी तथा महान् श

ॐ राहु एव बह्वृषे अम्ब-शृंगस तथा ततोनिष्ठ दानव भारी गग, पद्म,  
मा, मृत्-शृंग मृगस, शोणपात्र, मुद्गर, पर्वतो जेमे वृद्ध आकार की मिना,  
गुग्गुलु देने वाले गन्धर्व, पट्टिन, मिन्दियात्र, उत्तम सोहे की बनी हुई  
पद्म, गगार का नाग बग्ने वाली शतघ्नी, युग, यन्त्रयुक्त मृदिमाष अर्गल, पाश,  
१, तपसपात्री हुई जीम बाड़े मर्गों के समान ज्ञान पर बड़े हुए तीर, प्रहार,  
मे के योग्य बन्ध, चमचमानी सोमर, ध्यान में निवली हुई मणी तथा ठीक  
घार और गून में मने हुए भाड़े आदि नाना प्रकार के अम्ब-शम्ब घारी  
विभिन्न जालनेमि की आगे बर मुद्र-म्यस में आ उपस्थित हुए ॥६-१४॥

मा दीपशम्भप्रवरा दैत्यानां भुवुभे चमूः ।  
द्यौर्निमीनितनक्षत्रा गघनेयाम्युदागमे ॥१५॥  
देवगानामपि चमू मरुते मकराविता ।  
दीप्ता शीतोष्णनेत्रोभ्यां चन्द्रमाम्बरयुगेगा ॥१६॥  
यागुरेगरीं गौम्या तारागनवनाकिनी ।  
तोषदाऽऽविद्यगना ग्रहक्षतहामिनी ॥१७॥  
यमेन्द्रधनदं गुं प्ला यज्ञेन च धीमता ।  
गंप्रदीपान्नि वरना नारायणपरायणा ॥१८॥  
मा समुद्रोपगह्वरी दिव्या देवमहाचमूः ।  
रगाजाम्बरगी भीमा यक्षगन्धर्वानिनी ॥१९॥  
मदीयवर्गोत्पदा तव बभूव स ममागमः ।  
छारापृथिवी. मंथोर्गो यथा ग्याष्टु मयये ॥२०॥  
गच्छदममयदोर देवदानवमनुजम् ।  
शनीरात्रममय दर्मस्य विनश्य च ॥२१॥

सेना अनेकों प्रकार के अस्त्रों को धारण किए हुए यक्षों तथा गन्धर्वों सहित  
के वेग के समान सुशोभित हुई ॥१५-१८॥ जैसे प्रलय के समय पृथिवी  
आकाश मिल कर एक हो जाते हैं, उसी प्रकार दोनों ओर की सेनाओं के  
ही भीषण युद्ध आरम्भ हो गया । देवगणों ने प्रारम्भ में तो इन हारे हुए  
के साथ शिथिलता दिखलाई, किन्तु बाद में महान् पराक्रम सहित उनको  
लगे । इसके विपरीत दानवों ने नम्र देवगणों के साथ प्रारम्भ में पराक्रम  
लामा, किन्तु बाद में शिथिलता से युद्ध करने लगे ॥२०-२१॥

निश्चक्रमुर्बलाभ्या तु भीमा सुरासुरा ।  
पूर्वापराभ्या सरब्धा सागराभ्यामिवाम्बुदा ॥२२॥  
ताभ्या बलाभ्या सहृष्टाश्चेरुस्ते देवदानवा ।  
वनाभ्या पार्वतीयाभ्या पुष्पिताभ्या यथा गजा ॥२३॥  
समाजग्मुस्ततो भेरी शङ्खान्दध्मुश्च नैवश ।  
स शब्दो द्या भुव चैव दिशश्च समपूरयत् ॥२४॥  
ज्याघाततलनिर्घोषो धनुषा कूजितानि च ।  
दुन्दुभीना निनदता दैत्याना निर्दधु स्वनान् ॥२५॥  
तेऽन्योन्यममिसपेतु पातयन्त परस्परम् ।  
वभञ्जुवर्हामिवाहून्द्दुन्दुमन्ये युयुत्सव ॥२६॥  
देवतास्त्वशनीर्घोरा परिघाश्चोत्तमायसान् ।  
ससजुं राजौ निस्सिद्धान्नादा गुर्वीश्च दानव ॥२७॥  
गदानिपातैर्भग्नाङ्गा बाणैश्च शकलीकृता ।  
परिपेतुर्भूश केचिन्पुञ्जा केचित्ससजिरे ॥२८॥

समुद्र की पूर्व तथा पश्चिम दिशाओं से उठे हुए मेघों के समान उ  
सेनाओं में से दोनों ओर के निडर तथा बहादुर सैनिक निकलने लगे  
पुणों से परिपूर्ण तथा पर्वतों वाले जगत्तो में जिस प्रकार हाथी घूमते  
उसी प्रकार दोनों ओर के थोड़ा दोनों शिवरो में घूमते हुए युद्ध करने लगे  
थचानक चारों दिशाओं में भेरी बजने लगी तथा शङ्ख वा शब्द गूँजने

उन भेरी तथा १७५ की प्रतिध्वनि में तीनों मण्डन मूँज गए ॥२४॥ प्रत्यक्ष की थोट, धनुषों की टकार तथा दुन्दुबी की ध्वनि में दानवों का मारा उमगाह ठहा पड़ गया ॥२५॥ अब दोनों दमों के मोड़ा आगम में आपात करने हुए एक दूसरे की मारने लगे । कुछ मोड़ा परस्पर झट्ट करते हुए एक दूसरे की बाटू तोड़ने लगे ॥२६॥ देवगण मोट्टे की बनी भीदगु परिष तथा दंरगगु बटी-बडी तथा भारी गदा और त्रिजिहा से आपात करते थे ॥२७॥ उनमें बहुत से मोड़ाओं के अंग दशमों के चरार से भग हो गए और बहुत से मोड़ाओं के गरीर गौरों से टुकड़े-टुकड़े हो गए । इसलिए कुछ तो बेइम होकर धृषिनी पर गिर गए तथा कुछ लुके हुए गढ़े रह गए ॥२८॥

ततो रथं मगुरगंविमानंरत्नाञ्जुगामिभिः ।  
समीपुस्ते तु सरज्जा रोपादन्धोन्वमाह्वे ॥२९॥  
मयत्तमता. ममरे त्रियत्तन्मन्त्याग्नेरे ।  
रथा रथनिग्दधन्ने पदानाञ्च पदानिभि ॥३०॥  
तेषा ग्याना तुमुनः स शब्दः शब्दव्याहृताम् ।  
बभूवाथ प्रगक्ताना नमर्माय पथोन्चाम् ॥३१॥  
यमञ्जिरे रथान्नेचिगमृदिता रथं. ।  
मवाप्रमेके मप्राप्य न भेकुभानिनुं रथा ॥३२॥  
अन्धोन्वस्यानिगमरे दोम्पामुक्षिप्य दविता. ।  
महादमानामग्ना जप्नुग्नप्रासिचमिग ॥३३॥  
मन्त्रंरन्ने विनिभिन्ना रथं येमृत्ता यधि ।  
क्षरग्नेनना महता जसजना मयागमे ॥३४॥  
मदग्नेनमपिग शितीग्नितनगदरिनम् ।  
देवजानमशत्त्य मद्रुम यदमारमो ॥३५॥

तथा पैदल योद्धाओं द्वारा पैदल योद्धाओं के मार्ग रुक गए ॥३०॥ आकाश में बादलों की गर्जन-ध्वनि के समान रथों से भीषण ध्वनि होने लगी । किसी-किसी का रथ ध्वस्त हो गया तो कुछ रथों से मुचल कर ही मर गए । बहुत से रथियों को इस भीड़ में रथ आगे बढ़ाना ही दूमर हो गया ॥३१-३२॥ बहुत से ढाल तथा तलवारों को धारण करने वाले योद्धा अपने दोनों हाथों से गर्वपूर्वक तलवार चलाने लगे । उस समय उसके सभी हथियार तथा आभूषण ध्वनि करने लगे ॥३३॥ बहुत से धायल योद्धाओं के शरीर से रक्त इस प्रकार बहने लगा जिस प्रकार जलवर्षा मेघों से जल बरसता है ॥३४॥ इसी प्रकार दोनों ओर के योद्धाओं के शस्त्रों के आघात से बहुत भीषण युद्ध होने लगा ॥३५॥

तद्दानवमहामेघ देवायुधतडितप्रभम् ।

अन्योन्यस्त्राणवपं तद्युद्धं दुर्दिनमावभौ ॥३६॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धः कालनेमिमहासुरः ।

व्यवदंते समुद्रोर्ध्वं पूर्यमाण इवाम्बुदः ॥३७॥

तस्य विद्युच्चलापीडा प्रदीप्ताशनिवर्षिणः ।

गात्रे नगशिरःप्रत्या विनिष्पेपुवंलाहका ॥३८॥

क्रोधान्नि श्वसतस्तस्य भ्रभेदस्वेदवर्षिणः ।

साम्निनिष्पेपवना सुखान्निश्चेरुरर्चिपः ॥३९॥

तिर्यगूर्ध्वं च गगने ववृधुस्तस्य बाहवः ।

पञ्चास्याः कृष्णवपुषो लेलिहाना इवोरगाः ॥४०॥

सोऽस्तजालैर्वह्विर्धैर्धनुभिः परिधैरपि ।

दिव्यैरावाणमावशे पर्वतरुच्छित्तेरिव ॥४१॥

सोऽनिलोद्धूतवसनस्तस्थौ सग्राममूर्द्धनि ।

सन्ध्याऽऽनपग्रस्तशिखः साक्षान्भेरुरिवाचलः ॥४२॥

दंत्यों रूपी मेघों पर देवगणों के शस्त्रों रूपी विद्युत् तथा दोनों ओर की तीरों के आदान-प्रदान रूपी वर्षा एक हो जाने से युद्ध-क्षेत्र में भीषण दृश्य उत्पन्न हो गया ॥३६॥ तभी महान् दंत्य कालनेमि, समुद्र के जल से भरे हुए बादलों के समान, शीघ्र में भर गया ॥३७॥ विद्युत् रूपी माथा से अलङ्कृत, वस

समान बरसने वाला, पर्वतों के शिखरों के समान मेघ उसके स्पर्श से टुकड़े-  
 दे हो गए ॥३८॥ क्रोध के बशीभूत कालनेमि की दोनों भाँटों से पसीना  
 ने लगा । उसका श्वाँस जोर पकटने लगा । उस समय वज्र की दग्नि शिखा  
 उड़ान उसके मुँह से उष्ण श्वाँस निकलने लगा ॥३९॥ उसकी सभी बाहु  
 लगती जीम वाले तथा पाँच मुँह वाले सर्पों के सहज टेढ़ी होकर ऊपर की  
 उड़ गई ॥४०॥ ऊँचे शिखरों वाले पर्वतों के समान उसके धनुष, परिध  
 । अन्य बहुत से अस्त्र-शस्त्रों से सारा आकाश ढँक गया ॥४१॥ जिस समय  
 न् असुर कालनेमि युद्ध स्थल में आया तो उसके वस्त्र वायु के वेग से उड़  
 थे । उस समय वह दानव शाम के सूर्य के प्रकाश में चमकते हुए ऊँचे  
 शरों वाले मुनेह पर्वत के समान दिखलाई दे रहा था ॥४२॥

ऊरवेगप्रतिक्षिप्तीः शैलशृङ्गाग्रपादपैः ।

अपातयद्द्वगणान्वज्रेणेव महागिरीन् ॥४३॥

बाहुभिः शस्त्रनिस्सिर्गश्चिच्छिन्नभिन्नशिरोरसः ।

न शोकुञ्चनितुं देवाः कालनेमिहृता युधि ॥४४॥

मुष्टिमिनिहृताः केचित्केचिच्च विदलीकृताः ।

यक्षगन्धर्वपतयः पेतुः सह महोरगैः ॥४५॥

तेन विस्मामिता देवाः ममर कालनेमिना ।

न शोकुर्यत्नवन्नोऽपि प्रतिकर्तुं विचेतसः ॥४६॥

तेन शक्रः महन्वाक्षः स्तम्भितः शरवन्धनैः ।

ऐरावतगतः मध्ये चनितुं न शक्नाक ॥४७॥

निर्जलाम्मोदनहृशो निर्जलाणवमग्रजः ।

निर्व्यापारः कृतस्तेन विषाणो वरुणो ॥४८॥

रणं वैधवणस्तेन परिधैः कालनेमिः ।

व्यलपल्लोकपालेशस्त्यागिनी ॥४९॥



खड्ग के आघात से उनके बल-स्थल तथा मस्तक गण्ड-खण्ड हो गए ।  
 आघात से उनमें हिलने-डुलने की शक्ति भी नहीं रही ॥४४॥ कालनेमि  
 मुष्टि की चोट से बहुत से गन्धर्व तथा यक्ष मर गए और बहूतरे पीडित होकर  
 घराशायी हो गए ॥४५॥ इसी तरह कालनेमि द्वारा पीडित देवगण अपनी इच्छा  
 के रहते हुए भी बुद्धि छो बैठे तथा वे प्रतिघात न कर सके ॥४६॥ सहस्रों में  
 घाले इन्द्र कालनेमि के तीरो से पीडित होकर अपने ऐरावत हाथी पर अत्राही  
 जैसे बैठे रह गए ॥४७॥ बरुण अपने अस्त्र पाश के नष्ट होने के कारण बिना  
 जल वाले बादल तथा सूखे हुए समुद्र के सदृश उदासीन हो गए ॥४८॥ कालनेमि  
 के मृत्यु समान परिधो के प्रहार से पीडित होकर लोकापाल कुवेर की जैसे बुद्धि  
 समाप्त हो गई ॥४९॥

यम सर्वहरस्तेन दण्डप्रहरणो रणे ।

याम्यामवस्था समरे नीत स्वा दिशमाविशत् ॥५०॥

स लोकपालानुत्साद्य कृत्वा तेषा च कर्म तत् ।

दिक्षुसर्वासु देहं स्व चतुर्धा विदधे तदा ॥५१॥

स नक्षत्रपथं गत्वा दिव्य स्वर्मानुदशिनम् ।

जहार लक्ष्मी सोमस्य त चास्य विषय महत् ॥५२॥

चालयामास शीताशु स्वर्गद्वाराच्च भास्करम् ।

सायन चास्य विषय जहार दिनकर्म च ॥५३॥

सोऽग्निं देवमुखे हृष्ट्वा चकारात्ममुखे स्वयम् ।

वायु च तरसा जित्वा चकारात्मवशानुगम् ॥५४॥

स समुद्रात्समानीय सर्वाश्च सरितो बलात् ।

चकारात्मवशे वीर्याद्देहभूताश्च सिन्धव ॥५५॥

अप स्ववशगा कृत्वा दिविजा याश्च भूमिजा ।

स्थापयामास जगती सुगुप्ता घरणीघरे ॥५६॥

यमराज जिनमें सभी को अचेत करने की शक्ति थी, स्वयं ही कालनेमि  
 के आघात से अचेत हो गए उनके थोड़ा उन्हें दक्षिण दिशा की ओर ले ।  
 ॥५०॥ हे राजन् जनमेजय ! इस प्रकार उस महान् दैत्य कालनेमि ने लोकपाल

मुद्र में हराकर अपने शरीर के चार खण्ड किए और चतुर्दिग में स्वयं वरुण, इंद्र आदि लोकपालों के कार्य करने लगा ॥११॥ वह महादातव कालनेमि राहू द्वारा निर्देशित नक्षत्रों के पथ पर गया । उसने चन्द्रदेव का साथ ऐश्वर्य अपने अधिकार में लेकर उनसे राज्य पर भी अधिकार कर लिया ॥१२॥ उसके भय सूर्यदेव स्वर्ग द्वारा विमुख होकर अपन रात्रि तथा दिन करने के कार्य से भी विमुख हो गए ॥१३॥ अग्निदेव को देवगणों के मुँह में देख कर उसने अपन देह में स्थान दिया तथा पवनदेव को अपन बाहुबल से हरा कर अपना आशा-सल्लोक सेवक बना लिया ॥१४॥ उसने शौर्य से सभी नदियाँ आदि समुद्र से निकाल कर पुन पूर्ण रूप से बहने लगी तथा उसके अधिकार में हो गई ॥१५॥ उसने पृथिवी तथा स्वर्ग में बहने वाली सभी जल धाराएँ पर्वतों से रक्षित भूमि तल पर स्थापित कर दी ॥१६॥

स स्वप्नभूरिवाप्नोति भूहभूतिमंहन् ।  
सर्वलोकमयो दैत्यः सर्वलोकभयावह ॥१७॥  
स लोकपालैकवपुश्चन्द्रसूर्यग्रहात्मवान् ।  
पावकानिलसघातो रराज युधि दानव ॥१८॥  
पारमेष्ठ्ये म्यित स्थाने लोकाना प्रभवात्यये ।  
तुष्टुवुस्त दैत्यगणा देवा इव पितामहम् ॥१९॥

तब सभी लोकों में भयकर तथा सभी लोकों का राजा वह महान् दैत्य लोकपति भगवान् ब्रह्मा के सहस्र शोभा को प्राप्त हुआ ॥१७॥ अन्त में सभी लोकपाल, चन्द्रदेव, सूर्यदेव, वायुदेव और अग्निदेव पर उसका अधिकार हो गया ॥१८॥ जब कालनेमि ने इस प्रकार मृष्टि-रचयिता ब्रह्मा के पद पर अधिकार कर लिया, तो, जैसे देवगण लोकपति भगवान् ब्रह्मा की स्तुति करते थे, वैसे ही दैत्य-गण दानव-राज कालनेमि की स्तुति करने लगे ॥१९॥

॥ विष्णु द्वारा देवताओं को आश्वासन ॥

पञ्च त नाभ्यवर्तन्त विपरीतेन कर्मणा ।

वेदो धर्म समा सत्य श्रीश्च नारायणाश्रया ॥१॥

यास्याम्यपचितिं दिष्ट्या पूर्वेषामथ सयुगे ।  
 इमं नारायणं हत्वा दानवानां भयावहम् ॥१६॥  
 क्षिप्रमेव बधिष्यामि रणे नारायणाश्रितान् ।  
 जात्यन्तरगतोऽप्येष मृधे बाधति दानवान् ॥१७॥  
 एषोऽनन्त पुरा भूत्वा पद्मनाभ इति स्मृतः ।  
 जघानैकाग्रं वै घोरे तावुभौ मधुकैटभौ ।  
 विनिवेश्य स्वके ऊरो निहितौ दानवेश्वरौ ॥१८॥  
 द्विधाभूतं वपुः कृत्वा सिंहाद्वयं नरसंस्थितम् ।  
 पितरं मे जघानैको हिरण्यकशिपु पुरा ॥१९॥  
 शुभं गर्भं मधुसूते मम दितिर्देवतारणि ।  
 यज्ञकाले बलेर्यो वै कृत्वा वामनरूपताम् ।  
 त्रीलोकानां जहारैकं क्रममाणस्त्रिभिः क्रम ॥२०॥  
 भूयस्त्विदानीं समरे संप्राप्ते तारकामये ।  
 मया सह समागम्य सह देवैर्विनश्यति ॥२१॥

आज यह मेरे सामने भाग्य से ही आ गया है । मेरे तीरी से पीड़ित  
 होकर अभी यह मेरे समक्ष झुक जायगा ॥१५॥ आज मेरा सौभाग्य है कि मैं  
 इसका वध करके अपने पूर्वजों के ऋण से मुक्त होऊँगा । दानवों के लिए भया-  
 नक इस नारायण का नाश कर दूँगा तथा नारायण के आश्रित देवगणों का भी  
 वध कर दूँगा । यह संभव है कि फिर कभी कोई अवतार धारण करके दानवों  
 को बच दे ॥१६-१७॥ क्योंकि पहले भी इसी अनन्त ने पद्मनाभ रूप धारण  
 करके मधु तथा कटभ दैत्यों को अपनी जाँघ पर रख कर खीर कर वध किया  
 था ॥१८॥ इसी विष्णु ने नृसिंहदेव का अवतार लेकर मेरे पिता हिरण्यकशिपु  
 को अपनी जाँघ पर खीर कर वध किया था ॥१९॥ इसने शुभ समय में देव-  
 भाता अदिति के गर्भ में जन्म धारण किया था । इसने अमुरराज बलि के यज्ञ  
 समय में वामन अवतार धारण किया तथा तीनों लोकों को तीन ही दण्ड में नाप  
 लिया था ॥२०॥ परन्तु भव दण्ड समय तारादि संप्रान में सभी देवगणों सहित  
 यह मेरे द्वारा मृत्यु को प्राप्त होगा ॥२१॥

स एवमुक्त्वा बहुधा क्षिपन्नारायण रणे ॥  
 वाग्मिरप्रतिरूनामियुं द्रमेवाम्परोचयत् ॥२२  
 क्षिप्यमाणोऽमुरेन्द्रेण न चुकोप गदाधरः ।  
 क्षमायलेन महता सस्मिन वाक्यमब्रवीत् ॥२३  
 अल्पदपंत्रलो दैत्यः स्थित क्रोधादमद्वदन् ।  
 हृतस्त्वमात्मनो दोषं क्षमा योजीत्य भापसे ॥२४  
 अग्रमस्त्व मम मतो धिगेतत्तव वाग्वलम् ।  
 न तत्र पुदपाः सन्ति यत्र गर्जन्ति योषितः ॥२५  
 अहं त्वा दैत्य पश्यामि पूर्वपा मागंगामिनाम् ।  
 प्रजापतिवृत्त सेतुं को भित्त्वा स्वस्तिमान्मवेत् ॥२६  
 अद्य त्वा नाशयिष्यामि देवव्यापारकारकम् ।  
 स्वेषु स्वेषु च स्थानेषु स्थापयिष्यामि देवताः ॥२७

हे राजन् ! इस प्रकार दानवराज नाना प्रकार ने भगवान को अपमान  
 करता हुआ युद्ध करने को उद्यत हो गया ॥२२॥ उस दैत्य के द्वारा इसना  
 अपमान होने पर भी देवराज भगवान विष्णु क्षोभित नहीं हुए । विष्णु धैर्य के  
 साथ मन्द मुस्कान सहित कहने लगे—॥२३॥ हे दानव ! गर्व अत्यन्त तुच्छ  
 होता है । बीर वही होता है जिसे बिना शक्ति रहते हुए भी क्रोध न आए ।  
 इसलिए तुम धैर्य खोकर, गर्व के दोष से कहीं गई बातों से ही मर चुके  
 हो ॥२४॥ मैं तो तुमको बड़ा ही पापी जीव समजता हूँ । तुम्हारे बाहु-बल के  
 गर्व के लिए तुम्हें धिक्कार है । जहाँ पुरुष नहीं होते वही नारियाँ गरजती  
 फिरती हैं ॥२५॥ मुझे दिक्काई देता है, जिस भाग पर तुम्हारे पूर्वज गए हैं,  
 वही तुम जाना चाहते हो । प्रजापति मृष्टिकर्ता स विमुख होकर कोन प्रमन्नचित्त  
 रह सकता है ॥२६॥ आज मैं तुम्हारा वध कर दूँगा क्योंकि तुमने देवगणों से  
 उनके कार्यों को अपने अधिकार में ले लिया है । मैं सभी देवगणों को पुनः  
 अपने-अपने पदासीन कर दूँगा ॥२७॥

एव ब्रुवति तद्वाक्यं मृधे श्रीवत्सघारिणि ।

जहास दानव त्रीवाद्भस्ताश्रके च सायुधान् ॥२८

स बाहुशतमुद्यम्य सर्वास्त्रग्रहणं रणे ।  
 क्रोधाद्द्विगुणरक्ताक्षो विष्णु वक्षस्यताडयत् ॥२६॥  
 दानवाश्चापि समरे भयतारपुरोगमा ।  
 उद्यतायुधनिस्त्रिंश दृष्ट्वा विष्णुमयाद्रवन् ॥३०॥  
 स ताड्यमामानोऽतिबलेर्देत्यै सर्वायुधोद्यते ।  
 न चचाल हरिर्युद्धेऽकम्प्यमान इवाचल ॥३१॥  
 ससक्तश्च सुहर्णेन कालनेमी महासुर ।  
 सर्वप्राणेन महती गदामुद्यम्य बाहुभि ॥३२॥  
 मुमोच तुलिता घोरा सरब्धो गरुडोपरि ।  
 कर्मणा तेन दैत्यस्य विष्णुर्विस्मयमागत ॥३३॥  
 यदा तस्य सुपर्णस्य पतिता मूर्ध्नि सा गदा ।  
 तदाऽऽगमत्पदा भूमिं पक्षी व्यथितविग्रह ॥३४॥  
 सुपर्ण व्यथित दृष्ट्वा क्षत च वपुरात्मन ।  
 क्रोधात्सरत्तनयनो वैकुण्ठश्चक्रमाददे ॥३५॥

वैशम्पायन बोले—हे महाराज ! इस प्रकार पीताम्बरधारी भगवान् विष्णु के कहने पर वह शान्त क्रोध के साथ जेठ से हँसा तथा जेठने अपने सभी शस्त्र गम्हाल लिये ॥२८॥ इसके पश्चात् उस दैत्य ने सक्रोध सभी अस्त्र शस्त्र अपन सौ बाहुओं में लेकर भगवान् विष्णु की छाती पर आघात पहुँचाया ॥२९॥ तारकामय इत्यादि दैत्य भी निस्त्रिशिका आदि शस्त्र लेकर विष्णु भगवान् पर आक्रमण करने को उद्यत हुए ॥३०॥ अत्यन्त वीर तथा माना प्रकार के जस्यों से शोभित दैत्यो के आघात करने पर भी भगवान् विचलित नहीं हुए तथा युद्ध स्थल के मध्य अकम्पित पर्वत के समान खड़े रहे ॥३१॥ इसने पश्चात् दानवराज कालनेमि ने अपनी भयंकर गदा से गरुड के मस्तक पर प्रहार किया । उस दैत्य के इस कार्य को देखकर विष्णु भगवान् विस्मय में पड़ गए ॥३२-३३॥ उस गदा के प्रहार से पक्षिराज गरुड बहुत पीटित हुए तथा भूमि पर उतर आए ॥३४॥ जब भगवान् विष्णु ने अपना तन तथा पक्षिराज गरुड को घायल देखा तो उनके नेत्र क्रोध से लाल हो उठे । तब उन्होंने अपना सुदर्शन चक्र हाथ में ले लिया ॥३५॥

व्यवद्वंत च वेगेन सुपर्णेन समं प्रभुः ।  
 भुजाश्चास्य व्यवधन्त व्याप्नुवन्तो दिशो दश ॥३६॥  
 स दिशः प्रदिशश्चैव खं च गां चैव पूरयन् ।  
 ववृधे स पुनर्लोकान्क्रान्तुकाम इवोजसा ॥३७॥  
 त जयाय सुरेन्द्राणां वदंमानो नमस्तले ।  
 श्रुपयः सह गन्धर्वस्तुष्टुबुधसूदनम् ॥३८॥  
 स द्यां किरीटेन लिखन्साम्रमम्बरमम्बरैः ।  
 पद्मं यामाक्रम्य वसुधां दिशः प्रच्छाद्य बाहुभिः ॥३९॥  
 सूर्यस्य रश्मितुल्यामं महस्सारमरिक्षयम् ।  
 दीप्ताग्निसदृशं घोरं दर्शनीयं सुदशनम् ॥४०॥  
 सुवर्णेनेमिपर्यन्तं वज्रनाभं भयावहम् ।  
 मेदोमज्जास्थिरुधिरैर्दिग्धं दानवसंभवैः ४१  
 अद्वितीयं प्रहारेषु क्षुरपर्यन्तमण्डलम् ।  
 स्रग्दाममालाविततं कामगं कामरूपिणम् ॥४२॥

विष्णु भगवान् तथा पक्षिराज गह्वर का शरीर विस्तार को प्राप्त होने लगा । भगवान् विष्णु की भुजाओं ने बढ़कर दसों दिशाओं को ढक लिया ॥३६॥ उनके शरीर के विस्तार से दिशा, विदिशा, पृथ्वी तथा आकाश भी ढँक गए । ऐसा माजूम पड़ने लगा जैसे तीनों लोकों को आक्रान्त करने के लिए उनका शरीर विस्तार को प्राप्त हो रहा है ॥३७॥ देवगणों के कल्याण के लिए विस्तारित शरीर को देखकर नमस्तुत्य श्रुति तथा गन्धर्व जन भगवान् विष्णु की स्तुति करने लगे ॥३८॥ इस शुभ समय में उनके मस्तक में स्वर्ग, मानों में अम्बर से आच्छादित आकाश, चरणों में वसुधा तथा भुजाओं में दसों धारें व्याप्त थी ॥३९॥ सूर्य की किरणों के समान चमकता हुआ, हजारों धारों वाला, तीव्र भड़कती हुई अग्नि के समान, तीक्ष्ण तथा भीषण सुदशन चक्रों के हाथों में सुशोभित हो रहा था ॥४०॥ उस भयानक चक्र को धारें की थी तथा नाभि वज्र के सदृश्य थी । उस पर दैत्यों का मेद, मज्जा, रश्मि तथा रुधिर लगे हुए थे ॥४१॥ वह प्रहार करने में अद्वितीय था । उसके

किनारे हारो के समान और छुरे की धार जैसे तेज थे । वह भगवान विष्णु, इच्छा के साथ साथ विविध आकार धारण कर सकता था तथा सभी जगह की मे समर्थ था ॥४२॥

स्वयं स्वयंभुवा सृष्टं भयदं सर्वविद्विषाम् ।  
महर्षिरोपैराविष्टं नित्यमाहवदपितम् ॥४३॥  
क्षेपणाद्यस्य मुह्यन्ति लोकाः सस्याणुजङ्गमाः ।  
अव्यादानि च भूतानि तृप्तिं यान्ति महाहवे ॥४४॥  
तमप्रतिमकर्माणं समानं सूर्यवर्चसा ।  
चक्रमुद्यम्य समरे क्रोधदीप्तो गदाधरः ॥४५॥  
समुष्णन्दानव तेजः समरे स्वेन तेजसा ।  
चिच्छेद बाहु चक्रेण श्रीधरः कालनेमिनः ॥४६॥  
तच्च वक्त्रशतं घोरं साग्नितूर्णादृहासिनम् ।  
तस्य दैत्यस्य चक्रेण प्रममाथ वलाद्वरिः ॥४७॥  
स छिन्नबाहुर्विशिरा न प्राकम्पत दानवः ।  
कदन्धावस्थितः सत्ये विशाख इव पादपः ॥४८॥  
तं वितत्य महापक्षौ वायो कृत्वा समं जवम् ।  
उरसा पातयामास गरुडः कालनेमिनम् ॥४९॥

उस चक्र का निर्माण भगवान ने स्वयं किया था तथा उससे सभी भय थे । उसमें ऋषिजना का क्रोध समाविष्ट था तथा वह नित्य रण दप से पूर्ण था ॥४३॥ इसका दुष्टों पर प्रहार करने पर तीनों लोक पुलकित हो उठते उससे प्रहार करने पर युद्ध-स्थल में मृत योद्धाओं का मांस खाने वाले जीवी हृदय प्रसन्नता से भर उठता था ॥४४॥ तब भगवान विष्णु ने क्रोध में भ उस भयंकर प्रलय स्वरूप चक्र को लेकर अपने तेज से दैत्यों का साथ समाप्त करते हुए महान् अमुर कालनेमि की सी बाहु तथा मयानव हाथ करते हुए सी मस्तकों को काट दिया ॥४५-४७॥ वह दैत्य अपने बाहु मस्तकों से काट जाने पर भी चम्पित नहीं हुआ अपितु बबल अवस्था में ही

सब बाने वृक्ष के समान खड़ा रहा ॥४८॥ तभी विनता पुत्र पक्षिराज गण्ड  
नों पक्ष फैलाकर उड़ने लगे तथा वायु के समान वेग से अपने वंश का  
मुरराज कालनेमि पर प्रहार कर उसे गिरा दिया ॥४९॥

स तस्य देहो विमुखो विजाखः स्वात्सरिभ्रमन् ।  
निपपान दिव त्यक्त्वा शोभयन्धरणीतलम् ॥५०॥  
तस्मिन्निपतिते दैत्ये देवा सर्पिगणास्तदा ।  
साधु साध्विति वैकुण्ठं समेताः प्रत्यपूजयन् ॥५१॥  
अपरे ये तु दैत्या वै युद्धे दुष्टपराक्रमाः ।  
ते सर्वे बाहुभिर्व्याप्ता न श्लोकुश्चलितुं रणे ॥५२॥  
काश्चित्क्वेषु जग्राह काश्चित्क्वण्डेऽभ्यपीडयत् ।  
पाटयत्कम्यच्चिद्वक्त्र मध्ये काश्चिदयाग्रहीत् ॥५३॥  
ते गदाचक्रनिर्दग्ना गतसत्त्वा गतामवः ।  
गगनाद्भ्रष्टमर्वाणा निपेतुर्धरणीतले ॥५४॥  
तेषु सर्वेषु दैत्येषु हतेषु पुरुषोत्तम ।  
तस्यै गक्रप्रियं कृत्वा कृतकर्मा गदावरः ॥५५॥

इस प्रहार से कालनेमि का बाहु तथा मस्तकहीन शरीर लुप्त होने लगा  
। आकाश से गिरकर पृथ्वी को अनङ्गुत करने लगा ॥५०॥ उस भयंकर दैत्य  
का नाश होने पर देवगण तथा ऋषिजन साधुवाद देते हुए भगवान् श्री विष्णु  
की स्तुति करने लगे ॥५१॥ और जो जो दैत्य युद्ध-स्थान में पराक्रम के साथ  
लड़ कर रहे थे, वे सभी भगवान् विष्णु की बाहुओं से भिचकर मृत्यु को प्राप्त  
हो गए ॥५२॥ अन्य कुछ दैत्यों को बाल तथा कुछ दैत्यों को कण्ठ मरोड़कर  
भगवान् ने मार डाला । बहुतों को उन्होंने अपने गदा तथा चक्र से मार डाला  
। या सभी दैत्य मृत्यु को प्राप्त होकर आकाश से धरती पर आ गिरे ॥५३-५४॥  
इस तरह भगवान् विष्णु देवराज इन्द्र के प्रिय कार्य दैत्यों का सहार करते हुए  
अन्त प्रसन्नचित्त हो बड़े हो गए ॥५५॥

तस्मिन्विमह्यै निर्वृते सग्रामे तारकामये ।

त देशमाजगामाशु ब्रह्मा लोकपितामह ॥५६॥



सर्वैर्ब्रह्मर्षिभिः साधैर्गन्धर्वैः साप्सरोगणैः ।  
 देवदेवो हरिः देव पूजयन्वाक्यमब्रवीत् ॥५७॥  
 कृतं देव महत्कर्म सुराणां शल्यमुद्धतम् ।  
 वधेनानेन दैत्यानां वयं हि परितोषिता ॥५८॥  
 योज्यं हतस्त्वया विष्णो कालनेमी महासुर ।  
 त्वमेकोऽस्य मृधे हन्ता नान्यः कश्चन विद्यते ॥५९॥  
 एष देवान्परिप्रवेत्लोकान् सचराचरान् ।  
 ऋषीणां कदनं कृत्वा मामपि प्रतिगर्जति ॥६०॥  
 तदनेन तवोग्रेण परितुष्टोऽस्मि कर्मणा ।  
 यदयं कालतुल्याय कालनेमी निपातित ॥६१॥  
 तदागच्छस्व भद्रं ते गच्छाम दिवमुत्तमाम् ।  
 ब्रह्मर्पयस्त्वा तनस्थाः प्रतीक्षन्ते सदोगता ॥६२॥  
 अहं महर्पयश्चैव तत्र त्वा वदता वर ।  
 विधिवच्चाचंयिष्यामि गीर्भिर्दिव्याभिरच्युत ॥६३॥

हे राजन् ! इस प्रकार सग्राम का अन्त होने पर लोकपितामह श्री  
 सभी ब्रह्मर्षि, साधुजन, गन्धर्व तथा अप्सराओं सहित शीघ्र ही वहाँ पहुँचे ता  
 देवों के देव भगवान् विष्णु की सराहना करते हुए कहने लगे—॥५६-५७॥  
 देव ! आपने इन दैत्यों के विनाश स्वरूप जटिल कार्य को करके सभी देवग  
 का भय दूर कर दिया । इससे हम सभी बहुत प्रसन्नचित्त हैं ॥५८॥ हे विष्णु  
 आपने महान् असुर कालनेमि का नाश किया है, इसको सिवाय आपके क  
 और नहीं मार सकता था ॥५९॥ यह सभी देवगणों तथा लोकों की जीत  
 ऋषिजनों की सतृप्त करता हुआ भुव पर भी गरजने लगा था ॥६०॥ अ  
 मृत्यु रूपी कालनेमि ने संहार सहस्र यह जटिल कार्य किया है इससे हम स  
 की अत्यन्त प्रसन्नता हुई ॥६१॥ अब हम सब लोग स्वयं चलते हैं, वहाँ  
 सभी ब्रह्मर्षि एकत्रित हुए आपकी प्रतीक्षा में बैठे हुए हैं ॥६२॥ इसलिए  
 वहाँ चलिए । वहाँ सभी महर्षि तथा मैं विविध प्रकार से आपकी स्तुति  
 पूजन करेंगे ॥६३॥

किं चाहं तव दास्यामि वरं वरभृतां वर ।  
 सुरेष्वपि सदैत्येषु वराणां वरदो भवान् ॥६४॥  
 निर्यातयेत्तत्रैलोक्य स्फीतं निहतकण्टकम् ।  
 अस्मिन्नेव मृधे विष्णो शक्राय सुमहात्मने ॥६५॥  
 एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणा हरिरव्ययः ।  
 देवान्छममुखान्सर्वानुवाच शुभया गिरा ॥६६॥  
 श्रूयता त्रिदशा सर्वे यावन्तोऽन समागताः ।  
 श्रवणावहितैर्देहैः पुरस्कृत्य पुरंदरम् ॥६७॥  
 अस्मिन् समरे सर्वे कालनेमिमुखा हताः ।  
 दानवा विक्रमोपेता शक्रादपि महत्तरा ॥६८॥  
 तस्मिन्महति सक्रन्दे द्वायेव तु विनि सृता ।  
 वैरोचनश्च दैत्येन्द्रः स्वर्मानुश्च महाग्रह ॥६९॥  
 तदिष्टा भजता शक्रो दिश वरुण एव च ।  
 माम्था यम पालयतामुत्तरा च धनाधिप ॥७०॥

वैसे हम आपको वर तो क्या दे सकते हैं क्योंकि आप तो स्वयं ही सभी देवगणों तथा दैत्यगणों को वर देते हो ॥६४॥ अब तीनों लोक में कोई भी कण्टक न होने से आनन्दमग्न हैं । अतः आप स्वयं देवराज इन्द्र को तीनों लोकों का स्वामित्व दीजिए ॥६५॥ इस प्रकार भगवान् विष्णु पितामह ब्रह्माजी के कहने पर इन्द्र आदि सभी देवगणों से यह शुभ सवाद कहने लगे ॥६६॥ भगवान् विष्णु बोले—यहाँ इन्द्रादि जो भी देवगण हैं, सभी ध्यातपूर्वक मेरी बात को सुनें ॥६७॥ इस महायुद्ध में इन्द्र से भी अघिन शूरवीर कालनेमि आदि दैत्यो, का मैंने नाश कर दिया है ॥६८॥ इस भयानक मग्न में दो दानव बच गए हैं—एक विरोचन का पुत्र बलि और दूसरा राहु ॥६९॥ अब देवराज इन्द्र तथा वरुण अपनी अपनी दिशाओं पर राज्य करें । दक्षिण दिशा पर यमराज तथा उत्तर दिशा पर कुबेर राज्य करें ॥७०॥

ऋक्षैः सह यथायोग काले चरतु चन्द्रमा ।

अब्द ऋतुमुख सूर्यो भजतामयनै सह ॥७१॥

आज्यभागा प्रवर्तन्ता सदस्यैरभिपूजिता ।  
 हूयन्तामग्नयो विप्रैर्वेददृष्टेन कर्मणा ॥७२॥  
 देवाश्च बलिहोमेन स्वाध्यायेन महर्षय ।  
 श्राद्धेन पितरश्चैव तृप्तिं यान्तु यथासुखम् ॥७३॥  
 वायुश्चरतु मार्गस्थस्त्रिधा दीप्यतु पावक  
 त्रयो वर्णाश्च लोकास्त्रीन्बद्धं यन्त्वात्मजगुणै ॥७४॥  
 प्रतय सप्रवर्तन्ता दक्षिणीर्यद्विजातिभि ।  
 दक्षिणाश्चोपवर्तन्ता यथाहं सर्वंसक्षिणाम् ॥७५॥  
 गाश्च सूर्यो रसान्सोमो वायु प्राणाश्च प्राणिषु ।  
 तपयन्त प्रवर्तन्ता शिवै सोम्यैश्च कर्मभि ॥७६॥  
 यथावदनुपूर्व्येण महेन्द्रसलिलोद्भवा ।  
 त्रैलोक्यमातर सर्वा सागर यान्तु निम्नगा ॥७७॥

नक्षत्रो सहित चंद्रमा अपने समय के अनुसार भ्रमण करे तथा अपने  
 अपन में घूँटकर सूर्य ऋतुओं का ध्यान करते हुए अपने कार्य में सलग हो ॥७१॥  
 ब्रह्मजन यज्ञ में विधानानुसार सभी सदस्यों द्वारा पूजित हवि तथा आहुति तीनों  
 अग्नियों को प्रदान करें ॥७२॥ देवगण बलि-होम द्वारा, ऋषिजन स्वाध्याय  
 द्वारा तथा पितृगण श्राद्ध द्वारा प्रसन्नतापूर्वक पूज्य रूप से तृप्त हो ॥७३॥ वायु  
 अपने मार्ग पर अग्रसर होते रहे अग्नि यज्ञ कुण्ड में ग्राह्यतय से संतुष्ट होकर  
 दीप्यमान हो तथा त्रिलोकी वासी तीनों वर्णों के अनुसार अपने अपने गुणों का  
 पालन करें ॥७४॥ दीक्षा ग्रहण करने के लिए द्विजाति यज्ञ प्रारम्भ कराए ।  
 यज्ञ का आयोजन कराने वाले जितनी दक्षिणा देने को कहे, उतनी दक्षिणा ही  
 बांटी जाय ॥७५॥ सूर्य अपने शुभ कार्य से प्राणियों के नेत्रों, चन्द्र अन्न आदि  
 रसों तथा वायु सभी प्राणियों के श्वास को तृप्त करें ॥७६॥ इन्द्र द्वारा वपित  
 से निक्की हुई तीनों लोकों की प्राणदायिनी नदियाँ पुन पूर्व समय की तट  
 बहती हुई सागर में गिरें ॥७७॥

दैत्यैर्म्यस्त्यज्यता भीश्च शान्तिं व्रजत देवता ।

स्वस्ति वोऽन्तु गमिष्यामि ब्रह्मलोक सनातनम् ॥७८॥

स्वगृहे मर्चनोके वा भग्नमे वा विशेषतः ।  
 विश्रम्भो हि न मन्तव्यो नित्य क्षुद्रा हि दानवाः ॥७६  
 छिद्रेषु प्रहरन्त्येते न चैषा सम्यग्निर्घ्ना वा ।  
 सौम्यानामृजुभावाना नवता चार्जवे मतिः ॥७७  
 अहं नु दुष्टभावाना युष्मासु सुदुरात्मनाम् ।  
 अमभ्यग्वर्त्तमानाना मोहं दास्यामि देवताः ॥७८  
 यदा च सुदुराधर्षं दानवेभ्यो भयं भवेत् ।  
 तदा समुपगम्याशु विश्रास्ये वस्ततोऽभयम् ॥७९  
 एवमुक्त्वा सुरगणान्विष्णुः सत्यपराक्रमः ।  
 जगाम ब्रह्मणा साधं ब्रह्मलोकं महायशा ॥८०  
 एतदाश्चर्यमभवत्सग्रामे तारकामये ।  
 दानवानां च विष्णोश्च यन्मा त्वं परिपृच्छसि ॥८१

हे देवगणो ! अब दानवों का भय छोड़कर शान्तिपूर्वक जीवनयापन  
 ॥७६॥ तुम्हारा बल्पाण होगा । तथा मैं अपने सनातन ब्रह्मलोक को जाता  
 ॥७७॥ दैत्यगण अत्यन्त नीच होते हैं, अतः इनके घर, स्वर्ग तथा विशेषतया  
 दम्यत मैं इन पर कभी विश्राम नहीं करना ॥७८॥ तनिक साम्रा मिलते  
 ॥७९॥ ये दैत्य उपद्रव शुरू कर देते हैं । मर्यादा का पालन करना तो ये जानते ही  
 हैं । तुम मनी अत्यन्त मृदु तथा शान्त प्रकृति के हो ॥८०॥ अब-अब ये दुष्ट  
 या पानी दत्त तुमको सताएंगे तथा तुम इनसे अत्यन्त भय-वन्त होगे, तब  
 मैं शीघ्र आकर तुम्हारा भय दूर कर दूंगा ॥८१-८२॥ वंशम्तापन ने कहा—  
 'राजन् ! इस प्रकार देवगणों से कह कर सत्यपराक्रम तथा तेजस्वी भगवान्  
 विष्णु पितामह ब्रह्मा के ब्रह्मलोक की चले गए ॥८३॥ भय तथा तारादि  
 ग्राम में दैव्यों तथा भगवान् के चारों में जानने की आपने मुझसे इच्छा प्रकट  
 की थी, उसी विस्मयमयी क्या का वर्णन मैं आपने किया ॥८४॥

॥ विष्णु भगवान् विषयक प्रश्न ॥

ब्रह्मणा देवदेवेन साधं सलिलयोनिना ।

ब्रह्मलोकं गतो ब्रह्मन्वैकुण्ठं किं चकार ह ॥१

किमर्थं चादिदेवेन नीत. कमलयोनिना ।  
 विष्णुर्देत्यवधे वृत्ते देवैश्च कृतसत्क्रिय. ॥२॥  
 ब्रह्मलोके च किं स्थानं वा योगमुपास्त सः ।  
 वा दधार नियमं स विभुर्भूतभावनः ॥३॥  
 कथं तस्यासतस्तत्र विश्वं जगदिदं महत् ।  
 धियमाप्नोति विपुला सुरासुरनराचिताम् ॥४॥  
 कथं स्वपिति घर्मोन्ते बुध्यते चाम्बुदप्लवे ।  
 कथं च ब्रह्मलोकस्थो धुरं वहति लीकिकीम् ॥५॥  
 चरितं तस्य विप्रेन्द्र दिव्यं भगवतो दिवि ।  
 विस्तरेण यथानत्वं सर्वमिच्छामि वेदितुम् ॥६॥

महाराज जनमेजय ने कहा—हे ब्राह्मणदेव ! दानव संहार के पक्ष  
 पितामह ब्रह्माजी के साथ ब्रह्मलोक जाकर भगवान् श्रीविष्णु ने क्या-क्या  
 किये ? ॥१॥ कमलयोनि ब्रह्मा उन्हें ब्रह्मलोक किस प्रयोजन से ले गए ? ॥  
 विष्णु भगवान् ब्रह्मलोक के किस भाग में गए, वहाँ उन्होंने किस योग  
 उपासना की तथा किन नियमों का पालन किया ? ॥२॥ वहाँ रहते हुए त्रिलो  
 को देवगण, दैत्यगण तथा मनुष्य-जनों द्वारा पूज्य लक्ष्मीजी किस प्रकार मिली  
 ॥४॥ भगवान् धर्मो ग्रीष्म-ऋतु के अन्त सोते हैं तथा बरसात के बाद उठते हैं  
 ब्रह्मलोक में रहकर तीनों लोकों का पालन किस प्रकार करते हैं ? ॥५॥  
 विप्रवर ! मैं भगवान् विष्णु की इन दिव्य लीलाओं का बर्यान् विस्तारपूर्वक  
 आरम्भ से अन्त तक सुनना चाहता हूँ ॥६॥

शृणु नारायणस्यादी विस्तरेण प्रवृत्तयः ।  
 ब्रह्मलोकपथारूढो ब्रह्मणा सह मोदते ॥७॥  
 काम तस्य गतिं सूक्ष्मा देवैरपि दुरासदाः ।  
 यत्तु वक्ष्याम्यहं राजस्तन्मे निगदत शृणु ॥८॥  
 एष लोकमयो देवो लोकाश्चैतन्मयास्त्रयः ।  
 एष देवमयश्चैव देवाश्चैतन्मया दिवि ॥९॥

तस्य पार न पश्यन्ति बहव् पार्श्वान्तका ।  
 तत् पार पर चैव लोचाना वेद माद्यव ॥१०॥  
 अस्य देवान्धकारस्य मार्गितज्यस्य देवते ।  
 शृणु वै यत्तदा वृत्त ब्रह्मलोके पुरातनम् ॥११॥  
 स गत्वा ब्रह्मणो लोकं दृष्ट्वा पैंतामहं पदम् ।  
 ब्रह्मन्दे तानृषीन्सर्वांस्त्रिप्पुण्ड्रगणैः कर्मणा ॥१२॥  
 सौर्गिणं प्राक्सवने दृष्ट्वा दूयमानं महर्षिणि ।  
 अवन्दत महातेजा वृत्त्वा श्रीर्वाह्निर्की क्रियाम् ॥१३॥  
 स ददर्श मन्त्रेष्वाज्यैरिज्यमानं महर्षिभिः ।  
 भागं यज्ञियमज्ज्ञानं स्वदेहमपरं स्थितम् ॥१४॥

वैगम्पायन ने कहा—महाराज ! नाबन् श्री विष्णु ने पैंतामह ब्रह्माक्षी के साथ ब्रह्मलोक में जो कार्य किया, मुनिएँ, विष्णारूपवत् पहन में उड़ी का वर्णन कर रहा है ॥१०॥ परन्तु उनकी सीलाओं का आकार व्यक्त रहन है । उनकी सीलाओं की देवगण भी नहीं जान पाते । अपिन् मैं यदाशक्ति आपको बता रहा हूँ, मुनिएँ ॥११॥ देवों के देव भगवान् विष्णु में तीनों लोक समाये हुए हैं तथा तीनों लोकों में नाशान व्याप्त हैं । इसी तरह स्वर्ग भगवान् में समाया हुआ है तथा भगवान् स्वर्ग में व्याप्त हैं ॥१२॥ अन्कों योगी महानुरूप बहुत प्रयत्न करने पर भी नाबान् का पार न पा सके । परन्तु भगवान् तीनों लोकों का ओर-छोर तथा उत्तर मर्म की नली नाति समपत्र हैं ॥१३॥ वे महा-प्रभु हैं, हृदय तथा सबन से दूर हैं । देवगण नियन्त्रि उनकी छोन करते रहते हैं । मैं अब भगवान् के सन-पुन ब्रह्मलोक का वर्णन करता हूँ मुनिएँ ॥१४॥ ब्रह्मलोक में पट्टेकर सबन पहन उन्होंने समको मनो-नाति देखा । तत्पश्चात् भगवान् न वहाँ रहन वान् ऋषिजनों की त्रिपुण्ड्र अभ्यसेना को ॥१५॥ वहाँ भगवान् न देखा कि क्पावता में वहाँ रहने रहने वाने महर्षि हवन में आन्ति दे रहे हैं । प्रातः क्रिया के समाप्त होन पर भगवान् विष्णु न अग्नि देवता का नमस्कार किया ॥१६॥ ऋषिजनों द्वारा आह्वान करने पर गाह्य-पति ग्रहण करने वाले अग्नि देवता भगवान् के ही अन्य रूप हैं ॥१७॥

अभिवाद्याभिवाद्यानामृषीणा ब्रह्मवर्चसाम् ।  
 परिचक्राम सोऽचिन्त्यो ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥१५॥  
 स ददर्शोच्छ्रितान्युपाश्रयपालाग्रविभूषितान् ।  
 मध्येषु च ब्रह्मर्षिभिः शतशः कृतलक्षणान् ॥१६॥  
 आज्यधूमं समाध्याय शृण्वन्वेदान्द्विजेरितान् ।  
 यज्ञं रिज्य तमात्मानं पश्यस्तत्र चचार ह ॥१७॥  
 ऊचुस्तमृषयो देवाः सदस्याः सदसि स्थिताः ।  
 अर्घोद्यतभुजा सर्वे पवित्रान्तरपाणयः ॥१८॥  
 देवेषु वर्तते यद्वं तद्वि सर्वं जनार्हनात् ।  
 यत्प्रवृत्तं च देवेभ्यस्तद्विद्वि मधुसूदनात् ॥१९॥  
 अग्नीषोममयं लोकं यं विदुर्विदुषो जनाः ।  
 तं सोममग्निं लोकं च वेदं विष्णुं सनातनम् ॥२०॥

चिन्ता रहित भगवान् विष्णु पूज्य तथा ब्रह्मवर्चस्वी ऋषिजनों की  
 अभ्यर्थना करके सनातन ब्रह्मलोक में घूमने लगे ॥१५॥ उन्होंने देखा कि वहाँ  
 पर रहने वाले ब्रह्मर्षियों द्वारा चिन्तित करके बड़े बड़े उच्च यज्ञ स्तम्भ स्थापित  
 किये हुए हैं ॥१६॥ शुद्ध धी की सुगन्ध आ रही है ब्राह्मणजन वेदों का उच्चारण  
 कर रहे हैं तथा भगवान् की प्रार्थना के लिए यज्ञों का आयोजन हो रहा है ।  
 यह सब देखते हुए वे फिर घूमने लगे ॥१७॥ वहाँ रहने वाले ऋषिजन तथा  
 देवगण आदि शुद्ध मनोभावना के साथ अपने शुभ हाथों में अर्घ्य लिए हुए  
 कहने लगे ॥१८॥ हे भगवन् ! हम सभी जो भी कार्य कर रहे हैं तथा जो जो  
 कार्य कर चुके हैं, उसमें आपकी सहायता की अत्यन्त आवश्यकता है ॥१९॥  
 सभी विद्वानगण इस ससार की सृष्टि अग्नि तथा चन्द्र से हुई मानते हैं, अथ  
 अग्निदेव, चन्द्रदेव और यह ससार आपने द्वारा रचित है ॥२०॥

स्यागतं ते सुरश्रेष्ठ पद्मनाभ महाद्युते ।

इदं यज्ञियमातिथ्यं मन्त्रतः प्रतिगृह्यताम् ॥२१॥

स्वमस्य यज्ञपूतस्य पात्रं पाद्यस्य पावनम् ।

अतिथिस्त्व हि मन्त्रोक्तं सदृष्टं सततं मतम् ॥२२॥

त्वयि योद्धुं गते विष्णो न प्रावर्त्तन्त न क्रिया ।

अवैष्णवस्य यज्ञस्य न हि कर्म विधीयते ॥२३॥

सदक्षिणस्य यज्ञस्य त्वत्प्रसूतिं फलं भवेत् ।

अद्यात्मानमिहास्माभिरिज्यमानं निरीक्ष्यसे ॥२४॥

एवमस्त्विति तान्मर्वान्मगवान्प्रत्यपूजयत् ।

मुमुदे ब्रह्मलोकस्थो ब्रह्मा लोकपितामह ॥२५॥

हे महाराज ! इस प्रकार स्वागत प्रार्थना आदि के अंत में देवादिदेव भगवान् श्रीविष्णु की ओर उन्मुख होकर मुनिजन कहने लग—हे भगवन् ! आप हमारे विधिवत् पूर्ण इस यज्ञ के अनिधि बनें ॥२३॥ आप ही हमारे यज्ञपूत के पात्र तथा पात्र को ग्रहण करने योग्य हैं । हमें ज्ञात है कि आप ही हमारे मन्त्रा द्वारा ध्यान योग्य अनिधि हैं ॥२४॥ आपके सक्षम भूमि में चले जाने : कारण हमारे सभी काय रुक गए थे । क्योंकि हम जानते हैं कि बिना आपके भी यज्ञ-कर्म धर्म सिद्ध हात है ॥२३॥ यज्ञ के दक्षिणा आदि कार्यों के पूरे होने पर आप ही यज्ञ का लाभ वितरित करते हैं । अतः हम लोग आज आपकी पसिधिति में ही यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहते हैं ॥२४॥ हे यज्ञन् ! श्रुतिग्रन्थों द्वारा ऐसा कहने पर भगवान् श्री विष्णु ने उनकी 'ऐसा ही हो' कहकर सम्मान किया तथा उस ब्रह्मलोक में अत्यन्त प्रसन्नता से ब्रह्माजी के साथ रहने लगे ॥२५॥

॥ श्रुपियों की ब्रह्मलोक यात्रा ॥

श्रुपिभि पूजितस्तंस्तु विवेश हरिरीश्वर ।

पौराण ब्रह्ममदनं दिव्यं नारायणाश्रमम् ॥१॥

स तद्विवेकं हृष्टात्मा तानामन्त्र्य सदोगतान् ।

प्रणम्य चादिदेवाय ब्रह्मणे पद्मयोनये ॥२॥

स्वेन नाम्ना परिज्ञातं तं तं नारायणाश्रमम् ।

प्रविशन्नेव भगवानायुधानि व्यसर्जयत् ॥३॥

स तत्राम्बुपतिप्रम्य ददर्शालयमात्मनः ।

स्वधिष्ठितं देवगणैः शाश्वतं च महर्षिभिः ॥४॥



संवर्त्तकाम्बुदोपेत नक्षत्रस्थानसंकुलम् ।  
 तिमिरोघपरिक्षिप्तमप्रघृष्य सुरासुरे ॥५॥  
 न तत्र विषयो वायोर्नन्दोर्न च विदस्वतः ।  
 वपुषः पद्मनाभस्य स देशस्तेषां ऽऽवृत्त ॥६॥  
 स तत्र प्रविशन्नेव जटाभार समुद्रहन् ।  
 सहस्रशीर्षो भूत्वा तु शयनायोपचक्रमे ॥७॥  
 लोकानामन्तकालज्ञा काली नयनशालिनी ।  
 उपतस्थे महात्मानं निद्रा तं कालरूपिणी ॥८॥

वैशम्पायन कहने लगे—हे राजन् ! इस तरह भगवान् श्री विष्णु ब्रह्म-  
 लोक में रहने वाले ऋषिजनों से सम्मान पाकर, उस स्थान पर उपस्थित तम  
 से विदा हो तथा पितामह ब्रह्माजी को प्रणाम करके प्रसन्नचित्त से पुराण  
 द्वारा स्तुत्य तथा अपने नाम के लिए प्रसिद्ध अपने दिव्य लोक को चल दिए  
 ॥१-२॥ अपने लोक पहुँचने पर और शस्त्रास्त्रों को यथास्थान रखते ही  
 भगवान् नारायण ने देखा कि समस्त देवगण तथा ऋषिगण समुद्र के समान  
 उमड़ते हुए उनके आश्रम पर आए हुए हैं ॥३-४॥ उनका आश्रम प्रलय काल  
 के सहस्र घने बादलों से ढँका हुआ, नक्षत्रों से भरा हुआ, घोरतम तिमिरो से  
 आच्छादित तथा देवगणों और दैत्यगणों के लिए भी अगम्य था ॥५॥ उस  
 स्थान पर सूर्यदेव, चन्द्रदेव तथा वायुदेव का कोई प्रभाव नहीं था । वह स्थान  
 भगवान् पद्मनाभ के तेज से चमक रहा था ॥६॥ वहाँ जाकर भगवान् ने केश  
 भार धारण किया, उनके हजारों मस्तक हो गए तथा वे सोने के प्रयास में लग  
 गए ॥७॥ ऐसे समय में ही त्रिलोकी का अन्त समय जानकर नयनशालिनी  
 कालस्वरूप निद्रा देवादिदेव भगवान् श्री विष्णु की स्तुति करने लगी ॥८॥

स शिष्ये शयने दिव्ये समुद्राम्भोदशीतसे ।  
 हरिरेकार्णवोक्तेन अतेम प्रतिनां वरः ॥९॥  
 तं शयानं महात्मानं भवाय जगतः प्रभुम् ।  
 उपासांचक्रिरे विष्णु देवाः सर्पिगणास्तथा ॥१०॥

तस्य सुप्तस्य शुशुभे नाभिमध्यात्समुत्थितम् ।  
 आद्यं तस्यास्तन पद्म ब्रह्मणः सूर्यवर्चसम् ।  
 सहस्रपक्ष वर्णाढ्य सुकुमार विभूषितम् ॥११॥  
 ब्रह्मसूत्रोद्यतकरः स्वपन्नेव महामुनिः ।  
 आवर्त्तयति लोकाना सर्वेषा कालपर्ययम् ॥१२॥  
 विवृतात्तस्य वदनान्निः श्वासपवनेरिता ।  
 प्रजाना पङ्क्तयो ह्युर्चनिष्पतन्त्युत्पतन्ति च ॥१३॥  
 ते सृष्टाः प्राणिनो मेध्या विभक्ता ब्रह्मणा स्वयम् ।  
 चतुर्धा स्वा गतिं जग्मुः कृतान्तोक्तेन कर्मणा ॥१४॥  
 न तं वेद स्वयं ब्रह्मा नापि ब्रह्मर्पयोऽप्यया ।  
 विष्णोर्निद्रामय योग प्रविष्ट तमसाऽऽवृतम् ॥१५॥

व्रतधारियो मे श्रेष्ठ भगवान् श्रीविष्णु एकाहं विधि से समुद्रीय मेघ  
 समान पीतल तथा दिव्य चाम्पा पर लेट गए ॥१६॥ उस समय सभी देवगण  
 श्रुतिजन ससार की सृष्टि के लिए लेटे हुए महात्माजी मे श्रेष्ठ भगवान्  
 विष्णु की सराहना करने लगे ॥१७॥ इसी शयनावस्था मे ही भगवान् की  
 हली ने सूर्य के सदृश तेजवाला, हजारों पत्र सहित तथा कई बणों वाले एक  
 ल की उत्पत्ति हुई ॥१८॥ यही कमल ब्रह्माजी की उत्पत्ति का चोटक था ।  
 वात् श्रीविष्णु उसी स्वप्नावस्था में ही ब्रह्मसूत्र द्वारा अपने हाथ उठाए हुए  
 ती लोको में भ्रमण करने लगे ॥१९॥ जैसे भगवान् ने ब्रह्माजी की उत्पत्ति  
 जैसे ही ब्रह्माजी के मुँह से निकली हुई श्वास से इस ससार की सृष्टि हो  
 ॥२०॥ इसके पश्चात् प्रजापति ब्रह्मा द्वारा रचित प्रजाजन ब्रह्मा द्वारा ही  
 गए चार बणों में वेदो वतलाए गए कर्मों के अनुसार अपने-अपने धर्म तथा  
 वर्त्मनि में सलग्न हो गये ॥२१॥ स्वयं ब्रह्मा तथा कोई भी श्रुतिजन उन  
 तिमिर युक्त तथा दिव्य स्वप्नावस्थित भगवान् श्रीविष्णु के रूप को नहीं  
 पाए ॥२२॥

स तथा निद्रयाच्छन्नस्तस्मिन्नारायणाश्रमे ।

शेते विभुः सदा विष्णुर्मोहयञ्जगदव्ययः ॥१६॥

तस्य वर्षसहस्राणि शयानस्य महात्मन ।

जम्मु कृतयुग चैव त्रेता चैव युगोत्तमम् ॥१७

स तु द्वापरपर्यन्ते ज्ञात्वा लोकान्सुदु खितान् ।

प्राबुध्यत महातेजा स्तूयमानो महर्षिभि ॥१८

जहीहि निद्रा सहजा भुक्तपूर्वामिव स्रजम् ।

इमे ने ब्रह्मणा सार्द्धं देवा दर्शनकाक्षिण ॥१९

इमे त्वा ब्रह्मविद्वासो ब्रह्मसस्तववादिन ।

वद्वयन्ति हृषीकेश शृण्व सशितव्रता ॥२०

एतेषामात्मभूताना भूताना भूतभावन ।

शृणु विष्णो शुभा वाचो भूव्योमान्यनिलाम्भसाम् ॥२१

इसी प्रकार वे विनाशहीन भगवान् श्रीविष्णु अपने आश्रम में जा निद्रावस्था में ही ससार को मोहित करते हुए शयन-सलग्न रहे ॥१७॥ तथा उनको शयन करते करते सतयुग और त्रेतायुग अर्थात् एक दिव्य स वष बीत गए ॥१७॥ द्वापर युग के अन्त समय में समस्त ससार के जीवात्मा के अत्यन्त पीड़ित होने पर तथा सभी ऋषिजनों द्वारा सराहना करने भगव जाने ॥१८॥ ऋषिजन कहने लगे—हे भगवन् ! अब आप भुक्तपूर्व भाला समान इस निद्रा को त्याग कर देखिए—सभी ब्रह्मजन, सत्यवादी तथा व्रतपा ऋषिगण एवं देवगण प्रजापति ब्रह्मा सहित आपके दर्शनो की अभिलाषा आपकी प्रार्थना कर रहे हैं ॥१९-२०॥ हे भगवन् ! अपने रूपांतर वृष आकाश, अग्नि, वायु एवं जल के अविच्छात्ता सहस्र देवगणों की प्राप् शुनें ॥२१॥

इमे त्वा सप्त मुनय सहिता मुनिमण्डले ।

स्तुवन्ति देवा दिव्याभिर्गोयाभिर्गीमिरञ्जसा ॥२२

उत्तिष्ठ शतपसाद्य पथनाभ महाद्युते ।

कारणं किंचिदुत्पन्नं देवाना वायं गौरवात् ॥२३

स सक्षिप्य जल सर्वं तिमिरोध विदारयन् ।

उदतिष्ठद्दृषीकेश त्रिया परमयाज्वलन् ॥२४

स ददर्श सुरान्सर्वान्समेतान्सपितामहान् ।  
 विवक्षत. प्रक्षुभितान्जगदर्थं समागतान् ॥२५॥  
 तानुवाच हरिर्देवो निद्राविश्रान्तलोचन ।  
 तत्त्वदृष्टार्यया वाचा धर्महेत्वर्थयुक्तया ॥२६॥  
 कुतो वो विग्रहो देवा. कुतो वो भयमागतम् ।  
 कस्य वा केन वा कार्यं किं वा मयि न वर्तते ॥२७॥  
 किं खल्वनुशले लोके वर्तते दानवोत्थितम् ।  
 नृणामायासजननं क्षीघ्रमिच्छामि वेदितुम् ॥२८॥  
 एष ब्रह्मविदा मध्ये विहाय शयनोत्तमम् ।  
 शिवाय भवतामर्थं स्थित किं करवाणि व. ॥२९॥

इधर सप्तमुनियों सहित यह सम्पूर्ण मुनिमण्डली दिव्य वाक्यों तथा  
 ...वत् छन्दों द्वारा 'आपकी सराहना कर रहे हैं ॥२२॥ हे सतपन्नाक्ष । हे  
 हाद्युते । अब आप उठिए किसी विशेष कार्य के उत्पन्न होने कारण ही ये  
 हास्त देवगण यहाँ पर एकत्रित हुए हैं ॥२३॥ वैशम्पायन ने कहा—हे  
 हाराज । इस प्रकार सभी देवगणों तथा ऋषिजनों द्वारा स्तुति करने पर  
 भगवान् श्री विष्णु ने उम विस्तृत जलराशि को सूक्ष्म किया तथा तेज से अग्निकार  
 १ नाश करते हुए दिव्य-शंखों से उठ बैठे ॥२४॥ निद्रा से जागकर भगवान्  
 श्री विष्णु ने देखा कि समस्त देवगणों सहित ब्रह्माजी ससार की भलाई हेतु  
 ग्य कहने को भौन धारण किए हुए खड़े हैं ॥२५॥ उन सभी को उपस्थित  
 कर निद्रारहित चक्षुवाले भगवान् उनको सम्बोधित करते हुए धर्म तथा  
 संपूर्ण शब्द कहने लगे ॥२६॥ भगवान् श्री विष्णु बोले—हे देवगणों । अब  
 १५ लोगो की विसर्पे साथ बलह हो गई तथा आप लोग किससे भयभीत हैं ?  
 १५के शत्रु दैत्यों ने फिर कोई विनाशकारी कार्य तो नहीं किया ? यह सब मुझे  
 १५ बतलाओ ॥२७-२८॥ आपकी सहायता हेतु मैं अपनी दिव्य शंखों त्याग  
 का हूँ । बतलाओ अब मुझे क्या कार्य करना है ? ॥२९॥

॥ विष्णु का देवताओं से वार्तालाप ॥

सत्त्वस्य नृणां विष्णुर्गुणैस्तु ब्रह्म सौम्यमिदम् ॥

उवाच परम वाक्य हित सर्वेदिवीकमाम् ॥१॥

नास्ति किञ्चिद्भय विष्णो सुराणामसुरान्तक ।  
 येषा भवानभयद कर्णधारो रणे रणे ॥२  
 शक्रे जयति देवेशे त्वयि चासुरसूदन ।  
 धर्मे प्रयतमानाना मानवाना कुतो भयम् ॥३  
 सत्ये धर्मे च निरतान्मानवान्विगतज्वरान् ।  
 नाकाले धर्मिणो मृत्युं शक्नोति प्रसमीक्षितुम् ॥४  
 मानवाना च पतय पार्थिवश्च परस्परम् ।  
 षड्भागमुपभुञ्जाना न भेद कुर्वते मिथ ॥५  
 ते प्रजाना शुभकरा करदैरवगर्हिता ।  
 सुकरैर्विप्रयुक्तार्या शोकाना पूरयन्त्युत ॥६  
 स्फीताञ्जनपदान्सर्वापालयन्त क्षमापरा ।  
 अतीक्ष्णदण्डाश्चतुरो वर्णाञ्जुगुपुरञ्जसा ॥७  
 नोद्वेजनीया भूतानां सचिवं साधुपूजिता ।  
 चतुरङ्गबलैर्गुप्ता षड्गुणानुपभुञ्जते ॥८

वैशम्पायन ने कहा—हे महाराज ! भगवान् श्री विष्णु के ऐसे शब्द सुनकर लोकपितामह ब्रह्माजी सभी देवगणों के वक्ष्याचार्य शुभ वचन कहने लगे ॥१॥ ब्रह्माजी बोले—हे असुर विनाशी भगवन् ! जब हमारे पास आ जाँसे कर्णधार का बल है तो युद्ध स्थल में हमें किसका भय है ? ॥२॥ जा देवेन्द्र हमारे राजा हैं तथा आप सभी शत्रुओं को मारकर हमें भयमुक्त करते रहते हैं तो किस बात का भय है ? ऐसे समय में तो बिना बाल मृत्यु भी हमारी ओर नहीं देख सकती ॥३-४॥ मनुष्यों पर राज्य करने वाले सभी राजा प्रजाजनों से प्राप्त होने वाले करके छठवें हिस्से का उपभोग करते हुए आपस में नहीं लड़ते ॥५॥ अपितु सभी राजा अपने एकत्रित घन से राज्य के सजाने की कमी को पूरा तथा प्रजा की प्रसन्नता और उन्नति का प्रयत्न करते रहते हैं ॥६॥ ये क्षमाशील राजा लोग अपने-अपने राज्यों के सुख, उन्नति व जनता की सुरक्षा करते हुए, किसी को भी बड़ा दण्ड नहीं देते तथा चारों वर्गों का वर्णानुसार प्रयत्न करते हैं ॥७॥ प्रजाजनों में जो किसी को भी किसी प्रकार

कष्ट नहीं है । प्रजाजन अपने राज्य के मंत्रियों के उच्च विचार सद्व्यवहार तथा चारों प्रकार की सेवा में सुरक्षित मयमुक्त होकर पदगुणों से जीवननिर्वहण कर रहे हैं ॥८॥

धनुर्वेदपरा सर्वे सर्वे वदेषु निष्ठिता ।  
यजन्ते च यथाकाल यज्ञैर्विभुनदक्षिणे ॥९॥  
वेदानघोष्य दीक्षाभिर्महर्षीन्त्रहाचर्यया ।  
श्राद्धैश्च मेध्यै शतशस्तपयन्ति पितामहान् ॥१०॥  
नैषामविदिन विज्जिचत्त्रिविध भुवि दृश्यते ।  
वैदिक लौकिक चैव धर्मशान्प्रोक्तमेव च ॥११॥  
ते परावरदृष्टार्या महर्षिसमतेजस ।  
भूय कृतभुग वतुं मुत्सहन्ते नराधिपा ॥१२॥  
तेषामेव प्रमावेण शिव वर्पति वासव ।  
यथायं च ववर्षाता विरजम्का दिशो दश ॥१३॥  
निरत्नाता च वसुधा सुप्रचाराश्च खे ग्रहा ।  
चन्द्रमाश्च सनक्षस सौम्य चरति योगत ॥१४॥  
अनुलोमकर सूर्यस्त्वयने द्वे चचार ह ।  
हव्यश्च विविधैस्तृप्त शुभगन्धो हुताशन ॥१५॥  
एव सम्यक्प्रवृत्तेषु विवृद्धेषु मघादिषु ।  
तर्पयत्सु मही वृत्स्ना नृणा कालभय कृत ॥१६॥

इन समय समस्त मानव जन धनुर्वेद के विद्वान्, सभी वेदों के ज्ञाता । यथा समय यज्ञों में पूर्ण दक्षिणा देने वाले हैं ॥९॥ समस्त मानव वेदों के पयन से ऋषिजनों की, विधिवन् किए गए यज्ञों द्वारा देवगणों की तथा हों पवित्र श्राद्धों की करके अपने पूर्वजों की प्रसन्न करते हैं ॥१०॥ ऐसा भी कार्य नहीं जिसकी वे सोच न जानते हों तथा वे वैदिक, सौवित्र और ऐश्वर्य मुक्त सभी कार्यों की करते हैं ॥११॥ विधिवन् सभी कार्य करते हुए । सोम भी ऋषि-गणों के समान तेजवान होकर पृथ्वी पर फिर से पुनः साने में प्रयत्नशील है ॥१२॥ उन राजाओं के इन शुभ कार्यों के करने

से जलघर समय पर बरसते हैं तथा वायु भी अपने पथ पर यथारूप बहती है जिससे चतुर्दिक में कहीं भी धूल के गुब्बारे आदि नहीं उड़ते ॥१३॥ पृथ्वी इस समय किसी प्रकार के उपद्रव नहीं होते । सभी ग्रह अपने बरू पर घूमते हैं । चंद्रमा सभी नक्षत्रों सहित शांत भाव से विचरता है । सूर्य नियमानुसार अपने दोनों अयनों तथा अग्नि नाना प्रकार के यज्ञों से प्रसन्न होकर चतुर्दिक में सुगन्ध का संचार करते हैं ॥१४-१५॥ भगवन् ! जब विधिवत् यज्ञ तथा ऋषि सभी कार्यों के आयोजित होने से भूमि तृप्त तथा प्रसन्न रहती है तो समस्त मानवों को मृत्यु का भय क्यों होगा ? ॥१६॥

तेषां ज्वलितकीर्त्तानामन्योन्यवशवर्तिनम् ।

राज्ञा बलैर्बलवता पीडयते वसुधातलम् ॥१७

सेयं भारपरिश्रान्ता पीडयमाना नराधिपैः ।

पृथिवी समनुप्राप्ता नौरिवासन्निविष्टा ॥१८

युगान्तसदृशं रूपं शैलोच्चलितबन्धना ।

जलोत्पीडाकुला स्वेदधारयन्ती मुहुर्मुहुः ॥१९

क्षसिमाणा वपुर्भिश्व तेजसा च बलेन च ।

नृणां च राष्ट्रैर्विस्तीर्णैः श्राम्यतीव वसुन्धरा ॥२०

पुरे पुरे नरपतिः कोटिसर्प्यैर्बलैर्वृतः ।

राष्ट्रे राष्ट्रैश्च बहवो ग्रामाः शतसहस्रशः ॥२१

भूमिपाना सहस्रैश्च तेषां च बलिना बलैः ।

ग्रामामुत्तार्धं राष्ट्रैश्च भूमिर्निविष्टा कृता ॥२२

सेयं निरामय कृत्वा निश्चेष्टा कालमग्रतः ।

प्राप्ता ममालय विष्णो भवाश्चास्या परा गतिः ॥२३

कर्मभूमनुप्याणां भूमिरेषा व्यथा गता ।

यथा न सीदेत्तत्कार्यं जगत्तेषां हि शाश्वतो ॥२४

परंतु इन अग्नि के समान प्रतिष्ठित यशस्वित राजाओं की बड़ा तेजा के भार से पृथ्वी को बड़ा कष्ट हो रहा है ॥१७॥ इन बढती हुई

भार से दबी हुई पृथ्वी इस प्रकार पीड़ित है जिस प्रकार शीघ्र डूबने वाली तिमिल नाव होती है ॥१८॥ समुद्र के बीच में जो पर्वत पृथ्वी को रोकने का काम कर रहे थे, अब वे भी धीरे-धीरे कटते जा रहे हैं। सागरीय लहरों से तत्पन्त पीड़ित होकर कभी-कभी पृथ्वी को पसीना आने लगता है ॥१९॥ राजा लोगो के शरीर, तेज, बल तथा विस्तार से पँले राज्यों का बोझ ढोने में वसुधा असमर्थ हो चुकी है ॥२०॥ आजकल नगर-नगर में एक राजा है जिनके पास हरोड़ो की सख्या में सैनिक हैं। एक एक नगर में सैकड़ों तथा हजारों गाँव हैं ॥२१॥ तथा ऐसे सहस्रो घोर राजाओं की बढती हुई सेना, ग्राम तथा नगरो से वसुधा सास तक लेने में असमर्थ होगई है ॥२२॥ हे विष्णु ! इस तरह पीड़ित वसुधा काल सहित मेरे समक्ष उपस्थित हुई है। अतः अब आप ही इसका कोई उपाय कीजिए ॥२३॥ अब आप कोई सत्कार्य कीजिए जिससे समस्त मानवों की कर्म भूमि यह वसुधा और अधिक बोझ से न दबे ॥२४॥

एव जगति वर्तन्ते मनुष्या धर्मकारणात् ।

यथा धर्मवधो न स्यात्तथा मन्त्र प्रवर्त्यताम् ॥२५॥

सता गतिरिय नान्या धर्मश्चास्था सुसाधनम् ।

राजा चैव वध कार्यो धरण्या भारनिर्णये ॥

तदागच्छ महाभाग सह वै मन्त्रकारणात् ।

ब्रजामी मेरुक्षिप्य पुरस्कृत्य वसुधराम् ॥२६॥

एतावदुक्त्वा राजेन्द्र ब्रह्मा लोकपितामह ।

पृथिव्या सह विश्वात्मा विरराम महाद्यति ॥२७॥

इस समय ससार में समस्त मानव धर्म के कार्यों में लसग्न हैं। इसलिए कोई ऐसा उपाय होना चाहिए जिससे धर्म का नाश न हो सके ॥२५॥ पृथ्वी की धर्म की अपेक्षा कोई और दशा नहीं तथा मानव-जनो को वसुधा के अतिरिक्त कोई और दशा नहीं है। इसलिये यही उत्तम है कि पृथ्वी का बोझ हटाने के लिए राजाओं का सहार किया जाय ॥२६॥ हे भगवन् ! इस विषय के निश्चित विचार हेतु मेरे पर्वत की चोटी पर चले—हे राजन् ! इस प्रकार कहकर महा तेजवान् पितामह ब्रह्मा मोन हो गए ॥२७॥



## ॥ पृथिवी का दुःख वर्णन ॥

बाढमित्येव सह तैर्दुर्दिनोम्भोदनि म्वन ।  
 प्रतस्थे दुर्दिनाकार सद्दुर्दिन इवाचल ॥१॥  
 नातिदीर्घेण कालेन संप्राप्ता रत्नपर्वतम् ।  
 ददृशुर्देवतास्तत्र ता सभा कामरूपिणीम् ॥२॥  
 मेरो शिखरविन्यस्ता सयुक्ता सूर्यवर्चसा ।  
 काञ्चनस्तम्भरचिता वज्रसम्भान्तोरणाम् ॥३॥  
 मनोनिर्माणचित्राद्या विमानशतमालिनीम् ।  
 रत्नजालान्तरवती कामगा रत्नभूषिताम् ॥४॥  
 सर्वरत्नसमाकीर्णा सर्वतु कुसुमोत्कराम् ।  
 देवमायाधरा दिव्या विहिता विश्वकर्मणा ॥५॥  
 सा हृष्टमनस सर्वायथास्थान यथाविधि ।  
 यथानिदेश सिद्धशा विविशुस्ते सभा शुभाम् ॥६॥  
 ते निपेदुर्यथोक्तेषु विमानेष्वसनेषु च ।  
 भद्रासनेषु पीठेषु कुर्यात्वास्तरणेषु च ॥७॥  
 ततः प्रभञ्जनो वायुर्ब्रह्मणा साधु चोदित ।  
 मा शब्दमिति सर्वस्य प्रचक्रामाथ ता सभाम् ॥८॥

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन् ! जसीय मेघो के सहस्र व  
 भगवान् श्री विष्णु शब्दो स्वरूप मेघों से आच्छन्न पर्वत के सहस्र गहन  
 'ऐसा ही हो' बोले तथा उन समस्त देवगणों सहित मेरु शिखर की  
 दिए ॥१॥ यथाशीघ्र वे उस सुमेरु पर्वत पर पहुँचे तथा वहाँ उन समस्त  
 देवगणों ने सूर्य रश्मि से दंदीप्यमान कामरूप देव सभा देखी ॥२॥ वह  
 देव सभा मेरु शिखर पर स्थित थी तथा बहुत सदा सूर्य की किरणों से प्रकाशित  
 रहती थी । उसके स्तम्भ स्वरूप के बने थे तथा तोरण द्वारे का और द्वार रत्न  
 से जड़े हुए थे ॥३॥ उसके मध्य में मनोबल के द्वारा जाना प्रकार के रत्नों  
 चित्रकारी हो रही थी । संबद्ध विमान उस पर हमेशा उड़ान भरते थे ।

देव सभा के बाग में सभी ऋतुओं के पुष्प खिल रहे थे । उसमें देवगणों की शिल्पकला की निपुणता स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही थी । तथा वह विश्वकर्मा द्वारा निर्मित थी ॥४-५॥ सभी देवगण उस देवसभा का निरीक्षण करते हुए प्रसन्नचित्त में उससे अन्दर समाविष्ट हुए तथा विधिवत् विमान, आसन, भद्रासन, पीठासन, तथा कुशासन पर बैठे ॥६-७॥ इसके पश्चात् पितामह ब्रह्माजी ने वायुदेव को देवसभा में किसी प्रकार का शोर-गुल न होने के लिए निर्देशित किया तथा अपने कार्य में व्यस्त हो गए ॥८॥

नि शब्दस्तिमिते तस्मिन्समाजे निदिवाकसाम् ।  
 बभापे धरणी वायव खेदात्करुणमापिणी ॥८  
 त्वया धार्या ह्यह देव त्वया वै धार्यते जगत् ।  
 त्व धारयसि भूतानि भुवनानि विमर्षि च ॥९०  
 यत्त्वया धार्यते किञ्चित्तेजसा च बलेन च ।  
 ततस्तव प्रसादेन मया यत्नाच्च धार्यते ॥९१  
 त्वया धृत धारयामि नाधृत धारयाम्यहम् ।  
 न हि तद्विद्यते भूत यत्त्वया नानुधार्यते ॥९२  
 त्वमेव कुरुषे देव नारायण युगे युगे ।  
 मम भारावतरण जगतो हितकाम्यया ॥९३  
 तवैव तेजसा क्रान्ता रसातलतल गताम् ।  
 त्रायस्व मा मुरश्चेष्ट तवैव शरण गताम् ॥९४  
 दानवै पीड्यमानाऽह राक्षसैश्च दुरात्मभि ।  
 त्वामेव शरण नित्यमुपयास्ये सनातनम् ॥९५  
 तावन्मेऽस्ति भय भूया यावन्न त्वा वकुद्मिनम् ।  
 शरण यामि मनुर्त्सा शतशो त्युपलक्षये ॥९६

जब समस्त सभा गदस्य शान्तिपूर्वक उस सभा में बैठ गए तो शोक-ग्रस्त ऋणाजनक वचनों से श्रवण श्रुति विष्णु को सम्बोधन करने पृथ्वी बहने ॥९॥ पृथ्वी ने कहा—हे भगवन् ! आपमें मैं, समस्त संसार, समस्त प्राणि समाविष्ट हूँ ॥१०॥ आप अपने तैल तथा अपनी शक्ति से जिन-जिन का



भगवन्निह्यतामस्या धरण्या भारयतनि ।  
 शरीरकर्ता लोकाना त्व हि लोकस्य चेश्वर ॥२॥  
 यत्कर्तव्य महेन्द्रेण यमेन वरुणेन च ।  
 यद्वा कार्यं घनेशेन स्वयं नारायणेन च ॥३॥  
 यद्वा चन्द्रमसा कार्यं मास्वरेणानिलेन वा ।  
 आदित्यैवंसुभिर्याऽपि रद्वर्वा लोऽमावर्त ॥४॥  
 अश्विन्या देववैद्याभ्या साध्यैर्वा त्तिदशालयं ।  
 बृहस्पत्युशनोभ्या वा कालेन कलिनाऽपि वा ॥५॥  
 महेश्वरेण वा ब्रह्मन्विशाखेन गुह्येन वा ।  
 यक्षराक्षसगन्धर्वैश्चारुणैर्वा महोरगं ॥६॥  
 पतंगं पर्वतैश्चापि सागरैर्वा महर्षिभिः ।  
 गगामुष्णामिदिव्याभि सरिद्रुर्वा सुरेश्वर ॥७॥  
 क्षिप्रमाज्ञापय विभो कथमश प्रयुज्यताम् ।  
 यदि ते पार्थिव कार्यं कार्यं पार्थिवविग्रहे ॥८॥

वैशम्पायन ने कहा—ह राजन् ! इस प्रकार पृथ्वी के कहन पर उमका  
 । दूर करने के उद्देश्य से समस्त देवगण पितामह ब्रह्माजी से बोले—॥१॥  
 भगवन् ! ऐसा कोई कार्य कीजिए, जिससे कि पृथ्वी का बहुत दूर हो । इन  
 जो लोगों की आपने ही रचना की है तथा आप ही इन लोगों के स्वामी हैं ॥२॥  
 १ हम समस्त देवगण देवराज इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, देवादिदेव भगवान्  
 । विष्णु चन्द्र, सूर्य, वायु आदित्यगण आठो वसु, रद्वर्गण, दानो अश्विनी-  
 शार, साध्यगण, बृहस्पति, शुक्र, वात, वनि, भगवान् शङ्कर, निमिवाहन  
 मि नात्रिजेय, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, मिद चारुण, पर्वत, उत्तान तरंगपुङ्गव  
 तथा गंगादि नदीको क्या कार्य करना चाहिए यह विस्तारपूर्वक  
 ॥३॥ ७॥ अगर राजाओं में परस्पर युद्ध बराबर पृथ्वी का भार हलका  
 चाहते हैं, तो फिर हम लोगों को क्या-क्या कार्य

धारण करते हैं, आपकी महत्ता से मैं भी प्रयत्नपूर्वक उनका बोझ  
जब उनको आप धारण करते हैं तो मुझे भी उन सबका बोझ  
बगर आप धारण न करें तो मैं भी नहीं कर सकती । तथा ह  
भी ऐसी वस्तु नहीं जो कि आपमें समाविष्ट न हो ॥१२॥ के  
मे यथा समय मेरा भार हलवा करते रहते हैं ॥१३॥ आपने  
रसातल पहुँची हैं । हे देवादिदेव ! मैं आपकी शरण में आई  
क्षा करके मुझे निभय कीजिए ॥१४॥ जब-जब दुष्ट दैत्य  
ने पीडा पहुँचाई सब तब मैं आपकी शरण में आई हूँ ।  
एक मैं शुद्ध मन से आपकी शरणागत नहीं आती,  
ने डर लगे रहते हैं तथा मैं भयमस्त रहती हूँ ॥१५॥

दुतद्युष्मत्प्रवृत्तेन दैवेन परिपाल्यते ।

तान्निदितार्थं कुरुत राजा हेतु रण क्षये ॥१७॥

गगनास्ति मयि वाग्य भारशैथिल्यकारणात्

देवताओं के मत्वा प्रसंगों की कथा पर विचार करते हुए समय व्यतीत कर

भाग ॥१५-१६॥

शरीकुर्वंतस्तु कथास्तास्ताः सह गंगया ।

यत्कपपीपमाजगामाशु युक्तस्तोयदमार्हतः ॥१७॥

यद्वा न बोचिविपमां कुर्वन्गतिं वेगतरणिणोम् ।

यद्वा नोदोगणविचित्रेण संच्छन्नस्तोयवाससा ॥१८॥

आदिखमुक्तामलतनुः प्रवालद्रुमभूषणः ।

अश्विचन्द्रमसा पूर्णं उग्रगम्भीरनिःस्वनः ॥१९॥

मां परिभवन्नेयस्वां वेला समतिक्रमन् ।

बृहस्पतदयामास चपलैर्लाविणैरम्बुविस्त्रवैः ॥२०॥

महेश्वरो देशं व्यवसितः समुद्रोऽद्भिविर्मदितुम् ।

यक्षराक्षसं संरब्धया वाचा शान्तोऽसीति मया तदा ॥२१॥

पतंगैः पर्वः सीत्युक्तमाहस्तु तनुत्वं सागरसं गतः ।

गगामुखांमितरंगौघः स्थितो राजधिया ज्वलन् ॥२२॥

क्षिप्रमाज्ञां च मया प्राप्तः समुद्रः सह गंगया ।

यदि ते पातमिति कृत्वा युष्माकंहितकाम्यया ॥२३॥

राजतुल्येन वपुषा समुपस्थितः ।

बैराग्यापन मे महीपालो राजैव त्व भविष्यसि ॥२४॥

कह कर के उद्देश मे गंगा, जलधर तथा माधति सहित सागर मेरे समक्ष  
है भगवन् ! ऐसा कोई समय सागर के यथावेग ही उसमें सहर्ष भी उठ रही थी ।  
सीनों लोको की आपने ही बो के कारण उसका वस्त्रसा लग रहा था तथा उसका पानी  
अब हम समस्त देवगण ॥२५॥ सागर का तन क्षय तथा मोतियों सहस्र साफ था ।  
श्री विष्णु, चन्द्र, सूर्य, वाग मणि ये और उसकी गम्भीर जलधर के सहस्र बाणी  
कुमार, साध्वगण, बृहस्पति, शुक, -नृ से अचानक उफान खाता हुआ अपनी सीमा  
स्वामि वात्रिकेय, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, मिया । तथा अपने अत्यधिक खारी जल से  
समुद्र, तथा गंगादि नदी को क्या बग ॥२६॥ नृ, मय, वह, मयु, सिर्ल, नृजेजित  
॥२७॥ अगर राजाओं में परी में अत्यन्त गहन बाणी में उसमें बोला—  
रना चाहते हैं, तो फिर हम लोग

धारण करते हैं, आपकी महत्ता से मैं भी प्रयत्नपूर्वक उनका बोझ ढोती हूँ ॥११॥  
जब उनको आप धारण करते हैं, तो मुझे भी उन सबका बोझ ढोना पड़ता है।  
अगर आप धारण न करें तो मैं भी नहीं कर सकती। तथा इस ससार में का  
भी ऐसी वस्तु नहीं जो कि आपमें समाविष्ट न हो ॥१२॥ केवल आप ही पु  
में यथा समय मेरा भार हलवा करते रहते हैं ॥१३॥ आपके तेज से ही मैं  
रसातल पहुँची हूँ। हे देवादिदेव। मैं आपकी शरण में आई हूँ अब आप मेरी  
क्षा करके मुझे निर्भय कीजिए ॥१४॥ जब-जब दुष्ट दैत्यो तथा राजाओं ने  
मेरी पीड़ा पहुँचाई तब तब मैं आपकी शरण में आई हूँ, ॥१५॥ हे भगवन् !  
नक मैं शुद्ध मन से आपकी शरणार्थी नहीं आती, तब-तब मुझे भय है  
मे डर लगे रहते हैं तथा मैं भयनस्त रहती हूँ ॥१६॥

दे  
तात्तुष्टुष्मत्प्रवृत्तेन दैवेन परिपाल्यते ।  
यथाद्विदितार्थं कुस्त राज्ञा हेतु रण क्षये ॥१७॥  
ते निपेक्ष्य मयि कारुण्य भारशैथिल्यकारणात् ।  
भद्रासनेषु कधर श्रीमानभय मे प्रयच्छतु ॥१८॥  
ततः प्रभक्त्यारसतप्ता सम्प्राप्ता शरणार्थिनी ।  
मा शब्दमिन्द्रोप्यो विष्णुरेव ब्रवीतु माम् १९

देवताओं के माना प्रसंगों की कथा पर विचार करते हुए समय व्यतीत कर  
भग ॥१५-१६॥

शरीरुर्वतस्तु कथास्तास्ताः सह गंगया ।

यन्ममीपमाजगामाशु युक्तस्तोयदमारुतः ॥१७

पदा । वीचिविपमां कुर्वन्नाति वेगतरगिणीम् ।

पदा । दोगणविचित्रेण संच्छन्नस्तोयवाससा ॥१८

आदि । उमुक्तामलतनुः प्रवालद्रुमभूषणः ।

अश्वि । त्रचन्द्रमसा पूर्णं उग्रगम्भीरनिःस्वनः ॥१९

वृहस्प । मां परिभवन्नेय स्वां वेलां समतिक्रमन् ।

महेश्वर । इयामास चपलैर्लावणैरम्बुविश्रवैः ॥२०

यक्षराक्ष । देशं ध्वंसितः समुद्रोऽद्भिर्विमदितुम् ।

पन्नगैः पर्व । संरघ्यया वाचा शान्तोऽसीति मया तदा ॥२१

गंगाभुजा । मितरंगीयः स्थितो राजश्रिया ज्वलन् ॥२२

शिप्रमाहाव । मया शप्तः समुद्रः सह गंगया ।

यदि ते पात्रं मतिं कृत्वा युष्माकं हितकाम्यया ॥२३

राजतुल्येन वपुया समुपस्थितः ।

वैगम्पायन ने । महीपानो राजैव त्वं भविष्यसि ॥२४

एत दूर करने के उद्देश

भगवत् । ऐसा कोई मे गंगा, जलधर तथा भास्वति सहित सागर मेरे समक्ष

नौ सौकों की आपने ही मय सागर के यथावेग ही उसमें-सहर्षे भी उठ रही थी ।

हम समस्त देवगण । वो के कारण उसका वरप्रमाण रह था तथा उसका पानी

विष्णु, चन्द्र, सूर्य, वा । सागर का तन सघन तथा मोतियों सहस्र साफ था ।

मार, मा-यगण, वृहस्पति, शुक, मे अचानक उफान खाता हुआ अपनी सीमा

मि कातिकेय, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, मिया । तथा अपने अत्यधिक सारो ज

तथा गगादि नदी की कथा ॥२०॥ उस समय वह मुझे सिर्फ

॥२१॥ अगर राजाओं में परी में अत्यन्त महान् वाली मे उससे

चाहने ॥२२॥

चाहने ॥२३॥



२२० ]

‘शान्त हो जाओ’ ॥२१॥ मेरे ऐसा कहते ही सागर शान्त होकर अपनी सीमा में चला गया । इस समय उसका वेग, उसकी लहरें समाप्त हो गईं तथा वह पुनः राज्यश्री से शोभित दिखलाई देने लगा ॥२२॥ इसके पश्चात् मैं आप समस्त देवगणों के हित को ध्यान में रखते हुए गया तथा सागर को श्राप देकर बोला—हे सागर ! क्योंकि तुम मेरे समक्ष राजा के समान आए, इसलिए जाओ अब तुम राजा ही बनो ॥२३-२४॥

ऐसे वचन सुन कर सागर अत्यन्त क्रोध में बोला—हे भगवन् ! हे देवादिदेव ! मेरा आपके अतिरिक्त कोई और नहीं है तथा मैं आपका आज्ञा-परायण पुत्र हूँ । आपने मेरे लिए ऐसे अशुभ वचनों में थाप क्यों दिया ? ॥२६-३०॥ आपके द्वारा निर्धारित मैं प्रत्येक पूर्णिमा को कर्त्तव्य-पालन की दृष्टि से बढ़ता हूँ, इसमें मेरा कोई दोष नहीं है ॥३०॥ पूर्णिमा ४ दिन कर्त्तव्य-पालन करते हुए वायु के वेग से उड़न कर अगर मैं आपका स्पर्श कर दिया तो मैं आपका अपराधी नहीं हूँ ॥३१॥ आज वायुवेग, आच्छादित मेघ तथा पूर्ण चन्द्र रश्मि युक्त पूर्णिमा से ही मैं इस प्रकार अचानक उद्भिन्न हो गया था ॥३२॥

एवं यद्यपराद्धोऽहं कारणैस्त्वत्प्रकल्पितं ।  
क्षान्तुमर्हसि मे ब्रह्मञ्छापोऽयं विनिवर्त्यताम् ॥३३॥  
एव मयि निरालम्बे क्षापाच्छियलता गते ।  
कारण्यं कुरु देवेश प्रमाणं यद्यवेक्ष्यसे ॥३४॥  
अस्यास्तु देवगङ्गाया गा गतायास्त्वदाज्ञेया ।  
मम दोषाददोषाया प्रमादं कर्तुमर्हसि ॥३५॥  
तमहं श्लक्ष्णया वाचा महार्णवमयाश्रुतम् ।  
अकारणजं देवानां त्वत्तं क्षापानलेन तम् ॥३६॥  
क्षान्तिं यज न भेतव्यं प्रसन्नोऽस्मि महोदधे ।  
क्षापेऽस्मिन्सरिता नाथ भविष्य शृणु कारणम् ॥३७॥  
त्वं तात भारते वशे स्वदेहं स्वेन तेजसा ।  
आघत्स्व सरिता नाथ त्यक्त्वेमां सागरीं तनुम् ॥३८॥  
महोदधे महीपालस्तत्र राजधिया वृत ।  
पालयश्चतुरो वर्णानुरम्यसे सलिलेश्वर ॥३९॥

इस प्रकार आपके निर्धारित कर्त्तव्य पालन में अगर मैं किसी प्रकार दोषी तो मेरा दोष भूल जाइए तथा मुझे आप-मुक्त कीजिए ॥३३॥ अगर आपको मैं पर विश्वास न हो तो आप त्वत्तं निचट्ट शरीर वाले मुझ अभाग को पर कृपा कीजिए ॥३४॥ गंगा नदी निर्दोष है इसको मेरे कारण थाप नहीं मिलना चाहिए । आप इसको भी आप मुक्त कीजिए ॥३५॥ ब्रह्माजी बोले कि हे देवगण !

समुद्र के देता कहने पर मैं चससे बोला—हे समुद्र ! तुम्हे देवगणों का विवा-  
 शात नहीं है । तुम धैर्य रखो तथा मेरे थाप से भय न खाओ, तुमको थोड़ा भी  
 अयवस्त नहीं होना चाहिए । हे समुद्र ! मैं तुमसे कुपित नहीं हूँ तथा मैंने तुमको  
 थाप किस लिए दिया इसका कारण बतलाता हूँ ॥३६-३७॥ तुम अपने इस  
 समुद्र-शरीर को छोड़ कर पृथिवी पर भरतवश से जन्म लो । हे समुद्र ! तुम  
 अपने तेज से प्रभावित होकर चक्रवर्ती राजा बनोगे तथा चारों वर्णों का वर्ण-  
 नुसार पालन करते हुए आनन्द से जीवन-निर्वाह करोगे ॥३८-३९॥

सहित तुम नाना प्रकार के आनन्द उपभोगो से अपने 'मानव रूप के दुःख को एकदम भुला दोगे ॥४१॥ जैसा मैं तुमसे कह रहा हूँ, उसी प्रकार तुम गंगा सहित अपनी प्रजा का विधिवन् प्रालन करते हुए राज्य करो ॥४२॥ इस समय अष्ट-वसु स्वर्ग से विमुख होकर पाताल चले गए हैं अतः उनको फिर से जन्म देने के प्रयोजन से ही तुमको मैंने यह थाप दिया है ॥४३॥ यह गंगा अष्टवसुओं को अपने गर्भ से फिर से जन्म देगी । अग्नि के समान तेजवान् अष्टवसुओं के पुनर्जन्म से देवगण अत्यन्त आनन्दित होंगे ॥४४॥ हे समुद्र ! इस प्रकार तुम अष्टवसुओं को जन्म देकर तथा कुम्भल को विस्तृत करने के परवान् पुनः सागर-शरीर धारण करोगे ॥४५॥ ब्रह्माजी बोले—हे देवगणों ! मैं पहले ही जानता था कि पृथिवी का भार बढ़ेगा अतः तुम्हारे कल्याण हेतु मैंने पूर्व समय में ही शान्तनुवश की उत्पत्ति कर दी है । हे देवगणों ! इस शान्तनुवश में पुनर्जन्म पाकर सात वसु तो स्वर्ग पहुँच गए, किन्तु गंगा के पुनः मोक्ष भी एक वसु है, वे अभी पृथिवी पर ही हैं ॥४६-४८॥

द्वितीयाया च सृष्ट्याया द्वितीया शन्तनोस्तनु ।  
 विचित्रवीर्यो यत्तिमानासीद्राजा प्रतापवान् ॥४८॥  
 वैचित्रयवीर्यो द्वावेव पार्थिवी भुवि साम्प्रतम् ।  
 धृतराष्ट्रश्च पाण्डुश्च विख्यातो पुरुषपर्वभी ॥४९॥  
 तत्र पाण्डो श्रिया जुष्टे द्वे भार्ये सवभूवतुः ।  
 शुभे कुन्ती च माद्री च देवयोपोपमे तु ते ॥५०॥  
 धृतराष्ट्रस्य राज्ञस्तु भार्यका तुल्यचारिणी ।  
 गान्धारी भुवि विख्याता भर्तुर्नित्य व्रते स्थिता ॥५१॥  
 तत्र वसो विमज्जन्ता विपक्षा पक्ष एव च ।  
 पुत्राणां हि तयो राज्ञोर्भविता विग्रहो महान् ॥५२॥  
 तेषां विमर्दे दामाद्ये नृपाणां भविता क्षयः ।  
 युगान्तप्रतिमं चैव भविष्यति महद्भयम् ॥५३॥  
 सवलेपु नरेन्द्रेषु शातयत्स्वितरेतरम् ।  
 विविक्कनपुरराष्ट्राणां कीर्तिं शीघ्रमेवप्यनि ॥५४॥

द्वापरस्य युगस्यान्ते मया दृष्ट पुरातनम् ।

क्षयं यास्यन्ति शस्त्रेण मानवैः सह पार्थिवा ॥५६॥

महाराज शान्तनु और शान्तनु की दूसरी पत्नी से विवित्रवीर्य नामक पुत्र हुआ । तथा विवित्रवीर्य का ही राजा के पद पर अभिषेक हुआ था ॥५६॥ इस समय उनके सप्ताह में प्रसिद्ध राजा पाण्डु तथा धृतराष्ट्र दोनों पुत्र भूमि पर रह रहे हैं ॥५७॥ महाराज पाण्डु की दो पत्नियाँ थी—अत्यन्त सौन्दर्यशालिनी देव पत्नियाँ के समान तथा यौवना कुन्ती और माद्री ॥५८॥ महाराज धृतराष्ट्र की पत्नी गान्धारी थी जो कि सर्वं गुण सम्पन्न तथा तीनों लोकों में अपने पतिव्रत धर्म के लिए प्रसिद्ध थी ॥५९॥ अतः हे देवगणों ! अब तुम समस्त जन शान्तनु वंश में जन्म धारण करो । कुछ महाराज पाण्डु के तथा कुछ महाराज धृतराष्ट्र के यहाँ क्योंकि कुछ समय पश्चात् दोनों के पुत्रों में भीषण सग्राम होगा ॥६०॥ इस सग्राम में अनेकों राजा लोग मृत्यु को प्राप्त होकर यमलोक पहुँच जायेंगे तथा यह युद्ध प्रलय के सदृश भयकर होगा ॥६१॥ इस सग्राम में सभी राजा महाराजों आपस में संघर्ष करते हुए अपने-अपने बाहनों सहित मृत्यु को प्राप्त होंगे तथा ग्रामों से भरी पृथिवी का भार कम हो जाएगा ॥६२॥ मुझे अपने ज्ञानचक्षुओं द्वारा दिखलाई दे चुका है कि द्वापर के अन्त तक समस्त राजा आपस में संघर्ष द्वारा अपनी सम्पूर्ण सेना तथा बाहनों सहित मृत्यु को प्राप्त हो जायेंगे ॥६३॥

तत्तावशिष्टान्मनुजान्मुप्तान्निशि विचेतसः ।

धृष्यते शक्रस्याशः पावकेनाश्रितेसा ॥६४॥

अन्तकप्रतिमे तस्मिन्निवृत्ते क्रूरकर्मणि ।

समाप्तमिदमाख्यास्ये तृतीयं द्वापरं युगम् ॥६५॥

महेश्वराणोऽमृते ततो माहेश्वरं युगम् ।

तिप्य प्रवर्तते पश्चाद्युगे दारुणदर्शनम् ॥६६॥

अधर्मप्रायपुरष स्वल्पधर्मप्रतिग्रहम् ।

उत्सन्नसत्सयोगं वर्धितानृतसचयम् ॥६७॥

महेश्वरं कुमारं च द्वौ च देवी समाधिता ।

भविष्यन्ति नरा सर्वे लोके न स्यविरायुषः ॥६८॥

तदेव निर्णयः श्रेष्ठः पृथिव्यां पार्थिवान्तकः ।  
 अंशावतरणं सर्वे सुराः कुरुत मा चिरम् ॥६२॥  
 धर्मस्वांशस्तु कुन्त्या वै माद्रांश्च च विनियुज्यताम् ।  
 विग्रहस्य कलिमूलं गान्धारीं विनियुज्यताम् ॥६३॥  
 एतो पक्षो भविष्यन्ति राजानः कालचोदिताः ।  
 जातरागाः पृथिव्यर्थे सर्वे संग्रामलालसाः ॥६४॥

जो भी राजा उस सघर्ष में जिन्दा बचेंगे, उनको रात्रि के दायन-ममय में भगवान् श्री शंकर के अंश रूप अवतार्यामा अपनी शस्त्ररुही अग्नि में दहन कर मृत्यु लोक पहुँचा देगा ॥५७॥ प्रलय के समान इस भीषण सघर्ष के अन्त तक तृतीय द्वापर युग भी समाप्त हो जाएगा ॥५८॥ देवादिदेव भगवान् श्रीकृष्ण के निमन होते ही अत्यन्त मयंकुर कलियुग का प्रारम्भ हो जाएगा ॥५९॥ कलियुग में समस्त प्राणी-जन अवर्मा हो जायेंगे । कोई-कोई ही धर्म-कार्य करेगा । सत्य का नाश होते हुए अनस्य का उत्थान हो जायगा ॥६०॥ उस युग में समस्त राणी भगवान् श्री शंकर तथा कार्तिकेय की भक्ति-पूजा करेंगे तथा सभी वृद्धावस्था से पहले ही मृत्यु को प्राप्त होने रहेंगे ॥६१॥ इसलिए मैंने राजाओं को नष्ट करने के लिए यही उपाय सबसे उत्तम मान कर निश्चित किया है । अब तुम लोग बिना कार्य के समय नष्ट न करो तथा अपने-अपने तेज से प्रभावित होकर अवतार ग्रहण करो ॥६२॥ तुम लोग जाकर कुन्ती तथा माद्री के गर्भधारण से धर्म स्वरूप तथा गान्धारी के गर्भ में कलि के अंश स्वप्न तथा सघर्ष की जड़ की उत्पत्ति करो ॥६३॥ इस तरह दोनों प्रकार के अवतार धारण करने से पक्षों की स्थापना हो जायगी तथा भूमि के समस्त राजा समय के प्रमाय से धर्म-जालायिन होकर दोनों पक्षों में बँट जायेंगे ॥६४॥

गच्छत्वयं वसुमतो स्वा योनिं लोकधारिणीम् ।  
 सृष्टोऽयं नैष्ठिको राज्ञामुपायो लोकविश्रुतः ॥६५॥  
 श्रुत्वा पित्रामहवचः सा जगाम ययागतम् ।  
 पृथिवी सह कालेन वध्ना पृथिवीक्षिताम् ॥६६॥

देवानचोदयद्ब्रह्मा निग्रहार्थे सुरद्विपाम् ॥  
 नर चैव पुराण्यि शेष च धरणीधरम् ॥६७  
 सनत्कुमार साध्याश्च सुराश्चाम्निपुरोममान् ।  
 वरुण च यम चैव सूर्याचन्द्रमसौ तदा ॥६८  
 गन्धर्वाप्सरसश्चैव रुद्रादित्यास्तथाश्विनौ ।  
 ततोऽशानवर्नि देवा सर्व एवावतारयन् ॥६९  
 यथा ते कथित पूर्वमशावतरण मया ।  
 अयोनिजो योनिजाश्च ते देवा पृथिवीतले ॥७०  
 दैत्यदानवहन्तारः सभूता पुरुषेश्वरा ।  
 क्षीरिकावृक्षसकाशा वज्रसहननास्तथा ॥७१  
 नागायुतवला केचित्केचिदोघबलान्विता ।  
 गदापरिघशक्तीना सघा परिघवाहव ॥७२

अब पृथिवी वापस जाकर लोकधारी स्वरूपधारी हो । पृथिवी पर राज्य करने वाले समस्त राजाओं को नष्ट करने के लिए यह योजना मैंने बहुत समय पूर्व ही निश्चित करली थी ॥६५॥ पितामह ब्रह्माजी के इस प्रकार कहने पर पृथिवी अपने भूलोक पहुँच कर समस्त सत्कार के नष्ट होने की प्रतीक्षा करने लगी ॥६६॥ इस प्रकार अपनी योजना समझाते हुए ब्रह्माजी ने पृथिवी ने भार को हल्का करने के लिये प्रोत्साहन देते हुए भगवान् श्री विष्णु, पृथिवी को धारण करने वाले भगवान् शेषनाग, सनत्कुमार, साध्यगण, वसुगण, चन्द्रमा, सूर्य, वरुण, अग्नि आदि समस्त देवगणों, गन्धर्वों, अप्सराओं, रुद्रों, आदित्यों तथा दोनों अश्विनीकुमारों को अपने-अपने तेज से प्रभावित होकर अवतार ग्रहण करने को कहा ॥६७-६९॥ ब्रह्माजी द्वारा निर्देशानुसार समस्त देवगणों ने पृथिवी पर अवतार ग्रहण किए । पहले मैंने आदि पर्व में अक्षावतारों का वर्णन विस्तृत रूप से कर दिया है । इस प्रकार समस्त अयोनिज तथा योनिज देवगण, दैत्य तथा राक्षसों का नाश करने को भूमण्डल पर अवतारित हुए । वे सभी अक्षय्य वृक्ष के सदृश भरे शरीर वाले तथा वज्र के समान कठोर अंगों वाले ॥७०-७१॥ उनमें से बहुतों का शारीरिक बल दस हजार हाथियों के बराबर था तथा बहुत

ग शरीर समुद्र के समान वेगवान् था । गदा, परिघ तथा शक्ति का प्रहार करते सभी निपुण थे और उनकी मुजाऐं परिघ के समान कठोर थी ॥७२॥

गिरिशृङ्गप्रहर्तारः सर्वे परिघयोधिनः ।

वृष्णिवंशसमुत्पन्नाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥७३॥

कुरुवंशे च ते देवाः पञ्चालेषु च पार्थिवाः ।

याजिकानां समृद्धानां ब्राह्मणानां च योनिषु ॥७४॥

सर्वास्त्रज्ञा महेष्वासा वेदव्रतपरायणाः ।

सर्वद्विगुणसंपन्ता यज्वानः पुण्यकर्मिणः ॥७५॥

आचालयेयुर्गैलान्क्रुद्धा भिन्दुर्महीतलम् ।

उत्पतेयुरथाकाश क्षोभयेयुर्महोदधिम् ॥७६॥

एवमादिश्य तान्ब्रह्मा भूतभव्यभवत्प्रभुः ।

नारायणे समावेश्य लोकाञ्छान्तिमुपागमत् ॥७७॥

भूयः शृणु यथा विष्णुरवतीर्णो महीतले ।

प्रजानां वै हितार्थाय प्रभुः प्राणहितेश्वरः ॥७८॥

ययातिवशजस्याथ वसुदेवस्य धीमतः ।

कुले पूज्ये यशस्कर्मा जज्ञे नारायणः प्रभुः ॥७९॥

पर्वतो की चट्टानों को धूलें करने तथा परिघ आदि शस्त्रों से युद्ध करने के सभी योग्य थे । उन सभी ने इस प्रकार वृष्णिवंश, कुरुवंश, पाण्डववंश तथा महोद्री ब्राह्मण वंशों में जन्म लिया ॥७३-७४॥ ये सभी अवतारित देवगण न निपुण, महान् धनुर्वीर, वेद तथा धर्मपरायण, सभी प्रकार से सम्पन्न तथा कर्तार थे तथा सदैव पुण्य-कार्यों का आयोजन करने के लिए उद्यत रहते थे ॥५॥ वे क्रोधित होकर पर्वतों को कम्पायमान कर देते थे, पृथिवी को नष्ट कर सकते थे, आकाश में उठने में समर्थ थे तथा उनके डर से समुद्र में हलचल जाती थी ॥७६॥ हे राजन् ! इस प्रकार कमलयोनि पितामह ब्रह्माजी ने अस्त देवगणों को आदेश देकर तथा सारा उत्तरादयित्व भगवान् श्री विष्णु पर कर मोन धारण कर लिया ॥७७॥ इसके पश्चात् देवादिदेव भगवान् विष्णु ने समस्त प्राणियों के कल्याणार्थ भूमण्डल पर अवतार धारण किया,





{ ग्रहण करने के पश्चान् देवपक्ष में शामिल होते हुए देवपि नारद भगवान् विष्णु को उस समा में पहुँच गए ॥६॥ समस्त लोको में भ्रमण करने वाले अमर वे ब्रह्मपि नारद देव समा में पहुँच कर क्रुपित वाणी में भगवान् विष्णु से कहने लगे ॥७॥

अ शावतरण विष्णोर्पदिदं त्रिदशै कृतम् ।

क्षयायं पृथिवीन्द्राणा सर्वमेनदकारणम् ॥८॥

यदेतत्पार्थिव क्षत्रं स्थित त्वयि यदीश्वर ।

नूनारायणयुक्तोऽत्र कार्यार्थं प्रतिभाति मे ॥९॥

न मुक्तं जानता देव त्वया तत्त्वार्थं दर्शिता ।

भूदैवत पृथिव्यर्थे प्रयोक्तु कार्यमीदृशम् ॥१०॥

त्व हि चक्षुष्मता चक्षुः श्लाघ्य प्रभवता प्रमः ।

श्रेष्ठो योगवता योगी गतिर्गतिमतामपि ॥११॥

देवभागान्गतान्दृष्ट्वा कि त्व सर्वाश्रयो विभुः ।

वसुंधराया साह्यार्थमश स्व नानुयुञ्जसे ॥१२॥

त्वया सनाथा देवाशास्त्वन्मयास्त्वत्परायणा ।

जगत्या संचरिष्यन्ति कार्यात्कार्यान्तरं गता ॥१३॥

भूतयो हि तवाव्यक्ता दृश्यादृश्या मुरोत्तमैः ।

तासु सृष्टास्त्वया देवाः समविष्यवन्ति भूतले ॥१४॥

तवावतरणे विष्णो कस स विनशिष्यति ।

सेत्स्यते तव कार्यार्थो यस्यार्थं भूमिरागता ॥१५॥

त्व भारते कार्यगुरुस्त्व चक्षुस्त्व परायणम् ।

तदागच्छ हृषीकेश क्षितौ ताञ्जहि दानवान् ॥१६॥

हे विष्णु ! समस्त देवगणों ने उन अनेकों राजाओं का सहार करने के लिये जो प्रकार के अवतार धारण किए हैं, यह सब निर्मूल है ॥८॥ जब तक रायण दोनों ही पृथिवी पर अवतीर्ण न हों तब तक कुछ नहीं हो सकता ॥९॥ यही इन राजा लोगो का परस्पर सघर्ष कराने सहार कर सकते हैं ॥१०॥ भी तत्वों के देखने तथा जानने वाले हैं फिर भी आपकी यह योजना उत्तम

नहीं है ॥१०॥ हे भगवन् ! आप सभी प्राणियों के नेत्र, देवगणों के देवता, पुरुषों के पूज्य, योगियों के योग तथा वेदधानों के उत्तम गति हैं ॥११॥ इसलिए जिन समस्त देवगणों ने पृथिवी का वष्ट दूर करने के लिए अवतार धारण कर लिए तो फिर अभी तक आपने अवतार धारण क्यों नहीं किया ? समस्त देवगणों को कि अवतार धारण कर चुके हैं, उनको जब आप सहायता तथा प्रोत्साहन दें रहेंगे तभी वे अपने उस अभीष्ट को सिद्ध कर सकेंगे ॥१२-१३॥ आपके रूपों की कोई व्याख्या नहीं है । ब्रह्मा आदि देवगण भी आपके रूपों को नहीं जान पाते । समस्त देवगण प्रत्यक्षदर्शी नाना प्रकार के स्वरूपों में भूमण्डल पर अवतरण कर चुके हैं अतः आपको भी शीघ्र ही अवतार धारण करना चाहिए ॥१४॥ आपके अवतीर्ण होने से पापी कस का सहार होकर पृथिवी का, शूलका हो जाएगा ॥१५॥ भारत का यह अभीष्ट कार्य आप सिद्ध कर सकते हैं अतः हे भगवन् ! भारतभूमि पर अवतरित होकर आप उन पापी राजसत्तों, विनाश कीजिए ॥१६॥

## ॥ पितामह ब्रह्मा की योजना ॥

नारदस्य वच. श्रुत्वा सस्मित मधुसूदन. ।  
 प्रत्युवाच शुभ वाक्यं वरेण्यः प्रभुरोश्वरः ॥१॥  
 त्रैलोक्यस्य हितार्थाय यन्मां वदसि नारद ।  
 तस्य सम्भवप्रवृत्तस्य श्रूयतामुत्तर वच. ॥२॥  
 विदिता देहिनो जाता मयैते भुवि दानवा. ।  
 यां च यस्तनुमादाय दैत्य. पुष्यति विग्रहम् ॥३॥  
 जगत्पथे कृतो योज्यमशोत्सर्गो दिवौकसैः ।  
 मुरदेर्वापिगन्धर्वैरितश्चानुमते मम ॥४॥  
 विनिश्चयो हि प्रागेव नारदाय कृतो मया ।  
 निवासं ननु मे ब्रह्मन्विदधातु पितामहः ॥५॥  
 यत्र देशे यथा जाता येन वैपेण वा वसन् ।  
 तानहं समरे हन्या तन्मे ब्रूहि पितामह ॥६॥

वैशम्पायन जो ने कहा—हे राजन् ! देवादितेव भगवान् श्री विष्णु  
हृषि नारद के ऐसे वचन सुन कर भुस्वान सहित बोले ॥१॥ हे नारद !  
मुझे तीनों लोकों के लाभ हेतु जो वचन कहे । मुनो ! मैं उनका उत्तर देता  
! ॥२॥ देव-गणों ने पृथिवी मण्डल पर आकर जो भी शरीर धारण किए हैं,  
वह सभी मुझे ज्ञात हैं ॥३॥ देवगण, देवर्षि तथा गन्धर्व सभी इस जगत् के लाभ  
हेतु इस असार में, ससार में मेरी ही आज्ञा से जिस प्रकार अवतरित हुए हैं वह  
आपके सामने मैंने पहले ही निश्चय कर दिया था । अब पितामह ब्रह्माजी मुझे  
प्राश्न्य दें कि मैं किम वक्ष्ये तया क्या अवतार लेकर इन अमुरों का सहार  
करूँ ? ४-५-६॥

नारायणे मं सिद्धार्थमुपायं शृणु मे विभो ।  
भुवि यस्ते जनयिता जननी च भविष्यति ॥७॥  
यत्र त्वं च महाबाहो जातः कुलकरो भुवि ।  
यादवानां महद्दक्षमखिलं धारयिष्यसि ॥८॥  
तांश्चामुरान्समुत्पाद्य वंशं कृत्वाऽऽत्मनो महत् ।  
स्थापयिष्यसि मर्यादां नृणां तन्मे निशामय ॥९॥  
पुरा हि कश्यपो विष्णो वरुणस्य महात्मनः ।  
जहार यज्ञिया गा वै पयोदास्तु महामखे ॥१०॥  
अदितिः सुरभिश्चैते द्वे भार्ये कश्यपस्य तु ।  
प्रदीयमाना गास्तास्तु नचैतां वरुणस्य वै ॥११॥  
ततो मा वरुणोऽभ्येत्य प्रणम्य शिरसा ततः ।  
उवाच भगवन्नाबो गुरुणा मे हृता इति ॥१२॥  
कृतकार्यो हि गास्तास्तु नानुजानाति मे गुरुः ।  
अन्यवर्तत भार्ये द्वे अदितिं सुरभिं तथा ॥१३॥

पितामह ब्रह्माजी कहने लगे—हे भगवन् ! इस भूमण्डल पर आये  
त्रा-पिता कौन होंगे ? आप किस वक्ष में जन्म धारण करके उन महाबलधारी  
यों का सहार करेंगे तथा अपने कुल को विस्तृत करके अपनी मर्यादा को सुर-  
क्षित रखेंगे, इसके लिए मैं आपको एक सरल प्रयोजन बतलाता हूँ ॥१४-८-६॥

महात्मा वरुण ! वे पास यज्ञ-काल के लिए कुछ दूध देने योग्य गायें थीं। एक बार प्रजापति भगवान् वश्यप उन गायों को महात्मा वरुण से माँग कर ले गए, तो उनकी भार्याओं अदिति, सुरभी ने गायें वरुण को लौटाने के लिए अनिच्छा प्रकट की ॥१०-११॥ एक बार वरुण मेरे यहाँ आकर तथा मुझे प्रणाम करते बोले—हे भगवन् ! मेरी समस्त गायें मेरे पिता भगवान् वश्यप ने ले ली हैं। यद्यपि उनका धर्म सम्पन्न हो चुका है, किन्तु उन्होंने मेरी गायें नहीं लौटाई हैं और अपनी दोनों पत्नियों अदिति तथा सुरभी की इच्छा का ही समर्थन कर रहे हैं ॥१२-१३॥

मम ता अक्षया गावो दिव्या कामदुघा प्रभो ।  
चरन्ति सागरान्सर्वान् रक्षिता स्वेन तेजसा ॥१४॥  
कस्ता धर्षयितु शक्तो मम गा कश्यपाह्वे ।  
अक्षय या क्षरन्त्यग्रच पयो देवामृतोपमम् ॥१५॥  
प्रभुर्वा व्युत्थितो ब्रह्मन्गुर्वा यदि वेतर ।  
त्वया नियम्या सर्वे वै त्व हि न परमा गति ॥१६॥  
यदि प्रभवता दण्डो लोके कार्यमजानताम् ।  
न विद्यने लोकगुरोर्न स्युर्वै लोकसेतव ॥१७॥  
यथा वाऽस्तु तथा कर्तव्ये भगवान्प्रभु ।  
मम गाव प्रदीयन्ता ततो गन्ताऽस्मि सागरम् ॥१८॥  
या आत्मदेवता गावो या गाव सत्त्वमव्ययम् ।  
लोकाना त्वत्प्रवृत्तानामेक गोब्राह्मण स्मृतम् ॥१९॥  
क्षातव्या प्रथम गावस्त्रातास्त्रायन्ति ता द्विजान् ।  
गोब्राह्मणपरित्राण परित्यात जगद्भवेत् ॥२०॥

उन कामधेनुओं को नष्ट करना असम्भव है। वे अपने तेज से प्रभा होकर सुरक्षित हैं तथा सागरीय तटों पर विचरती फिर रही हैं ॥१४॥ तो और मेरी उन गायों को प्रजापति वश्यप के अलावा अन्य कोई स्पर्श नहीं कर सकता है। उन गायों का दुग्ध अत्यन्त लाभदायक अमृत के र



महात्मा वरुण ! के पास यज्ञ-काल के लिए कुछ दूध देने योग्य गायें थी ।  
 बार प्रजापति भगवान् वश्यप उन गायों को महात्मा वरुण से माँग कर ले गए  
 तो उनकी भाव्यो अदिति, सुरभी ने गायें वरुण को लौटाने के लिए अनिच्छा  
 प्रकट की ॥१०-११॥ एक बार वरुण मेरे यहाँ आकर तथा मुझे प्रणाम करके  
 बोले—हूँ भगवन् ! मेरी समस्त गायें मेरे पिता भगवान् वश्यप ने ले ली हैं ।  
 मद्यपि उनका कार्य सम्पन्न हो चुका है, किन्तु उन्होंने मेरी गायें नहीं लौटाई  
 हैं और अपनी दोनों पत्नियों अदिति तथा सुरभी की इच्छा का ही समर्थन कर  
 रहे हैं ॥१२-१३॥

मम ता अक्षया गावो दिव्या कामदुधा प्रभो ।  
 चरन्ति सागरान्सर्वान्रक्षिता स्वेन तेजसा ॥१४॥  
 वस्ता धर्पयितुं शक्तो मम गा वश्यपादृते ।  
 अक्षय या क्षरन्त्यग्रजं पयो देवामृतोपमम् ॥१५॥  
 प्रभुर्वा व्युत्थितो ब्रह्मगुर्वा यदि वेतर ।  
 त्वया नियम्या सर्वे वै त्व हि न परमा गति ॥१६॥  
 यदि प्रभवता दण्डो लोके कार्यमजानताम् ।  
 न विद्यते लोकगुरोर्न स्युर्वै लोकसेतव ॥१७॥  
 यथा वाऽस्तु तथा वर्तव्ये भगवान्प्रभु ।  
 मम गाव प्रदीयन्ता ततो गन्ताऽस्मि सागरम् ॥१८॥  
 या आत्मदेवता गावो या गावः सत्यमव्ययम् ।  
 लोकानां त्यक्ष्यवृत्तानामेव गोब्राह्मण स्मृतम् ॥१९॥  
 सातप्या प्रथम गावस्त्रातास्त्रायन्ति ता द्विजान् ।  
 गोब्राह्मणपरित्राण परित्रात जगद्भवेत् ॥२०॥

उन गायोपुत्रों को नष्ट करना असम्भव है । वे अपने क्षेत्र से प्रभु  
 होकर गुरगित हैं तथा मागरीय तटों पर विचरती फिर रही हैं ॥१४॥  
 तो और गरी उन गायों को प्रजापति वश्यप के अलावा अन्य कोई रक्षक  
 नहीं कर सकता है । उन गायों का दूध अमृत भाभदायक अमृत के

तथा नाशरहित है ॥१५॥ हे पितामह ! चाहे कोई स्वामी हो, गुरु हो अथवा कोई भी हो, सभी को निर्धारित सीमा का उल्लंघन करने पर आप उसको दण्डित करते हैं । आपके अलावा मेरा कोई भी सहायक नहीं क्योंकि आप ही मेरे अत्यन्त हर्तृपी हैं । अगर इस जगत् मे अपराधी अपने अपराध के लिए नियमित रूप में दण्डित न हो तो इन समस्त सभार का विनाश हो जायगा तथा हमकी मर्यादा-भंग हो जायगी ॥१६-१७॥ हे ब्रह्मन् ! इस सन्दर्भ में मैं और कुछ नहीं, किन्तु अपनी गायें वापिस चाहता हूँ वह आप मुझे अवश्य दिसवाइए । इसके पदवात् मैं सागर की ओर पहुँच जाऊँगा । उन गायों से ही मेरा जीवन तथा बल है । आरने मृष्टि-रचना के समय सर्व प्रथम गाय तथा ब्राह्मणों की उत्पत्ति की थी । इसलिए गायों की रक्षा ही आपका सर्वप्रधान कर्त्तव्य है । आपके द्वारा बन्धन मुक्त तथा सुरक्षित वे गायें ही हम समस्त ब्राह्मणों की रक्षा कर सकती हैं । तथा इसी तरह इन दोनों की रक्षा करने से समस्त जगत की रक्षा सम्भव होगी ॥१८-१९-२०॥

इत्यम्बुपतिना प्रोक्तो वरुणेनाहमच्युत ।  
 गवा कारणतत्त्वज्ञः कश्यपे शापमुत्सृजन् ॥२१॥  
 येनाशेन हुता गायः कश्यपेन महर्षिणा ।  
 स तेनाशेन जगती गत्वा गोपत्वमेधयति ॥२२॥  
 या च सा सुरभिर्नाम अदितिश्च सुरारणिः ।  
 तेऽप्युभे तस्य भार्ये वै तेनैव सह याम्यतः ॥२३॥  
 ताभ्या च मह गोपत्वे कश्यपो भुवि रंस्यते ।  
 स तस्य कश्यपस्यांशस्तेजसा कश्यपोपम ॥२४॥  
 यमुदेव इति ख्यातो गोषु तिष्ठति भूतले ।  
 गिरिर्गोवर्धनो नाम मधुरायास्त्वद्वरतः ॥२५॥  
 तस्मासौ गोषु निरतः कंसस्य करदायकः ।  
 तस्य भार्याद्वयं जातमदितिः सुरभिश्च ते ॥२६॥  
 देवकी रोहिणी चैव यमुदेवस्य घामितः ।  
 मुरली रोहिणी देवी चादितिर्देवकी त्वभूत् ॥२७॥



हे विष्णु ! महात्मा वरुण के ऐसे वचनों को सुनकर इस सद्गुरु  
समस्त ज्ञान प्राप्त करके भगवान् ने कश्यप को श्राप दे दिया तथा कहा ॥२१॥  
भगवान् कश्यप ने अपने जिस तेज से प्रभावित होकर उन गायों को अपहृत  
किया है, उसी के प्रभाववश वे भूमण्डल पर ग्वाला का जन्म धारण करें ॥२२॥  
तथा दोनों देवमाता अदिति तथा सुरभी उनकी पत्नियों के स्वरूप पृथ्वी पर  
उनके साथ जन्म धारण करेंगी ॥२३॥ इस पृथ्वी पर ग्वाला का जन्म धारण  
कर महर्षि कश्यप अपनी दोनों भार्याओं सहित आनन्दपूर्वक जीवन यापन  
करते रहेंगे । इसी के अनुसार वर्तमान समय में भगवान् कश्यप के तेज स्वरूप  
वसुदेव नाम से प्रसिद्ध होकर पृथ्वी पर गायों को सेवा करते हुए जीवन यापन  
कर रहे हैं । मथुरा के ही समीप गोवर्धन पर्वत है । उसी स्थान पर पापी का  
के आधीन होकर गोकुल पर राज्य कर रहे हैं । महात्मा कश्यप की दोनों  
पत्नियाँ अदिति और सुरभी वसुदेव की दोनों पत्नियाँ देवकी तथा रोहिणी  
रूप में अवतीर्ण हुई हैं ॥२४॥-॥२७॥

तत्र त्व शिशुरेवादौ गोपालकृतलक्षण ।  
वर्द्धयस्व महाबाहो पुरा त्रैविक्रमे यथा ॥२८॥  
छादयित्वात्मनात्मान मायया योगरूपया ।  
तत्रावतर लोकाना भवाय मधुसूदन ॥२९॥  
जयाशीर्वचनैस्त्वेते वर्द्धयन्ति दिवौकस ।  
आत्मानमात्मना हि त्वमवतीर्य महीतले ॥३०॥  
देवकी रोहिणी चैव गर्भाभ्या परितोषय ।  
गोपकन्यासहस्राणि रमय श्वर मेदिनीम् ॥३१॥  
गाश्च ते रक्षतो विष्णो वनानि परिधावत ।  
वनमालापरिक्षिप्त घन्या द्रक्ष्यन्ति ते वपु ॥३२॥  
विष्णो पद्मपलाशाक्ष गोपालवसति गते ।  
याते त्वयि महाबाहो लोको बालत्वमेप्यति ॥३३॥  
त्वद्भक्ता पुण्डरीकाक्ष तव चित्तवशानुगा ।  
यने चारयतो गाश्च गोष्ठेषु परिधावत ॥३४॥

मज्जतो यमुनाया च रतिं प्राप्स्यन्ति ते त्वयि ।  
जीवित वसुदेवस्य भविष्यति सुजीवितम् ॥३५॥

हे देवादिदेव भगवान् श्री विष्णु ! अब आप संसार के साभार्य वसुदेव जी के यहाँ ग्वाले के रूप में अवतार धारण करो । पहले भी आपने अपने माया-जाल से वामन रूप धारण करके अपना शरीर विस्तृत कर लिया था, तो अब भी उसी तरह ग्वाल जाल के वेप में अपने शरीर को विस्तृत कीजिए ॥२८-२९॥ ये इन्द्र सहित ये सभी देवगण आपको भूमिमा गाते हुए सराहना कर रहे हैं । इसलिए आप भी पृथ्वी पर वसुदेव के यहाँ देवकी तथा रोहिणी के गर्भ में जन्म धारण करके सभी को सन्तुष्ट करें । पृथ्वी पर जन्म धारण करने के पश्चात् आपके लिए सभी गोपियाँ आपके मनोरजन का साधन बनेंगी ॥३०-३१॥ आपको गायों को चराते हुए वन में भ्रमण करते समय आपके वनमाला से शोभित सुन्दर शरीर को निहारकर समस्त प्राणीजन स्वयं को धन्य समझेंगे ॥३२॥ हे कमलनयन भगवान् श्री विष्णु ! आपके द्वारा बाल रूप धारण करने पर जगत् के समस्त प्राणी आपकी माया से ज्ञान रहित होकर बच्चों के समान ममता में बँध जाऐंगे ॥३३॥ सभी ग्वाले आपके सच्चे आज्ञाकारी बनकर जंगली तथा गौशालाओं में आपको सहायक होंगे । आपको जल-क्रीड़ा के लिए यमुना नदी में कूदेंगे तो उन लोगों को अत्यन्त प्रसन्नता होगी । तथा वसुदेवजी तो आपको प्राणी से भी अधिक चाहेंगे ॥३४-३५॥

यस्त्वया तात इत्युक्तं स पुत्र इति वक्ष्यति ।  
अथवा कस्य पुत्रत्वं गच्छेया कश्यपाहते ॥३६॥  
का च धारयितुं शक्ता त्वा विष्णो अदितिं विना ।  
योगेनात्मसमुत्थेन गच्छ त्वं विजयाय वै ।  
वयमप्यालयान्स्वान्स्वान्गच्छामो मधुसूदन ॥३७॥  
सदेवानभ्यनुज्ञाय विविक्ते त्रिदिवालये ।  
जगाम विष्णु स्व देश क्षीरोदस्योत्तरा दिशम् ॥३८॥  
तत्र च पार्वती नाम गुहा मेरो सुदुर्गमा ।

त्रिभिस्तस्यैव विक्रान्तैर्नित्य पर्वसु पूजिता ॥३६

पुराण तत्र विन्यस्य देह हरिरुदारधी ।

आत्मान योजयामास वसुदेवगृहे प्रभु ॥४०

जिनको अभी तक आपने पिता तुल्य माना है, पृथ्वी पर वे ही तुम्हारे पिता होंगे आप सिर्फ महात्मा कश्यप के ही पुत्र बनेंगे तथा देवमाता आदिति के ही गर्भ से जन्म ग्रहण करोगे । हे भगवान् । अब आप अपने माया-ज्ञान से समस्त राजाओं को हराने के लिए पृथ्वीमण्डल में अवतार धारण कीजिए । तथा हम लोग भी अपने धाम को जाते हैं ॥३६-३७॥ वैशम्पायन ने कहा—हे राजन् । भगवान् श्री विष्णु ने देवगण के पृथ्वी पर अवतीर्ण होने के कारण उन्हें रिक्त देवलोक में जाने की आज्ञा दी तथा स्वयं क्षीर सागर के उत्तर दिशा में स्थित अपने स्थान को चल दिए ॥३८॥ वही मेरु पर्वत की पार्वती नामक भयंकर गुफा थी, जिस पर भगवान् वामन के पदचिह्न थे, तथा प्रत्येक वर्ष उसकी पूजा होती रही थी, वही शान्तचित्त भगवान् श्री विष्णु ने अपनी उठ दिव्य-देह को छोड़कर पृथ्वी पर वसुदेवजी के यहाँ जन्म ग्रहण किया था ॥३९-४०॥

# विष्णु पर्व

॥ नारद कस सवाद ॥

ज्ञात्वा विष्णु क्षितिगत भागाश्च त्रिदिवीकसाम् ।

विनाशशमी कसम्य नारदो मथुरा ययौ ॥१॥

त्रिविष्टपादापतितौ मथुरोपवने स्थित ।

प्रेषयामास वसस्य उग्रसेनसुतस्य वै ॥२॥

स दूत वययामास मुनेरागमन वने ।

स नारदस्यागमन श्रुत्वा त्वरितविक्रम ॥३॥

निज्जंगामासुर कस स्वपूर्या पद्मलोचन ।

स ददर्शातिथि श्लाघ्य देवपि वीतकल्मषम् ॥४॥

तेजसा ज्वलनाकार वपुषा सूर्यवर्चसम् ।

सोऽग्निवाद्यर्पये तस्मै पूजा चक्रे यथाविधि ॥५॥

आसन चाग्निवर्णाभ विसृज्योपजहार स ।

निपसादासन तस्मिन्स वै शक्रमखौ मुनि ॥६॥

वैशम्पायन न कहा—ह महीप । जब सम्पूर्ण देवगण एव स्वयं भगवान् विष्णु भी अपने अपन अक्षा सहित पृथ्वी पर अवतरित हो गये, तब इसका सवाद सुनाने महर्षि नारद कस के समीप मथुरा आये । इसलिए कि उनकी भी यही आकांक्षा थी कि कस को तुरन्त मिल किया जाय ॥१॥ सुरलोक से प्रस्थान कर देवपि नारद मथुरा में स्थित एक उपवन में आये जहाँ से उहोने एक दूत उग्रसेन के पुत्र कस के पास भेजा ॥२॥ नारदजी के सदेश वाहक ने देवपि नारद के पधारने की सूचना दी । जिसकी भुनते ही कस तुरन्त मिलने को चल पड़ा ॥३॥ महीपाल कस अपनी नगर के बाहर निदिष्ट स्थान पर जा पहुँचा और उसने देखा कि अग्नि जैसा तेजवान् देहधारी, पवित्र आत्मा एव सूर्य की भाँति चमकने वाला देवमुनि नारद सामने खड़े हैं । 'राजा कस ने देवपि को

इत्युक्त्वा नारदे याते तस्य वाक्य विचिन्तयन् ।  
 जहासोच्चस्ततः कसः प्रकाशदशनश्चिरम् ॥२१॥  
 सस्मितः चैव प्रोवाच भृत्यानामग्रतः स्थितः ।  
 हास्यः खलु स सर्वेषु नारदो न विशारदः ॥२२॥  
 नाहं भीषयितुं शक्यो देवैरपि सवासवैः ।  
 आसनस्य शयानो वा प्रमत्तो मत्त एव च ॥२३॥  
 योऽहं दोर्म्यामुदाराभ्यां क्षोभयेयं घराभिमाम् ।  
 कोऽस्ति मां मानुषे लोके यः क्षोभयितुमुत्सहेत् ॥२४॥  
 अद्यप्रभृति भूतानामहं देवानुवर्तिनाम् ।  
 नृपक्षिपशुसघानां करोमि कदनं महत् ॥२५॥  
 आज्ञाप्यतां ह्यं केशी प्रलम्बो धेनुकस्तथा ।  
 अरिष्टो वृषभश्चैव पूतना कालियस्तथा ॥२६॥  
 अट्टध्वं पृथिवीं कृत्स्नां यथेष्टं कामरूपिणं ।  
 प्रहरध्वं च सर्वेषु येऽस्माकं पक्षरूपकाः ॥२७॥  
 गर्भस्थानामपि गतिविज्ञेयां चैव देहिनाम् ।  
 नारदेन हि गर्भेभ्यो भयं नः समुदाहृतम् ॥२८॥

देवपि नारद के इस प्रकार कहकर वापिस प्रस्थान कर जाने पर विचार  
 कर कस बात निपौरकर बहुत समय तक हँसता रहा ॥२१॥ फिर हँसता हुआ  
 अपने भृत्यों से बोला—हे सेवकों ! मुनि नारद की बातें सदैव हसीं ही लगती  
 हैं । उनकी बातें योग्य बुद्धिमानों जैसी नहीं हैं ॥२२॥ इसलिए कि यदि मैं मुक्त  
 हूँ, सोते समय, मत्त या प्रमत्त किसी भी अवस्था में ही होऊँ, फिर भी हा  
 आदि सुर मुझे कदापि भयभीत नहीं कर सकते ॥२३॥ मैं अपनी भुजाओं व  
 शक्ति से सम्पूर्ण भूतल को लुब्ध कर सकता हूँ । फिर पृथ्वी पर ऐसा शक्ति  
 शाली कौन है जो मुझसे अटने और मुझे क्रोधित करने का दुस्साहस करे ॥२४॥  
 देवराजों व अनुयायी समस्त मनुष्यों, पशु पक्षियों व अन्य प्राणियों को  
 समय में ही नष्ट कर दूँगा ॥२५॥ हयग्रीव केशी, प्रलम्ब, धेनुक, अरिष्ट, वृष  
 पूतना व कालिया नाम की मेरा निर्दोश भेजा जाय कि वे स्वेच्छापूर्वक स्व

निर्गन्तु कर समस्त भूतल पर भ्रमण करें और जिस स्थान पर भी मेरे विपत्ती  
 हैं, उन्हें बध कर डालें ॥२७॥ देव मुनि नारद जिस गर्भस्थ बालक के बारे में  
 कह गये हैं, इस कारण हयग्रीव व केशी नामक गण गर्भस्थ बालकों पर निगरानी  
 रखें ॥२८॥

भवन्तो हि यथाकामं मोदन्ता विगतज्वराः ।  
 मां च वो नायमाश्रित्य नास्ति देवकृतं भयम् ॥२९॥  
 स तु केलिकिलो विप्रो भेदशीलश्च नारदः ।  
 सुश्लिष्टानपि लोकेऽस्मिन्भेदयैल्लमते रतिम् ॥३०॥  
 कण्डूयमानः सततं लोकानटति चञ्चलः ।  
 घटमानो नरेन्द्राणां तन्त्रैर्वैराणि चैव हि ॥३१॥  
 एवं स विलपन्नेव वाङ्मानेणैव केवलम् ।  
 दिवेश कंसो भवनं दह्यमानेन चेतसा ॥३२॥

फिर अपने सभाजनो की ओर इ गित कर कहा—“तुम सभी लोग भय  
 और घबड़ाहट को त्याग कर पूर्ण आनन्द से रहो । मेरे जैसे स्वामी के होते हुए  
 मैं देवलोक में कोई भय नहीं करना चाहिए ॥२९॥ देवमुनि नारद कीनुक  
 रने वाले और कलह कराने व मतभेद उत्पन्न करने में बड़े चतुर हैं । आपस  
 में घनिष्ठ दो मनुष्यों में गतिरोध उत्पन्न कराकर वे हर्ष का अनुभव करते  
 हैं ॥३०॥ मनुष्यों में इस प्रकार उत्तेजना उत्पन्न करना और विचरण करना  
 नका कार्य है । वे अपनी शूटनीतियों से भूपतियों के बीच शत्रुता की अग्नि  
 ज्वलित करते रहते हैं ॥३१॥ लेकिन फिर भी चिन्ता रूपी अग्नि कंस के  
 अन्तर्मन को जला रही थी और इसी अवस्था में ही वह अपने निवास-गृह की  
 ओर चल दिया ॥३२॥

॥ योगनिद्रा-विष्णु वार्तालाप ॥

सोज्ञापयत सरब्धः सचिवानात्मनो हितान् ।  
 यत्ता भवत सर्वे वै देवक्या गर्भकृन्तने ॥१॥

प्रथमादेव हन्तव्या गर्भाग्ने सर्वे एव हि ।  
 मूलादेव तु हन्तव्य सोऽग्नयो यस्य मंशयः ॥२॥  
 देवकी च गृहे गुप्ता प्रच्यवन्नेरभिरक्षिता ।  
 स्वैर चरतु विश्रव्या गर्भवाले तु गृह्यताम् ॥३॥  
 मासांश्च पुष्यमासादीन्गणयन्तु मम स्त्रिय ।  
 परिणामे तु गर्भस्य शेष ज्ञास्यामहे वयम् ॥४॥  
 वसुदेवस्तु सरश्च स्त्रीसनायासु भूमिषु ।  
 अप्रमत्तैर्मम हिते राक्षसवह्निर्च व हि ।  
 स्त्रीभिर्वपंवरैश्च व यत्तव्य न तु धारणम् ॥५॥  
 एष मानुष्यको यस्तो मानुषैरेव साध्यते ।  
 श्रूयता येन दैव हि मद्भिर्धं प्रतिहन्यते ॥६॥  
 मन्त्रग्रामं सुविहितेरोपधंश्च सुयोजितं ।  
 यत्नेन चानुकूल्येन दैवमप्यनुलोम्यते ॥७॥

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन् ! इस प्रकार ऋष क्रोध से आवेश में हो मन्त्रिगण से कहने लगा—मन्त्रियो ! देवकी वह्नि का गर्भ समाप्त करने के लिए तुम लोग सदैव तत्परतापूर्वक सावधान रहना ॥१॥ प्रारम्भ से ही देवकी समस्त गर्भ नष्ट करते रहो । क्योंकि नीति के अनुसार जिससे मनुष्य को हो, उसे वह पूर्ण रूपेण क्षमन करदे । देवकी की देख-रेख मेर गुप्तचर कर हैं । इसलिए आठवें गर्भ के उत्पन्न होने तक, उसे औपधि आदि देकर व गर्भों का नाश करते चलो, जिससे कि कोई सन्देह भी न रहे ॥२॥ देवकी महलों में सब तक विश्वासपूर्ण चित्त सहित स्वेच्छाचारितापूर्वक रहेगी । अन्त पुर की सेविकाएँ उसकी सावधानीपूर्वक रक्षा करेंगी ॥३॥ जब भी देवकी के गर्भ धारण का अवसर हो, उस समय विशेष सावधानी रहे, उस काल मेरी पत्नियाँ उचित ढंग से महोनों की मणुना करेंगी । उसके परिणाम । गणना द्वारा मैं उसके गर्भों के विषय मे निश्चित रूप से जान सकूँ ॥४॥ विशेष विश्वासी सेवक प्रत्येक क्षण मेरे महलों मे रहने वाले वसुदेव की रक्षा सावधानीपूर्वक सलग्न रहकर उस पर विशेष देख रेख रखें । इस बात ॥

मैं विशेष ध्यान रखें कि अन्तःपुर के सेवक वसुदेव और इस नगर की स्त्रियों को इस विशेष रक्षा एवं देख रेख प्रबन्ध के विषय में न बतावें ॥१॥ मेरे बताये सभी कार्य मनुष्य साध्य हैं एवं मनुष्य उन्हें पूरा कर सकते हैं ॥६॥ मन, औषधि, यत्न और समय की अनुकूलता वा उचित रूप में पालन किया जाय तो मेरे समान मनुष्य अवश्य ही भाग्य को भी अपनी इच्छानुसार परित्यक्त कर सकते हैं और उसे अपने अनुकूल बना सकते हैं ॥७॥

एवं स यत्नवान्कसो देवकीगर्भकृन्तने ।

भयेत मन्त्रयामास श्रुतार्थो नारदात्स वै ॥८॥

एव श्रुत्वा प्रयत्न वै कंसस्यारिष्टसंज्ञितम् ।

अन्तर्धानं गतो विष्णुश्चिन्तयामास वीर्यवान् ॥९॥

सप्तमाद्देवकीगर्भभोजपुत्रो बधिष्यति ।

अष्टमे च सप्तमं कार्यमाधानमात्मनः ॥१०॥

तस्य चिन्तयतस्त्वेव पातालमगमन्मनः ।

यत्र ने गर्भशयना पङ्गुर्भा नाम दानवा ॥११॥

विक्रान्तवपुषो दीप्तास्तेऽमृतप्राशनोपमाः ।

अमरप्रतिमा युद्धे पुष्पा वै कालनेमिनः ॥१२॥

ते ताततात संत्यज्य हिरण्यकशिपुं पुरा ।

उपासाचक्रिरे दैत्याः पुरा लोकपितामहम् ॥१३॥

तप्यमानास्तपस्तीव्रं जटामण्डलधारिणः ।

तेषां प्रीतोऽभवद्ब्रह्मा पङ्गुर्भाणां वरं ददौ ॥१४॥

वैशम्पायन जी बोले—हे नृप ! घोर असुरराज कंस देव मुनि नारद द्वारा

अपने विनाश का वर्णन सुनकर एकदम भयभीत हो गया और सभी से देवकी के गर्भों की नष्ट करने के विषय में विचार विमर्श करने लगा ॥८॥ भगवान् विष्णु ने भी अपने ध्यान-योग की शक्ति द्वारा कंस का गर्भ नष्ट करने सबधी उद्देश्य जान लिया और वे भी मन में विचार करने लगे कि यह भोजपुत्र कंस अपनी बहिन देवकी के सात गर्भों को तो समाप्त कर देगा और फिर आठवें गर्भ में उनके जन्म लेकर अपना उद्देश्य पूर्ण करना होगा ॥९॥ १०॥ भगवान् विष्णु



इस पर विचार कर रहे थे, तभी उन्हें स्मरण हुआ कि भुगर्भ तल में देवताओं  
समान महावीर्यवान् शक्तिशाली कालनेमि के छ पुत्र हैं और वे महान् तपस्वी  
तथा अमृत-पान बिये हुए सुरों के सदृश दीर्घायु हैं ॥११-१२॥ आदिकाल में वे  
अपने पितामह हिरण्यकशिपु का विरोध और अपमान करके जगत्पिता ब्रह्माजी  
की आराधना में लग गये ॥१३॥ उन्होंने जटाएँ भी धारण की और फिर तपस्या  
में लल्लो लल्लो हो गये, जिससे प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने उन्हें वरदान दिया ॥१४॥

॥ सुत उवाच ॥ ज्ञानवशाद् लास्तपसाऽहं सुतोषितः ।  
 भूतैर्मम ॥ ११५ ॥ करोम्यहम् ॥ ११५ ॥  
 भो भो वृषं वरं शनैव वक्तव्यं न तु वनम् ।  
 ब्रूत वो कामस्तस्य त तं पानपरेव साधुः ॥ ११६ ॥  
 ते तु सर्वं दत्त्वा ब्रह्माण्णैर्धैः प्रतिहृत्यैः ।  
 यदि नो दीयता नो धिक्पुत्रवत् ॥ ११७ ॥  
 शाश्वतं वन्दे तैः समहं ॥ ११७ ॥  
 यक्षः पतिं परमं च वारणमानवैः ।  
 मा भूद्वन्द्वं नृकैः वन्दे दासि यदि नो वरम् ॥ ११८ ॥  
 तानुवाच ॥ ततो ब्रह्मा सुप्रीतेतान्तरात्मना ।  
 भवद्विर्यदिदं प्रोक्तं सर्वमेतद्भविष्यति ॥ ११९ ॥  
 पङ्कगर्भाणां वरं दत्त्वा स्वयंभूस्त्रिदिव गतः ।  
 ततो हिरण्यकशिपुः सरोपोऽक्यमब्रवीत् ॥ १२० ॥  
 मा भुत्सृज्य वरो यस्माद्वृतो वः पद्मसम्भवात् ।  
 तस्माद्भस्त्याजितः स्नेहः शस्त्रभूतास्त्यजाम्यहम् ॥ १२१ ॥

जाने के पश्चात् हिरण्यकशिपु बहुत क्रोधित हुआ उनसे कहने लगा—तुमने झाड़ी से बरदान प्राप्त कर मेरी अवहेलना की है और इसलिए तुम से मेरा कोई सबध नहीं और तुम्हारे प्रति मेरा स्नेह सदैव के लिए समाप्त हो गया ।  
व तुम मेरे शत्रु हो ॥२०-२१॥

पङ्गर्भा इति योज्यं वः शब्दः पित्राऽभिर्वाधितः ।

स एव वो गर्भगतान्पिता सर्वान्वधिष्यति ॥२२

पङ्कव देवकीगर्भाः पङ्गर्भा वै महामुराः ।

भविष्यथ ततः कंसो गर्भस्यान्वो वधिष्यति ॥२३

जगामाय ततो विष्णुः पातालं यत्नं तेऽसुराः ।

पङ्गर्भाः संयताः सन्ति जले गर्भगृहेऽशयाः ॥२४

संददर्श जले गुप्तान्पङ्गर्भान्गर्भसंस्थितान् ।

निद्रया कालरूपिण्या सर्वानन्तहितान्स वै ॥२५

स्वप्नरूपेण तेषां वै विष्णुर्देहानयाविशत् ।

प्राणेश्वरान्श्च निष्कृष्य निद्रायै प्रददौ तदा ॥२६ ।

तां चोवाच ततो निद्रा विष्णुः सत्यपराक्रमः ।

गच्छ निद्रे मयोत्सृष्टा देवकीभवनान्तिकम् ॥२७ ✓

इमान्प्राणेश्वरान्गृह्य पङ्गर्भान्दानवोत्तमान् ।

सर्वप्राणेश्वरांश्चैव पङ्गर्भान्नाम देहिनः ।

पङ्गर्भान्देवकीगर्भे योजयस्व यथाक्रमम् ॥२८

उसने शाप दिया—तुम्हारे जिम पिता ने तुम्हारा नामकरण पङ्गर्भ किया है, वही तुम्हारा शत्रु भी बनेगा ॥२२॥ तुम सभी देवकी के गर्भ से जन्म प्राप्त करोगे और कंस एक-एक करके तुम छहों का गर्भ के समय ही वध कर लेगा ॥२३॥ वंशम्पायन बोले—हे नृप ! कालनेमि के उन छ पुत्रों का स्मरण पाते ही भगवान् विष्णु ने तुरन्त ही भूतल लोक को प्रस्थान किया, जहाँ पर वे असुर जलपूर्ण शैया पर एक साथ सो रहे थे ॥२४॥ भगवान् विष्णु ने यह प्रकर कि वे छहों कालरूपिणी निद्रा में मोहित होकर जलमय शैया पर निद्रित रहे हैं ॥२५॥ तो भगवान् विष्णु ने अपनी माया-शक्ति द्वारा स्वप्न की भाँति

उनकी देहो में प्रवेश किया और उनके प्राणों को लेकर निद्रा देवी को दे दिये ॥२५॥ उन्होंने निद्रा देवी से कहा—हे निद्रा ! तुम यहाँ से प्रस्थान कर देवों के अतःपुर में पहुँचो ॥२७॥ यहाँ इन षड्गर्भों के प्राणों को एक एक कर देवी के गर्भ में प्रस्थापित कर दो ॥२८॥

जातेष्वेतेषु गर्भेषु नीतेषु च यमक्षयम् ।  
 कसस्य विप्लवे यत्ने देवक्या सफले श्रमे ॥२८॥  
 प्रसाद ते करिष्यामि मन्त्रभावसमं भुवि ।  
 येन सर्वस्य लोकस्य देवि देवी भविष्यसि ॥२९॥  
 सप्तमो देवकीगर्भो योऽसौ सौम्यो ममाग्रज ।  
 स सकामयितव्यस्ते सप्तमे मासि रोहिणीम् ॥३०॥  
 सकर्पणात्तु गर्भस्य मत्तु सकर्पणो युवा ।  
 भविष्यत्यग्रजो भ्राता मम क्षीताशुदर्शन ॥३१॥  
 पतितो देवकीगर्भं सप्तमोऽयं भयादिति ।  
 अष्टमे मासि गर्भस्थे कसो यत्नं करिष्यति ॥३२॥  
 या तु सा नन्दगोपस्य दयिता भुवि विथुता ।  
 यशोदा नाम भद्रा ते भार्या गोपकुलोद्बहा ॥३३॥  
 तस्यास्त्व नवमो गर्भः कुलेऽस्याक भविष्यति ।  
 नवम्यामेव संजाना कृष्णपक्षस्य वै तिथौ ॥३४॥

देवकी के गर्भ से उत्पन्न होकर ये सात बस द्वारा एक-एक करके बच्चों को दिये जायेंगे । इस प्रकार कस का प्रयत्न तो असफल होगा और देवकी का भी सफल होगा ॥२८॥ उस बालक के प्रसन्नता का कारण यही होगा कि मेरी प्रसन्नता व शृष्ठा के कारण सम्मान प्राप्त करके सभी मनुष्यों को प्राप्ति द्वारा सम्मानित होयागी ॥२९॥ इसके उपरान्त देवकी के सातवें गर्भ में यशोदा का जा अंग प्रवेश करेगा, वह बड़ा बड़ा भाई होगा । सातवें महीने में वह सातवें गर्भ में देवकी के गर्भ से परिवर्तित कर रोहिणी के गर्भ में प्रस्थापित कर ॥३०॥ इस प्रकार गर्भ सकर्पण से उत्पन्न उस बालक नाम सकर्पण होगा । ॥३१॥ इस प्रकार गर्भ सकर्पण से उत्पन्न उस बालक नाम सकर्पण होगा । ॥३२॥ इस प्रकार गर्भ सकर्पण से उत्पन्न उस बालक नाम सकर्पण होगा । ॥३३॥ इस प्रकार गर्भ सकर्पण से उत्पन्न उस बालक नाम सकर्पण होगा । ॥३४॥

३२॥ इस गर्भ में मरुपंथ का परिवर्तन यह होगा कि यह ममाचार फेंक जायगा । भय के कारण देवकी का गर्भ गिर गया । इसके पश्चात् देवकी के आठवें गर्भ में मैं स्वयं प्रवेश करूँगा और तब मेरा दब करन के लिए बस विभिन्न रत्न करेगा ॥३३॥ वसुदेव के अभिन्न मित्र नन्द गोपराज की पत्नी यशोदा के गर्भ में तुम प्रवेश करो और कृष्णपक्ष की नवमी को जन्म लो ॥३४-३५॥

अहं त्रिभिजितो योगे निष्ठाया यौवने स्थिते ।  
अर्धरात्रे करिष्यामि गर्भमोक्षं यथासुखम् ॥३६॥  
अष्टमस्य तु मासस्य जातावावा तत ममम् ।  
प्राप्त्यावो गर्भज्यत्वाय प्राप्तैकमस्य नाशने ॥३७॥  
अहं यशोदा यास्यामि त्वं देवि भज देवकीम् ।  
आवयोगर्भं व्यत्यासे कमो गच्छतु मूढताम् ॥३८॥  
तत्तत्त्वा गृह्य चरणे शिनाया पातयिष्यति ।  
निरम्पमाना गगने स्थान प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥३९॥  
मरुद्वरीमदृशो कृष्णा सकर्पणसमानना ।  
त्रिभ्रती विपुली बाहू मम बाहूपमौ दिवि ॥४०॥  
क्षिण्ण शूलमुद्यम्य खड्गं च कनकत्सरम् ।  
पात्री च पूर्णा लघुता पद्भज च सुनिर्मलम् ॥४१॥  
नीलकोशेयसवीता पीतेनोत्तरवाससा ।  
क्षशिरश्मिप्रभाशेन हारेणोरसि राजता ॥४२॥

उसी समय मैं भी अर्धरात्रि काल में त्रिभिजित् नक्षत्र के, योग के समय जन्म लूँगा ॥३६॥ अष्टम मास में हम एक मास जन्म लेंगे, जिसमें गर्भ परिवर्तन होगा और उसे कम के बब करने में सफलता मिलगी ॥ ३७॥ गर्भ परिवर्तन के द्वारा मैं यशोदा के पास पहुँच जाऊँगा और तुम देवकी के पास आ जाओगी । ऐसी परिस्थिति में उम घोर अमुरराज कम की मति भ्रष्ट हो जायगी ॥३८॥ आठवें गर्भ को नष्ट करन के लिए कम तुम्हारा पैर पकड़ कर तुम्हें उस समय क्षला पर दे मारेगा और तुमको आकाश में स्थित होकर शाश्वत स्थान प्राप्त होगा ॥३९॥ उस समय तुम्हारी देह की आना मेर सहज कृष्ण वर्ण, मेरी मुजाओं

वे समान विशाल भुजाएँ और तुम्हारा मुँह तेरे, ज्येष्ठ भ्राता बलराम के समान  
अति सुन्दर होगा ॥४०॥ उस समय तुम्हारे हाथों में त्रिशूल, सोने की मूठ वस्त्र  
तलवार, मदिरापूर्ण पात्र और अत्यन्त स्वच्छ कमल होगा ॥४१॥ तुम्हारी दाहिनी  
पर नीलवर्ण का रेशमी वस्त्र और पीतवर्ण का उत्तरीय शोभायमान होगा।  
चन्द्रमा की किरणों के सदृश अत्यन्त स्वच्छ हार तुम्हारे वक्षस्थल पर सुशोभित  
होगा ॥४२॥

दिव्यकुण्डलपूर्णाभ्या श्रवणाम्भ्या विभूषिता ।

चन्द्रसापत्नभूतेन मुखेन त्व विराजिता ॥४३॥

मुकुटेन विचित्रेण केशबन्धेन शोभिना ।

भुजङ्गाभैर्भुजैर्भूमैर्भीषयन्ती दिशो दश ॥४४॥

ध्वजेन शिखिग्रहेण उच्छ्रितेन विराजिता ।

अङ्गजेन मयूराणामङ्गदेन च भास्वता ॥४५॥

कीर्णा भूतगणैर्घोरैर्मन्नियोगानुवर्तिनी ।

कौमार व्रतमास्थाय सिद्धिं त्व गमिष्यसि ॥४६॥

तत्र त्वा शतदृक्छक्रो मत्प्रदिष्टेन कर्मणा ।

अभिपेक्षेण दिव्येन देवतै सह योक्ष्यते ॥४७॥

अत्रैव त्वा भगिन्यर्थे गृहीष्यति स वासव ।

कुशिकस्य तु गोत्रेण कौशिकी त्व भविष्यसि ॥४८॥

स ते विन्ध्ये नगश्रेष्ठे स्थान दास्यति शाश्वतम् ।

तत स्थानसहस्रं स्त्व पृथिवी शोभयिष्यति ॥४९॥

ज्येष्ठ असद्वृत्त दो कुटिल तुम्हारे दोनों कानों में लटके होंगे । तुम्हारा

अपूर्व मुख-आभा को विलोक कर चन्द्रमा को भी ईर्ष्या होने लगेगी ।

अलौकिक मुगुट एवं अनुपम वेशराशि से तुम्हारा भरतक अत्यन्त शोभावा

लगेगा । भयानक विषधरो जैसी तुम्हारी भुजाओं को देखकर सम्पूर्ण दिशा

भयातुर हो जायेंगी ॥४४॥ इसके अतिरिक्त तुम्हारी शोभा उस समय असीम

होगी, जब तुम मोर पक्ष लगी उच्च पताका और तेजस्वी अगद धारण करो

॥४५॥ उग बाज तुम प्रमथगणों से घिरी हुई होगी और बौम

प्रत का पालन एवं भरी आशाओं का पालन करती हुई स्वर्गल

मे स्थित होओगी ॥४६॥ जहाँ सहस्र नेत्र घारी इन्द्र मेरी आज्ञा के पालनस्वरूप तुम्हें अभिषिक्त करेगा और अपने देवगण मे मिला लेंगे ॥४७॥ और वह इन्द्र तुम्हें अपनी बहिन का स्थान देगे । चू कि तुम कुशिक गोत्रीया हो, इस कारण तुम्हारा नाम कौशिकी होगा ॥४८॥ विध्याचल पर देवेश्वर इन्द्र तुम्हें शाश्वत स्थान प्रदान करेंगे । फिर तुम अपनी अलौकिक आभा से सहस्रो स्थानों को अलोकित करोगी ॥४९॥

सौ लोच्यचारिणी सा त्व भुवि सत्योपयाचना ।

चरिष्यसि महामागे वरदा कामरूपिणी ॥५०॥

तत्र शुम्भनिशुम्भौ द्वौ दानवौ नगचारिणी ।

तौ च कृत्वा मनसि मा सानुगौ नाशयिष्यसि ॥५१॥

कृत्वाऽनुयाया भूतैस्त्व सुराभासवलिप्रिया ।

तिथौ नवम्या पूजा त्व प्राप्स्यसे सप्तशुक्रियाम् ॥५२॥

ये च त्वा मत्प्रभावज्ञा प्रणमिष्यन्ति मानवा ।

तेषा न दुर्लभ किञ्चित्पुनतो घनतोऽपि वा ॥५३॥

कान्तारेऽप्यसन्नाना मन्माना च महार्णवे ।

दस्युर्भिर्वा निरब्धाना त्व गति परमानुषाम् ॥५४॥

तुम्हारे वरदान से प्राणियों की मनेच्छाएं पूर्ण होंगी और मनेच्छित रूप परिवर्तन करके समस्त लोगों मे विचरण करोगी ॥५०॥ विध्याचल पर निवास करने वाले शुम्भ-निशुम्भ नामक दो विकराल असुरों को तुम मेरा ध्यान करके समूल शमन कर दोगी ॥५१॥ तत्पश्चात् अमिय और बलि तुम्हें प्रिय लगेंगी और भूत प्रेतों को रंग लेकर विचरण करोगी एवं मनुष्य प्रत्येक नवमी को तुम्हें बलि समर्पित करके तुम्हारी अर्चना करेंगे ॥५२॥ मेरे प्रभाव को जानने वाले जो मनुष्य तुम्हारी पूजा करेंगे, वे घन सम्पत्ति एवं पुनादि सर्व सुख प्राप्त करेंगे ॥५३॥ कोई भी मनुष्य किसी भी विपत्ति में क्यों न हो, चाहे वन में रास्ता भूल गया हो, विशाल समुद्र की लहरों में फँस गया हो अथवा दस्युओं के कब्जे में हो, वह जैसे ही तुम्हारा ध्यान करेगा, तुरन्त उसका सकट दूर हो जायगा ॥५४॥

## ॥ भगवान् कृष्ण का जन्म ॥

कृते गर्भविधाने तु देवकी देवतोपमा ।  
 जग्राह सप्त तान्गर्भान्ययावत्समुदाहृतान् ॥१॥  
 षड्गर्भान्नि सृतान्कसस्ताज्जघान शिलातले ।  
 आपन्न सप्तम गर्भं सा निनायाथ रोहिणीम् ॥२॥  
 सार्द्धं रात्रे स्थित गर्भं पातयन्ती रजस्वला ।  
 निद्रया सहसाऽऽविष्टा पपात धरणीतले । ३॥  
 सा स्वप्नमिव त दृष्ट्वा स्वे गर्भे गर्भमादधत् ।  
 अपश्यन्ती च त गर्भं मुहूर्तं व्ययिताऽभवत् ॥४॥  
 तामाह निद्रासविग्ना नेशे तमसि रोहिणीम् ।  
 रोहिणीमिव सोमस्य वसुदेवस्य धीमतः ॥५॥  
 कर्पणेनास्य गर्भस्य स्वगर्भे चाहितस्य वै ।  
 सकर्पणो नाम सुत शुभे तव भविष्यति ॥६॥  
 सा त पुत्रमवाप्यैव हृष्टा किञ्चिदवाङ्मुखी ।  
 विवेश रोहिणी वेश्म सुप्रभा रोहिणी यथा ॥७॥  
 तस्य गर्भस्य मार्गेण गर्भमाधत्त देवकी ।  
 यदर्थं सप्त ते गर्भा कसेन विनिपातिता ॥८॥

वंशम्पादन जी ने कहा—हृष्ट १। जैसा मैंने पहले वर्णन किया, उस प्रकार देवकी के गर्भ निधि प्रारम्भ हुई और जैसे-जैसे उसके गर्भ से शिशु जन्म लेते थे, वैसे-वैसे वह इन्हें पृथिवी पर पटक-गटक कर बघ कर देता था। इस प्रकार देवकी के जन्म सातवीं बार गर्भ स्थिति हुई उस समय योगमाया ने अपनी मायाशक्ति द्वारा देवकी व गर्भ को रोहिणी के गर्भ में स्थित कर दिया ॥१-२॥ इसने अर्धरात्रि काल में रजस्वला देवकी का गभपात हो गया। देवकी निद्रा से मोहित होकर पृथिवी पर लेट गयी ॥३॥ और योगमाया की माया का उन्हें ज्ञान न हो गया। उन्हें एक स्वप्नमात्र अनुभूति हुई कि उन्होंने गर्भ धारण किया और वह गिर भी गया। इसके कारण कुछ समय उन्हें बेदना अवश्य हुई ॥४॥ उस घोर अन्धकारमयी रात्रि में चन्द्र पत्नी रोहिणी के सहस्र गुन्दर रोहिणी से

योगमाया बोली, मैंने देवकी का गर्भ तुम्हारे गर्भ में प्रविष्ट कर दिया है, अतएव इस गर्भ सङ्क्रमण से जो पुत्र तुम्हारे जन्म लेगा, उसका नाम सकर्पण होगा ॥६॥ इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर रोहिणी के पुत्र-जन्म हुआ । रोहिणी को पुत्र-प्राप्ति के कारण बहुत हर्ष था और हर्षित होती हुई रोहिणी ने जब अपने शिशु सहित अपने गृह में प्रविष्ट हुई, उस समय उसकी सोमा ऐसी लग रही थी कि मानो चन्द्र-पत्नी रोहिणी अपने पुत्र बुध को लेकर प्रविष्ट हुई हो ॥७॥ इधर कस ने देवकी के सप्तम गर्भ की खोज प्रारम्भ कराई और इसी अवधि में देवकी को पुन आठवों बार गर्भ स्थिति हो गई ॥८॥

त तु गर्भं प्रयत्नेन ररक्षुस्सस्य मन्त्रिण ।  
 सोऽप्यत्र गर्भं वसती वसत्यात्मेच्छया हरि ॥९  
 यशोदाऽपि समाधत्त गर्भं तदहरेव तु ।  
 विष्णो शरीरजा निद्रा विष्णुनिर्देशकारिणीम् ॥१०  
 गर्भकाले त्वमपूर्णं जष्टमे मासि ते स्त्रियौ ।  
 देवकी च यशोदा च मुपुवाते सम तत ॥११  
 यामेव रजनी कृष्णो जज्ञे कृष्णिकुलोदबह ।  
 तामेव रजनी कन्या यशोदाऽपि व्यजायत ॥१२  
 नन्दगोपस्य भार्यया वसुदेवस्य चापरा ।  
 तुल्यकालं च गर्भिण्या यशोदा देवकी तथा ॥१३  
 देवक्यजनयद्विष्णु यशोदा ता तु दारिकाम् ।  
 मुहूर्तैर्गर्भिजिति प्राप्ते सार्द्धं राने विभूयिते ॥१४

अब तब देवकी के सात गर्भों को नष्ट किया जा चुका था । उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए कस के मन्त्री व राजसेवकों द्वारा देवकी के अष्टम गर्भ की देख-रेख की जा रही थी । फिर स्वयं भगवान् विष्णु स्वेच्छा से देवकी के गर्भ में आये ॥९॥ और उधर भगवान् विष्णु की शरीर निद्रादेवी भगवान् विष्णु के निर्देश के अनुसार यशोदा के गर्भ में प्रवेश कर गई ॥१०॥ इस प्रकार प्रसव की अवधि पूर्ण होने पर आठवें महीने में इधर देवकी ने पुत्र और यशोदा ने कन्या को एक साथ जन्म दिया ॥११॥ इस प्रकार जिस रात्रि में भगवान् विष्णु ने



वृष्णिकुल में जन्म लिया, उसी रात्रि गोपराज नन्द की पत्नी यशोदा ने भी एक कन्या को जन्म दिया ॥१२॥ चूंकि नन्द गोप की भार्या यशोदा और वसुदेव की भार्या देवकी एक साथ गर्भवती हुई थी ॥१३॥ इसलिए उस अभिजित नक्षत्र में अर्धरात्रि काल में उन दोनों के पुत्र एवं कन्या उत्पन्न हुए ॥१४॥

सागराः समकम्पन्त चेलुश्च धरणीधरा ।  
जज्वलुश्चाम्बुजः शान्ता जायमाने जनार्दने ॥१५॥  
शिवाश्च प्रववुर्वाताः प्रशान्तमभवद्भजः ।  
ज्योतीष्यतिव्यकाशन्त जायमाने जनार्दने ॥१६॥  
अभिजिन्नाम नक्षत्रं जायन्ती नाम शर्वरी ।  
मुहूर्तो विजयो नाम यत्र जातो जनार्दन ।  
अव्यक्तः शाश्वतः सूक्ष्मो हरिर्नारायण प्रभुः ॥१७॥  
जायमानो हि भगवान्नयनेर्मोहयन्प्रभुः ।  
अनाहता दुन्दुभयो देवानां प्राणदन्दिबि ॥१८॥  
आकाशात्पुष्पवृष्टिं च ववर्ष त्रिदशेश्वरः ।  
गीर्भिर्मङ्गलयुक्ताभिः स्तुवन्तो मधुसूदनम् ॥१९॥  
महर्षयः सगन्धर्वा उपतस्थुः सहास्रराः ।  
जायमाने हृषीकेशे प्रहृष्टमभवज्जगत् ॥२०॥  
इन्द्रश्च त्रिदशः साढं तुष्टाव मधुसूदनम् ।  
वसुदेवश्च त राक्षो जात पुत्रमधोक्षजम् ॥२१॥  
श्रीवत्सलक्षणं दृष्ट्वा मुतं दिव्यंश्च लक्षणं ।  
उवाच वसुदेवस्तु रूपं संहर वै प्रभो ॥२२॥  
भीतोऽहं देव कसस्य तस्मादेव त्रयीम्यहम् ।  
मम पुत्रा हतास्तेन तव ज्येष्ठाम्बुजेक्षण ॥२३॥

भगवान् का जंते ही जन्म हुआ वंते समस्त भूमण्डल में उदय-मुपस होने लगी, समुद्र उमड़ने लगा, पर्वत हिलने लगे और अग्नि भी घबड़ने लगी ॥१५॥ आनन्ददायक वस्तु वेगवती हो गई, भूल गुम्हार दाम्भ हो गये और नक्षत्र एकरस बनने लगे ॥१६॥ भगवान् के जन्म के समय अभिजित नक्षत्र, ज्योती नाम

रात्रि और विजय नामक मूर्त्तियाँ । उन अश्वत्थ, शाश्वत और सूक्ष्म हरि-  
पारायण प्रभु ॥१७॥ के जन्म लक्ष ही देवताओं ने स्वर्ग में वाद्य बजाने प्रारम्भ  
कर दिये ॥१८॥ सुरराज इन्द्र अपने लोक से उन पर पुष्प बरसाने लगे । मंगल-  
मय वाक्यों के उच्चारण द्वारा मुरगण, मुनिगण, गन्धर्व व अप्सराएँ उनकी  
पाराधना करने लगे । उनका जन्म तब ही समस्त भूतल आनन्दित हो उठा ॥१९-  
२०॥ देवश्वर इन्द्र भी अपने देवताओं सहित भगवान् की स्तुति करने लगे ।  
इस अवसरपर रात्रि के समय शीघ्रलक्षण एवं उत्तम लक्षण युक्त उन  
भगवान् के रूप को बिलोक वसुदेव बोले—हे प्रभो ! आप अपने इस रूप को  
अवरित कीजिए । मुझे जिस से बहुत भय है । उससे आपसे बड़े मेरे कई पुत्रों  
का बच कर डाला है ॥२१-२३॥

वसुदेववच श्रुत्वा स्य चाहरदच्युत ।  
अनुज्ञाप्य पितृत्वेन नन्दगोपगृहं नय ॥२४॥  
वसुदेवस्तु सगृह्य दारक क्षिप्रमेव च ।  
यशोदाया गृहं रात्रौ विवेश सुतवत्सल ॥२५॥  
यशोदायाम्त्वविज्ञातस्तत्र निक्षिप्य दारकम् ।  
प्रगृह्य दारिका चैव देवकीशयने न्यमत् ॥२६॥  
परिवर्ते कृते ताम्या गर्भाभ्या भयविकलव ।  
वसुदेव कृतार्थो वै निज्जंगाम निवेशनात् ॥२७॥  
उग्रसेनसुतायाश्च कमायानकदुन्दुभि ।  
निवेदयामास तदा ता कन्या वरवर्णिनीम् ॥२८॥

वर्गमायन जी बोले—हे महाराज ! वसुदेव की प्रार्थना पर भगवान् ने  
अपना वह अनोख रूप अवरित कर लिया और फिर उन्होंने वसुदेव से कहा—  
हे पिताजी ! आप यहाँ से मुझे गोपराज नन्द के यहाँ से चलिए ॥२४॥ भगवान्  
की ऐसी आशा सुन वसुदेव तुरन्त ही बालक को लेकर रात्रि में ही यशोदा के  
पर पहुँचे ॥२५॥ देवकी को इस सब बात का ज्ञान भी नहीं था और वे अपने  
बालक को यशोदा के निकट लिटाकर और यशोदा की कन्या को लेकर चल पड़े ।

यद्यपि देवकी और यशोदा के गर्भों का परिवर्तन करके वसुदेव भयभीत थे फिर भी अपने को वृत्तायें मानकर वे नंद भवन के बाहर आये और मधुरी पहुँचे ॥२६-२७॥ फिर वसुदेव ने उग्रसेन तनय कंस को देवकी के कन्या उत्पन्न होने का सन्देश भेजा ॥२८॥

तच्छ्रुत्वा त्वरित कसो रक्षिभि सह वेगिभिः ।

आजगाम गृहद्वार वसुदेवस्य वीर्यवान् ॥२९॥

स तत्र त्वरित द्वारि किं जातमिति चात्रवीत् ।

दीयता शीघ्रमित्येव वाग्भि समभितर्जयन् ॥३०॥

ततो हाहाकृता सर्वा देवकीभवने स्त्रिय ।

उवाच देवकी दीना बाष्पगद्गदया गिरा ॥३१॥

दारिका तु प्रजातेति कंस समभियाचता ।

श्रीमन्तो मे हता सप्त पुत्रगर्भास्त्वया विभो ॥३२॥

दारिकेय हतैवैषा पश्यस्व यदि मन्यसे ।

दृष्ट्वा कंसस्तु ता कन्यामाकृष्य तामुदायन ॥३३॥

हतैवैषा यदा कन्या जातेत्युक्त्वा वृथामति ।

सा गर्भक्षयने क्षिप्वा गर्भाम्बुविलम्बमूर्द्धजा ॥३४॥

कंसस्य पुरतो न्यस्ता पृथिव्या पृथिवीसमा ।

स चैना गृह्य पुरुष समाविधावधूय च ॥३५॥

उद्यच्छन्नेव सहसा शिलाया समपोथयत् ।

सावधूता शिलापृष्ठेऽनिष्पिष्टा दिवमुत्पतत् ॥३६॥

जन्म का समाचार सुनते ही कंस अपने सेवकों सहित सेजों से वहाँ पहुँच ॥२९॥ वसुदेव और देवकी को डराकर उसने कहा—जो कुछ उत्पन्न हुआ है उसे तुरन्त मेरे पास लाओ ॥३०॥ कंस ने ऐसे आदेश को सुनकर देवकी के अंत पुर की स्त्रियाँ चीखार कर उठी और देवकी ने विदारक स्वर में कंस को कहा ॥३१॥ राजन् ! अब मेरे कन्या उत्पन्न हुई है । अब तब तुमने मेरे सा पुत्रों का वध कर डाला तो यह कन्या तो वैसे ही मरी-जी है । स्वयं तुम देखो ॥३२-३३॥ ऐसा कह देवकी ने उस गर्भविलम्बिता कन्या को कंस के आ

पृथिवी पर लाकर लिटा दिया । फिर हृषित होत हुए कस ने कहा—“वान्तव मे यह कन्या तो मर ही चुकी है” और यह कहकर उसने कन्या के पैर पकड़ कर, घुमा कर उस पृथिवी पर द मारा ॥३४ ३६॥

हित्वा गभंतनु सा तु महमा मुवनमूर्द्धजा ।  
जगाम क्षममादिष्य दिव्यस्त्रगनुलेपना ॥३७  
हारशोभिनमर्वाङ्घ्रि मुकुटोज्ज्वलननृपिता ।  
कन्यैव माऽभवन्नित्य दिव्या देवैरमिष्टुता ॥३८  
नीलपीताम्बरधरा गजकुम्भोपमम्वनी ।  
रथविस्तीर्णजयना चन्द्रवक्त्रा चतुर्भुजा ॥३९  
विद्युद्विस्फुटपर्णामा जालार्जमहरोक्षणा ।  
पयोऽरस्तनवती सध्येव नपयोऽग्रा ॥४०  
सा वै निशि तमोग्रस्ते वमी भूतगणाकुले ।  
नृत्यती हसती चैव त्रिपरीनेन भास्वती ॥४१  
विहायमि गता रौद्रा पपी पानमनुत्तमम् ।  
जहास च महाहास कम च रपिताऽजवीत् ॥४२

जैम ही कस ने कन्या का पृथिवी पर पटक़ा, वैम ही वह कन्या अपना कलवर त्याग कर आकाश में उड़ गई । इस समय उसके केश फैले हुए और उसकी दह श्रेष्ठ हार एवं दिव्य चन्दन से सुशोभित थी ॥३७॥ उसके सम्पूर्ण अंगों पर मालाएँ सुशोभित थी । अद्भुत मुकुट मस्तक पर धारण था । ऐसा देव समस्त सुरगण उसकी प्रार्थना करने लगे ॥३८॥ उस कन्या ने नील एवं पीत वर्ण के परिधान धारण कर रखे थे । हाथों के मस्तक महश उसने हुए उसके रत्न थे और रथ जैसा विशाल उसका जयन प्रदेश था । उसका मुख चन्द्रमा के समान रूपवान था एवं उसकी चार भुजाएँ थीं ॥३९॥ उसका शरीर की आभा दमवती विद्युत् के सदृश थी एवं उपाकारिनी सूर्य के समान रक्त वर्ण उसका नेत्र थे । सायबाल की मेघयुक्त सध्या के समान उसके पयोऽर थे ॥४०॥ भूत प्रीति साहित उस धरि अघकारमयी रात्रि में वह बार-बार नाचती, हँसती

और आकाश में विचरती हुई मदिरा पान करने लगी । फिर भयानक मदप्राप्त  
सहित क्रोधित स्वर में कस ने उसने कहा ॥४१-४२॥

कस कस विनाशाय यदहं घातिता त्वया ।  
सहसा च समुत्क्षिप्य शिलायामभिषोयिता ॥४३॥  
तस्मात्तवान्तकालेऽहं कृष्यमाणस्य शत्रुणा ।  
पाटयित्वा करैर्दहमुष्णं पास्यामि शोणितम् ॥४४॥  
एवमुक्त्वा वचो घोरं सा यथेष्टेन वर्त्मना ।  
ख सा देवालयं देवीं सगणा विचचार ह ॥४५॥  
सा कन्या ववृधे तत्र वृष्णिसधसुपूजिता ।  
पुत्रवत्पाल्यमाना सा वसुदेवाज्ञया तदा ॥४६॥  
विद्धि चैनामथोत्पन्न्यामशाद्देवी प्रजापते ।  
एकानशा योगकन्या रक्षार्थं केशवस्य तु ॥४७॥  
ता वै सर्वे सुमनसं पूजयन्ति स्म यादवा ।  
देववद्दिव्यवपुषा कृष्ण सरक्षितो यया ॥४८॥  
तस्या गताया कसस्तु ता मेने मृत्युमात्मनः ।  
विविक्ते देवकी चैव क्रीडितं समभाषत ॥४९॥  
मृत्यो स्वसु कृतो यत्नस्तव गर्भा मया हता ।  
अन्य एवान्यतो देवि मम मृत्युरुपस्थित ॥५०॥

हे पापी कस ! मेरा वध करने हेतु तूने मुझे पृथिवी पर पटका ॥४१॥  
जब तेरा मृत्युकाल आयेगा, उस समय तेरे शत्रु तुझे पकड़ कर घसीटेंगे और  
उस समय मैं अपने हाथों से तेरे शरीर को चीरकर तेरा रुधिर पान करूँगी  
॥४४॥ हे नृप ! कस से इस प्रकार क्रोधपूर्वक वचन कहकर वह कन्या अपने  
भूत प्रेता सहित आकाश मंडल में विचरने लगी ॥४५॥ इसके पश्चात् भगवान्  
विष्णु के निर्देशानुसार वृष्णिवर्णियों के घर में पुत्र समान बड़े प्रयत्न के साथ  
उसका पालन पोषण हुआ तो वह बढने लगी ॥४६॥ वह कन्या भगवान् प्रजा-  
पति के अंग से उत्पन्न थी । इसलिए सभी यादव लोग भगवान् कृष्ण की  
रक्षा के लिये उसका रक्षण करने लगे ॥४७॥

विधवारिणी यह बन्धा अब कृष्ण भगवान् की रक्षा करके चली गई, तब कस बड़ा लज्जित हुआ और अकेले में देवकी से बोला—“देवकी वहिन ! मैंने अपनी मृत्यु के भय में तुम्हारे अनेक पुत्रों का वध कर डाला, लेकिन अब ऐसा प्रतीत होता है कि मेरी मृत्यु का कारण कोई अन्य व्यक्ति ही होगा ॥१४८-१५०॥

नैराश्येन कृतो यत्न स्वजने प्रह्वन मया ।  
 देव पुरुषकारेण न चातिक्रान्तवानहम् ॥१५१॥  
 त्यज गर्भकृता चिन्ता सताप पुनज त्यज ।  
 हेतुभूतस्त्वह तेपा सति कालविपर्यये ॥१५२॥  
 काल एव नृणा शत्रु कालश्च परिणामक ।  
 कालो नयति सर्वं वै हेतुभूतस्तु मद्विध ॥१५३॥  
 आगमिष्यन्ति वै देवि यथामागमुपद्रवा ।  
 इदं तु कष्टं यज्जन्तु कर्त्ताऽहमिति मन्यते ॥१५४॥  
 मा कार्षीं पुनजा चिन्ता विलाप शोकज त्यज ।  
 एव प्रायो नृणा योनिर्नास्ति कालस्य सत्सिद्धि ॥१५५॥  
 एष ते पादयोर्मूर्ध्ना पुनवत्तव देवकि ।  
 मदगतस्त्यज्यता रोपो जानाम्यपकृतं त्वयि ॥१५६॥

कस ने दुःख प्रकट करते हुए कहा—मैं बड़ा निराशा हूँ और मैंने अपने प्रियों का ही जमन किया, फिर भी विधि ने जो भाग्य मैं लिख दिया उसे मैं किसी प्रकार भी परिवर्तित नहीं कर सका ॥१५१॥ हे सती ! तुम्हें अब पुत्रों के वध के विषय में सभी चिन्ता और सताप त्याग देना चाहिए । विधि के विधान के कारण ही मैंने उनका वध किया ॥१५२॥ यदि तुम इस पर गहन विचार करो तो तुम्हें प्रतीत होगा कि मैं तो विधि व विधान का निमित्त मात्र हूँ । समय ही मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है और बड़ी उसका विनाशक है ॥१५३॥ जो होता होता है, वह अवश्य होता है । लेकिन सताप तो यह है कि देव के विधान का मनुष्य स्वयं ही कर्त्ता बन जाता है ॥१५४॥ इसलिए तुम्हें पुत्रों की चिन्ता त्यागकर यह शोकपूर्ण रदन बन्द कर देना चाहिए । मनुष्यों की गति

ही ऐसी है, वह काल को जीत नहीं सकता ॥५५॥ हे बहिन ! अब पुनर्वर में तुम्हारे चरणों में शीश नवाता हूँ, तुम्हें मेरे ऊपर से क्रोध का त्यागकर देना चाहिए । मैंने तुम्हारा बड़ा अपकार किया है ॥५६॥

इत्युक्तवन्त कस सा देवकी वाक्यमब्रवीत् ।

साश्रुपूर्णमुखा दीना भर्तारमुपवीक्षती ।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वत्सेनि कस मातेर, जल्पती ॥५७॥

ममाग्रतो हुता गर्मा ये वया कालरूपिण्या ।

कारण तत्र वं पुत्र कृतान्तान्नोऽप्यस्य, कारणम् ॥५८॥

गर्भकृन्तनमेतन्मे सहनीय त्वया कृतम् ।

पादयो पतता मूर्ध्ना स्व च कर्म जुगुप्सता ॥५९॥

गर्भे तु नियतो मृत्युर्बाल्येऽपि न निवर्तते ।

युवाऽपि मृत्योर्वंशग स्थविरो मृत एव तु ॥६०॥

कालभूतमिदं सर्वं हेतुभूतस्तु त्वद्विध ।

अजाते दर्शन नास्ति यथा वायुस्तथैव च ॥६१॥

जातोऽप्यजातता याति विधाया यत्र नीयते ।

तद्गच्छ पुत्र मा ते भून्मदगत मृत्युकारणम् ॥६२॥

मृत्युनाऽपहृते पूर्वं श्रेयो हेतु प्रवर्तते ।

विधिना पूर्वदृष्टेन प्रजासर्गेण तत्त्वत ॥६३॥

मातापित्रोस्तु कार्येण जन्मतस्तूपपद्यते ।

निशम्य देवकीवाक्यं स कस स्व निवेशनम् ॥६४॥

प्रविवेश स सरब्धो दह्यमानेन चेतसा ।

शृत्ये प्रतिहते दीनो जगाम विमना मृशम् ॥६५॥

यह जो अपने चरणों में पड़ा इस प्रकार सताप करते देखकर देवकी की ओलों में आगु उमड़ आय, वह अपने पति वसुदेव की ओर बिलोबल एक म की भाँति द्रवित हृदय से मग से बोली—हे वरस ! उठो । तुमने जो मेरे पुत्र का वध किया, उसके कारण तुम नहीं हो, इसका प्रमुख कारण काल ही है ॥५७-५९॥ अब जबकि इनके लिए तुम मेरे चरणों में गाथा देखकर इस प्रकार

उत्पन्न होकर खेद प्रकट कर रहे हो, इसलिए मैं तुम्हें क्षमा करती हूँ ॥५८॥  
 मैं, बाल्यावस्था, यौवनावस्था अथवा वार्धक्य कोई भी स्थिति क्यों न हों,  
 किन काल की गति नहीं रहनी ॥६०॥ देवकी ने पुनः कहा—ऐसा समय  
 बल काल के वशीभूत होकर ही आता है। काल का जो कार्य होना था,  
 उसके तुम निमित्त मात्र हो। पुनः का जन्म न हो तो यह सम्भोष रहता है कि  
 तपन्न हो नहीं हुआ, किन्तु जन्म हो और उसके पश्चात् वह न रह पाये तो  
 वह ईश्वर की कृपा पर आधारित है। विधाता प्राणी को अपनी इच्छा के  
 अनुसार जहाँ चाहता है, ले जाता है। इसलिए हे वदन ! अब तुम जाओ और  
 यह भूल जाओ कि मुझे तुम पर कोई कोप है ॥६१-६२॥ जिनकी जाना होता  
 है वह मृत्यु को अवश्य प्राप्त करता है, उसके पश्चात् उसका केवल अवशिष्ट  
 भाग रह जाता है ॥६३॥ अनेक जन्मों के पाप-दोष, माँ-बाप के दोष और जन्म  
 दोषों के कारण जीव को मृत्यु प्राप्त होती है। इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं  
 है। इस प्रकार देवकी के सात्वतापूर्ण वचन सुनकर कम अपने अन्तःपुर बला  
 या ॥६४॥ किन्तु उसके मनेच्छिक उद्देश्य की पूर्ति में जो बाधा पड़ गई थी,  
 उसे उसे क्षिप्त रूपी अग्नि जला रही थी ॥६५॥

## ॥ श्रीकृष्ण की ब्रज-यात्रा ॥

प्रागेव वसुदेवस्तु ब्रजे शुश्राव रोहिणीम् ।  
 जाता पुत्रमेवाग्रे चन्द्रात्कान्ततराननम् ॥१॥  
 । नन्दगोपं त्वरितः प्रोवाच शुभया निरा ।  
 गच्छानया सहैव त्व ब्रजमेव यशोदया ॥२॥  
 तत्र तो दारको गत्वा जातकर्मादिभिर्गुणैः ।  
 योजयित्वा ब्रजे तात सर्वद्वय यथासुखम् ॥३॥  
 रोहिणेयं च पुत्रं मे परिरक्ष शिशुं ब्रजे ।  
 अहं वाच्यो भविष्यामि पितृपक्षेषु पुत्रिणाम् ॥४॥  
 योऽहमेकस्थ पुत्रस्य न पश्यामि शिशोर्मुञ्चम् ।  
 ह्रियते हि बलात्प्रजा प्राजस्यापि सतो मम ॥५॥



अस्माद्धि मे भयं वंसान्निधुं णाद्धं शिशोर्वंधे ।  
 तद्यथा रोहिणेय त्व नन्दगोप ममात्मजम् ॥६॥  
 गोपायसि यथा तात तत्त्वान्वेपो तथा कुरु ।  
 विघ्ना हि बहवो लोके बालानुप्रासयन्ति हि ॥७॥

वैशम्पायन ने कहा—हे नृप ! देवकी द्वारा जन्म दिये जाने से पूर्व ही वसुदेव ने अपनी दूसरी पत्नी रोहिणी को गोपराज नन्द के यहाँ भेज दिया था । तत्पश्चात् उनको समाचार मिला था कि रोहिणी की कोख से चन्द्रमा के सदृश सुन्दर मुख वाले बालक ने जन्म लिया है ॥१॥ गोपराज नन्द अपना बापिक कर चुकाने के लिये अपने पुन व परनी सहित मथुरा आये थे, तब यह सुनकर वसुदेव उनसे भेंट करने पहुँचे और नन्द से उन्होंने कहा—गोपराज ! ब्रज में दुरात्मा वापिस पहुँचकर आप उन दोनों बालकों का जातकर्म संस्कार आदि सम्पन्न करके उनका पोषण करें ॥२-३॥ जिस प्रकार यशोदा के पुत्र का पालन हो ठीक उसी प्रकार रोहिणी के पुत्र का पालन होना चाहिए, क्योंकि रोहिणी पुत्र से ही मैं ससार की दृष्टि में पुत्रवान् कहलाऊँगा ॥४॥ मैंने अभी तक अपना पुत्र का मुख भी नहीं देखा है । कन की निन्द्यता और उसके द्वारा निराल शिशुओं का वध किये जाने से मैं विज्ञ होकर भी मन्द बुद्धि हो गया हूँ । इसलिये विशेष सावधानी सहित यशोदा व रोहिणी दोनों के बालकों की रक्षा करें और उनका पालन करें । चूँकि उन बालकों पर अनेकों प्रकार के सकट आ रहे ॥५-६-७॥

स च पुत्रो मम ज्यायान्कनीयाश्च तवाप्ययम् ।  
 उभावपि सम नाम्ना निरीक्षस्व ययासुखम् ॥८॥  
 वर्द्धमानाबुभावेतौ समानवयसौ यथा ।  
 शोभेता गोव्रजे तस्मिन्नन्दगोप तथा कुरु ॥९॥  
 बाल्ये केलिकिल सर्वो बाल्ये मुह्यति मानवः ।  
 बाल्ये चण्डतमः सर्वस्तत्र यत्नपरो भव ॥१०॥  
 न च वृन्दावने कार्षो गवा घोपः वयचन ।  
 भेनव्य तत्र वसता वेशिनः पापदक्षिन ॥११॥

सरीमृपेभ्य कीटेभ्य शकुनिभ्यस्तथैव च ।  
 गोष्ठेषु गोभ्यो वत्सेभ्यो रक्ष्यां ते द्वाविमौ शिशू ॥१२॥  
 नन्दगोप गता रात्रि शीघ्रयानो व्रजाश्रुग ।  
 इमे त्वा व्याहरन्तीव पक्षिण सव्यदक्षिणम् ॥१३॥  
 रहस्य वसुदेवेन सोऽनुज्ञातो महात्मना ।  
 यान यशोदया सार्द्धं माहरोह मुदान्निन ॥१४॥  
 कुमारस्करन्प्रवाह्याया शिशिकाया समाहित ।  
 सवेशयामास शिशु दायनीय महापति ॥१५॥

आपका पुत्र ज्येष्ठ है और मेरा पुत्र छोटा है । फिर भी उन दोनों की तगमग बराबर की आयु है, उसी प्रकार उनके नामकरण का प्रयत्न करिएगा ॥८॥ हे सखे ! आपका ऐसा प्रयत्न हो कि ये दोनों समान आयु वाले बालक गायों के झुण्ड साथ लेकर क्रीड़ा करें और विचरें ॥९॥ बाल्यकाल में अधिकतर सभी प्राणी स्वेच्छाचारी व उद्दण्ड स्वभाव के होते हैं, इस विषय में आप विशेष उत्कर्ष रहें ॥१०॥ कृदावन में गोपों का निवास स्थान न बनवाइयेगा । क्योंकि ऐसी नामक राक्षस, अनेक प्रकार सर्प और हिरण्य पशु पक्षियों का वहाँ भय है । अपने गोष्ठ में भी गायों और उनके बछड़ों को बचाते रहें ॥११-१२॥ वसुदेव ने कहा—सखे नन्द ! रात्रि समाप्त हो चुकी है, प्रस्थान की शीघ्रता करिये । ऐसा प्रतीत होता है कि बहनेरे पक्षी आपने इधर-उधर चक्कर लगा लगा रहे हो ॥१३॥ हे भूपते ! महान् आत्मा वसुदेव ने भुव से ऐमे रहस्यपूर्ण करन मुनकर नन्द गोपराज सावधान हो गये और फिर नन्द ने वसुदेव से विदा माँगी, तत्पश्चात् यशोदा सहित अपनी पालकी में बैठ गये और साथ उन्होंने अपने पुत्र की भी उसमें बिठा लिया ॥१४-१५॥

जगाम च विविक्केन शीतनान्निनमर्पिणा ।  
 वहदकेन मार्गेण यमुनातीरगामिना ॥१६॥  
 सन्ददर्श शुभे देशे गोवर्द्धनसमीपे ।  
 यमुनातीरमवदधोतमारनर्गोवनम् ॥१७॥

विक्षतश्चापदै रम्यं लतावल्लीमहाद्रुमम् ।  
 गोभिस्तृणविलग्नाभिः स्यन्दतीभिरलङ्कृतम् ॥१८  
 समप्रचार च गवां समतीर्थजलाशयम् ।  
 वृषाणां स्कन्धघातैश्च विषाणोद्घृष्टपादपम् ॥१९  
 भानागिपादानुसृतैः श्येनैश्चामिषगृध्रभुभिः ।  
 शृगालमृगसिंहैश्च वसाभेदाशिमिवृत्तम् ॥२०  
 शार्दूलशब्दाभिरुन वानापक्षिसमाकुलम् ।  
 स्वादुवृक्षफल रम्य पर्याप्तितृणवीरुधम् ॥२१

इसके उपरान्त वे यमुना के किनारे-किनारे एकान्त एवं अधिक जलपूर्ण  
 मार्ग से चले । उस काल प्रभातकालीन मन्द शीतल वायु बह रहा था ॥१८॥  
 आगे बढ़ने पर उन्हें गोधन दिखाई पड़ने लगा, जो कि हिरक पशुओं से दू-  
 था । यह मनोरम प्रदेश गोवर्धन पर्वत के निकट एवं यमुना के किनारे स्थि-  
 था और उस स्थान पर शीतल व मन्द वायु बह रहा था ॥१७॥ उन मनो-  
 रम प्रदेश की शोभा विभिन्न प्रकार के लता, कुज और वृक्ष समूहों से थी । अनेक  
 दुपार गौएँ वहाँ घास चर रही थी ॥१८॥ वह एक समतल भूमि थी ज-  
 गौएँ सुविधापूर्वक चर सकती थी और वहाँ अत्यन्त सुन्दर तालाब भी थे  
 साँड़ों के कण्ठों की रगड़ तथा सीपों के प्रहार से अनेक वृक्षों की छाल छि-  
 गई थी ॥१९॥ ऐसा मनोरम वन प्रदेश गृध्र, बाज, शृगाल, मृग और सिंह आ-  
 मांसाहारी वन पशुओं को शरण दिये हुए था ॥२०॥ वहाँ हर समय सिंहों  
 गर्जन का घोर शब्द होता रहता था । अनेक प्रकार के पक्षेष्ट वहाँ सर्व-  
 विचारण करते रहते थे । स्वादिष्ट व मधुर फलों का बाहुल्य था । घास-  
 घट्ट थी ॥२१॥

गोव्रजं गोक्षत रम्य गोपनारीभिरावृतम् ।  
 हम्भारवंश्च वर्तमानां सर्वतः वृत्तनिस्वनम् ॥२२  
 शम्भुवत्तं विपुल वृष्टकीवाटसंकुलम् ।  
 पर्यन्तेष्वावृत वन्यैर्वृंहद्भिः पतितैर्द्रुमैः ॥२३

यत्साना रोपितं कीलैर्दामभिश्च विभूषितम् ।  
 करोपाकीर्णप्रसुघ कटच्छन्नमुटीमठम् ॥२४॥  
 धोम्यप्रचारबहुल हृष्टपुष्ट जनावृतम् ।  
 दामनोपाशबहुल गर्गरोद्गारनिस्त्रनम् ॥२५॥  
 तक्रनि भ्यावबहुल दधिमण्डाद्रंमृत्तिरम् ।  
 मन्यानवनयोद्गारैर्गोपीना जनितस्त्रनम् ॥२६॥  
 काकपक्षधरैर्गोपालैः कीटनाकुलम् ।  
 सागलद्वारगोवाटमध्ये गोस्थानसकुलम् ॥२७॥  
 सर्पिषा पच्यमानेन सुरभीवृतमास्तम् ।  
 नीलपीताम्बराभिश्च तरुणोभिरलवृतम् ॥२८॥

वहाँ अनगिनत गोपियाँ दिखाई पड़नी थी और हर दिशा में गोमो का शब्द गूँजता था । और हर तरफ से गोमो के बछड़ों की हम्मा गन्ध ध्वनि गूँजनी थी ॥२२॥ अनेकों घैलगाड़ियाँ गोमाकार करने लगी थी । जगह-जगह पर काँटी में रँधा मार्ग स्थित था, जिनके किनारे अनेक जङ्गली वृक्ष भी गिरे पड़े थे ॥२३॥ कई स्थानों पर बछड़ों के बाँगने के लिए रस्मी सहित छूटे गड़े पड़े थे । कई स्थानों पर उपले का चूरा फैला पड़ा था । और उस स्थान के राभी पर और मठ पूम में छाये हुए थे ॥२४॥ अकसर उस स्थान पर अच्छे-अच्छे सैनिक आया जाया करते थे । उस स्थान के सभी प्राणी स्वस्थ और हृष्ट-मुष्ट थे । किसी किसी स्थान पर मोगी रस्मियाँ भी पड़ी हुई थी और कहीं-कहीं गोपियों द्वारा दही मचने समय उनके हाथों के आभूषणों की ध्वनि मुमाई देती थी ॥२५॥ स्थान स्थान पर दही व मटठा गिरने के कारण वहाँ की मिट्टी जमीन पर गीली हो गई ॥२६॥ जो गोमो के बालक वहाँ खेल रहे थे उनकी बड़ी-बड़ी शिखाएँ थी । मायो के सभी बाढ़ों का द्वार बन्द था और उनमें गोमो को रखने के लिए सभी प्रहार की सुविधाएँ विद्यमान थी ॥२७॥ वहाँ वातावरण में चारों तरफ से पके हुए धो की सुगन्धि आ रही थी । सभी तरफ नीले-नीले रङ्ग की पोसाक धारण करके युवा स्त्रियाँ दृष्टिगत हो रही थी ॥२८॥

वन्यपुष्पापतसाभिर्गापकन्याभिरावृतम् ।  
 शिरोभिर्धृतकुम्भाभिर्वन्दैरग्रस्तनाम्बरैः ॥२८॥  
 यमुनातीरमार्गेण जलहारीभिरावृतम् ।  
 स तत्र प्रविशन्हृष्टो गोव्रज गोपनादितम् ॥३०॥  
 प्रत्युद्गतो गोपवृद्ध स्त्रीभिर्वृद्धाभिरेव च ।  
 निवेश रोचयामास परिवृत्त सुखाश्रये ॥३१॥  
 सा यत्र रोहिणी देवी वसुदेवमुखावहा ।  
 तत्र त वालसूर्याम कृष्ण गूढ न्यवेशयत् ॥३२॥

वे गोपियाँ अगिया और साड़ी पहने हुए और पुष्पों के आभूषण पहनकर जलपूर्ण घड़े को अपने सिर पर रखकर एक पवित्र में चल रही थीं। उस गो-व्रज में प्रवेश करते ही गोपराज नन्द अपने गोपगणों के साथ मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥२८-३०॥ गोपराज नन्द को आता देखकर उस तरफ बढ़े कर बूढ़ी गोपियों और वृद्ध गोपों ने स्वागत किया। इसके उपरान्त नन्द को शकट आदि से परिवृत्त करके एक सुसज्जित और सुविवापूर्ण स्थान पर बैठाया ॥३१॥ तत्पश्चात् नन्द वसुदेव की पत्नी राहिणी के निकट गये, जहाँ पहुँच कर उन्होंने रोहिणी को नवीदित सूर्य के सहस्र तेजस्वी कृष्ण को दे दिया ॥३२॥

॥ श्रीकृष्ण द्वारा शकटासुर-वध ॥

तत्र तस्यासत बाल सुमहानत्यवत्तत ।  
 गोव्रजे नन्दगोपस्य बलन्वत्त्व प्रजुर्वत ॥१॥  
 दारवी कृतनामानो ववृधाते सुख च तो ।  
 ज्येष्ठ मन्वर्षणो नाम कनीयान्वृष्ण एव तु ॥२॥  
 मेघवृष्णस्तु वृष्णोऽभूद्देहान्तरगतो हरि ।  
 व्यवर्धत गवा मध्ये रागरस्य इवाबुद ॥३॥  
 शकटस्य त्वध सुप्त वदाचित्पुत्रगर्दिनी ।  
 यशीदा त समृतमृज्य जगाम यमुना नदीम् ॥४॥

शिशुलीला तत कुर्वन्स हस्तचरणी क्षिपन् ।  
 रुरोद मधुर कृष्ण पादावूष्णं प्रमारयन् ॥५॥  
 स तत्रैकेन पादेन शकटं पर्यवर्तयत् ।  
 न्युब्ज पयोधरावाक्षा चकार च रुरोद च ॥६॥  
 एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता यशोदा शीघ्रगामिनी ।  
 स्नाता प्रस्रवद्भिन्वाङ्गी बद्धवस्त्रेव सौरभी ॥७॥  
 सा ददश विपर्यस्त शकटं वायुना विना ।  
 हाहेति कृत्वा त्वरिता दारकं जगृहे, तदा ॥८॥

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! गोपों की सुन्द-मुविद्या का ध्यान खते हुए नन्द को वहाँ रहत हुए कुछ काल बीत गया ॥१॥ उनके दोनों पुत्रों का जन्म नामकरण हुआ, तब बड़े पुत्र का नाम सकर्पण और छोटे का कृष्ण रखा ॥२॥ देहांतर को प्राप्त हुए तथा मधु व समान श्याम शरीर वाले कृष्ण गोदा के बीच निशाम करत हुए समुद्र के जन के समान सुवर्णवर्ण वृद्धि को प्राप्त होत लग ॥३॥ एक दिन कृष्ण को निद्रा प्राप्त होत पर गोपरात्री यशोदा उन्हें एक छत्रके नीचे शयन करायी और स्वयं स्नानार्थ यमुना तट पर गयी ॥४॥ इधर कृष्ण की निद्रा भंग हागई और वह हाथ-पैर चनाता हुआ धुर स्वर में रोने लगा और स्तनपान की इच्छा करते हुए उमने अपना पाँव नसे ही ऊपर की ओर चनाया वैसे ही उमके आघात से वह छत्र टा उलट गया ॥५॥ उसी समय यशोदा भी भीगे वस्त्र पहिन हुए ही शीघ्रता से स्नान करके आगई और उग्होने दखा कि छत्र टा उलटा हुआ पड़ा है, इसके व्याकुल होकर च होने पुत्र को अपनी गोद में ले लिया ॥६॥

न सा बुबोत्र तत्केन शकटं परिवर्तितम् ।  
 स्वस्ति मे दारकायेति प्रीता भीता च साऽभवत् ॥८॥  
 किं तु वक्ष्यति ते पुत्रं पिता परमकोपन ।  
 त्वय्यघ शकटे सुप्ते अकस्माच्च विलोडिते ॥९॥  
 किं मे स्नानेन दुःस्नानं किं व मे नपत्ते नदीम् ।  
 पर्यस्ते शकटे पुत्रं यत्त्वा पश्याम्यपावृतम् ॥११॥

एतस्मिन्तन्तरे गोभिराजगाम वनेचरः ।  
 कापायवाससी बिभ्रन्नन्दगोपो व्रजान्तिकम् ॥१२  
 स ददर्श विपर्यस्तं मिन्नमाण्डघटीघटम् ।  
 अपास्तधूर्विभिन्नाक्ष शकट चक्रमीलिनम् ॥१३  
 भीतस्त्वरितमागत्य सहसा साश्रुलोचनः ।  
 अपि मे स्वस्ति पुत्रायेत्यसकृद्वचनं वदन् ॥१४  
 पिवन्त स्ननमालक्ष्य पुत्र स्वस्थोऽब्रवीत्पुनः ।  
 वृषयुद्धं विना केन पयस्तं शकटं मम ॥१५

परन्तु वह यह नहीं जान सकी कि छकडे को किसने उलट दिया अपने शिशु को सकुशल देखकर कहने लगी—हे लाल ! तुम्हारे पिता बड़े शीत हैं, जब वे सुनेंगे कि मैं तुम्हें छकडे के नीचे शयन कराकर यमुना-स्नान करवा चली गयी थी और इसी समय मे छकडा उलट गया तो न जानें क्या करूँ ॥१६-१०॥ मुझे इस प्रकार स्नान के लिये यमुनाजी पर क्यों जाना चाहिये प मेरे अच्छे भाग्य थे, जिसने छकडे के उलट जाने पर भी तुम्हें कुशलपूर्वक सजी है ॥११॥ यशोदाजी इस प्रकार कह ही रही थी, तभी कापाय वस्त्रोधारण किये हुए नन्ददाय भी गोओ के सहित नन में लौट आये और देखा छकडे का प्रत्येक भाग टूटा पड़ा है, प हथे वाला धुरा टूट गया और जुआ पृथ जा गिरा है ॥१२-१३॥ यह देखकर नन्दजी अत्यन्त भय-पूर्वक नेत्रों में आँ भरकर घर में तेजी से पुन आये और पूछने लगे कि मेरा लाल तो ठीक है ॥१४॥ फिर बानरु को स्ननपान करते देखकर शान्त हुए और बोले कि परस बँस भी तो नहीं सड़े, फिर यह छकडा कैसे उलट गया ? ॥१५॥

प्रत्युवाच तं भीता गद्गदभाषिणी ।  
 न विजानाम्यहं केन शाटं परिवर्तितम् ॥१६  
 अहं नदी गता सोम्य चैलप्रक्षालनायिनी ।  
 आगता च विपर्यस्तमपश्यं शकटं भुवि ॥१७  
 तयोः कथयतोरेवमग्र वस्त्रा दारकाः ।  
 अनेन निगुना यानमेतत्पादेन सोद्वितम् ॥१८

अस्मामि मपतद्भिश्च दृष्टमेतद्यदृच्छया ।  
 नन्दगोरस्तु तच्छ्रुत्वा विस्मय परम ययौ ॥१८॥  
 प्रहृष्टश्चैव भीतश्च विमेतदिति चिन्तयन् ।  
 न च ते श्रद्दधुर्गोपा सर्वे मानुषबुद्धयः ॥२०॥  
 आश्चर्यमिति ते सर्वे विस्मयोत्फुल्लोचनाः ।  
 स्वे स्थाने दकटं चैव चक्रन्ममकारयन् ॥२१॥

नन्दजी का प्रश्न मुनकर यशोदा का कण्ठ गद्गद हो गया, वह भयपूर्वक स्वर में बोली कि छक्का किसने गिराया, यह मैं नहीं जानती ॥१८॥ मैं तो कपड़े धोने के लिये यमुना तीर पर गयी थी और जब वहाँ से आई तो इन छक्के को इस प्रकार उलटा पड़ा हुआ पाया ॥१७॥ जब नन्द यशोदा में यह बातें हो रहीं थी सभी वहाँ पर इकट्ठे हुए बालक आकर बोले—यह छक्का इसी ने अपन पाँव में उनट दिया है, हमने यह बात अपने नेत्रों से देखी है, यह मुनकर नन्द अत्यन्त चकित हुए ॥१८-१९॥ नारायण हँसित हुए और भयभीत भी, वह दोरम्बार सोचत थे कि ऐसा कैसे हो गया ? परन्तु साधारण मति वाले गोपा ने बालकों की बात को समर्थ नहीं माना ॥२०॥ वे विस्मयपूर्वक यही कहते रहे कि अत्यन्त आश्चर्य की बात हुई है, फिर उन्होंने उम टूटे हुए छक्के को जोड़कर पुन ठीक कर दिया ॥२१॥

## ॥ भगवान द्वारा पूतना-वध ॥

कस्यचित्त्वथ कालस्य शकुनीवेषधारिणी ।  
 घात्री कसस्य भोजस्य पूतनेति परिश्रुता ॥१॥  
 पूतना नाम शकुनी घोरा प्राणमयकरी ।  
 आजगामार्द्धरात्रे वै पक्षी क्रोधाद्विधुन्वती ॥२॥  
 ततोऽर्द्धरात्रसमये पूतना प्रत्यदृश्यत ।  
 व्याघ्रगम्भीरनिर्घोषं व्याहरन्ती पुन पुन ॥३॥  
 निलिल्ये शकटाक्षे सा प्रस्रवोत्पीडयपिणी ।  
 ददी स्तनं च कृष्णाय तस्मिन्सुप्ते जने निशि ॥४॥



तस्या स्तन पपी कृष्ण. प्राणै सह विनद्य च ।  
 छिन्नस्तनी तु सहसा पपात शकुनी भुवि ॥५  
 तेन शब्देन वित्रस्तास्ततो बुबुधिरे भयात् ।  
 स नन्दगोपो गोपा वै यशोदा च सुविमलवा ॥६  
 ते तामपश्यन्पतिता विसृजा विषयोद्यराम् ।  
 पूतना पतिता भूमौ वज्रणेव विदारिताम् ॥७

वंशम्पायनश्री ने कहा—हे राजन् । इस बात को कुछ समय व्यतीत ।  
 गया तब कम की घाय पूतना पश्रिणी का रूप धारण कर पक्षो से भयान  
 शब्द करती हुई, आधी रात के समय नन्दजी के घर पर क्रोधपूर्वक पहुँच  
 ॥१-२॥ सिंह के समान भीषण गर्जना करने वाली वह पूतना बारम्बार धी  
 धम्ब करती और दूध की वर्षा करती हुई एक छकड़े के धुरे पर जाकर बैठ  
 गयी । जवूँतब लोग निद्रामग्न हो गये तब उसने कृष्ण के पास जाकर अप  
 स्तनपान कराया ॥३-४॥ कृष्ण ने उसका स्तनपान करते-करते उसके प्राणो  
 भी पान कर लिया, तब अत्यन्त व्याकुल होती हुई पूतना घोर चीख  
 करती हुई पृथिवी पर लेट गयी ॥५॥ उसके चीटकार को सुनकर नन्दादि  
 तथा यशोदा आदि स्त्रियाँ अत्यन्त शक्ति और भीत होते हुए उठ पड़े ॥६॥  
 तब उन्होंने देखा कि वज्र से फटे हुए पर्वत के समान निष्प्राण पूतना पृथिवी  
 पड़ी है, तथा उसके स्तन भी बट गये हैं ॥७॥

इदं किं त्विति ममस्ता कस्येद वरं चेत्यपि ।  
 नन्दगोप पुरस्सृत्य गोपास्ते पर्यवारयन् ॥८  
 नाध्यगच्छन्त च तदा हेतु तप्त कदाचन ।  
 आश्चर्यमाश्चर्यमिति ब्रुवन्तोऽनुययुर्गृहान् ॥९  
 गतेषु तेषु गोपेषु विस्मितेषु यथागृहम् ।  
 यशोदां नन्दगोपस्तु पप्रच्छागतमभ्रमाम् ॥१०  
 कोऽयं विधिर्न जानामि विष्मयो मे महानयम् ।  
 पुमस्य मे भय तीव्रं भोग्त्वं मनुष्यागतम् ॥११

यशोदा त्वय्यवीक्षीता नार्य जानामि किं त्विदम् ।

दारकेण सहानेन सुप्ता शब्देन बोधिता ॥१२॥

यशोदायामजानन्त्या नन्दगोप. सत्रान्धवः ।

कसाद्भूय चकाराग्र विस्मय च जगाम ह ॥१३॥

उसे देखकर सभी अत्यन्त आश्चर्य चकित हुए और नन्द को घेर कर खड़े हो गये और यह बापें किमने किया ? इसकी चिन्ता करने लगे ॥८॥ बहुत विचार करने पर भी उसका कोई कारण उनकी समझ में नहीं आया और 'विस्मय है' ऐसा कहने हुए अपने-अपने घर को गये ॥९॥ जब वे गोप आश्चर्य में भरे हुए अपने-अपने घर चले गये तब नन्द ने अत्यन्त घबराहट भरे स्वर में यशोदा से पूछा कि यह कैसी घटना हुई है, इसे देखकर तो मुझे अपने बालक के लिये अथ त भय दिखाई देने लगा है ॥१०-११॥ इस पर यशोदा ने भी भय पूर्वक कहा—मुझे भी कुछ नहीं मालुम कि यह सब क्या और कैसे हुआ ? मैं तो अपने बालक को साथ लेकर सो गई थी और इस भयकर शब्द को सुनकर ही जग पड़ी हूँ ॥१२॥ यशोदा द्वारा अनभिज्ञता प्रकट करने पर नन्दादि गोप कम से ही इस भय की उपस्थिति मानते हुए विस्मय में पड़ गये ॥१३॥

॥ यमलाजुन भग होने की कथा ॥

काले गच्छति तौ सौम्यौ दारकौ कृतनामकौ ।

कृष्णसकर्मणी चोभौ रिङ्गिणी समपद्यताम् ॥१॥

तावन्योन्यगतौ बालौ बाल्यादेवैकता गतौ ।

एकमूर्तिवरो कान्तौ बालचन्द्रार्कवर्चसौ ॥२॥

एकनिर्माणनिर्मुक्तावेकशय्यासनाशनौ ।

एकवेपथरावेक पुण्यमाणौ शिशुव्रतम् ॥३॥

एककार्यान्तरगतावेकदेही द्विधाकृती ।

एककायौ महावीरविकस्य शिशता गतौ ॥४॥

एकप्रमाणी लोकाना देववृत्तान्तमानुषो ।  
 कृत्स्नस्य जगतो गोपी सवृत्ती गोपदारको ॥५॥  
 अन्योन्यव्यतिषक्ताभि क्रीडाभिरभिभोभितौ ।  
 अन्योन्यकिरणग्रस्तौ चन्द्रसूर्याविवाम्बरे ॥६॥  
 विसर्पन्तौ तु सर्वत्र सर्पभोगभुजावुभौ ।  
 रेजतु पासुदिग्धाङ्गी दृप्ती कलभकाविव ॥७॥

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! नामकरण होने के पश्चात् जैसे-जैसे समय व्यतीत होने लगा, वैसे वैसे ही सौम्य दर्शन कृष्ण सकर्षण वृद्धि को प्राप्त होते हुए घुटनों के बल चल पड़े ॥१॥ उन दोनों की आकृति, प्रकृति, भोजन, वसन, भूषण, शयन, कार्य, बल एक समान थे तथा वे समान रूप वाले बालक नवोदित चन्द्र और प्रातः काल के सूर्य के समान तेज वाले थे ॥२॥ उन्हें देखकर ऐसा लगता था कि एक ही शरीर के दो भाग हैं, क्योंकि उनके सभी कार्यों में समानता थी तथा उनकी शम्भा, आसन, शिशुलीलायें वेश तथा उद्देश्य में भेद अन्तर नहीं था ॥३-४॥ दोनों समान कद के थे तथा लोक रक्षणार्थ दोनों ही समान वेश—गोप रूप धारण किया था ॥५॥ उनकी असीक्क लीलायें भी तेजस्विता से प्रतीत होता था कि चन्द्रमा सूर्य रश्मियों को और सूर्य चन्द्र किरणों का प्राप्त कर रहा है ॥६॥ नाग के समान लम्बी भुजाओं वाले वे दोनों गोप-पुत्र अपन देह को धूल घूसरित किये हुए हाथी के बच्चों के समान इपर उपर विचरने लगे ॥७॥

ववचिद्रूस्मप्रदीप्ताङ्गी वरीपप्रोक्षितौ ववचित् ।  
 तौ तस पर्यधावेता कुमारविव पावकी ॥८॥  
 ववचिज्जानुभिरदृष्टे सर्पमाणी विरेजतु ।  
 मीढन्तौ वत्सशालासु शट्दिग्धाङ्गमूर्द्धजौ ॥९॥  
 शुशुभाते त्रिया जुष्टावानन्दजननी पितु ।  
 जन च विप्रकुर्वाणी विहसन्तौ ववचित्ववचित् ॥१०॥  
 तौ तस यौनूहतिनौ मूर्द्धजव्यावृत्तेदाणी ।  
 रेजतुश्चन्द्रवदनी दारयो मुमुमारयो ॥११॥

अतिप्रसक्तौ तौ दृष्ट्वा सर्वत्रजविचारिणी ।  
 नाशक्तौ वारयितु नन्दगोप सुदुर्द्धमौ ॥१२  
 तौ यशोदा सकुटुम्बा कृष्ण कमललोचनम् ।  
 आनाय्य शकटीमूलं भर्तृमयन्ती पुन पुन ॥१३  
 दाम्ना चैवोदरे बद्ध्वा प्रत्यवधदुत्सुखले ।  
 यदि शक्नोपि गच्छेति तमुक्त्वा कर्म साऽकरोत् ॥१४

वे दोनों बालक स्वामि कार्तिकेय के ममान अत्यन्त सुंदर थे । वे अपने हँस-कहना, कभी उपनो का चूरा और कभी गोबर मसैट हुए सब स्थानों पर घुटना के बजा चलते थे ॥१२॥ उन्हें देखकर नन्द अत्यन्त आनंदित थे, वे दोनों बालक अग्रिम व्यक्तियों को चिढ़ाते और हँसत हुए इधर-उधर घूमते ॥१०॥ वह अत्यन्त सुकुमार तथा चंचल नेत्र धारण करने वाली थी । वे कि नन्द उनकी अधिक वग में न रख सके ॥११॥ १२॥ एक दिन अत्यन्त श्रद्धित हुई यशोदा कमलनयन श्रीकृष्ण को पकड़ कर छक्के के पान ले गई । और उनकी कटि में रस्मी बाँध कर उन्हें उलूखल से बाँध दिया और यह कहकर कि ताकत हो तो इसमें छूटकर भाग जा वह अपने कार्य में लग गई ॥१३॥ १४॥

व्यग्राया तु यशोदाया निज्जंगाम ततोऽङ्गणात् ।  
 शिशुलीला तत कुर्वन्कृष्णो विस्मापयन्त्रजम् ॥१५  
 साऽङ्गणान्नि सृत कृष्ण कर्पमाण उलूखनम् ।  
 यमनाभ्या प्रवृद्धाभ्यामर्जुनाभ्या चरन्वने ।  
 मध्यानिश्चक्राम तयो कर्पमाण उलूखलम् ॥१६  
 ततस्य कर्पतो बद्ध तिर्यग्गतमुलूखलम् ।  
 लग्न ताभ्या समूनाभ्यामर्जुनाभ्या चकर्प च ॥१७  
 तावर्जुनी कृष्यमाणी तेन बालेन रहसा ।  
 समूलविटपी भग्नी स तु मध्ये जहास वै ॥१८  
 निदर्शनार्थं गोपाना दिव्य स्त्रवलमास्थित ।  
 तदाम तस्य बालस्य प्रभावादभवद्दृढम् ॥१९

यमुनातीरमार्गस्या गोप्यस्तं ददृशुः शिशुम् ।  
 क्रन्दन्त्यो विम्वयन्त्यश्च यशोदा ययुरङ्गना ॥२०॥  
 तास्तु सभ्रान्तवदना यशोदामूचुरगना ।  
 एह्यागच्छ यशोदे त्व यभ्रमार्त्तिक विलम्बसे ॥२१॥

इधर माता अपने कार्य में लगी उधर बाल-बीना करते हुए इस उलूखल से बंधे हुए धीरे-धीरे रेंग कर आँगन के बाहर निकले और हा विस्मित करते हुए यमलाजुन वृक्षों के मध्य जा पहुँचे ॥१५-१६॥ वहाँ उलूखल टेढ़ा होकर वृक्षों में फँस गया, तब वह उसे जोर लगाकर खींचने लगे ॥१७॥ इस प्रकार खींचने से दोनों वृक्ष समूल उलूखल पर पृथिवी पर गिर गये और उनके मध्य स्थित होकर हँसने लगे ॥१८॥ ब्रज गोशैल पर अपना पराजित प्रदर्शित करने के लिए ही, उन्होंने यह लीला की थी, यशोदा के द्वारा की गयी वह साधारण रस्सी भी उनके प्रभाव से अत्यन्त हड़ हो गयी थी ॥१९॥ यमुना किनारे के मार्ग से जाने वाली गोपियों ने उनकी यह लीला देखी तब अत्यन्त आश्चर्य प्रकट करती हुई यशोदाजी के पास गई ॥२०॥ वहाँ जाकर बोली—हे ब्रजरानी ! विलम्ब मत करो, शीघ्रता से चलो, वरें तुम विषयों कर रही हो ? ॥२१॥

यौ तावजुं नवृक्षौ तु ब्रजे सत्योपमाचनौ ।  
 पुंसस्योपरि तावेतौ पतिती ते महीरुहौ ॥२२॥  
 दृढेन दाम्ना तस्मैव बद्धौ वत्स इवोदरे ।  
 जहास वृक्षयोर्मध्ये तव पुंस स बालक ॥२३॥  
 उत्तिष्ठ गच्छ दुर्मध्ये मूढे पण्डितमानिनि ।  
 पुंसमानय जीवन्तं मुक्तं मृत्युमुखादिव ॥ ४॥  
 त भीता सहमोत्थाय हाहाकार प्रकुर्वती ।  
 त देशमगमद्यत्र पातिती तावुभौ द्रुमौ ॥२४॥  
 सा ददर्श तयोर्मध्ये द्रुमयोरात्मजं शिशुम् ।  
 दाम्ना निबद्धमुदरे कर्पमाणमुलूखलम् ॥२५॥

सा गोपी गोपवृद्धश्च समुवाच व्रजस्तदा ।

पर्यागच्छन्त ते द्रष्टुं गोपेषु महदद्भुतम् । २७

जजल्पुस्ते यथाकाम गोपा वनविचारिण ।

केनेमौ पातितौ वृक्षौ घोपस्यायतनोपमौ ॥२८

विना चाल विना वर्षं विद्धुः प्रपतन विना ।

विना हस्तिकृत दोष केनेमौ पातितौ द्रुमौ ॥२९

जिन यमलार्जुन वृक्षों की पूजा हम अपनी कामना पूर्ति के लिये करती

थी, वे वृक्ष तुम्हारे बालक पर गिरे हुए धरती पर पड़े हैं ॥२८॥ और देखो ! वह

बालक दृढ़ रस्ती से बँधा हुआ उनके बीच में खड़ा हुआ हँस रहा है ॥२९॥

तुम अपने को अत्यन्त बुद्धिमती मानती हो, परन्तु तुम्हारे जैसी मतिहीन कौन

होगी ? बालक मृत्यु के मुख से बचा है, शीघ्रतापूर्वक वहाँ जाकर अपने बालक

को ले आओ ॥२४॥ यह सुनते ही यशोदा अत्यन्त व्याकुल होकर दौड़ पड़ी

और शीघ्र ही घटनास्थल पर जा पहुँची ॥२५॥ उन्होंने वहाँ देखा कि दोनों

वृक्ष धरती पर गिरे पड़े हैं और वहाँ उनके बीच से उलूखल को खींचते हुए

फूट रहे हैं और वह रस्मी अब भी उनकी कमर से बँधी हुई है ॥२६॥

स घटना का समाचार समूचे व्रज में शीघ्रता से फैल गया और सभी व्रजवासी

जस कौतूहल उत्पन्न करने वाली घटना को देखने के लिए वहाँ आ गये ॥२७॥

रूपर में वे सब गोप कहने लगे—अहो ! ग्राम में समान विशाल यह वृक्ष

गर पड़े, इस समय वायु, वर्षा, बिजली या हाथियों का भी कोई उपद्रव नहीं

, तब यह कैसे गिरे ? ॥२८-२९॥

अहो वत न शोभेता विमूलावर्जुनाविमौ ।

भूमौ निरतिती वृक्षौ वितोयौ जलदावि ।

यदीमौ घोपरचितौ घोपकल्याणवारिणौ ॥३०

नन्दगोप प्रसन्नौ ते द्रुमावेव गतावपि ।

यच्च ते दारको मुक्तौ विपुलाम्यामपि क्षितौ ॥३१

औत्तातिकमिद घोपे तृतीय वर्तते त्विह ।

पूतनाया विनाशश्च द्रुमयो शकटस्य च ॥३२

अस्मिन्स्थाने च वासोऽयं घोषस्यास्य न युज्यते ।  
 उत्पाता ह्यत्र दृश्यन्ते कथयन्तो न शोभनम् ॥३३॥  
 नन्दगोपस्तु सहसा भुक्त्वा कृष्णमुलूखलात् ।  
 निवेश्य चाङ्गे सुचिर मृत पुनरिवागतम् ॥३४॥  
 नातृप्यत्प्रेक्षमाणो वै कृष्ण कमललोचनम् ।  
 ततो यशोदा गह्रं न्वै नन्दगोपो विवेश ह ।  
 स च गोपजनः सर्वो ब्रजमेव जगाम ह ॥३५॥  
 स च तेनैवे नाम्ना तु कृष्णो वै दामवन्धनात् ।  
 गोष्ठे दामोदर इति गोपीभिः परिगीयते ॥३६॥  
 एतदाश्चर्यभूत हि बालस्यासीद्विचेष्टितम् ।  
 कृष्णस्य भरतश्रेष्ठ घोषे निवसतस्तदा ॥३७॥

जल विहीन भेद्य जैसे शोभा-रहित हो जाता है, वैसे ही यह सपूर्ण जगत्  
 कर शोभा हीन हो गये हैं, ब्रज-वासियों द्वारा लगाये हुए यह वृक्ष ब्रज-बालाओं  
 के लिये अत्यन्त उपकारी थे ॥३३॥ हे गोप श्रेष्ठ नन्द ! इस दशा को प्राप्त  
 होकर भी यह वृक्ष आप पर अत्यन्त प्रसन्न प्रतीत होते हैं, इसीलिए इनने  
 आपके बालक को कोई हानि नहीं पहुँचाई है ॥३४॥ छकड़े का टूटना और  
 पूतना का मरना यह दो उद्गात पहिने ही हो चुके थे, अब इन वृक्षों का गिरना  
 तीसरा उत्पात हुआ समझो ॥३५॥ अब हमारा यहाँ रहना ठीक नहीं है, क्योंकि  
 बारम्बार ऐसे उत्पातों का होना शुभ-सूचक कदापि नहीं है ॥३६॥ इसी समय  
 नन्द सीधेना पूर्वक दोहे और वे कृष्ण को उलूखल से खोलकर इस प्रकार  
 हुलारने लगे जैसे सोभी मनुष्य का खोया हुआ धन मिल गया हो ॥३७॥ फिर  
 वे अपने पदमनयन बालक के मुख को टकटकी लगाकर देखने लगे और फिर  
 यशोदा पर क्रोध करते हुए अपने घर गये तथा अन्यत्र उपस्थित गोपगण  
 भी अपने-अपने घर चले गये ॥३८॥ भगवान् कृष्ण के उदर में दाम (रस्सी)  
 के बंधने से गोपियों ने उन्हें दामोदर नाम दिया ॥३९॥ वैशम्पायन जी  
 बड़ा—हे राजन् ! जब श्रीकृष्ण ब्रज में रहते थे, तब यह उनकी बाल-लक्षणा  
 विषयक एक अत्यन्त विस्मयजनक घटना हुई थी ॥३७॥

## ॥ श्रीकृष्ण बाल लीला ॥

एव तो बाल्यमुत्तीर्णौ कृष्णमकर्षणावुभौ ।  
 तस्मिन्नेव व्रजस्थाने सप्तवर्षौ बभूवतु ॥१॥  
 नीलपीताम्बरधरो धीतश्चेतानुलेपनौ ।  
 बभूवतुर्वत्सपालौ काकपक्षधरावुभौ ॥२॥  
 पणवाद्य श्रुतिसुख वादयन्ती वराननौ ।  
 शुशुभाते वनगतौ त्रिदोषो विव पन्नगौ ॥३॥  
 मयूराङ्गदक्षणी तु पल्लवापीडधारिणौ ।  
 वनमालाकुलस्कन्धौ द्रुमपोताविवोद्गतौ ॥४॥  
 अरविन्दकृतापीडौ रज्जुयज्ञोपवीतिनौ ।  
 सशिक्यतुम्बकरको गोपवेणुप्रवादकौ ॥५॥  
 क्वचिद्वसन्तावन्योन्य क्रीडमानौ क्वचित्क्वचित् ।  
 पणशय्यासु समुप्ली क्वचिन्निद्रान्तरेक्षणौ ॥६॥  
 एव वत्सान्पालयन्तौ शोभयन्तौ महावनम् ।  
 चञ्चल्यन्तौ रमन्तौ स्म विशोराविव चञ्चलौ ॥७॥

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! इस प्रकार कृष्ण और सकर्षण पती दशवर्षावस्था को पार करके सात वर्ष की अवस्था के हो गये ॥१॥ कर्षण नीचे वस्त्र और कृष्ण पील वस्त्र धारण करके श्वेत चदन लगाकर वे दोनों शिखाधारी बालक बछड़ों के पालक हो गये ॥२॥ दोनों बालक पणवाद्यों में सुमने में मधुर ध्वनि करते हुए वनों में विचरण करते हुए तीन शिर के सर्प के समान सुन्दर प्रतीत होते थे ॥३॥ उनके कानों में मोरपत्तों का कुण्डल, मस्तक पर पल्लव युक्त कमलपुष्प का मुकुट, कूट में वनमाला, कंधे पर रस्मी का जनेऊ, हाथ में तुम्बी और छोंका लिये हुए रहते तथा वशी चत्राया करते थे ॥४-५॥ वे कभी परस्पर हास-परिहास करते और कभी पत्ता का बिछोना नाकर उस पर शयन करते थे ॥६॥ इस प्रकार वे दोनों भाई वनों में गायों की चराते और विविध क्रीड़ा करते हुए चञ्चल बछड़ों के समान शोभा करते थे ॥७॥



अथ दामोदर श्रीमान्सर्वपणमुवाच ह ।  
 आर्य नास्मिन्वने क्षय गोपाले सह कीडितुम् ॥८॥  
 अवगोत्रमिद सर्वमावाभ्या भुक्ताननम् ।  
 प्रक्षीणतृणकाष्ठ च गोपैर्मथितपादपम् ॥९॥  
 घनीभूतानि यान्यासन्काननानि वनानि च ।  
 तान्याकाशनिकाशानि दृश्यन्तेऽद्य ययासुखम् ॥१०॥  
 गोवाटेष्वपि ये वृक्षा परिवृत्ताग्नेषु च ।  
 सर्वे गोश्रामेषु गता क्षयमक्षयवचंस ॥११॥  
 सनिवृष्टानि यान्यासन्काष्ठानि च तृणानि च ।  
 तानि दूरावकृष्टासु मार्गितव्यानि भूमिषु ॥१२॥  
 अरण्यमिदमल्पोदमल्पकक्ष निराश्रयम् ।  
 अन्वेपितव्य विश्राम दारुण विरलद्रुमम् ॥१३॥  
 अकर्मण्येषु वृक्षेषु स्थितविप्र स्थितद्विजम् ।  
 सवासस्यास्य महतो जनेनोत्सादितद्रुमम् ॥१४॥  
 निरानन्द निरास्वाद निष्प्रयोजनमारुतम् ।  
 निविहङ्गमिद शून्य निर्व्यञ्जनमिवाशनम् ॥१५॥

एक दिन वृष्ण ने अपने भाई सत्कर्षण से कहा—हे आर्य ! अब इस  
 वन में गोप बालका के साथ खेलना उचित नहीं है ॥८॥ क्योंकि हम इस वन  
 का भले प्रकार उन्मूलन कर चुके हैं, अब यहाँ घास भी नहीं रही और काष्ठ  
 तथा वृक्ष भी घड़े ही रह गए हैं क्योंकि गोपों ने वृक्षों को काट डाला है ॥९॥  
 पहिले यह वन वृक्षों में इतना परिपूर्ण था कि और कुछ भी दिलाई नहीं देता  
 था, परन्तु अब उन वृक्षों ने बट जाने अथवा पत्र बिहीन हो जाने पर सरसता  
 से दूर तन देखा जा सकता है ॥१०॥ गोशाला और उसकी प्राचीर पर स्थित  
 वृक्ष, वन की अग्नि में दग्ध होकर प्रभाहीन हो गए हैं ॥११॥ जो घास  
 अथवा काष्ठ पहले वन के समीप था, अब वह बहुत दूर है तथा यत्नपूर्वक  
 उसकी खोज पड़नी होती है ॥१२॥ इस वन में घास, जल और विश्राम स्थल  
 मिलना अब कठिन हो गया है, वृक्ष बहुत दूर दूर पर रह गये हैं यदि अब

रोज न करेंगे तो भविष्य में हमें खेलने और बैठ कर विश्राम करने की भी  
 यान न मिलेगा ॥१३॥ यहाँ के सभी वृक्ष अब बकार हो चुके हैं, इसीलिये  
 निवासी पक्षियों ने इन्हें त्याग दिया है। यहाँ के निवासियों ने वृक्षों की काट  
 गला है, इसलिये इस वन में अब वायु व वह सुन्दर झोंक उड़ान नहीं होत।  
 पक्षियों के चने जान से यह वन छायादि में हीन भोजन के समान निरानन्द हो  
 गया है ॥१४-१५॥

विक्रीयमाणं काष्ठञ्च शाकंश्च वनमभवत् ।  
 उच्छिन्नमचयतृणंघोषोऽयं नगरायते ॥१६॥  
 शैलानां भूषणं घोषो घोषाणां भूषणं वनम् ।  
 वनानां भूषणं गावस्ताश्चास्माकं परमा गतिः ॥१७॥  
 तस्मादन्यद्वनं याम् प्रत्यग्रयवसेन्धनम् ।  
 इच्छन्त्यनुपमुक्तानि गावो भोक्तुं तृणानि च ॥१८॥  
 तस्माद्वनं नवतृणं गच्छन्तु घनिर्नो ब्रजा ।  
 न द्वारघन्धावरणा न गृहक्षेप्तिणस्तथा ।  
 प्रशम्ना वै ब्रजा लोके यथा वै चक्रचारिणः ॥१९॥  
 द्यून्मूनेषु तेऽप्येव जातक्षाररसायनम् ।  
 न तृणं द्यून्मते गावो नापि तत्पदसे हितम् ॥२०॥  
 स्थलीप्रायामु रथ्यामु नवामु वनराजिषु ।  
 चरान् सहितौ गोभिः क्षिप्रं सवाहयता ब्रज ॥२१॥

वन में उत्पन्न शाक और काष्ठों का विक्रय हीन के कारण काष्ठ और  
 शाक यहाँ नहीं रही, इसलिये यह वन अब गाँव न रह कर नगर जैसा हो गया  
 है ॥१६॥ पर्वतों की शोभा ग्राम हैं, ग्रामों की शोभा वन तथा वनों की शोभा  
 गोएँ हैं, यही हमारे लिये परमगति हैं ॥१७॥ इसलिये इन वन को छोड़ कर  
 ऐसे वही चलना चाहिये जहाँ तृण और काष्ठ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो सके,  
 यहाँ गोएँ नवीन तृण को चरना चाहती हैं ॥१८॥ इसलिये घनिक ब्रजवासियों  
 को नवीन तृणादि से परिपूर्ण वन में चलना चाहिये, क्योंकि ब्रजवासियों के लिये  
 इस भी कोई निश्चित गृह, क्षेत्र अथवा द्वार आदि का बन्धन नहीं है। वे तो

अथ दामोदर श्रीमान्सर्वर्पणमुयाच ह ।  
 आर्य नास्मिन्वने शक्य गोपाले सह क्रीडितुम् ॥८  
 अत्रगीतमिद सर्वमावाभ्या भुक्तमाननम् ।  
 प्रक्षीणतृणकाष्ठ च गोपैर्मथितपादपम् ॥९  
 घनीभूतानि यान्यासन्काननानि वनानि च ।  
 तान्याकाशनिकाशानि दृश्यन्तेऽद्य यथासुखम् ॥१०  
 गोवाटेष्वपि ये वृक्षा परिवृत्तागलेषु च ।  
 सर्वे गोष्ठामिषु गता क्षयमक्षयवर्चस ॥११  
 सनिकृष्टानि यान्यासन्काष्ठानि च तृणानि च ।  
 तानि दूरावकृष्टासु मार्गितव्यानि भमिषु ॥१२  
 अरण्यमिदमल्पोदमल्पकक्ष निराश्रयम् ।  
 अन्वेषितव्य विश्राम दारुण विरलद्रुमम् ॥१३  
 अकर्मण्येषु वृक्षेषु स्थितविप्र स्थितद्विजम् ।  
 सवासस्यास्य महतो जनेनोत्सादितद्रुमम् ॥१४  
 निरानन्द निरास्वाद निष्प्रयोजनमारुतम् ।  
 निर्विहङ्गमिद शून्य निर्व्यञ्जनमिवाशनम् ॥१५

एक दिन वृष्ण ने अपने भाई सर्वर्पण से कहा—हे आर्य ! अब इस वन में गोप वासकों के साथ खेलना उचित नहीं है ॥८॥ क्योंकि हम इस वन का भले प्रकार उद्योग कर चुके हैं, अब यहाँ घास भी नहीं रही और काष्ठ तथा वृक्ष भी थोड़े ही रह गए हैं, क्योंकि गोपों ने वृक्षों को काट डाला है ॥९॥ पहिले यह वन वृक्षों में इतना परिपूर्ण था कि और कुछ भी दिखाई नहीं देता था, परन्तु अब उन वृक्षों ने कट जाने अथवा पत्र-विहीन हो जाने पर सरलता से दूर तक देखा जा सकता है ॥१०॥ गोडाला और उसकी प्राचीर पर स्थित वृक्ष, अत्र भी अग्नि में दग्ध होकर प्रभाहीन हो गए हैं ॥११॥ जो घास अथवा बाण्ड पहले अत्र के समीप था, अब वह बहुत दूर है तथा यानपूर्वक उमकी खोज पड़नी होती है ॥१२॥ इस वन में घास, जल और विधाम स्वरूप मिलता अब कठिन हो गया है, वृक्ष बहुत दूर दूर पर रह गये हैं, यदि अब

\*घोज न करेंगे तो नविष्य मे हमें खेलने और दंड कर विग्राम करन को भी म्मान न मिलेगा ॥१३॥ यहाँ के मन्त्री वृद्ध अब बेकार हो चुके हैं, इसीलिये वनवासी पक्षिमा ने इह त्याग दिया है। यहाँ के निवासियों ने वृत्तों की बाट डाला है, इसलिए इस वन में अब वायु व वह सुन्दर शोक उल्लस नहीं होत। पक्षियों के चने जान से यह वन शाकादि में हीन भाजन के समान निरानन्द हो गया है ॥१४-१५।

विक्रीयमाणं काष्ठं च जावं च वनमभवत् ।  
उच्छिन्नमचयतृणैर्घोषोऽयं नगरायते ॥१६॥  
शैलानां भूषणं धोषो धोषाणां भूषणं वनम् ।  
वनानां भूषणं गावस्ताश्चास्माकं परमा गतिः ॥१७॥  
तस्मादन्यद्वनं याम् प्रत्यग्रयवसेन्धनम् ।  
इच्छन्त्यनुपभुक्तानि गावो भोक्तुं तृणानि च ॥१८॥  
तस्माद्वनं नवतृणं गच्छन्तु धनिर्नां व्रजा ।  
न द्वारवन्धावरणा न गृहक्षेप्तिणस्तथा ।  
प्रशम्ना वै व्रजा लोके यया वै चम्रचारिणः ॥१९॥  
घातृन्मूनेषु तेष्वेव जातक्षाररमायनम् ।  
न तृणं धुञ्जते गावो नापि तत्पयसे हितम् ॥२०॥  
स्थलीप्रायाम् रुध्यासु नवामु वनराजिषु ।  
चरान् सहितौ गोभिः क्षिप्रं सदाह्वयता व्रज ॥२१॥

वन में उत्पन्न शाकों और काष्ठों के विक्रय होने के कारण काष्ठ और गम यहाँ नहीं रहें, इसलिये यह वन अब गाँव न रहे कर नगर जैसा हो गया है ॥१६॥ पर्वतों की शोभा ग्राम हैं, ग्रामों की शोभा वन तथा वनों की शोभा गीएँ हैं, यही हमारे लिये परमगति हैं ॥१७॥ इसलिये इन वन को छोड़ कर (मे वहाँ चलना चाहिये जहाँ तृण और काष्ठ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो सके, क्योंकि गोएँ नवीन तृण को चरना चाहती हैं ॥१८॥ इसलिये घनिक व्रजवासियों ने नवीन तृणादि से परिपूर्ण वन में चरना चाहिये, क्योंकि व्रजवासियों के लिये इस भी कोई निश्चित गृह, शयन अथवा द्वार आदि का ब्ययन नहीं है। वे तो

हस सारस आदि पक्षियों के समान जहाँ कहीं भी जाकर रहने लगे, वही स्थान ब्रज बन जाता है ॥१६॥ यहाँ की घासों में गोबर और मल मूत्रादि के मिश्रित हो जाने से एक प्रकार का क्षार उत्पन्न हो गया है, इसीलिए गौवं इस घास को नहीं चरती और जो चर लेती हैं उनका दूध हितकारी नहीं होता ॥२०॥ इन लिये हमें नवीन तृण युक्त समतल वन्य प्रदेश में अपनी गोम्रो के सहित चल देना चाहिये, जहाँ तक सम्भव हो इस स्थान को स्थापकर हम यहाँ से कहीं अन्यत्र चल दें ॥२१॥

श्रूयते हि वनं रम्यं पर्याप्तं तृणसंस्तरम् ।  
 नाम्ना वृन्दावनं नाम स्वादुवृक्षफलोदकम् ॥२२॥  
 अभिल्लिखण्टकवनं सर्व्वेनगुणैर्युतम् ।  
 कदम्बपादपप्राय यमुनातीरसंश्रितम् ॥२३॥  
 स्निग्धशीतानिलवनं सर्व्वतुं निलयं शुभम् ।  
 गोपीना सुखसचार चारुचिसवनान्तरम् ॥२४॥  
 तत्र गोवर्द्धनो नाम नातिदूरे गिरिमहान् ।  
 भ्राजते दीर्घशिखरो नन्दनस्येव मन्दरः ॥२५॥  
 मध्ये चास्य महाशालोन्यग्रोष्ठो योजनोच्छ्रितः ।  
 भाण्डीरो नाम शुशुभे नीलमेघ इवाम्बरे ॥२६॥  
 मध्येन चास्य कालिन्दी सीमन्तमिव युवती ।  
 प्रयाता नन्दनस्येव नलिनी सरिता यरा ॥२७॥  
 तस गोवर्द्धनं चैव भाण्डीरं च वनस्पतिम् ।  
 कालिन्दी च नदी रम्या द्रष्टव्यावश्चरत सुखम् ॥२८॥

मुना है कि. यमुना के तीर पर ही वृन्दावन नाम का एक वन है जो  
 श्रेष्ठ तृणों, गुरुकाटु पत्तों और मधुर जलो की बहुतायत है ॥२२॥ यह व  
 बरुक्ष-वृक्षा से परिपूर्ण है, यहाँ शिशियों और बच्चों के दर्शन तक नहीं है  
 तथा उग्र वन में श्रेष्ठ वन के सभी गुण हैं ॥२३॥ यहाँ टंडा वायु पलता  
 सभी श्रुत एक साथ रहती हैं, यहाँ गोविण्ड अत्यन्त आनन्द में विहार  
 करती है ॥२४॥ उसके निकट ही नन्दन-वन में मन्दर पर्व्वण के समान है

शिखर वाला गोवर्धन नामक पर्वत विद्यमान है ॥२५॥ उस पर्वत के ऊपर नील  
 रघु के समान सघन तथा एक योजन विस्तार वाला भाण्डोर नाम का एक वट  
 वृक्ष स्थित है ॥२६॥ जेमे इन्द्र के मन्दन वानन में मन्दाकिनी बहती है, वैसे ही  
 इस पर्वत के सीमन्त की भाँति यमुनाजी प्रवाहित है ॥२७॥ वहाँ विचरण करते  
 हुए हम दोनों ही गिरि गोवर्धन, भाण्डोर वृक्ष और परम रमणीय यमुना को  
 अपने हुए आनन्दित होंगे । २८॥

तत्रायं कल्प्यता घोषस्त्यजना, निर्गुण वनम् ।  
 सत्तासयावो भद्र ते किञ्चिदुत्पाद्य कारणम् ॥२८॥  
 एव कथयतस्तस्य यामुद्देवस्य धीमत ।  
 प्रादुर्गमूवृ शतशो रक्तमामवसाशना ॥२९॥  
 घोराश्विचन्तयनस्तस्य स्वतन्त्ररहजास्तदा ।  
 विनिप्येतुर्भयकराः सर्वे शतशो वृका ॥३०॥  
 निप्यतन्ति स्म बहवो व्रजस्योत्सादनाय वै ।  
 वृकान्निप्यतितान्दृष्ट्वा गोवत्सेष्वथो नपु ॥३१॥  
 गोपीपुत्रं यथाकामं व्रजे आसोऽभवन्महान् ।  
 ते वृका पञ्चवद्धाश्च दशवद्धास्तथा परे ॥३२॥  
 त्रिंशद्विंशतिवद्धाश्च शतवद्धास्तथा परे ।  
 निषेचैस्तस्य गालेभ्यः श्रीवन्मृतञ्शृणा ॥३३॥  
 कृष्णान्व कृष्णवदना गोपाना भयवर्धनाः ।  
 भक्षयद्भिश्च तैर्वत्सास्त्रासयद्भिश्च गोव्रजान् ॥३४॥  
 निशि वालान्हरद्भिश्च वृकरत्साद्यते व्रज ।  
 न वने शक्यते गन्तु न गाश्च परिश्रितुम् ॥३५॥  
 न वनार्तिकचिदाहर्तुं न च वा तरितुं नदीम् ।  
 अस्ताह्य द्विग्नमनसोऽगताम्नस्मिन्बनेऽवसन् ॥३६॥  
 एव! वृकरदीर्घस्तु व्याघ्रतुल्यपराक्रमै ।  
 व्रजो निस्पन्दचेष्टस्य एवस्थानचर कृत ॥३७॥

इसलिये हे भैया ! हमे इस घन को त्याग कर वृन्दावन में निगम करना

उचित है, इसलिये यहाँ कोई विशेष भय उत्पन्न करने ब्रजवासियों को डर देना चाहिये । ॥२६॥ भगवान् कृष्ण के इनना कहते ही उनके देह से सहस्र हजारों भीषण आकार वाले भेड़ियो उत्पन्न हो गये ॥३०-३१॥ व सब भेड़ियो ब्रजवासी गोपों, गौओं, बछड़ों गोपियों आदि पर आक्रमण करके उन्हें मार करने लगे, इससे सम्पूर्ण ब्रज मण्डल आनर्जित हो उठा । वे भेड़िया पाँव, दम पचास आदि के समूहों में घूमते फिरते थे । भगवान् कृष्ण के देह से उत्पन्न हुए उन काले मुख वाले भेड़ियो ने बहुत से बछड़ों को मार डाला और रात्रिवा में गोप बालकों को उठाकर ले जाने लगे । इसलिये उन भेड़ियो का आना इतना बढ गया कि कोई भी व्यक्ति घन से कुछ लाने, गाय चराने या यमुना किनारे जाने का साहस नहीं कर पाता था । उन भेड़ियो के भय से सभी ब्रजवासी श्रन्त हो गये थे और कोई भी बाहर नहीं निकलना चाहता था ॥३२-३५॥ उन सिंह के समान पराक्रमी भेड़ियो के भय से बचने के लिये सब ब्रजवा एकत्रित होकर एक स्थान पर रहने लगे थे ॥३८॥

### ॥ श्रीकृष्ण का वृन्दावन-गमन ॥

एव वृषाश्च तान्दृष्ट्वा वर्धमानान्दुरासदान् ।  
 सस्त्रीपुमान्स घोषो वै समस्तोऽमन्त्रयत्तदा ॥१॥  
 स्थानेनेह न न कार्यं ब्रजामोऽन्यन्महद्वनम् ।  
 यच्छिव च सुतोप्य च गवा चैव सुखावहम् ॥२॥  
 अद्यैव किं चिरेण स्म ब्रजाम सह गोधनै ।  
 यावद्वृषैर्वैध घोरे न न सर्वो ब्रजो व्रजेत् ॥३॥  
 एपा, धूम्राणागाना दष्टिणा नखकपिणाम ।  
 वृषाणा कृष्णवक्त्राणा विभीमो निशि गर्जताम् ॥४॥  
 मम पुत्रो मम भ्राता मम वत्सोऽथ गौर्मम ।  
 वृषैर्व्यापादिता ह्येव क्रन्दन्ति स्म गृहे गृहे ॥५॥  
 तासा रदितशब्देन गवा हमारवण च ।  
 ब्रजस्योत्थापन चक्रुर्घोषवृद्धा समागता ॥६॥

तेषा मतमथाज्ञाय गन्तु वृन्दावन प्रति ।

व्रजस्य विनिवेशाय गवा चैव हिताय च ॥७॥

वृन्दावननिवासाय ताञ्ज्ञात्वा कृतनिश्चयान् ।

नन्दगोपो बृहद्वाक्य बृहस्पतिरिवाददे ॥८॥

वंशम्पायजी ने कहा—हे राजन् ! जब वे भेडिये अत्यन्त उद्दण्ड हो गये

तब सब व्रजवासियों ने एकरिक्त होकर परस्पर मन्त्रणा की और बोले कि अब हमें इस स्थान से क्या कार्य है ? हम यहाँ से किसी अन्य वन में चलना चाहिये, जो कि सुखपूर्वक निवास के योग्य तथा गौओं के लिये भी सुखदायी हो ॥१-२॥ अब विलम्ब से क्या लाभ है ? हम अपनी गौत्रा और बछड़ों के सहित आज ही यहाँ से चल द जिनसे उन भगवान् भेडियों द्वारा होने वाले सबनाश से बचा जा सके ॥३॥ यह पीत देह वाले कृष्णमुनी एवं नव्यकर्षी भेडिये रात के समय घोर गजना करते हुए घूमते हैं जिनमें हम बड़ा डर लगता है ॥४॥ प्रत्येक घर के व्रजवासी प्रतिदिन प्रातः काल रदन धरते दिखाई देते हैं कोई कहता है कि मेरे भाई पुत्र बड़का अवकाश का भेडियो ने मार डाला है ॥५॥ इस प्रकार व्रजनारियों के रदन और गौओं के कृन्दन से श्रवित हुए बृद्ध पुरुषों ने उस व्रज का छाड़ कर चले जाने का दृढ विचार किया ॥६॥ उन बृद्ध गोपों के विचार तथा व्रज त्याग कर वृन्दावन गमन के निश्चय को सुन कर बुद्धिमान नन्द ने उनसे कहा ॥७-८॥

अद्यैव निश्चयप्राप्तिर्यदि गन्म्यमेव न ।

शीघ्रमाज्ञाप्यता धोष सज्जीभवत मा चिरम् ॥९॥

ततोऽवधुष्यत तदा धोषे तत्प्राकृतैर्जनै ।

शीघ्र गाव प्रकाल्यन्ता भाण्ड समभिराप्यताम् ॥१०॥

वत्सयूथानि कालग्रन्ता पूर्यता शकटानि च ।

वृन्दावनमित स्यान्नान्निवेशाय च गम्यताम् ॥११॥

तच्छ्रुत्वा नन्दगोपस्य वचन साधु भाषितम् ।

उदतिष्ठद्व्रज सर्वं शीघ्र गमनलालस ॥१२॥

प्रयाह्युत्तिष्ठ गच्छाम किं शेषे साधु योजय ।

उत्तिष्ठति व्रजे तस्मिन्नासीत्कोलाहलो महान् ॥१३॥



उत्तिष्ठमान शुशुभे शकटोशाकटस्तु सः ।  
 व्याघ्रघोषमहाघोषो घोषः सागरघोषवान् ॥१४  
 गोपीना गंगरीभिश्च मूर्ध्नि चोत्तम्वितर्धटैः ।  
 निष्पत्ता व्रजात्पङ्क्तिस्तारापङ्क्तिरिवाम्बरात् ॥१५

हे गोपगण ! यदि आपने इस स्थान को त्याग कर वृन्दावन चले  
 निश्चय ही कर लिया है तो अब विलम्ब न करके सभी व्रजवासियों को शीघ्र  
 तैयार होने की आज्ञा दीजिये ॥१४॥ इसके अनुसार नन्द ने व्रज भर में  
 घोषणा करा दी कि सब गौओं को इकट्ठी कर लो और गृहस्थ के सब सामान  
 वर्तन-वस्त्रादि बेल गादियों पर लाद दो ॥१०॥ छकड़ों तथा बड़ों को एका  
 परके यहाँ से वृन्दावन चलने को तैयार हो जाओ । नन्द की यह बात सुन कर  
 शीघ्र ही चलने के लिये उत्सुक समस्त व्रज उसी समय उठ चला ॥११-१२॥  
 उस समय वे परस्पर बोले—चलो, जल्दी यहाँ से निकल चलें, तुम सभी !  
 यों सो रहे हो, उठो, अपनी बेल गाड़ी को जोनो, इस प्रकार की बातचीत  
 एक प्रकार का मोपाहन-ता होने लगा ॥१३॥ उस कोलाहल के साथ एक स  
 गर्जन, सिंह-गर्जन या विद्युत् गर्जन जैसा घोर शब्द हुआ, जिससे सम्पूर्ण व  
 मण्डल गूँज उठा और गोप-गोपी व्याकुल हो गये । जब गोपिनारं विर  
 पडे और बगल में गंगरी दबाये पंक्ति बढ होकर व्रज से चली तब ऐसा प्र  
 होने लगा जैसे आकाश की तारिकायें पृथिवी पर उतर पड़ी हों ॥१४-१५॥

नीलपीताम्बस्तासां वस्त्रैरग्रस्तनोच्छ्रितैः ।  
 शकचापायते पङ्क्तिर्गोपीना मार्गगामिनी ॥१६  
 दामनी दामभारंश्च कञ्चित्कायावलम्बिभिः ।  
 गंगता मार्गगता भान्ति सावरोहा इव द्रुमाः ॥१७  
 ग व्रजो व्रजना भाति शकटोपेन भास्वता ।  
 पोतैः पवनविक्षिप्तैर्निष्पतद्भिरिवान्वयः ॥१८  
 क्षणेन तद्व्रजख्यानमीरणं समपद्यत ।  
 दृष्ट्वापयवनिर्घृत कीर्णं वायवमण्डलैः ॥१९

तत क्रमेण घोषं स प्राप्ती वृन्दावनं वनम् ।  
निवेश विपुलं चक्रे गवा चैव हिताय च ॥२०॥  
शकटावत्तंपर्यन्तं चन्द्रार्द्धाकारसंस्थितम् ।  
मध्ये योजनविस्तीर्णं तावद्द्विगुणमायतम् ॥२१॥  
कण्टकीभिः प्रवृद्धाभिस्तथा कण्टकितद्रुमैः ।  
निखातान्छितशाखाग्रैरभिगुप्तं समन्ततः ॥२२॥

उनकी चोलियाँ नीले, पीले या लाल रंग की थीं, इससे उनके पकित बढ  
होकर चलने से इन्द्र घनुष के उदित होने जैसी शोभा होने लगी ॥१६॥ पय-  
गामी गोपों के ऋषो पर जो रस्सियाँ लटकी हुई थी, वे बटवृक्ष की जटाओं जैसी  
प्रतीत होने लगी ॥१७॥ व्रज से चमचमाते हुए रथों के समूह ऐसे लगने लगे  
जैसे अनेकों नावें वायु के झोंके के साथ समुद्र में उठ रही हों ॥१८॥ उन गोपों  
के व्रज से चल देने पर वह भूमि मरभूमि जैसी प्रतीत होती थी, वहाँ के परो  
में पड़े हुए अन्नकणों और बड़े आदि पर बौए मँडलने लगे थे ॥१९॥ वहाँ से  
चलकर गोपों का यह समूह वृन्दावन जा पहुँचा और वहाँ उन सबने पहिले  
गोओं के लिये अनेक गोशालाओं का निर्माण किया ॥२०॥ सभी छक्के अर्द्ध-  
चन्द्राकार घेरे के रूप में खड़े किये गये । वह स्थान एक योत्रन सम्बा और एक  
योजना चौड़ा था ॥२१॥ जिसे ऊँचे-ऊँचे कटिदार वृक्ष लगाकर चारों ओर से  
घेर दिया तथा छतनार की शाखाओं ने उस वृन्दावन को सब ओर से सुरक्षित  
किया ॥२२॥

मन्यरारोप्यमाणैश्च मन्यवन्धानुकर्षणैः ।  
भङ्गिः प्रक्षाल्यमानाभिर्गङ्गरीभिः समन्तत ॥२३॥  
कीलैरारोप्यमाणैश्च दामनीपाशपाशितैः ।  
स्तम्भनीभिर्वृताभिश्च शकटैः परिवर्तितैः ॥२४॥  
नियोगपाशैरासक्तैर्गङ्गरीस्तम्भमूढैः सु ।  
छादनार्थं प्रकीर्णैश्च कटकैस्तृणसकटैः ॥२५॥  
शाखा विट्कुर्वृक्षाणां क्रियमाणैरिस्तत्ततः ।  
शोध्यमानैर्गवा स्थानैः स्थाप्यमानैरुलूखलैः ॥२६॥

प्राङ्मुखं सिध्यमानंश्च सदोप्यद्भिश्च पावने ।

सदस्यचर्मस्तरणं पर्यङ्कुशवावरोपिते ॥८७॥

तोयमुत्तारयन्तीमि प्रेक्षन्तीमिश्च तद्वनम् ।

प्राङ्मुखं सिध्यमानंश्च सदोप्यद्भिश्च पावने ॥८८॥

पूँक पाटना आरम किया ॥२६॥ इस प्रकार स्वादिष्ट जल और उत्तम फल  
मूल से युक्त वृन्दावन के उम उपनिवेश की सोभा अनमीमित होगई ॥२७॥  
रक्षियों के बलरव से युक्त न दन वानन के समान सुरम्य वृन्दावन में पहुँच कर  
गोएँ इच्छित दूध देने लगी ॥२८॥ गोओ का गुम चाहने वाले भगवान् ब्रज-वन  
में विवरण करते समय ही वृन्दावन में रहने का निश्चय कर चुके थे ॥२९॥  
इह नितान्त सूची तथा सूखी प्रोप्स ऋतु में वहाँ आये थे, परन्तु उनके वहाँ  
हुँवते ही जैसे देव ने अमृत-वर्षा आरम्भ कर दी हो, जिससे तृण बढ़ने लग  
गये थे ॥३०॥ इस पर भी जहाँ स्वयं मनुसूदन धीरुष्ण सोरुहिन के लिये  
धराजमान हो, उस स्थान पर मनुष्यो, गोओ और वृद्धों को किस प्रकार कोई  
हस्त हो सकता था ? ॥३१॥ उम वृन्दावन में सभी गोएँ, गोप तथा सूर्यपण  
प्रादि सब धीरुष्ण के साथ आनन्द सहित निवास करने लगे ॥३२॥

## ॥ कालिय नाग दमन ॥

सोपसृज्य नदीतीरं वद्ध्या परिकरं दृढम् ।  
आरोहच्चपलः कृष्णः कदंबशिशिरं मुदा ॥१॥  
कृष्णः कदंबशिशिरालम्बमानो घनाकृतिः ।  
हृदमध्येऽकरोच्छ्रं निपतन्म्वुजेशणः ॥२॥  
कृष्णेन तप्त पतता क्षुभितो यमुनाहृदः ।  
सप्रामिच्यत वेगेन भिद्यमान इवांबुदः ॥३॥  
तेन जट्वेन मदाब्ध सपस्य भवतं महत् ।  
उदनिज्जलात्सर्पो रोपपर्याकुलेक्षणः ॥४॥  
स चोत्तमपतिः क्रुद्धो मेघराशिसमप्रभः ।  
ततो रक्तान्तनयनः कानियः समदृश्यत ॥५॥  
पञ्चाक्षः पावकोच्छ्वासस्त्रलज्जिह्वोज्ज्वलाननः ।  
पृथुभिः पञ्चभिर्धोरैः शिरोभिः परिवारितः ॥६॥  
पूरयित्वा हृदं सर्वं भोगेनानलवर्चसा ।  
स्फुरन्ति च रोधेण ज्वरन्निव च तेजसा ॥७॥

क्रोधेन तज्जल तस्य सर्वं शृतमिवाभवत् ।

प्रतिस्त्रोताश्च भीतेव जगाम यमुना नदी ॥८८॥

वंशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! फिर श्रीकृष्ण न दह के पास जाकर अपनी बमर को बसा और कदम्ब वृक्ष पर चढ़ गये ॥१॥ फिर उस कदम्ब के ऊपर से दह में बूढ़ पड़े और उच्च स्वर करने लगे ॥२॥ इस प्रकार क्रूढ़ने से उस दह में शोभ उठा और वह चारों ओर उड़ फेंकने लगा ॥३॥ उनके क्रूढ़ने का शब्द जब कालिय नाग के स्थान तक पहुँचा तब सम्पूर्ण दह कांप उठा और वह नाग लाल लाल नेत्र किये हुए जल से बाहर आया ॥४॥ उसका भीषण पाँव मुखों से उगाना निकल रही थी और वह अपनी जिह्वा को लपलपाता था ॥५॥ क्रोध के कारण उसका देह फूल गया और तेज के बहुत बढने से अग्नि के समान दिग्दर्शक हो गया ॥ सम्पूर्ण जल उसके क्राध से खलबला उठा और उसके भय से यमुना भी विपरीत दिशा में बहने लगी ॥६॥

तस्य क्रोधाग्निपूर्णं भ्योवक्त्रेभ्योऽभूच्च मासुत ।

दृष्ट्वा कृष्ण हृदगद क्रीडन्त शिशुलोभया ॥९॥

सधूमा पन्नगेन्द्रस्य मुखान्निश्चेरुरचिष ।

सृजता तेन रोषाग्नि समीपे तीरजा द्रुमा ॥१०॥

क्षणेन भस्मसान्नीता युगान्नप्रतिमेन वै ।

तस्म पुत्राश्च दाराश्च भृत्याश्चान्ये महोरगा ॥११॥

वमन्त पावक घोर वक्त्रेभ्यो विपसम्भवम् ।

सधूम पन्नगेन्द्रास्ते निपेतुरमितौजस ॥१२॥

प्रवेशितश्च तै सर्प स कृष्णो भोगवन्धनम् ।

निर्यत्नचरणावारस्तस्यौ गिरिर्निवाचल ॥१३॥

अदशन्दशनस्तीक्ष्णं विपोत्पीडजलाविलै ।

ते कृष्ण सर्पपतयो न ममार च वीर्यवान् ॥१४॥

एक बालक के समान उस दह में क्रीडा करते हुए श्रीकृष्ण को देा उमर मुन से उष्ण स्नान और धूमधुवन ज्वालाएँ तीव्रता से निकलने ।

सबके श्रोत्र से बिनारे के मग्न वृष भस्म हो गये । उनका पुत्र, स्त्री, सेवकादि भी तैर सप थे । वे भी अपने मुख से धुँए सहित अग्नि उगल रहे थे ॥६-१२॥ इस प्रकार अनुचरो सहित आकर कालिनाग ने श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण देह को अपने से लपट कर जकड़ लिया, तब भगवान् हरि पर्वत के समान स्थिर एवं प्रचल करते रहे ॥१३॥ फिर वह महामर्ष उन्हें सब ओर से काटने लगे, परन्तु तभी भगवान् का बाल-बाबा भी न हो सका ॥१४॥

एतस्मिन्नन्तरे भीता गोपाला सर्व एव ते ।  
 क्रन्दमाना व्रज जन्मुर्वाप्सिगद्गदया गिरा ॥१५॥  
 एष मोहं गतं कृष्णा मग्नो हि कानिये हृदे ।  
 भक्ष्यते सर्पराजेन तदागच्छन् मा त्रिरम् ॥१६॥  
 नन्दगोपाय वै क्षिप्रं मन्त्रलाय निवेद्यनाम् ।  
 एष ते कृष्यते कृष्ण सर्पेणेति महाहृदे ॥१७॥  
 नन्दगोपस्तु तच्छ्रुत्वा वज्रपातोपमं वच ।  
 आर्त्ता स्फलितक्रिहान्तस्त जगाम हृदोत्तमम् ॥१८॥  
 सवाल्युवतीवृद्धं स च सकर्षणो युवा ।  
 आक्रीड पन्नगेन्द्रस्य जलस्य समुपागमम् ॥१९॥  
 नन्दगोपमुखा गोपास्ते सर्वे साश्रुलोचना ।  
 हाहाकारं प्रबुर्वन्स्तस्युन्तीरे हृदस्य वै ॥२०॥

यह देख कर कृष्ण-भगवा गोप-बालक भयपूर्वक अभुषाण करते हुए व्रज में गये और गद्गद स्वर में गोशों से बोले—कृष्ण कालीदह में गिर कर अचेत हो गया है, कालियनाग उसे डग रहा है, अब आप सब तुरन्त वहाँ चले और बलराम जी भी इनकी सूचना दे दें ॥१५-१७॥ नन्दजी ने जब यथ गिरने के प्रमाण इस गताचार की सुना तब वे अत्यन्त शोक-सतप्त होते हुए गिरते-पड़ते हुए भी ओर दौड़ पड़े ॥१८॥ फिर बलराम जी के सहित सब गोप-गोरी, बालक, बड़े कालीदह पर जा पहुँचे ॥१९॥ नन्दादि सभी ब्रजवासी नेत्रों में आँसुओं की धारा बरते हुए बिनारे पर ही गये रहे ॥२०॥

एकभावशरीरज एकदेहो द्विधा वृत्त ।  
 सक्पंजस्तु सकुद्धो वभाषे कृष्णमव्ययम् ॥२१॥  
 कृष्ण कृष्ण महाबाहो गोपालानन्दवर्द्धन ।  
 दम्पतामेव ये क्षिप्र संपराजो विषायुध ॥२२॥  
 इमे नो बान्धवास्तात त्वा मत्वा मानुष विभो ।  
 परिदेवन्ति वरुण सर्वे मानुषबुद्धय ॥२३॥  
 तच्छृत्वा रौहिणेयस्य वाक्य सज्ञासमीरितम् ।  
 विस्फीड या स्फोटयद्बाहु मित्वा तन्नागबन्धनम् ॥२४॥  
 तस्य पद्भ्यामथाक्रम्य भोगराशि जलोत्थितम् ।  
 शिरस्तु कृष्णो जग्राह स्पर्शस्तेनावनाम्य च ॥२५॥  
 तस्याहरोह सहसा मध्यम तन्महच्छिर ।  
 सोऽस्य मूर्ध्नि स्थित कृष्णो ननत्तं हचिरागद ॥२६॥  
 मृद्यमान स कृष्णेन श्रान्तमूर्द्धा भुजगम् ।  
 आस्यं सहधिरौदगारे कातरो वाक्यमब्रवीत् ॥२७॥  
 अविज्ञानान्मया कृष्ण रोषोऽय सप्रदर्शित ।  
 दमितोऽहं हतविषो वशगस्ते वरानन ॥२८॥

तभी एक भाव और एक देह के ही भिन्न स्वरूप बलराम जी ने क्रीव  
 पूर्वक धीकृष्ण से कहा—हे कृष्ण ! हे महाबाहो ! इस विषय पर शस्त्र धारि  
 नागराज को शीघ्र ही नष्ट कर डालो ॥२१॥ २२॥ क्योंकि यह मनुष्य बुद्धि वाले  
 राजवासी तुम्हें सामान्य मानुष्य जान कर कष्टपूर्वक रुदन कर रहे हैं ॥२३॥  
 बलराम जी की बात सुन कर भगवान् कृष्ण झटका देकर नागपान से निकल  
 आए ॥२४॥ फिर जल से बाहर निकले हुए कालिय के शिर पर उन्होंने एक ला  
 मारी और उसके शिर को नीचा करके उस पर चढ़ कर नृत्य करने लगे ॥२५॥  
 २६॥ इस प्रकार मस्तक पर नाचते हुए उसका मर्दन करने के कारण कालि  
 नाग सतप्त होकर मुख से रक्त झालता हुआ आत्तं स्वर में बहने लगा—हे कृष्ण  
 मैं आपको जान नहीं सका था, इसलिए क्रोध किया था, अब आपके द्वारा द  
 किया जाने पर मैं विष रहित होकर आपकी शरण में हूँ ॥२७-२८॥





२६० ]

ऊचु. सर्वे च संप्रीता नन्दगोपं यनेचरा. ।  
 धन्योऽस्यनुगृहीतोऽसि यस्य ते पुत्र ईदृशः ॥३७॥  
 अद्यप्रभृति गोपाना गवा गोष्ठस्य चानघ ।  
 आपत्सु शरण कृष्ण. प्रभुश्चायतलोचनः ॥३८॥  
 एव वै विस्मिता. सर्वे स्तुवन्ति कृष्णमव्ययम् ।  
 जग्मुर्गोपगणा घोष देवाश्चैत्ररथ यथा ॥३९॥

इस प्रकार कालियनाग का दमन करके श्रीकृष्ण विनारे पर आगये  
 सब गोपो ने उन्हें घेर कर उनकी स्तुति की और परिक्रमा करने लगे ॥३७॥  
 तब हर्ष से विस्मित हुए गोपराज नद से कहने लगे—हे गोपराज ! तुम्हारा  
 इतना महान् है, इसलिये तुम कृत्व कृत्य हो ॥३७॥ अब गोपो, गौओ तथा  
 सब ब्रजवासियों को जो सकट उपस्थित होगा, उससे विशाल नेत्र वाले हूँ  
 हमें मुक्त करेंगे ॥ ३८ ॥ फिर वे सभी ब्रजवासी भगवान् कृष्ण की ह  
 करते हुए ब्रज में इस प्रकार पहुँचे, जिस प्रकार देवगण चैत्ररथ वन को प्र  
 करते हैं ॥३९॥

॥ धेनुकासुर-वध ॥

दमिते सर्पराजे तु कृष्णे तु यमुनाह्रदे ।  
 तमेव चेरतुर्दश सहितौ रामकेशवौ ॥१॥  
 आजग्मतुस्तौ सहितौ गोधनै. सहगामिनौ ।  
 गिरि गोवर्द्धन रम्य वसुदेवसुताबुधौ ॥२॥  
 गौवर्द्धनस्योत्तरतो यमुनातीरमाश्रितम् ।  
 ददृशाते च तौ वीरौ रम्य तालवन महत् ॥३॥  
 तौ तालपर्णप्रतते रम्ये तालवने रतौ ।  
 चेरतु. परमप्रीतौ वृषपोताविवोदतौ ॥४॥  
 स तु देश. सदा स्नि  
 दभप्रायस्थलीभूतः सु

तालैस्तेविपुलस्कन्धैश्चिह्नितैः श्यामपवंभिः ।

फलाग्रशाखाभिर्भाति नागहस्तेरिवोच्छ्रितैः ॥६॥

तत्र दामोदरो वाक्यमुवाच वदता वरः ।

अहो तालफलैः पक्वैर्वासितेय वनस्थली ॥७॥

वंशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! कालीदह मे उस संपराज का दमन हो जाने पर कृष्ण-बलराम दोनों ही आनन्दपूर्वक विचरने लगे ॥१॥ एक दिन वे गौश्री को चराते हुए अत्यन्त रमणीक गिरि गोवर्धन पर जा पहुँचे ॥२॥ तब गोवर्धन के उत्तरीय यमुना किनारे पर उन्हे अत्यन्त रमणीक सरोवर दिखाई दिया ॥३॥ उद्यत गोवत्स के समान अत्यन्त सुन्दर वे दोनों भाई ताल-पत्रों से आनृत उस तालवन मे विचरण करने लगे ॥४॥ वह स्थान समतल, स्वच्छ और कुशाओ से युक्त था, वहाँ की काली मिट्टी भी और बबड़-पत्थर का कही नाम नहीं था ॥५॥ काली गाँठों वाले अत्यन्त ऊँचे तालवृक्ष हाथियों की सूँड जैसे लम्बे थे और उन पर ताल फल लद रहे थे ॥६॥ वाक् चतुर श्रीकृष्ण ने बलराम जी से कहा—इन पके हुए फलों की सुगन्ध सम्पूर्ण वन मे फैल रही है ॥७॥

स्वाङ्गन्यायं सुगन्धीनि श्यामानि रसवन्ति च ।

पक्वतालानि सहितौ पातयावो लघुक्रमौ ॥८॥

यद्येवामीदृशो गन्धो माधुर्यघ्राणतपेणः ।

सेनामृकल्पेन भवितव्यं च मे मनिः ॥९॥

दामोदरवचः श्रुत्वा रौहिणेयो हसन्निव ।

पातयन्पक्वतालानि चालयामास तास्तस्मिन् ॥१०॥

तत्तु तालवन नृणामसेव्यं दुरतिक्रमम् ।

नर्माणभूतमिरिणं पुरपादालयोपमम् ॥११॥

तारुणो धेनुको नाम दैत्यो गर्दभरूपवान् ।

अरयूयेन महता वृतः समनुसेवते ॥१२॥

तत्तु तालवन घोरं गर्दभः परिरक्षति ।

पक्षिश्चापदगणा स्नासयानः सुदुर्मतिः ॥१३॥

तालशब्दं स त श्रुत्वा सधुष्ट फलपातनात् ।  
नामर्पयत्स सकृद्धस्तालस्वनमिव द्विप ॥१४॥

जब इनकी सुगंध से ही नासिका तृप्त हो रही है तो यह भी उ  
समान अत्यन्त स्वादिष्ट होंगे । इसलिये हम इन अत्यन्त स्वादिष्ट सुगंध  
सुरम्य फलों को वृक्षों से झट्टा लें ॥५॥ श्रीकृष्ण की बात सुन कर मुत्तकारों  
हुए बलराम जो ने उन वृक्षों को हिंसा हिंसा कर बहुत-से पके हुए फल व  
पृथिवी पर गिरा लिये ॥१०॥ उस वन में मनष्यों का तो जाना भी समझ नहीं

सा भृगुदंभदेहैश्च तालः पक्वैश्च पातितः ।

वभासे छन्नजलदा द्यौरिवाव्यक्तशारदी ॥२२॥

जिधर ने फलो के गिरने की ध्वनि हुई थी, वह उधर ही अत्यन्त वेग-पूर्वक दौड़ा । उसकी रोमावली खड़ी हो गयी और नेत्र स्तब्ध हो गये, वह अपने धुरो से पृथिवी को कुरेदता हुआ यारम्बार चीत्कार कर रहा था ॥१५॥ उसने यमराज के समान मुख फैला रखा था और वह पूँछ उठाये हुए वही जा पहुँचा जहाँ बलराम जी तालवृक्ष के नीचे खड़े थे । वहाँ पहुँचते ही वह उन्हें दाँतों से फाटने लगा ॥१६-१७॥ फिर उसने बलराम जी पर दुलत्ती झाड़ने के लिये जैसे ही पैर उठाये, उन्होंने उसने पैरों को पकड़ कर घुमाया और तालवृक्ष के ऊपर दे मारा ॥१८-१९॥ जिससे उरू, कटि, घीवा, पीठ आदि भग्न हो गये, उसका मुख विकृत हो गया और वह अनेको तालफलों के सहित घराशायी हो गया ॥२०॥ अब धेनुकामुर मर कर चेष्टाहीन हो गया, सब उसके आक्रमणकारी साधियों की ही बलराम जी ने उसी के समान गति बनाई ॥२१॥ मरे हुए गधों और सड़े हुए फलों से वह स्थान मेघमय शरस्वालीन आकाश जैसा प्रतीत होने लगा ॥२२॥

## ॥ प्रलम्बासुर-वध ॥

अथ तौ जातहर्षौ तु वसुदेवसुतावुभौ ।

तत्तालवनमूत्सृज्य भूयो भाण्डीरमागतौ ॥१॥

चारयन्तौ विवृद्धानि गोघनानि शुभानि च ।

स्कीनसस्यप्ररुद्धानि वीक्षमाणी वनानि च ॥२॥

द्वेडयन्तौ प्रगमन्तौ प्रचिन्वन्तौ च पादपाद् ।

नामभिर्व्याहरन्तौ च सवत्सा गाः परंतपौ ॥३॥

नियोगपार्श्वरासक्तः स्कन्धाम्यां शुभलक्षणी ।

वनमालाऽऽकुलोरस्की बालशृङ्गाविवर्पभौ ॥४॥

सुवर्णाञ्जनचूर्णाभावन्योन्यसदृशाम्बरी ।

महेन्द्रायुचसंग्रुक्ती शुबलकृष्णाविबाम्बुदौ ॥५॥

कुशाग्रकुसुमानां च कर्णपूरी मनोरमौ ।

वनमार्गेषु कुर्वाणौ वन्यवेपथरावुभौ ॥६॥

गोवर्द्धनस्यानुचरो वने सानुचरो तु तौ ।  
चेरनुर्लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिरपराजितौ ॥७

वंशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! फिर कृष्ण-वलराम प्रसन्न होकर उस वन से भाण्डौर वन में जा पहुँचे ॥१॥ वहाँ वे गायों को चराते, वन की शोभा देखते, हाथ झटकते, गीत गाते, पुष्प चुनते और कभी गौश्री और बड़ों का नाम से-सेकर पुकारते थे ॥२-३॥ उनके हृदय पर वनमाताएँ पड़ी थीं और कम्बो पर छींके रचे हुए थे, इसलिए वे सींग उठते हुए नये वृद्धों के समान लग रहे थे ॥४॥ उनमें से एक पीताम्बर धारण किये और दूसरा नीलाम्बर धारण किये था, उन दोनों की देह पर वे वस्त्र अत्यन्त आकर्षक प्रतीत होते थे । उस समय वे काले और श्वेत वर्ण के मेघों के समान तथा कुश-मुष्पों के मानुष धारण किये हुए वनवासी-वेश में सुशोभित थे ॥५-६॥ सभी वास-वालों को साथ लिये हुए वे दोनों भाई इस प्रकार क्रीडा करते हुए समय व्यतीत कर लगे ॥७॥

तयो रमयतोरेवं तल्लिप्सुरसुरोत्तमः ।  
प्रलम्बो ह्यागमत्तत्र च्छिद्रान्वेषी तयोस्तदा ॥८  
गोपालवेषमास्थाय वन्यपुष्पविभूषितः ।  
लोभयान स तौ वीरौ हास्यं क्रीडनकंस्तथा ॥९  
सोऽवगाहत नि शकस्तेषा मध्यममानुषः ।  
मानुष वपुरास्थाय प्रलम्बो दानवोत्तमः ॥१०  
प्रक्रीडिताश्च ते सर्वे सह तेनामरारिणा ।  
गोपालवपुष गोपा मन्यमानाः स्वबान्धवम् ॥११  
सतु च्छिद्रान्तरप्रेप्सुः प्रलम्बो गोपतां गतः ।  
दृष्टिं प्रणिदधे कृष्णे रौहिणेये च दारुणाम् ॥१२  
अविपह्नां ततो भत्वा कृष्णमद्भुतविक्रमम् ।  
रौहिणेयवधे यत्नमकरोद्दानवोत्तमः ॥१३  
हरिणाक्रीडितं नाम बालक्रीडनकं ततः ।  
प्रक्रीडितास्तु ते सर्वे द्वौ द्वौ युगपदुत्पतन् ॥१४

तभी दैत्य-श्रेष्ठ प्रलम्ब वन-पुण्य धारण किये गोप-वेश में उनके पास  
 गया और अनेक प्रकार के हास-परिहास युक्त कौतुकों से उन्हें हँसित करने  
 गा ॥८-६॥ इस प्रकार वह शीघ्र ही उन ग्वाल-बालों में मिल गया, क्योंकि  
 गोप-बालों ने उसे भी अपने जैसे वेश में देखकर ग्वाला ही समझा था ॥१०-  
 १॥ उधर दैत्य श्रीकृष्ण-बलराम पर दृष्टि जमाये हुए अवसर की प्रतीक्षा  
 करने लगा, परन्तु कृष्ण को अपने सामर्थ्य से बाहर देख कर उसने बलराम को  
 भी मारने का इच्छा की ॥१२-१३॥ फिर हरिणाक्षीह नामक खेल करते हुए  
 दोनों ग्वालबाल एक साथ बड़े हुए ॥१४॥

कृष्ण श्रीदामसहित पुष्पुवे गोगमुद्रना ।

सकप्यंस्तु प्लुनवान्प्रलम्बेन सहानध ॥१५॥

गोपालास्त्वपरे द्वन्द्वं गोपालरपरं सह ।

प्रद्रुता लंघयन्तो वै तेऽप्योन्य लघुविक्रमाः ॥१६॥

श्रीदाममजयत्कृष्ण. प्रलम्ब रोहिणीसुतः ।

गोपालं कृष्णपक्षीर्यगोपालास्त्वपरे जिताः ॥१७॥

ते बाहयन्तस्त्वग्योन्य महर्पात्महमा द्रुताः ।

भाण्डीस्कन्धमुद्दिश्य मर्यादां पुनरागमन् ॥१८॥

सकप्यं तु स्कन्धेन दौघ्रमुत्क्षिप्य दानव. ।

द्रुत जगाम विमुखः सचन्द्र इव नोयदः ॥१९॥

स भारममहंस्तस्य रोहिणेयस्य धीमत. ।

ववृधे सुमहानाय. सक्राकान्त इवाम्बुदः ॥२०॥

स भाण्डीरवटप्रस्थ दग्धाञ्जनगिरिप्रभम् ।

स्व वपुर्दर्शयामास प्रलम्बो दानवोत्तम. ॥२१॥

पञ्चस्तबकयुक्तेन मुकुटेनाकवर्चसा ।

दीप्यमानाननो दैत्यः सूर्याक्रान्त इवाम्बुदः ॥२२॥

महाननो महाग्रीवः सुमहान्तकोपम. ।

रौद्राः शकटचक्राक्षो नमयंश्चरणं मेहीम् ॥२३॥

उभयं कृष्ण श्रीदामा के साथ बलराम प्रलम्ब के साथ और अन्याय

वानर अपनी अपनी जोट बना कर एक दूसरे को हराने की इच्छा से अग्रग हुए ॥१५-१६॥ इसमें कृष्ण ने सुदामा को, बलराम ने प्रणम्व का और दूसरों ने अपने विपक्षियों को हरा दिया ॥१७॥ फिर वे एक के क्रम से लड़े हुए चले गए उस विशाल वनवृक्ष के नीचे आ गये ॥१८॥ सब प्रलम्ब अपने कंधे पर बलराम को चढ़ाये हुए द्रुतगति से चन्द्रमा मुक्त बादल के समान विपरीत दिशा में जाने लगा ॥१९॥ फिर बलराम जी के भार को सहने में असमर्थ होकर उसी अपने शरीर को बड़ाया ॥२०॥ तब उसका शरीर भाण्डौर बट और नीरर्त्तनी पर्वत के समान बहुत विस्तृत हो गया ॥२१॥ अब उसके शिर पर सूर्य के समान तेजोमय मुकुट विशाल मुख, लम्बो-चोड़ी घोड़ा और गाड़ी के पहिये के समान विशाल नेत्र दिखाई देने लगे जिनके कारण वह साक्षात् यमराज जैसा भयङ्क हो गया तथा उसके चलने से पृथिवी नीचे की धसकन लगी ॥२२ २३॥

स सदिग्धमिवात्मान मेने सकर्पणस्तदा ।  
 दैत्यस्कन्धगत श्रीमान्कृष्ण चेदमुवाच ह ॥२४॥  
 ह्रियेऽहं कृष्ण दैत्येन पवतोदग्रवर्ष्मणा ।  
 प्रदशयित्वा महती माया मानुषरूपिणीम् ॥२५॥  
 कथमस्य मया कार्यं शासन दुष्चेतसः ।  
 प्रलम्बस्य प्रनुद्धस्य दर्पाद्विगुणवर्चसः ॥२६॥  
 तमाह सस्मितः कृष्ण साम्ना हर्षकुलेन च ।  
 अमिश्रो रीहिणेयस्य वृत्तस्य च बलस्य च ॥२७॥  
 अहोऽयं मानुषो भावो व्यवनमेवानुपाल्यते ।  
 मत्स्व जणन्मय देव गुह्याद्गुह्यतर गतः ॥२८॥  
 स्मर नारायणात्मानं लोकानां त्वं विपर्यये ।  
 अवगच्छात्मानाऽत्मानं समुद्राणां समागमे ॥२९॥

यह देख कर उसके कंधे पर बैठे हुए बलराम जी ने श्रीकृष्ण से कहा—  
 हे कृष्ण ! यह पर्वत के समान दैत्य मनुष्य रूप में आकर मुझे लिये जा रहा है ॥२४-२५॥ इसका शरीर भी दप से द्विगुणित हो गया है, अब इसे किस प्रकार दण्ड दूँ ? ॥२६॥ श्रीकृष्ण उनके पराक्रम को भली प्रकार जानते थे, इसलिये

ने मन्द मुक्कान के सहित बहा—हे धार्य ! आप यह मानव-भाव क्यों  
 रीत कर रहे हैं ? यथार्थ में तो आप जगदीश्वर और विश्वमय मूक्य से भी  
 १ परमात्मा हैं ॥२७-२८॥ प्रलयकाल के उत्स्थित होने पर आप समुद्र में  
 १ हैं, अपने उसी नारायण रूप की याद करिये ॥२६॥

पुरातनाना देवाना ब्रह्मण सलिलस्य च ।  
 आत्मवृत्तप्रभावाणा सस्मराद्य च वै पुनः ॥३०॥  
 यथाऽहमपि लोकाना तथा त्व तच्च मे मतम् ।  
 उभावेकशरीरी स्वी जगदर्थे द्विधा कृती ॥३१॥  
 लोकाना शाश्वतो देवस्त्व हि शेष सनातन ।  
 आवयोर्देहमात्रेण द्विधेद धार्यते जगत् ॥३२॥  
 अह य स भवानेव यस्त्व सोऽह सनातन ।  
 द्वावेव विहिती ह्वावामेव देही महाश्वी ॥३३॥  
 दशस्ते मूढवत्त्व किं प्राणेन जहि दानवम् ।  
 मूर्ध्नि देवरिपु देव वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥३४॥

सभी देवगण, ब्रह्माजी तथा जलादि पदार्थ आपके ही रूप हैं, इस बात  
 १ मत भूलिये ॥३०॥ सगरी मनुष्यों के लिये मैं और आप एक ही हैं, हम  
 नों भिन्न नहीं हैं विद्व का कल्याण करने के लिये ही हमने दो शरीर धारण  
 ये हैं ॥३१॥ आप सभी लोकों के समान देव शेष हैं और हमने एक ही देह  
 दो भाग करके इस विद्व को धारण किया हुआ है ॥३२॥ जो आप हैं, वही  
 हैं, हम दोनों एक शरीर के ही दो अंग हैं ॥३३॥ ऐसा स्मरण करके आप  
 १ नी वज्र के समान मुष्टिका के प्रहार से इस पापी का मस्तक तोड़ दीजिये ॥३४॥

संस्मारितस्तु कृष्णेन रौहिणेय पुरातनम् ।  
 वलेनापूर्यत तदा त्रलोकयान्तरचारिणा ॥३५॥  
 तत प्रलम्ब दुर्वृत्ता बुबुधे स महाभुज ।  
 मुष्टिना वज्रकल्पपेत मूर्ध्नि चैन समाहनत् ॥३६॥  
 १ तस्योत्तमाङ्गे स्वे कार्ये विवपाल विवेश ह ।  
 जानुभ्या चाहत शीते गतामुर्दानवोत्तम ॥३७॥



जगत्या मिप्रतीर्णस्य तस्य रूपमभूत्तदा ।  
 प्रलम्बस्थाम्बरस्यस्य मेघस्यैव विदीर्यत ॥३८॥  
 सनिहत्य प्रनम्य तु सह य बलमात्मन ।  
 पयध्वजत वै कृ ण रौहिणेय प्रनापवान् ॥३९॥  
 त तु कृष्णश्च गोपाश्च दिावस्थाश्च दिवौत्स ।  
 तष्ट्वुनिहते दैत्ये जयाशीभिर्महाबलम् ॥४०॥  
 बलेनाय हतो दैत्यो बालेनाक्लिष्ठकमणा ।  
 विवदन्त्यशरीरिण्यो वाच सुरसमीरिता ॥४१॥  
 बलदेवेति नामास्य देवैरुक्त दिवि स्थित ।  
 बल तु बलदेवस्य तदा भुवि जना विदु ।  
 प्रनम्ये निहते दैत्ये देवैरपि दुरासदे ॥४२॥

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् । श्रीकृष्ण द्वारा स्मरण कराये जाने पर बलराम जी की देह में महान् बल वृद्धि हो गई ॥३५॥ फिर बलराम जी ने प्रलम्ब के निर पर अपनी वज्र के समान कठोर मुष्टिका से प्रहार किया ॥३६॥ मुक्का लगने ही उसका मस्तक शरीर के भीतर घुस गया और उनकी सात के प्रहार से उसका जीवन समाप्त हो गया ॥३७॥ उस समय पृथिवी पर सेटा हुआ वह दैत्य आकाशस्य मेघ जैसा सुशोभित हो रहा था ॥३८॥ इस प्रकार प्रलम्ब को मार कर प्रतापी बलराम जी श्रीकृष्ण के पास आये । उस समय श्रीकृष्ण ने उनका आनिमन किया और सभी गोप तथा आकाश में स्थित देवता उनकी वज्र धोते हुए स्तुति करने लगे ॥३९॥ असंख्यकर्म बलरामजी ने दैत्यों को मार डाला इस प्रकार की चर्चा देवगण परस्पर कर रहे थे ॥४०॥ देवताओं द्वारा न मारा जा सकने वाला वह दैत्य बलराम जी के द्वारा मारा गया था इसीलिये देवताओं ने उनको 'बलदेव' नाम से प्रसिद्ध किया और सभी से सभी ससारीजन उनके बल और प्रभाव को जान गये ॥४२॥

॥ गोपो द्वारा इन्द्रोत्सव कथन ॥

तमो प्रवृत्तयोरेव कृष्णस्य च बलस्य च ।

वने वचरतामसी व्यतिपातो स्म वार्षिकी ॥१॥

व्रजमाजग्मतुस्तौ तु व्रजे शुश्रूवतुस्तदा ।  
 प्राप्त शक्रमह वीरो गोराश्चोत्सवलातसान् ॥२॥  
 कोतूहलादिद वाक्य कृष्ण प्रोवाच तत्र तान् ।  
 कोऽय शक्रमहो नाम येन वो हर्षं आगत ॥३॥  
 तत्र वृद्धतमस्त्वेको गोपो वाक्यमुवाच ह ।  
 श्रूयता तात शक्रस्य यदर्थं ध्वज इज्यते ॥४॥  
 देवानामीश्वर शक्रो मेघाना चारिसूदन ।  
 तस्य चाय मख कृष्णलोकनाथस्य शाश्वत ॥५॥  
 तेन सचोदिता मेघास्तस्य चायुधभूषिता ।  
 तस्यैवाज्ञाकरा सस्य जनयन्ति नवाम्बुभि ॥६॥

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! इस प्रकार वन में विचरण करते  
 ए कृष्ण बलराम के वर्षा-रानी दो मास व्यतीत हो गये ॥१॥ फिर उन्होंने  
 जल में आकर सभी गोपों को इन्द्र पूजन महात्म्य की तैयारी करते हुए देखा  
 ॥२॥ तब श्रीकृष्ण ने उनसे पूछा—आप जिस इन्द्र पूजन के लिये इतने  
 तैयार हो रहे हैं—यह इन्द्र पूजन कैसा है ? ॥३॥ यह सुनकर एक वृद्ध  
 गोप ने कहा—इन्द्र-पूजन का विधान किसलिये है यह बात तुम्हें बताता हूँ  
 गो ॥४॥ इन्द्र सभी देवताओं और मेघों के अधिपति हैं, उन्हीं के पूजन के  
 लिये यह उत्सव हो रहा है ॥५॥ उन्हीं की प्रेरणा से मेघ जल वृष्टि करते हुए  
 जल को बढ़ाते हैं ॥६॥

मेघस्य पयसो दाता पुरुहूत पुरंदर ।  
 सप्रहृष्टस्य भगवान्प्रीणयत्यखिल जगत् ॥७॥  
 तेन सम्पादित सस्य वयमन्ये च मानवा ।  
 महोत्सव प्रयुञ्जानास्तर्पयामश्च देवता ॥८॥  
 मण्डयतीव देवेन्द्रो विश्वमेव नमो घनै ।  
 ववचिच्छीकरमुक्ताभ कुरुते गगन घनै ॥९॥  
 एवमेतत्पयो दुग्ध गोभि सूर्यस्य वारिद ।  
 पर्जन्य सर्वभूताना भवाय भुवि वर्षति ॥१०॥

यस्मात्प्रावृडियं कृष्ण शक्रस्य भुवि भाविनी ।  
तस्मात्प्रावृषि राजानः सर्वे शक्रं मुदा युताः ।  
महै. सुरेशमर्चन्ति वयमन्ये च मानवाः ॥११

वे मेघ इन्द्र के आज्ञाकारी होकर उन्हीं से जल प्राप्त करते हैं । पर  
इन्द्र प्रसन्न हो जाते हैं तब वे सब ब्रह्माण्ड को सृष्ट कर रहे हैं ॥७॥ उन्हीं की  
कृपा से अन्न उपजता है और हम सभी देहधारी उन्हीं के द्वारा जीवन प्राप्त  
करते हैं, इसी लिये इस महोत्सव द्वारा हम उन्हें प्रसन्न किया करते हैं ॥८॥  
उन्हीं इन्द्र के प्रभाव से आकाश मण्डल मेघों से आच्छादित होकर जलरूपी द्रुप  
से पृथिवी को सम्पन्न करता है ॥९-१०॥ इन्द्र द्वारा वृष्टि करने के कारण ही  
सब राजागण आनन्दपूर्वक इन्द्रोत्सव मनाते हैं, हम भी उसी परम्परा के द्वारा  
इनका आयोजन कर रहे हैं ॥११॥

## ॥ श्रीकृष्ण का गोवर्धनोत्सव ॥

गोपवृद्धस्य वचनं श्रुत्वा शक्रपरिग्रहे ।  
प्रभावशोऽपि शक्रस्य वाक्यं दामोदरोऽब्रवीत् ॥१  
वर्यं वनचरा गोपा. सदा गोघनजीविनः ।  
गावोऽस्मद्देवतं विद्धि गिरयश्च वनानि च ॥२  
पर्यवाणा कृषिवृत्ति. पण्यं विपणिजीविनाम् ।  
गावोऽस्माकं परा वृत्तिरेतन्नेविद्यमुच्यते ॥३  
विद्याया यो यथा युक्तस्तस्य सा देवत परम् ।  
सर्वं पूज्याऽर्चनीया च सर्वं तस्योपकारिणी ।  
योऽन्यस्य फलभजनानः करोत्यन्यस्य सत्कृत्याम् ॥४  
द्रावणयोः स लभते प्रेत्य चेह च मानवः ।  
बुध्यन्ता प्रथिता सीमा सीमाञ्च प्रथित वनम् ॥५  
वनान्ता गिरयः सर्वे सा पात्माकं गतिर्धुंवा ।  
श्रूयन्ते गिरयश्चापि वनेऽस्मिन्नामरूपिणः ॥  
प्रविश्य सारनाम्ननयो रमन्ते स्वेषु सानुषु ॥६

भूत्वा विसरिण सिंह व्याघ्राश्च नखिना वरा ।  
वनानि स्वानि रक्षन्ति त्रासयन्तो वनच्छिद ॥७  
यदा चंपा विबुवंन्ति ते वनालयजीविन ।  
धनन्ति तानेव दुर्वृत्तान्पीरुपादेन कर्मणा ॥८

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् इन्द्र के प्रभाव को श्रीकृष्ण भी भले प्रकार जानते थे, परन्तु उस वृद्ध की बात सुनकर उन्होंने कहा—हमारी जीविका तो गोधन से चलती है, इसलिये हमारे देवता भी पर्वत, वन और गौर् ही हैं ॥१२॥ हृषिकी की जीविका खेतों से और वैश्यों की जीविका व्यापार से है वैसे ही हमारी जीविका का साधन गोधन है । विद्या-साधक का विद्याही आराध्य है और वह उसी का पूजन करता है । अथवा जो लोग किसी एक देवता के द्वारा जीविका प्राप्त करके अन्य देवता का पूजन करते हैं, उन्हें इहलोक और परलोक दोनों में ही सुख नहीं मिलता । कृषि की सीमा खेत है, खेत की सीमा वन और वन की सीमा पर्वत है, इसलिये पर्वत ही हमारी गति है । व पर्वत ही इच्छानुसार विविध रूपों को धारण कर बदराओ में विचरते रहते हैं ॥१६॥ वे कभी सिंह और कभी व्याघ्र का रूप धारण कर वनों को नष्ट करने वाले जीवों को डराते हुए वनों की रक्षा करते हैं ॥७॥ वनों में विघ्न उपस्थित करने वाले दुराचारिया ही राक्षस के समान क्रूर बन कर समाप्त कर देते हैं ॥८॥

मन्त्रयज्ञपरा विप्रा सीतायज्ञाश्च कर्षका ।  
गिरियज्ञास्तथा गोपा इज्योऽस्माभिर्गिरिवने ॥९  
तन्मह्य रोचते गोपा गिरियज्ञ प्रवर्त्तताम् ।  
कर्म कृत्वा सुखस्याने पादपेष्वथ वा गिरी ॥१०  
तत्र हत्वा पशून्मेघ्यान्वितत्यायतने शुभे ।  
संवंधोपस्य सदोहं क्रियता किं विचार्यते ॥११  
त शरत्कुसुमापीडा परिवार्य प्रदक्षिणम् ।  
गावो गिरिवर सर्वास्ततो यान्तु पुनर्ब्रजम् ॥१२  
प्राप्ता किलेय हि गवा स्वादुतोयतृणा गणं ।  
शरत्प्रभुदिता रम्या गतमेघजलाशया ॥१३

प्रियकै पुष्पितैगौर श्याम वाणासनं ववचित् ।  
 कठोरतृष्णमाभ नि निर्मययूरस्त वनम् ॥१४  
 विजला विमला व्योम्नि विवलाका विविद्युतः ।  
 विवद्वन्ते जलधरा विदन्ता इव कुञ्जरा ॥१५  
 पटुना मेघनादेन नवतोयानुकर्षिणा ।  
 पर्णोत्करघना सर्वे प्रसाद यान्ति पाटपा ॥१६  
 सितवर्णाम्बुदोष्णीप हसचामरवीजितम् ।  
 पूर्णचन्द्रामलच्छत्र साभिपेकमिवाम्बरम् ॥१७

ब्राह्मण भक्त्यज्ञ और कृपक हल के अग्रभाग से कृषि यज्ञ करते हैं तथा हम गोपों को गिरियज्ञ का विधान है, इसलिये हमें वही करना चाहिये ॥१४॥ मेरे मत में तो गिरियज्ञ का आयोजन कर पवित्र बलि आदि के द्वारा पशु का पूजन करिये ठीक समय व्यतीत नहीं करना चाहिये कहिये आपका क्या विचार है । ॥१०-११॥ शरद् ऋतु के पुष्पो की माला से सुशोभित गौश्री, द्वारा गिरिराज की परिक्रमा करके उन्हें वनों में चरने के लिये छोड़ दीजिए ॥१२॥ अब शरद् ऋतु आगई है जन, तृण आदि स्वादिष्ट होगये, आकाश स्वच्छ होगया और धरती का जल सूखने लगा है ॥१३॥ वनस्पती भी कण्ठवादि पुष्प गुच्छों से परिपूर्ण हैं घास परिपक्व होगई हैं और वनों में मोरों की बोली सुनाई नहीं देनी है ॥१४॥ जल, वज्र और बिजली ॥ बिहीन में बिना दाँत के हाथी के समान आकाश में घूम रहे हैं ॥१५॥ नदीन जल व शोषण करने वाले वृक्ष पत्तों से लद कर फूल उठे हैं और ऐसा लगता है । आकाश बादलों का मुकुट, हथों का चँवर तथा स्वच्छ चंद्रमा का छत्र धार करके राज सिंहासन पर बैठा हो ॥१६-१७॥

नून सिदशभूयिष्ठ मेघवालसुखोपितम् ।  
 पतत्रिकेतन देव बोधयन्ति दिवोवस ॥१८  
 शरद्यैव सुसस्याया प्राप्ताया प्रावृष क्षये ।  
 नीलचन्द्रार्कवर्णश्च रचित बहुभिर्द्विजं ॥१९

फलं प्रवालेश्च घनमिन्द्रचापघनोपमम् ।  
 भवनाकारविटप लतापरममण्डितम् ॥२०॥  
 विशालमूलावनत पवनाभोगमण्डितम् ।  
 अर्चयामो गिरि देव गाश्चैव सविशेषतः ॥२१॥  
 सावतसंविषाणंश्च बर्हिषीडंश्च दक्षितं ।  
 घण्टामिश्रं प्रलम्बाभि पुष्पैः शारदिकंस्तथा ॥२२॥  
 शिवाय गाव पूज्यन्ता गिरियज्ञ प्रवर्त्यताम् ।  
 पूज्यन्ता त्रिदशै शक्रो गिरिरस्मामिरिज्यताम् ॥२३॥  
 कारयिष्यामि गोयज्ञ क्त्वाऽपि न सशयः ।  
 यद्यस्ति मयि व प्रीतिर्यदि वा सुहृदो वयम् ॥२४॥  
 गावा हि पूज्याः सतत सर्वेषां नात्त सशयः ।  
 यदि साम्ना भवेत्प्रीतिर्भवता वैभवाय च ।  
 एतन्मम दक्षस्तथ्य क्रियतामविचारितम् ॥२५॥

वर्षाकाल में सोये हुए मगवान् विष्णु की सब देवता एकत्रित होकर इसी समय जगाते हैं ॥१८॥ वर्षा समाप्त होकर शरद् ऋतु आगई है, चेतों में अन्न परिपक्व होगये हैं, विविध वृक्षों के पक्षियों और पुष्पा से सुगोमित पर्वत इन्द्र धनुष युक्त बादल जैसे दिखाई दे रहे हैं । पर्वत पर वृक्षों की छाँटें घर के समान विस्तृत होकर नीचे तक झुक गई हैं, इसलिये हमें गोओं की सजा कर इन पर्वत देवता का पूजन करना ही उचित है ॥२६-४१॥ अब आप गोओं का सर्वांग में विभूषित कर, कठ में घटा आदि धारण करा कर गिरिराज का पूजन आरम्भ करें । देवता अपने इन्द्र को पूजें और हम इस पर्वत का पूजन करें ॥१६-२३॥ यदि आप मृग पर स्नेह करते और मुझे अपना शुभ चिन्तक मानते हैं तो मेरे आप्रह से आपको यह गोयज्ञ करना होगा ॥२४॥ गोएँ सदा ही सब की पूजनीय हैं, यदि आपके मन में कोई सशय न हो तो लोक हित के लिये इस यज्ञ को आरम्भ कीजिये ॥२५॥

॥ गोपों द्वारा गोवर्धन पूजन ॥

दामोदरवच श्रुत्वा हृष्टास्ते गोषु जीविन ।  
 तद्वागमृतमश्नाना प्रत्यूचुरविशङ्कया ॥१॥  
 तवैषा बाल महती गोपाना हर्षवर्द्धिनी ।  
 प्रीणयत्येव न सर्वान्वृद्धिर्वृद्धिकरी नृणाम् ॥२॥  
 त्व गतिस्त्व रतिश्चैव त्व वेत्ता त्व परायणम् ।  
 भयेष्वभयदस्त्व नस्त्वमेव सुहृदा सुहृत् ॥३॥  
 त्वत्कृते कृष्ण घोषोऽय क्षेमी मुदितगोकुल ।  
 कृत्स्नो वसति शान्तारिम्यथा स्वर्गं गतस्तथा ॥४॥  
 जन्मप्रभृति कर्मैतदेवैरसुकर भुवि ।  
 बोद्धव्याच्चाभिमानाच्च विस्मितानि मनासि न ॥५॥  
 बलेन च परार्घ्येन यशसा विक्रमेण च ।  
 उत्तमस्त्व च मर्त्येषु देवेष्विव पुरंदर ॥६॥  
 प्रतापेन च तीक्ष्णेन दीप्त्या पूर्णतयाऽपि च ।  
 उत्तमस्त्व च मर्त्येषु देवेष्विव दिवाकर ॥७॥

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् । श्रीकृष्ण के ऐसा बहने पर गोपजन ने पुलकित और निराश चित्त से कहा ॥१॥ हे वत्स ! तुम्हारे बचन से हम अत्यन्त आनन्दित हुए हैं, तुम्हारे अनुसार चलने पर हमारी वृद्धि ही होगी ॥२॥ तुम हमारी गति, भविष्य, भक्ति, कर्म और शुभाशुभ के ज्ञाता, अमरदाता एवं उपकारी सुहृद हो ॥३॥ तुम्हारे ही प्रताप से यह गोपराज और सब स्वर्गीय गुणों की भोग रहा है । तुम्हारे दुष्कर बाणों, असौमित्र बल, स्वयं कीर्ति और विगिष्ट पराक्रम को देख-देख कर हमें आश्चर्य होता है ॥४॥ ५॥ देवताओं । इन्द्र के श्रेष्ठ होने के समान ही तुम अपने पराक्रम, यश और विवेक से सब मनुष्यों में श्रेष्ठ हो ॥६॥ जैसे दीप्ति, पूर्णता और प्रताप में सूर्य सब से श्रेष्ठ माने जाते हैं, वैसे ही मनुष्यों में तुम सर्वश्रेष्ठ हो ॥७॥

स्वयामिहित वाक्य गिरियज्ञ प्रति प्रभो ।

‘रत्नलङ्घयितुं’ पत्तो विसामिव महोदधि ॥८॥

स्थितः शक्रमहस्तात श्रीमान्गिरिमहस्त्वयम् ।  
 त्वत्प्रणीतोऽद्य गोपानां गवां हेतो प्रवर्त्यताम् ॥६॥  
 भोजनान्युपकल्प्यन्तां पयसः पेशलानि च ।  
 कुम्भाश्च विनिवेश्यन्तामुदणनेषु शोभनाः ॥१०॥  
 पूर्यन्तां पयसा नद्यो द्रोण्यश्च विपुलायताः ।  
 भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च तत्सर्वमुपनीयताम् ॥११॥  
 आनन्दजननो घोपो महान्मुदितगोकुलः ।  
 त्र्यप्रणादघोषैश्च वृषभाणां च गर्जितः ॥१२॥  
 हम्भारवश्च वत्सानां गोपाना हर्षवद्ध नः ।  
 दध्नो हृदो घृतावर्तः पय कुल्यासमाकुलः ॥१३॥  
 संप्रावर्तत यज्ञोऽस्य गिरेर्गोभिः समाकुलः ॥१४॥

{ हे प्रभो ! तुम्हारा आदेश कभी भी उल्लंघन करने योग्य नहीं रहा तो मैं गिरियज्ञ के तुम्हारे अनुरोध को कौन स्वीकार न करेगा ? ॥८॥ इसलिये, अब महोत्सव न करने और गोप तथा गौओं के कल्याणार्थ तुमने जिस गिरियज्ञ करने का निर्देश किया है, वही अब आरंभ होना ॥९॥ दूध से भोजन तैयार करके पीने का श्रेष्ठ जल कलशों में भर कर रखा जाय ॥१०॥ कल्पित नदियों में दूध से परिपूर्ण करके सब प्रकार के भक्ष्य, भोज्य और पेय पदार्थ एकत्र किये जाय ॥११॥ ऐसा करने से गोपो और गौओं में आनन्द छा जायगा और पुरही तथा बंसों के गर्जन और बध्नों के निनाद से ब्रजभूमि हर्षित हो उठेगी । पुरही के सरोवर, घृत के कुए और दूध की कृत्रिम नदियाँ भर कर अन्नादि का ढेर पर्वत बनाया जाय । हे राजन् ! इसके अनुसार सब सामान एकत्र होगया और गिरियज्ञ का आरम्भ हुआ । कुछ देर में ही वहाँ गोप, गोपियाँ और गौओं का विशाल समाज दिखाई देने लगा ॥१२-१३-१४॥

तुष्टगोपसमाकीर्णो गोपनारीमनोहरः ।  
 भक्ष्याणां राशयस्तत्र शतशश्चोपकल्पिताः ।  
 गन्धमाल्यैश्च विविधैर्घृपैरुच्चावचैस्तथा ॥१५॥



अथाधिशृतपयन्ते सप्राप्ते यज्ञसविधौ ।  
 यज्ञ गिरे स्थितौ सोम्ये चक्रुर्गोपा द्विर्ज सह ॥१६॥  
 यजनान्ते तदन्त तु पत्नयो दधि चोत्तमम् ।  
 पथ च मायया कृष्णो गिरिभूत्वा समश्नुते ॥१७॥  
 तपिताश्चापि विप्राग्र्यास्तुष्टा सपूर्णमानसा ।  
 उत्तस्थु प्रीतमनस स्वस्ति वाच्य यथासुखम् ॥१८॥  
 भुवत्वा चावभृथे कृष्ण पय पीत्वा च कामत ।  
 सतृप्नोऽस्मीति दिव्येन रूपेण प्रजहास वै ॥१९॥  
 स गोपा पर्वताकार दिव्यस्नगनुलेपनम् ।  
 गिरिर्मूर्ध्नि स्थित दृष्ट्वा कृष्ण जग्मु प्रधानत ॥२०॥  
 भगवानपि तेनैव रूपेणाच्छादित प्रभु ।  
 सहित प्रणतो गोपैर्वन्द्यत्मानमात्मना ॥२१॥

यज्ञ स्थल के पास ही अग्नि स्थाली, चरम्याली विविध प्रकार के भक्ष्य  
 सुगन्धित द्रव्य पुष्पमाला और धूप आदि सामग्री एकत्र कर रक्खी गई ॥१६॥  
 फिर शुभ मुहूर्त में गिरिवज्र आरम्भ किया गया ॥१६॥ अब यज्ञ काय सम्पन्न  
 होगया तब श्रीकृष्ण ने अपनी माया से गोवर्धन रूप धारण किया और सभी  
 अर्पित सामग्री का भोग लगाने लगे ॥१७॥ थोड़े ब्राह्मणों ने भोजन से तृप्त  
 होकर स्वस्ति वाचन किया और गोवर्धन रूप धारी कृष्ण भी इच्छानुसार  
 भोजन करके दिव्य हँसी हँसने लगे ॥१८॥ १९॥ गिरिराज रूप धारी कृष्ण को  
 गोपों ने प्रणाम किया तथा कृष्ण रूप से उन्होंने भी अपने गिरि रूप को प्रणाम  
 किया ॥२०॥ २१॥

तुमुर्चुर्विस्मता गोपा देव गिरिवर स्थितम् ।  
 भगवस्त्वद्वशे युक्ता दासा किं कुमं किकरा ॥२२॥  
 स उवाच ततो गोपान्गिरिप्रभवया गिरा ।  
 अद्यप्रभूतिं चज्योऽह गोपु यद्यस्ति वा दया ॥२३॥  
 अहं व प्रथमो देव सर्वकामकर शुभ ।  
 मम प्रभावाच्च गवामयुतान्येव भोक्ष्यथ ॥२४॥

शिवश्च वो भविष्यामि मद्भक्ताना वने वने ।

रस्ये च सह युष्माभिर्यथा दिविगतस्तथा ॥२५॥

ये चेमे प्रथिता गोपा नन्दगोपपुरोगमा ।

एपा प्रीत प्रयच्छामि गोपाना विपुल धनम् ॥२६॥

पर्याप्नुवन्तु क्षिप्र भा गावो वत्ससमाकुला ।

एव मम परा प्रीतिर्भविष्यति न सशय ॥२७॥

उम समय विस्मित हुए गोपो ने पवन पर विराजमान देव से निवेदन किया—हे भगवन् ! हम आपके आज्ञाकारी सबक हैं, हम अब क्या करें सो आज्ञा करिये ? ॥२२॥ तब पर्वत रूपधारी भगवान् बोले—हे गोपो ! यदि तुम अपनी गौओं के प्रति दया रखते हो तो आज से मेरा ही पूजन करना ॥२३॥ क्योंकि मैं ही तुम्हारे मनोरथों को पूर्ण करने वाला हूँ, मेरी ही कृपा से तुम सैकड़ गौओं वाले होकर वनों में विचरोगे ॥२४॥ मैं ही तुम्हारा सब प्रकार से हत कलंगा और स्वर्ग के समान ही यहाँ भी तुम्हारे साथ निवास करता हुआ जब गोपो की बहुत सा धन दूँगा ॥२५-२६॥ अब शीघ्र ही मेरे सामने सभी त्वत्स गौएँ लाई जायें, जिन्हें देख कर मुझे अत्यन्त आनन्द होगा ॥२७॥

ततो नीराजनार्यं हि वृन्दशो गोकुलानि तम् ।

परिवत्रुर्गिरिवर सवृपाणि समन्तत ॥२८॥

सा गाव प्रद्रुता हृष्टा सापीडस्तवकाङ्क्षदा ।

सस्रजापीडशृङ्गाग्रा शतशोऽथ सहस्रश ॥२९॥

अनुजम्भुश्च गोपाला कालयन्तो धनानि च ।

भक्तिच्छेदानुलिप्ताङ्गा रक्तपीतसिताम्बरा ॥३०॥

मयूरचिह्नाङ्गदिनो भुजं प्रहरणावृतं ।

मयूरपत्रवृत्ताना केशवन्धे सुयोजितं ॥३१॥

वभ्राजुरधिक गोपा समवाये तदाऽद्भुते ।

अन्ये वृपानारुहन्त्यन्ति स्म नरे मुदा ॥३२॥

गोपालास्त्वपरे गाश्च जगृहुर्वेगगामिन ।

तस्मिन्पर्यायिनिवृत्ते गवा नीराजनोत्सवे ॥३३॥

अन्तर्धानि जगामाशु तेन देहेन सोऽचल ।  
 कृष्णोऽपि गोपसहितो विवेश व्रजमेव ह ॥३४॥  
 गिरियज्ञप्रवृत्तेन तेनाश्रयेण विस्मिता ।  
 गोपा सवालवृद्धा वै तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ॥३५॥

तदनन्तर भगवान् की प्रसन्नता के लिये बंसी सहित बसन्त गाये वहाँ जा  
 गई। उन्होंने उस गिरि गोवर्धन को सब ओर से घेर लिया ॥३४॥ वे संकड़ों हुए  
 सस्यक गोएँ वनमाला आदि से विभूषित हो रही थी ॥३५॥ उन गौओं की  
 बश में रखने के लिये गोपगण उनसे पीछे-पीछे दौड़ते थे। वे गोप भी मुक्ति  
 द्रव्यों और रंग विरंगे वस्त्रों से सुसज्जित थे ॥३६॥ वे अपने हाथों में मोर पंखों  
 के आभूषण और वास्त्रास्त्र धारण किये हुए थे और उन्होंने अपने केशों में मो  
 मोर पंख लगा रखे थे ॥३७॥ इस प्रकार असंख्य गोपों की उपस्थिति से श  
 . निमित्त-शोभा लगे उड़ी-गी, कुछ गोप-जैतों पर जल गये थे, कुछ गज रहे  
 और कुछ भागती हुई गौओं को रोक रहे थे। इस प्रकार गोवर्धन की परिष्क  
 कार्य पूरा हो जाने पर गिरिराज की वह साक्षात् मूर्ति अन्तर्धान हो गई व  
 फिर श्रीकृष्ण भी सब गोपों के साथ व्रज में लौट आये ॥३८॥ ३९ ॥ गिरि-रा  
 के उस अद्भुत समारोह से आश्चर्यचकित हुए सभी व्रजवासी भगवान् मधुसू  
 का स्तुति करने लगे ॥३५॥

॥ श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्धन धारण ॥

महे प्रतिहते श्रीक सक्त्रोघस्त्रिदशेश्वर ।  
 सावर्त्तक नाम गण तोयदानामथाव्रवीत् ॥१॥  
 भो वनाहकमातङ्गा श्रूयता मम मापितम् ।  
 यदि वो मत्प्रिय कार्यं राजभवितपुरस्कृतम् ॥२॥  
 एत वृन्दावनगता दामोदरपरायणा ।  
 नन्दमापादयो गोपा विद्विषन्ति ममोत्सवम् ॥३॥  
 आजीवो य परस्तेषा गोपत्वं च यत स्मृतम् ।  
 तौ गाव सप्तरात्रेण पीड्यन्ता वर्षमास्तं ॥४॥

एरावतगतश्चाह स्वयमेवाम्बु दारुणम् ।  
 सक्षयामि वृष्टि वात च वज्राशनिसमप्रभम् ॥५॥  
 भवद्भिश्चण्डवर्षेण चरता मारुतेन च ।  
 हतास्ता मवृजा गावस्त्यक्ष्यन्ति भुवि जीवितम् ॥६॥  
 एवमाजापयामास सर्वाञ्जलघरान्प्रभु ।  
 प्रत्याहृते वै कृष्णेन दासने पाकशासन ॥७॥

वैशम्पायन जी ने कहा—ह राजन् ! इस प्रकार श्रीकृष्ण द्वारा इन्द्र ज के रोक देने से कुपित हुए इन्द्र न सवतकादि मुख्य मुख्य भेषों को अपने स बुला कर कहा ॥१॥ ह भेषमण ! यदि तुममे राजभक्ति हो और मेरी आज्ञा का पालन करने वाले हो तो भरे वस्त्र को सुनो ॥२॥ कृष्णभक्त गोपों वृन्दावन में जाकर मरे यज्ञ को नहीं किया है ॥३॥ इसलिये उनके जीवन रूप गोआ को सत रात्रि तक जल और आँवी के बग से महा सतप्त करो ४॥ मैं भी अपने ऐरावत पर चढ़ कर वहाँ आ रहा हूँ और उस गजनेशील पण वायु तथा वर्षा का भली प्रकार संचालन करूँगा ॥५॥ इस प्रकार वर्षा और वायु के प्रकोप से वे सवत्सा गौएँ विनाश को प्राप्त होंगी ॥६॥ कृष्ण द्वारा ऋ-यज्ञ न करने पर कुपित हुए देवराज न यह आज्ञा दी ॥७॥

ततस्ते जलदा कृष्णा घोरनादा भयावहा ।  
 आकाश छादयामासु सर्वत पर्वतोन्मत्ता ॥८॥  
 विश्वरूपपातजनना शक्रवापविभूषिता ।  
 तिमिरावृन्माकाश चक्रुस्ते जलदास्तदा ॥९॥  
 गजा इवान्प्रसयुक्ता केचिन्मकरवर्चसा ।  
 नागा इवान्ये गगने चेरुर्जलदपुङ्गवा ॥१०॥  
 तेऽप्योऽन्य वपुषा बद्धा नागयूयायुतोपमा ।  
 दुर्दिन विपुल चक्रुश्छादयन्तो नभस्तलम् ॥११॥  
 नहस्तनागहस्ताभ्या वेणूना चैव स्रजं ।  
 धाराभिस्तुल्यरूपाभिर्वदपुम्ते बभूवुः ॥१२॥

समुद्रं मेनिरे तं हि खमारूढं नृचक्षुषः ।

दुर्विगाह्यमपर्यन्तमगाधं दुर्दिनं महत् ॥१३

नैवापतन्वे खगमा दुद्रुवुर्मुग्जातयः ।

पर्वताभेषु मेघेषु खे नदत्सु समन्ततः ॥१४

तभी के पर्वताकार भीषण मेघ घोर गजन करते हुए आकाश में पड़े गये ॥१३॥ तभी सहसा आकाश में इन्द्र धनुष प्रकट हो गया, बिजली गिरने लगी और घोर अघकार छा गया ॥१४॥ हाथियों के यूँ जैसे, मकराकृति वाले एवर्ष की तरह लहराते हुए मेघ आकाश में मँडराने लगे ॥१५॥ दस हजार हाथियों के झुण्ड के समान एक दूसरे से भिड़े हुए मेघ भयंकर रूप से बरसने लगे ॥१६॥ वे मनुष्य के हाथ के समान हाथी की सूँड जैसी तथा बाँस जितनी मोटी जलधाराओं को गिराने लगे ॥१७॥ उस समय ऐसा प्रतीत होने लगा कि अगाध जलवाला महासागर ही आकाश पर पहुँच गया हो ॥१८॥ सब ओर भीषण गर्ज ही सुनाई पड़ने लगा, आकाश में एक भी पक्षी दिखाई नहीं देता था और मृत के समूह भयभीत होकर इधर-उधर भाग रहे थे ॥१९॥

नष्टसूर्येन्दुसदृशैर्मैघैर्नभसि दारुणैः ।

अतिवृष्टेन लोकस्य विरूपमभवद्गु ॥१५

मेघोधनिष्प्रभाकारमदृश्यग्रहतारकम् ।

चन्द्रसूर्याशुरहितं ख वभूवातिनिष्प्रभम् ॥१६

वारिणा मेघमुक्तेन मुच्यमानेन चासक्तम् ।

आवभी सर्वतस्तत्र भूतिस्तोयमयी यथा ॥१७

विनेदुर्वहिणस्तत्र लोकवल्परुताः खगाः ॥

विवृद्धि निम्नगा याताः प्लवगाः सप्लवं गताः ॥१८

गवा तत्कदन दृष्ट्वा दुर्दिनागमज महत् ।

गोपाश्चासन्ननिघनान्कृष्णः कोपं समादधे ॥१९

स चिन्तयित्वा संरब्धो दृष्टोपापो भयेति च ।

आत्मानमात्मना वाक्यमिदं मूचे प्रियंवदः ॥२०

अथाहमिममुत्पाट्य सकाननवनं गिरिम् ।

कल्पयेयं गवां स्थानं वर्षाणाय दुद्धरम् ॥२१॥

सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्रों के दर्शन भी नहीं थे, इस प्रकार भीषण वर्षा ने सभी मलीन हो गये ॥१५॥ सूर्य, चन्द्रादि के लुप्त होने में आकाश में अघकार छा गया ॥१६॥ निरन्तर मूसलाधार वृष्टि होने से पृथिवी सब ओर जलमयी दिखाई देने लगी ॥१७॥ नदियों में बाढ़ आ गई, सरोवर उमड़ पड़े और जल के वेग से नदी किनारे के वृक्ष उलड़-उलड़ कर गड़ गये ॥१८॥ वर्षा के कारण गौओं और गोपों को नष्ट होते देख कर श्रीकृष्ण ने मन ही मन विचार किया कि 'वनो के सहित गोवर्धन पर्वत को उखाड़ कर इन सबको इसके नीचे धारण दी जाय' ॥१६-२०-२१॥

अथ धृतो मया शैलः पृथ्वीगृह्णन्भीषमः ।

सास्यते सत्रजा गा वै मद्वश्यश्च भविष्यति ॥२२॥

एव सञ्चिन्तयित्वा तु कृष्णः सत्यपराक्रमः ।

बाह्वोर्ध्वं दशयिष्यन्समीपं तं महीधरम् ॥२३॥

दोऽर्धमुत्पाटयामास कृष्णो गिरिरिचापरः ।

स धृतः सङ्गतो मेघैर्गिरिः सव्येन पाणिना ।

गृह्णामां गतस्तत्र गृहाकारेण वचंसा ॥२४॥

भूमेरुत्पत्त्यमानस्य तस्य शैलस्य सानुषु ।

शिलाः प्रशिथिलाश्चेलुविनिप्पेनुश्च पादपाः ॥२५॥

शिखरैर्धूर्णमानैश्च सीदमानैश्च पादपैः ।

विधूतैश्चोच्छ्रितः शृङ्गैरगम खगमोऽभवत् ॥२६॥

इस विशाल पर्वत को दूसरी पृथिवी के समान उठा लेने से गौ, गोप, गोपियाँ, भाल-वाल आदि सभी सुरक्षित होंगे और यह पर्वत भी मेरे आधीन हो जायगा ॥२२॥ हे राजन् ! ऐसा विचार स्थिर कर श्रीकृष्ण ने उस पर्वत को उखाड़ कर अपने बाएँ हाथ पर धारण कर लिया, उस समय उसकी सभी गुफाएँ पर के रूप में हो गई ॥२३-२४॥ पर्वत को उखाड़ने के समय उसकी शिलाओं के

वधन शिथिल हो जाने के कारण उससे बड़ी-बड़ी शिलाएँ गिर कर पृथिवी पर छे  
सगी ॥२५॥ उसके सब शिखर गिरने लगे तब वह पर्वत श्रीकृष्ण के हाथ में स्थि  
होकर आकाशगामी पक्षी के समान दिखाई पड़ने लगा ॥२६॥

स मेघनिचयस्तस्थौ गिरि त परिवार्यं ह ।

पुर पुग्स्कृत्य यथा स्फीतो जनपदो महान् ॥२७॥

निवेश्य त करे शैल तोलयित्वा च सस्मितम् ।

प्रोवाच गोप्ता गोपाना प्रजापतिरिव स्थित ॥२८॥

एतद्देवैरसमाव्य दिव्येन विधिना मया ।

कृत गिरिगृह गोपा निर्वात शरण गवाम् ॥२९॥

क्षिप्र विशन्तु यूथानि गवामिह हि शान्तये ।

निर्वातेषु च देशेषु निवसन्तु यथासुखम् ।

यथाश्रेष्ठ यथायूय यथासार यथासुखम् ॥३०॥

विभज्यतामय देश कृत वर्पनिवारणम् ।

शैलोत्पाटनभूरेषा महती निर्मिता मया ॥३१॥

पञ्चक्रोशप्रमाणेन क्रोशैकविस्त्रो महान् ।

सैलोक्यमप्युत्सहते रक्षितु कि पुनर्व्रजम् ॥३२॥

तत किलकिलाशब्दो गवा हम्भारवै सह ।

गोपाना तुमुलो जज्ञे मेघनादश्च बाह्यत ॥३३॥

जिस प्रकार कोई नगर जनपद से घिरा होता है, उसी प्रकार वह पर्व  
मेघों से घिरा हुआ था ॥२७॥ उस समय पर्वत को हाथ पर रखे हुए सर्व रस  
श्रीकृष्ण ने मुस्कुरा कर गोपों से कहा—हे गोपो ! मैंने इस पर्वत को गोपों की  
रक्षा के लिये ही पर के समान बना दिया है । इस कार्य के करने में देवता भी  
समर्थ नहीं है ॥२८-२९॥ अब तुम दीर्घ ही सब के लिये यथा योग्य स्थान  
निर्दिष्ट करो इस पर्वत को उखाड़ कर मैंने बौत भर चौड़ा और पाँच बौत  
सम्बा स्थान बना दिया है । इसमें व्रज तो गया सीनों लोको की रक्षा भी निहित  
है ॥३०-३१-३२॥ भगवान् की बात सुन कर गोपो और गोओं ने हर्षपुष्पनि की  
द्विजे गुन कर मेघ भी भीषण रूप से गर्जने लगे ॥३३॥

प्राविशन्त ततो गावो गोपैर्युथप्रकल्पिता ।  
 तस्य शैलस्य विपुल प्रदर गह्वरोदरम् ॥३४॥  
 कृष्णोऽपि मूले शैलस्य शैलस्तनम्म इवोन्मिद्रित ।  
 दधारैकेन हस्तेन शैल प्रियमिवातिथिम् ॥३५॥  
 ततो ब्रजस्य भाण्डानि युक्नानि शकटानि च ।  
 विविधुर्वपं मीनानि तद्गृह गिरिनिमित्तम् ॥३६॥  
 अनिदेव तु कृष्णस्य दृष्ट्वा तत्कर्म वचनम् ।  
 मिथ्याप्रतिज्ञो जलदान्वाग्यामाम वै विभु ॥३७॥  
 सप्तराशे तु निवृत्ते धरण्या विगनोन्मिव ।  
 जगाम सवृत्तो मेघवृंहहा स्वर्गमुत्तमम् ॥३८॥  
 निवृत्तो सप्तराशे तु निष्प्रयत्ने गनक्रती ।  
 गताभ्रं विमले व्योम्नि दिवसे दीप्नभाम्बरे ॥३९॥  
 गावस्तेनैव मार्गेण परिजग्मुर्गन्तव्यमा ।  
 स च स्यात् ततो घोष प्रत्ययान्पुनरेव स ॥४०॥  
 कृष्णोऽपि त गिरिस्थेऽष्ट स्वस्थाने स्थावरात्मवान् ।  
 प्रीतो निवेशयामाम शिवाय वरदो विभु ॥४१॥

फिर उस पर्वत के नीचे गोश्रों के मुण्ड के मुण्ड सटे कर दिये गये ॥३४॥

पाषाण निर्मित स्तम्भ के समान उन अत्यन्त ऊँचे आकार वाले भगवान् ने उस पर्वत को प्रिय अतिथि के समान ऊँचा उठा लिया ॥३५॥ उसी पर्वत के नीचे गोश्रों के बर्तनादि से सदे हुए छक्के सजे कर दिये गये ॥३६॥ जब इन्द्र की प्रतिज्ञा ध्वंस हो गई थीर तब तो कृष्ण ने अस्सम्भव कार्य को देना तो मेघों को जल-वृष्टि से रोक दिया ॥३७॥ एक सप्ताह पूरा होन पर विफल मनोरथ हुए इन्द्र मेघों को साथ लेकर अपने लोक को गये ॥३८॥ मेघों के हटन से आकाश स्वच्छ हो गया और भगवान् आम्बर प्रकाशित होन लगे । गोश्रों का सक्कट दूर हुआ और वे पर्वत के नीचे से निकल आईं । जब गोश्रों ने देखा कि सक्कट टल गया है, तब वे अपने अपने स्थान पर जा पहुँचे ॥३९-४०॥ तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होकर गोवर्धन पर्वत को फिर उठी स्थान पर स्थापित कर दिया ॥४१॥



॥ श्रीकृष्ण का गोविन्द पद पर अभिषेक ॥

धृत गोवर्द्धन दृष्ट्वा परित्रात गोकुलम् ।  
 कृष्णस्य दर्शनं शक्रो रोचयामास विस्मित ॥१॥  
 स निजं लाम्बुदाकारं मत्तं मदजलोक्षितम् ।  
 आरुह्य रावतं नागमाजगाम महीतलम् ॥२॥  
 स ददर्शोपविष्टं वै गोवर्द्धनशिलातले ।  
 कृष्णमकिलकर्मणि पुरुहूतं पुरंदर ॥३॥  
 तं वोक्ष्य वालं महता तेजसा दीप्तमभ्ययम् ।  
 गोपवेधधरं विष्णुं प्रीतिं लेभे पुरंदर ॥४॥  
 तं साम्बुजलदश्याम कृष्णं श्रीशस्त्रलक्षणम् ।  
 पर्याप्ननयनं शक्रं सर्वैर्नैरुदंक्षत ॥५॥  
 दृष्ट्वा च न श्रिया जुष्टं मत्स्यलोकेऽमरोपमम् ।  
 सूाविष्टं शिलापृष्ठे शक्रं स प्रीडितोऽभवत् ॥६॥  
 तस्योपविष्टस्य मुखं पद्माभ्यां पक्षिपुङ्गव ।  
 अन्तर्धानं गतश्छाया चकारोरगमोजन ॥७॥

वैष्णव्यामनजी ने कहा—हे राजन् ! श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्धन धारण और  
 व्रज रक्षण होने के काम से विस्मित हुए इंद्र ने उनके दर्शन करने की इच्छा  
 की ॥१॥ फिर वे अपने मत्त ऐरावत गज पर आरुढ़ होकर पृथिवी लोक में  
 आ पहुँचे ॥२॥ वहाँ जाकर उन्होंने देखा गोमंशवन के वेश में अत्यंत तेजस्वी  
 श्रीकृष्ण गिरि गोवर्धन के एक निजन प्रदेश में विराजमान हैं ॥३॥ उन अत्यंत  
 तेजस्वी ग्वाल मालक रूप वाले श्रीकृष्ण को देखकर इंद्र को बड़ा आनंद  
 हुआ ॥४॥ जनपुत्र मेघ के समान श्याम और हृदय पर धीवरस चिह्न धारण  
 किये श्रीकृष्ण ने उन्होंने अपने सहस्र नेत्रों से दर्शन किये ॥५॥ पृथिवी के एक  
 गिला-तण्ड पर विराजमान उन अत्यंत शोभा सम्पन्न को देखकर इंद्र अत्यंत  
 सज्जित हो उठ ॥६॥ उन सम्य अदृश्य भाव से गरुड ने अपने दोनों पंख फैला  
 और श्रीकृष्ण के मस्तक पर छाया की हुई थी ॥७॥

स विविक्ते वनगतं लोकवृत्तान्ततत्परम् ।  
 उपतस्थे गज हित्वा कृष्ण बलनिषूदनः ॥८  
 स समीपगतस्तस्य दिव्यस्रगनुलेपनः ।  
 रराज देवराजो वै वज्रपूर्णकरः प्रभुः ॥९  
 किरीटेनाकंतुल्येन विद्युद्द्योतकारिणा ।  
 कुण्डलाभ्यां स दिव्याभ्या सततं शोभिताननः ॥१०  
 पञ्चस्तवकलम्बेन हारेणोऽसि भूषितः ।  
 सहस्रपत्रकान्तेन देहभूषणकारिणा ।  
 ईक्षमाणः सहस्रेण नेशाणां कामरूपिणाम् ॥११  
 त्रिदशज्ञापनार्थेन मेघनिर्घोषकारिणा ।  
 अय दिव्येन मधुरं व्याजहार स्वरेण तम् ॥१२  
 कृष्ण कृष्ण महाबाहो ज्ञातीनां नन्दिवर्द्धन ।  
 अनिदिव्यं कृतं कर्म त्वया प्रीतिमता गवाम् ॥१३  
 मयोत्तमृष्टेषु मेघेषु युगान्तावर्तकारिषु ।  
 यत्त्वया रक्षिता गावस्तेनास्मि परितोषितः ॥१४

लोक-रत्याए में लगे हुए भगवान् को एकान्त में बैठे देखकर वनमाल धारण किये, अनुलेपन लगाये, हाथ में वज्र ग्रहण किये, सीधे पर विद्युत् का मुकुट पहिने, कानों में कुण्डल और हृदय पर हार से विभूषित हुए इन्द्र ने भगवान् के पास जाकर अत्यन्त मधुर बाणी में उनसे कहा ॥८-१२॥ हे कृष्ण ! हे महाबाही ! हे स्वभावही के आनन्दवर्धक धनश्याम ! जब मेरे आदेश पर मेघों ने जल प्रलय की, तब तुमने अताधारण कार्य कर दिखाया, जिसके कारण मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हुआ हूँ ॥१३-१४॥

स्वायंभुवेन योगेन यश्चायं पर्वतोत्तमः ।  
 धृतो वेष्टमवदाकाशे को ह्येतेन न विस्मयेत् ॥१५  
 प्रतिपिद्धे मम महे मयेयं रूपितेन वै ।  
 कीर्तयिष्येः कृता कृष्ण गवां वै साप्तरात्रिकी ॥१६

सा त्यथा प्रतिपिद्धेय मेघवृष्टिर्दुरासदा ।  
 देवं सदानवगणैर्दुर्निवार्या मयि स्थिते ॥१७  
 अहो मे सुप्रिय कृष्ण यत्त्व मानुषदेहवान् ।  
 समग्र वंष्णव तेजो विनिर्गूहसि रोषित ॥१८  
 साधित देवताना हि मन्येऽहं कार्यममव्ययम् ।  
 त्वयि मानुष्यमापन्ने युक्ते चैव स्वतेजसा ॥१९  
 सेत्स्यत सर्वकार्यार्थो न किञ्चित्परिहास्यते ।  
 देवाना यद्भूचान्नेता सव कार्यपुरोगम ॥२०

अपन स्वय उत्पन्न किया हुए योग से पर्वत को उठाकर उसके नीचे धा  
 बनाने के कार्य को देख किसे विस्मय न होगा ? ॥१५॥ जब तुमने मेरे पूजन  
 का उत्सव एक श दिया, तब मैंने ही क्रोध करके सात रात्रि तक यह घोर वृष्टि  
 की है ॥१६॥ कोई भी देवता या दानव इस वृष्टि को रोकने में समर्थ नहीं था,  
 परन्तु तुमने मानव देह के मुख पर रोष करने भी अपनी पूरुषता का प्रकाश  
 नहीं किया इसमें भरा अत्यंत हित साधन हुआ है ॥१७॥ १८॥ अब मैं समझता हूँ  
 कि तुम मनुष्य रूप में ऐसे चमत्कृत मन्वान हो तो देवकार्य होने में कोई बाधा  
 नहीं है, क्योंकि तुम ही देवनाभों के पथ प्रदशक और नेता हो ॥१९॥ २०॥

एव क्षान्तमना कृष्ण स्वेन सोम्येन तेजसा ।  
 ब्रह्मण शृणु मे वाक्यं गवां च गजविक्रम ॥२१  
 आह रवा भगवान्ब्रह्मा गावश्चावासागा दिवि ।  
 परमभिस्तोयिता दिव्यैस्तव सरस्वणादिभि ॥२२  
 भयता रक्षिता गावो गोत्रोवश्च महानयम् ।  
 यद्वयं पुङ्गवं सादं वर्द्धाम प्रसवंस्तथा ॥२३  
 पशुं पशुं पुङ्गवंर्वाहं मेघ्येन हविषा मुरान् ।  
 श्रियं गृहप्रवृत्तेन तर्पयिष्याम वामणा ॥२४  
 तदारमाव गुह्यत्वं हि प्राणदश्च महावन ।  
 क्षयप्रभृति नो राजा स्वमिन्द्रो यै भव प्रभो ॥२५

तस्मात्त्व काञ्चनैः पूर्णदिव्यम्य पयमो घटैः ।

एमिरद्याभिषिञ्चस्व मया हस्तावनामितैः ॥२६॥

अहं किलेन्द्रो देवानां त्वं गवामिन्द्रता गतः ।

गोविन्द इति लोकास्त्वा स्नोप्यन्ति भुवि शाश्वतम् ॥२७॥

हे कृष्ण ! तुम अपने भग्न को समायुक्त करके ब्रह्माजी और गौश्री के वचन को मुझसे सुनो ॥२१॥ उनका कहना है कि तुम्हारे इन गो-रक्षण आदि कार्यों को देखकर हमें अत्यन्त प्रसन्नता हुई है ॥२२॥ तुमने अपने प्रभाव से गौश्री की और गोनोरु की भी रक्षा की है, अब हम गौएँ अपनी कुल वृद्धि करने में भय-रहित होगी ॥२३॥ अब बेलों के कार्यों से कृषकों को, पवित्र आग्याहुतियों से देवताओं को और प्राणदाता होन के कारण आज से हमारे इन्द्र हो जाओ ॥२४॥ हे कृष्ण ! दिव्य जल से परिपूर्ण कलश मेरे साथ है, इसलिये तुम इसी समय से इन्द्र पद पर स्थित प्रतिष्ठित हो जाओ ॥२६॥ मैं देवताओं का इन्द्र हूँ और तुम गौश्री के इन्द्र हो, इसलिये आज से तुम्हारी 'गोविन्द' नाम से प्रसिद्धि होगी ॥२७॥

ततः शक्रस्तु तान्गृह्य घटान्दिव्यपयोधरान् ।

अभिषेकेण गोविन्द योजयामास योगवित् ॥२८॥

दृष्ट्वा तमभिषिक्तं तु गावस्तथा सह यूथपैः ।

स्नानं प्रसन्नव्युक्तंश्च सिपिचु कृष्णमेव्ययम् ॥२९॥

मेघाश्च दिवि युक्ताभिः समृताभिः समन्ततः ।

सिपिचुस्तोषधाराभिरभिषिच्य तमव्ययम् ॥३०॥

वनस्पतीनां सर्वेषां सुखावेन्दुनिभ पयः ।

ववर्षुः पुष्पवर्षं च नेदुस्तूयाणि चाम्बरे ॥३१॥

अभिषिक्तं तु त गोभिः शक्रो गोविन्दमव्ययम् ।

दिव्यमाल्याम्बरधरं देवदेवोज्ज्वलीदिदम् ॥३२॥

एष ते प्रथमः कृष्ण नयोगो गोपु यः कृतः ।

श्रूयतामपरं कृष्ण ममागमनकारणम् ॥३३॥

किर देवराज इन्द्र ने मन्दाकिनी के जल से भरे हुए कलश को उठाकर

श्रीकृष्ण का गोविन्द पद पर अभिषेक किया ॥२८॥ उस समय स्वर्ग की गीर्वाण ने उन पर दुग्ध-धारो की वर्षा की ॥२९॥ सब ओर से एकत्रित हुए मेघों और वनस्पतियों ने चन्द्रमा की किरणों के समान स्वच्छ अमृतमय जल की वर्षा की और तब देवता पुष्प बरसाने और बाजों से सुमधुर घोष करने लगे ॥३०॥ ३१॥ उस समय सम्पूर्ण पृथिवी स्वर्ग के समान अमृत रस से तृप्त हो गई थी, क्योंकि श्रीकृष्ण का अभिषेक हो रहा था । इस प्रकार मन्दाकिनी के जल से अभिषिक्त हुए गोविन्द से देवराज इन्द्र ने कहा—हे गोविन्द । तुमने तीर्थों के प्रति अपना जो कर्तव्य पालन किया है, उसका मैं अनुमोदन करता हूँ । अब मैं आपसे उस कार्य को भी कहता हूँ, जिसके लिये यहाँ आया हूँ ॥३२ ३३॥

क्षिप्र प्रसाध्यता कस केशी च तुरगाधम ।  
 अरिष्टश्च मदाविष्टो राजराज्य तत कुरु ॥३४॥  
 पितृष्वसति जातस्ते ममाशोऽहमिव स्थित ।  
 स ते रक्ष्यश्च भान्यश्च सख्ये च विनियुज्यताम् ॥३५॥  
 त्वया ह्यनुगृहीत सन्तव वृत्तानुवर्तक ।  
 त्वद्वशे वर्त्तमानश्च प्राप्स्यते विपुल यश ॥३६॥  
 भारतस्य च वशस्य स वरिष्ठो धनुर्धर ।  
 भविष्यत्यनुरूपश्च त्वद्वते न च रस्यते ॥३७॥  
 अर्जुन विद्धि मा कृष्ण मा चैवात्मनमात्मना ।  
 आत्मा तेऽहं यथा शश्वत्तथैव तव सोऽर्जुन ॥३८॥  
 शक्रस्य वचन श्रुत्वा कृष्णो गोविन्दता गत ।  
 प्रीतेन मनसा युक्त प्रतिवाक्य जगाद ह ॥३९॥  
 प्रीतोऽस्मि दर्शनादेव तव शक्र शचीपते ।  
 यत्त्वयाऽभिहित चेद न किञ्चित्परिहास्यते ॥४०॥

तुम्हें कस, केशी और अरिष्ट को शीघ्र ही मारना है, फिर तुम सुख पूर्वक राज्य करना ॥ ३४ ॥ तुम्हारी बुआ धृती ने मेरे अंश से अर्जुन नामक जो पुत्र प्राप्त किया है, तुम उसके साथ मित्रता रखना और और उसके रक्षक बने रहना । वह तुम्हारी सहायता से

अश्व में महान् यश को प्राप्त करेगा ॥३५-३६॥ भरतवश में उसके जैसा महान् अनुषांगी अन्य कोई नहीं होगा और तुम्हें छोड़कर वह एक क्षण को भी वहीं नहीं रहे सकेगा ॥३७॥ हे कृष्ण ! तुम अर्जुन को मुझे ही समझना । जिस प्रकार मैं तुम्हारी आत्मा हूँ, उसी प्रकार अर्जुन भी है ॥३८॥ हे राजन् ! गोविन्द रव पर अभिषिक्त हुए श्रीकृष्ण को इन्द्र की धात सुनकर बड़ा हर्ष हुआ और वे कहने लगे—हे इन्द्र ! आपके दशन करके मैं अत्यन्त आनन्दित हुआ हूँ । आपने जो कहा है, मैं उसे यथासम्भव पूर्ण करूँगा ॥३९४॥

जानामि भवतो भाव जानाम्यर्जुनसम्भवम् ।  
जाने पितृष्वसारं च पादोदया महात्मन ॥४१॥  
मुधिष्ठिरं च जानामि कुमारं धर्मनिमित्तम् ।  
भीमसेनं च जानामि वायो सतानजं सुतम् ॥४२॥  
अश्विन्या साधु जानामि मृष्टं पुत्रद्वयं शुभम् ।  
नकुलं सहदेवं च माद्रीकुक्षिगतावुभौ ॥४३॥  
कानीनं चापि जानामि सवितुं प्रथमं सुतम् ।  
पितृष्वसरि पुत्रं वै प्रसूतं सूततां गतम् ॥४४॥  
धातं राष्ट्राण्येव मे सर्वं विदिता युद्धकाक्षिण ।  
पाण्डोत्परमं चैव शापाशनिनिपातजम् ॥४५॥  
तद्गच्छ त्रिदिवं शक्रं सुखाय त्रिदिवोरुसाम् ।  
नार्जुनस्य रिपुं कश्चिन्ममाग्रे प्रभविष्यति ॥४६॥  
अर्जुनार्थं च तान्सर्वान्पाण्डवानक्षतान्युधि ।  
कुन्त्यां निर्यानयिष्यामि निवृत्ते भारते मृधे ॥४७॥  
यच्च वक्ष्यति मां शक्रं तनूजस्तव सोऽर्जुन ।  
भृत्यन्तत्करिष्यामि तव स्नेहेन यन्निन ॥४८॥  
सत्यसन्धस्य तच्छ्रुत्वा प्रियं प्रीतस्य भाषितम् ।  
कृष्णस्य साक्षात्त्रिदिवं जगाम त्रिदशेश्वर ॥४९॥

मैं इस बात को जानता हूँ कि मेरी बुआ कुन्ती पाण्डु को ब्याही गई थीं, उनके आपने द्वारा अर्जुन हुआ ॥४१॥ धर्म के द्वारा मुधिष्ठिर, पवन के

द्वारा भीम और अश्विनीकुमारों के द्वारा उनकी सहपत्नी माद्री से नकुल-सह  
 हुए हैं ॥४२-४३॥ कुन्ती का कर्त्तव्य पुत्र कर्ण था, जो अब सूतपुत्र हो ग  
 ॥४४॥ शाप के कारण महात्मा पाण्डु को तटस्थ बैठना पड़ा । उधर धृतरा  
 पुत्र दुर्योधन आदि युद्ध करना चाहते हैं ॥४५॥ इसलिये हे इन्द्र ! अब स्वर्ग  
 जाकर देवताओं का पालन करिये, जब तक मैं पृथिवी पर रहूँगा, तब त  
 अर्जुन को कोई भी तिरस्कृत न कर सकेगा ॥४६॥ सब पाण्डव भी अर्जुन  
 लिये ही रणभूमि में अक्षत देह से टिकने वाले होंगे । जब महाभारत युद्ध समा  
 हो जायगा तब मैं अर्जुन को कुन्ती को सौंप दूँगा ॥४७॥ आपके पुत्र अर्जु  
 की प्रत्येक इच्छा को मैं सदा सेवक समान पूर्ण करने के प्रयत्न में रहूँगा ॥४८॥  
 सत्य-प्रतिज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण के इस प्रकार मधुर वचनों को सुनकर देवरा  
 इन्द्र स्वर्गाम की पधारे ॥४९॥

॥ भगवान द्वारा अरिष्टासुर-वध ॥

प्रदोषाद्वै कदाचित्तु कृष्णे रतिपरायणे ।  
 त्रासयन्समदो गोष्ठमरिष्ट प्रत्यदृश्यत ॥१॥  
 निर्वाणागारमेघाभस्तीक्ष्णशृङ्गोऽकलोचनः ।  
 क्षुरतीक्ष्णाग्रचरण. कालः काल इवापरः ॥२॥  
 लोलिहानः स निष्पेयं जिह्वयोष्ठो पुनः पुनः ।  
 गर्वितो विद्वलागूलः कठिनस्कन्धबन्धनः ॥३॥  
 ककुदोदप्रनिर्माण प्रमाणाद्दुरतिक्रमः ।  
 शङ्खमूत्रोपलिप्तागो गवामुद्धेज्जो भृशम् ॥४॥  
 शृङ्गप्रहरणो रौद्रः प्रहरन्गोपु दुर्मदः ।  
 गोष्ठेषु न रति लेभे विना युद्धेन गोवृष ॥५॥  
 मत्स्यचित्त्यथ वीरास्य स वृषः केशवाग्रतः ।  
 आजगाम बलोदग्रो वैवस्वतवशे स्थितः ॥६॥  
 स तत्र गास्तु प्रगम वापगानो मदोत्तमः ।  
 पकार निवृत्त गोष्ठं निर्वरसशिखुपुङ्गवम् ॥७॥  
 एतस्मिन्नेव काले तु गावः कृष्णमभीषगाः ।  
 प्रागयागास दुष्टारमा वैवस्वनवशे स्थितः ॥८॥

सेन्द्राशनिरिवाम्भोदो नर्दमानो महासुरः ।

तालशब्देन तं कृष्णः सिंहनादैश्च मोहयन् ॥६॥

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! एक दिन गो-धूलि के समय जब श्रीकृष्ण क्रीडा-रत थे, तब गौओं को भयभीत करता हुआ मयकर अरिष्टासुर ज में आया ॥१॥ उसके देह का वर्ण बूझे हुए अङ्गार के समान काला था, इनो सींगें अत्यन्त तीक्ष्ण, नेत्र सूर्य के समान लाल, सामने के पाँव छुरे के समान, ककुद अत्यन्त ऊँचा और पूँछ दर्प से घूमती हुई थी। उसका सम्पूर्ण देह नेबर में सना था। उसने आघात करके ही अनेक घरों के छप्पर आदि गिरा दिये थे। उसे देखते ही सब गौएँ भय के कारण काँपने लगी थी ॥२-४॥ सींग उसने गौओं, बछड़ों और बैलों को मार-मार कर गोष्ठ सूने कर दिये तब भी हुई गौएँ श्रीकृष्ण की शरण में गईं। तब वह दैत्य भगवान् से अभय श्रुत उन गौओं को डराता हुआ घोर गर्जन करने लगा और धीरे-धीरे कृष्ण की ओर चला। उन्होंने ताली बजाते हुए सिंहनाद किया, जिससे वह मोहित हो गया ॥५-६॥

स कुक्षौ वृषभो दृष्टिं प्रणिधाय धृताननः ।

कृष्णस्य निघनाकांक्षी तूर्णमभ्युत्पपात ह ॥१०॥

तमापतन्तं प्रमुखे प्रतिजग्राह दुर्दरम् ।

कृष्णः कृष्णाञ्जननिभो वृष प्रतिवृषोपमः ॥११॥

स ससक्तस्तु कृष्णो वै वृषेणेव महावृषः ।

मुमोच वक्त्रजं फेन नस्तश्चाथ सशब्दवन् ॥१२॥

तावन्न्योन्यावरुद्धाङ्गी युद्धे कृष्णवृषावुभौ ।

रेजतुर्मेषसमये ससक्ताविव तोयदौ ॥१३॥

तस्य दर्पं बल हत्वा कृत्वा शृङ्गान्तरे पदम् ।

आपीडयदरिष्टस्य कण्ठं क्लिन्नमिवावरम् ॥१४॥

शृङ्गं चास्य पुनः सभ्यमुत्पादय यमदण्डवत् ।

तेनैव प्राहरद्वक्त्रे स ममार भृशं हतः ॥१५॥



स भिन्नशृङ्गो भग्नास्थो भग्नस्कन्धश्च दानव ।  
 पपात रुधिरोद्गारी साम्बुधारी इवाम्बुदः ॥१६॥  
 गोविन्देन हतं दृष्ट्वा दृष्ट वृषभदानवम् ।  
 साधु साध्विति भूतानि तत्कर्मस्याभितुष्टुवु ॥१७॥  
 स चोपेन्द्रो वृष हत्वा कान्तचन्द्रे निशामुखे ।  
 अरविन्दाभनयन. पुनरेव ररास ह ॥१८॥  
 तेऽपि गोवृत्तयः सर्वे कृष्ण कमललोचनम् ।  
 उप.साचिरे हृष्टा. सर्वे शक्रमिवामरा ॥१९॥

सब श्रीकृष्ण का वध करने की कामना करता हुआ वह देख होते  
 कि उन पर झपटा, परन्तु उन्होंने उनके मुख का अगला भाग एक ही  
 जिससे उसकी नासिका और मुख से छाव होने लगा ॥१०-११-१२॥ पाप  
 एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे, उस समय प्रतीत होता था कि दो बारस  
 में टकरा गये हैं ॥१३॥ इस प्रकार कुछ समय में ही उसके बल को नष्ट कर  
 भगवान् ने उसके सींगों में अपना चरण फँसा कर भीले वस्त्र की तरह  
 निचोड़ डाला ॥१४॥ फिर उन्होंने उसका दायाँ सींग उखाड़ कर उसी से  
 मारा तब वह सींग, मुख और गन्धा आदि के दात-विस्तृत होने पर मुख से रा  
 बमन करता हुआ पृथिवी पर गिरकर समाप्त हो गया ॥१५-१६॥ उसे दू  
 को प्राप्त हुआ देखकर सभी ब्रह्मवासी भगवान् श्रीकृष्ण की प्रशंसा करने ल  
 ॥१७॥ उस समय सायनास व्यतीत होकर चन्द्रोदय हो गया था । तब व  
 पद्मलोचन भगवान् वन में जाकर रास प्रीति करने लगे ॥१८॥ इस प्रा  
 उन सब गीतों ने देवताओं द्वारा इन्द्र का स्तव करने के समान ही श्रीकृष्ण  
 रगुति की ॥१९॥

॥ श्रीकृष्ण यो लाने को अक्रूर का प्रस्थान ॥

कृष्ण प्रजगत् धृत्वा बध्मानमिवानलम् ।  
 उड्गेगमगन्धमः शङ्खमानस्ततो भयम् ॥१॥  
 गूढनाभा हताया च कालिये च पराजिते ।  
 धेनुके प्रलय नीति प्रलये च निगानिते ॥२॥

धृते गोवर्धने शैले विफले शक्रशासने ।  
 गोपु त्रातासु च तथा स्पृहणीयेन कर्मणा ॥३॥  
 ककुप्तिनि हतेऽरिष्टे गोपेपु मुदितेपु च ।  
 दृश्यमाने विनाशे च सनिकृष्टे महामये ॥४॥  
 कर्पणे वृक्षयोश्चैव बाल्येनावलकर्मणा ।  
 अचिन्त्य कर्म तच्छ्रुत्वा बद्धमानेषु शत्रुषु ॥५॥  
 प्राप्त्वारिष्टमिवात्मानं मेने म मथुरेश्वर ।  
 विमर्शेन्द्रियभूतात्मा गतासुप्रणिमो बभौ ॥६॥

वैशम्पायनजी ने कहा—ह राजर् ! धीरुज की विजय और उत्कर्ष  
 : सुनकर बस की बड़ी ध्याकृतता हुई ॥१॥ पूतना का वध, बालियनाग का  
 दमन प्रलम्ब का सहार, धेनुव की मृत्यु, गिरि गावर्धन धारण, इन्द्र की  
 पत्नी, गोरक्षा, यमलाजुंन वृणा का पतन और वृषभ रूपी अरिष्टासुर का  
 नि आदि को सुनकर मथुरेज कर्म ने अपनी मृत्यु की निकट जानकर अपनी  
 डे गंगा दी और यह विचर्त्तव्य विमूढ हो गया ॥२-६॥

ततो ज्ञानीन्समानाम्य नितर चोपशामन ।  
 निशि स्तिमितमूखाया मथुराया जनाधिप ॥७॥  
 वसुदेव च देवाम कङ्क्षु चाहूय यादवम् ।  
 सत्यक क्षात्रक चैव कङ्क्षावरजमेव च ॥८॥  
 भोज वंतरण चैव विवद्रु च महाबलम् ।  
 भयमग्र च धर्मज्ञ त्रिपृथु च पृथुश्रियम् ॥९॥  
 यधु दानवनि चैव कृतवर्माणमेव च ।  
 भूर्गितेजगमक्षोम्य भूर्गिश्रयमेव च ॥१०॥  
 एनान्य यादवान्सर्वानाभास्य शृणुतेति च ।  
 उग्रसेनसतो राजा प्रोवाच मथुरेश्वर ॥११॥  
 भवन्त सर्वेनायंज्ञा वेदेषु परिनिहिता ।  
 न्यायवृत्तान्तनुशलांस्त्रिवर्गस्य प्रवर्तका ॥१२॥

१२४ ]

रात्रिणां च वृत्तस्य विबुधोपमाः ।  
तस्मिन्वातो महावृत्ते निरम्भा इव पर्वताः ॥१३

अदम्भवृत्तयः सर्वे सर्वे शुक्कुलोपिताः ।  
रात्रामन्मघराः सर्वे सर्वे घनुपि पारगाः ॥१४

रात्रि का समय था, मधुरा की जनता सो रही थी, ऐसे में रात्रि  
पिता, बभ्रुवर्मा, बभ्रुवर्मा, कक, सरयक, दादक, बंतरण, भोत्र, बिन्दु, भवेन्, भवेन्,  
विपु, अक्रूर, कृतवर्मा और अरयन्त तेजस्वी भूरिश्रवा आदि ने अपने पात कुश  
कर उनसे कहने लगा ॥७-११॥ आप सभी कार्य कुशल, वेदों में पारगण, आप  
का आचरण करने वाले तथा धर्म, अर्थ, काम रूपी त्रिवर्ग के प्रवर्तक हैं ॥११॥  
आप सर्व अपने कर्त्तव्यों को देवताओं की तरह निभाते रहे और पर्वतों  
जैसा अविषल रूप से सदाचरण रख रहे हैं ॥१३॥ आपने अभिमान-रहित  
कर शुक्कुल-वास किया है तथा आप मन्त्रणा-कुशल और घनुविद्या के विद्यार्थी  
हैं ॥१४॥

एव भवत्सु युवतेषु मम चित्तानुवर्तिषु ।

वर्द्धमानो ममानर्थो भवद्भिः किमुपेक्षितः ॥१५

एष कृष्ण इति ख्यातो नन्दगोपसुतो व्रजे ।

वर्द्धमान इवाम्मोघो मूल न परिक्रन्तति ॥१६

अनमात्यस्य क्षुण्यस्य चारान्धस्य ममेव तु ।

कारणान्नन्दगोपस्य स सुतो गोपितो गृहे ॥१७

उपेक्षित इव व्याधिः पूर्यमाण इवाम्बुदः ।

नन्दमेघ इवोष्णान्ते स दुरात्मा विवर्द्धते ॥१८

प्रबन्धः कर्मणामेव तस्य गोब्रजवासिनः ।

सन्निकृष्टं भय चैव केशिनो मम च ध्रुवम् ॥१९

भूतपूर्वश्च मे मृत्युः स नून पूर्वदेहिकः ।

युद्धाकाक्षो च स यथा तिष्ठतीह ममाग्रतः ॥२०

नव च गोपत्वमशुभं मानुष्यं मृत्युदुर्वलम् ।

नव च देवप्रभावेण क्रीडितव्यं व्रजे मया ॥२१

अहो नीचेन वपुषा च्छादयित्वाऽऽत्मनो वपुः ।

१, ओज्येष रमते देव. श्मशानस्य इवानलः ॥२२

१४ म प्रकार के आप जैसे मेरे अनुवर्णियों के रहते हुए भी मेरा शत्रु वृद्धि होता जा रहा है, फिर आप उसकी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं ? ॥१५॥  
 १५ २ बंरी नन्द गोप का पुत्र समुद्र के समान दिनोदिन वृद्धि को प्राप्त होता । मेरे मूल की ही नष्ट करने में लगा है ॥१६॥ मैं मन्त्रियों से और गुप्तचरों रहित हूँ इस प्रकार मेरी ही असावधानी से वसुदेव ने अपने उस पुत्र को नन्द-गोप के घर में भेज दिया था ॥१७॥ वह दुरात्मा कृष्ण बिना चिकित्सा के रोग, युष्म समुद्र और शीघ्रकाल की समाप्ति पर गर्जना करने वाले बादलों के समान ही बढ़ता जा रहा है ॥१८॥ उस गोप-बालक के कार्यों को देख-देख कर मुझे अपने और केही के लिये भय उपस्थित हुआ दिखाई पड़ रहा है ॥१९॥ जब यह मेरे साथ युद्ध करने में तत्पर है तो वह अवश्य ही मेरे पहिले जन्म का काल ही होगा ॥२०॥ यदि यह वाज न होती तो वह इस नाशवान् मनुष्य देह को धारण करके साधारण गोप ही क्यों बनता ? और क्यों वह मेरे वज्र में देव-भाव से क्रीड़ा करता ? इसलिये मैं समझता हूँ कि श्मशान में जैसे अग्नि छिपी पड़ी है, वैसे ही कोई देवता अपने यथार्थ स्वरूप को छिपा कर छद्मवेश में विचरण कर रहा है ? ॥२१-२२॥

तदेव नून विष्णुर्वा शक्रो वा मरुता पतिः ।

मत्साधनेच्छया प्राप्तो नारदो मा प्रयुक्तवान् ॥२३

अत्र मे शङ्कने बुद्धिर्वमुदेवं प्रति ध्रुवा ।

अस्य बुद्धिविशेषेण वयं कातरता गता ॥२४

अहं हि खट्वागवने नारदेन समागतः ।

द्वितीयं स हि मा विप्रः पुनरेवात्र वीद्वच्च ॥२५

यस्त्वया हि कृतो यत्नः कंसं गर्भकृते महान् ।

वसुदेवेन ते राक्षसो तत्कर्म विफलीकृतम् ॥२६

दारिका या त्वया राक्षसो शिलाया कास पातिता ।

ता मशोदासुता त्रिद्वि कृष्ण च त्रुष्टेवजम् ॥२७



वाच्यश्च नन्दगोपो वै करमादाय वापिकम् ।  
 शीघ्रमागच्छ नगर गोपै सह समन्वित ॥३५॥  
 कृष्णसकपणो चैव वसुदेवमुतावुभौ ।  
 द्रष्टुमिच्छति वै कस सभृत्य सपुरोहित ॥३६॥

इस प्रकार मारद जी ने उस कृष्ण के अत्यन्त पराक्रम का वर्णन करते  
 यह भी कहा था बलराम के अतिरिक्त कृष्ण भी वसुदेव का ही पुत्र है  
 ॥३०॥ वह वसुदेव तुम्हारा स्वभाविक बापव होते हुए भी तुम्हारा बाल होगा ।  
 जिस प्रकार कौशा जिसके सिर पर बैठता है, उसके नेत्रों को निकाल लेता है,  
 वही प्रकार यह वसुदेव मेरे ही अन से पालित होकर मेरे ही सपरिवार मूलो-  
 छेदन में सत्पर है ॥३१-३२॥ हे दानपते ! हे अकूर ! अब तुम्हीं उठो और  
 कृष्ण बलराम के सहित नन्दादि कर दाता गोपों की शीघ्र ही यहाँ लिया लामो  
 ॥३४॥ नन्द से कहना कि वापिक कर लेकर अन्यान्य गोपगण के सहित शीघ्र  
 ही मथुरा चला आवे ॥३५॥ क्याकि महाराज कस अपने सेवकों और पुरोहितों  
 के सहित वसुदेव के दोनों पुत्रों को देखने की इच्छा कर रहे हैं ॥३६॥

एतो मुद्गविदो रङ्गे कालनिर्माणयोधिनी ।  
 दृढो च कृतिनी चैव शृणोमि व्यायतोद्यमौ ॥३७॥  
 अस्माकमपि मलनी द्वौ सञ्जौ मुद्गकृतोत्सवौ ।  
 साभ्या सह नियोत्स्येते तौ मुद्गकुशलावुभौ ॥३८॥  
 द्रष्टव्यौ च मयाऽवश्य बालौ तावमरोपमौ ।  
 पितृष्वसु सुतौ मुप्यौ व्रजवासौ वनेचरौ ॥३९॥  
 वक्तव्यं च व्रजे तस्मिन्समीपे व्रजवासिनाम् ।  
 राजा धनुर्मख नाम कारयिष्यति वै सुखी ॥४०॥  
 सन्निकृष्टे वने ते तु निवसन्तु ययासुखम् ।  
 जनस्थामन्त्रितस्थार्थं यया स्यात्तमर्वमव्ययम् ॥४१॥  
 पयस सर्पिषश्चैव दध्नो दध्युत्तरस्य च ।  
 अथाप्तपद्मदानपाशोच्चारिष्यन्मया च ॥४२॥

राक्षो व्यावर्तितावेतो गर्भो तव वधाय वै ।  
 वसुदेवेन सधाय मित्ररूपेण शत्रूणा ॥२८॥  
 सा तु कन्या यशोदाया विन्ध्ये पर्वतसत्तमे ।  
 हत्वा शुम्भनिशुम्भो द्वौ दानवौ नगचारिणौ ॥२९॥

इससे जान पड़ता है कि नारद जी वा कथन सत्य है, वही मेरु पुण्य  
 शत्रु विष्णु या इन्द्र मुझे मारने के लिये भूतल पर अवतरित हुआ है ॥२८॥  
 इस विषय में मैं वसुदेव के प्रति अत्यन्त शकावान् हूँ, इसी में किसी प्रकार बली  
 धूर्तता का प्रयोग करके मुझे इस सकट में डाल दिया है ॥२९॥ एक दिन वह  
 वाग वन में नारद जी ने मुझे बताया था कि तुम देवकी की सत्तानों को मर  
 करने का जो उपाय करते थे, उसे एक रात्रि में वसुदेव ने विफल कर दिया  
 ॥२४-२६॥ उस रात्रि में तुमने जिस कन्या को पछाड़ा था वह यशोदा ही है  
 वसुदेव का पुत्र तो कृष्ण है ॥२७॥ तुम्हारे मित्र बने हुए वसुदेव ने ही पल्लव  
 में पड़्यन्त करके तुम्हारी हत्या के लिये दोनों गर्भों को परिवर्तित कर दि  
 या ॥२८॥ यशोदा की उस कन्या ने भी शुम्भ निशुम्भ की हत्या कर डाली है  
 इस समय भी वह प्रमथ गणों के साथ विन्ध्याचल पर रह रही है ॥२९॥

अत्र मे नारद प्राह सुमहत्कर्मकारणम् ।  
 द्वितीयो वसुदेवाहं वासुदेवो भविष्यति ॥३०॥  
 स हि ते सहजो मृत्युर्बान्धवश्च भविष्यति ।  
 स एव वासुदेवो वै वसुदेवसुतो बली ॥३१॥  
 बान्धवो धर्मतो महा हृदयेनान्तको रिपु ।  
 यया हि वायसो मूर्ध्नि पद्भ्या यस्यावतिष्ठति ॥३२॥  
 नेक्षे तुदति तस्यैव वक्षेणामिपगृहिणा ।  
 वसुदेवस्तथैवाय सपुत्रजातिबान्धव ।  
 छिनत्ति मम मूलानि भुङ्क्ते च मम पार्श्वतः ॥३३॥  
 गच्छ दानपते क्षिप्त ताविहानयितुं व्रजात् ।  
 नन्दगोप च गोराश्र करदानमप दासनात् ॥३४॥

वाच्यश्च नन्दगोपो वै करमादाय वापिकम् ।  
 शीघ्रमागच्छ नगर गोपै सह समन्वित ॥३५॥  
 कृष्णसकपणी चैव वसुदेवसुतावुमौ ।  
 द्रष्टुमिच्छति वै कस सभृत्य सपुरोहित ॥३६॥

इस प्रकार नारद जी ने उस कृष्ण के अत्यन्त पराक्रम का वर्णन करते  
 १ यह भी कहा था बलराम के अतिरिक्त कृष्ण भी वसुदेव का ही पुत्र है  
 ॥३०॥ वह वसुदेव तुम्हारा स्वाभाविक बापव होते हुए भी तुम्हारा काल होगा ।  
 इस प्रकार कौशा जिसके सिर पर बँटा है, उनके नेत्रों को निकाल लेता है,  
 मी प्रकार यह वसुदेव मेरे ही अन से पालित होकर मेरे ही सपरिवार भूलो-  
 छेदन में तत्पर है ॥३१॥ २० । हे दानपते ! हे अकूर ! अब तुम्हीं उठो और  
 कृष्ण-बलराम के सहित नन्दादि कर दाता गोपों को शीघ्र ही यहाँ भिवा लामो  
 ॥३४॥ मन्द से कहना कि वापिक वर लेकर अन्याय्य गोपगण के सहित शीघ्र  
 मपुरा चला आवे ॥३५॥ क्योंकि महाराज कस अपने सेवकों और पुरोहितों  
 सहित वसुदेव के दोनों पुत्रों को देखने की इच्छा कर रह हैं ॥३६॥

एतो युद्धविदो रङ्गं कालनिर्माणयोधिनी ।  
 हृढी च कृतिनी चैव शृणोमि व्यायतोद्यमौ ॥३७॥  
 अस्माकमपि मलनी द्वौ सञ्जी युद्धकृतोत्तमौ ।  
 ताभ्या सह नियोत्स्येते तौ युद्धकुशलावुमौ ॥३८॥  
 द्रष्टव्यौ च मयाऽवश्य वाली तावमरोपमौ ।  
 पितृष्वसु सुतो मुख्यौ व्रजवासी वनेचरौ ॥३९॥  
 वक्तव्यं च व्रजे तस्मिन्समीपे व्रजवासिनाम् ।  
 राजा धनुर्मख नाम कारयिष्यति वै मुखी ॥४०॥  
 सन्निकृष्टे वने ते तु निवसन्तु यथासुखम् ।  
 जनश्यामन्त्रितस्यार्थं यथा स्यात्पर्वमव्ययम् ॥४१॥  
 पयस सविषश्चैव दल्लो दध्युत्तरस्य च ।  
 यथाकायप्रदानाय भोज्यादिथयणाय च ॥४२॥



अक्रूर गच्छ शीघ्रं त्व तावानय ममाज्ञया ।

सकर्पणं च कृष्णं च द्रष्टुं कीदृहल हि मे ॥४३॥

सुना है कि वे दोनों बालक युद्ध क्रीडा में अत्यन्त शत्रु, दृढ शरीरवाला तथा अत्यन्त कौतुक करने वाले हैं ॥३७॥ मेरे यहाँ भी दो मल्ल अत्यन्त निष्ठ हैं, अब वे बालक यहाँ आजायेगे तब मैं अपने मल्लो से उनकी कुस्ती कराऊँगा ॥३८॥ मैं उन देवताओं के समान सुन्दर बालको को अपनी खचेरी बहिन के पुत्र होने के कारण भी देखने के लिये उत्सुक हूँ ॥३९॥ उन गोपों से यह भी श्रुत कि राजा ने धनुर्ग्रह का आयोजन किया है ॥४०॥ वे यहाँ आकर नगर के निकट वर्ती घन में ठहरें और यज्ञ में आये हुए अतिथियों को किसी वस्तु की कमी न पड़ जाय, इसकी देख रेख भी उन्हें करनी है । इसलिये सभी पदायों को लेकर वे शीघ्र ही यहाँ उपस्थित हों ॥४१-४२॥ हे अक्रूर ! तुम शीघ्रता पूर्वक जाकर उन बालको को यहाँ ले आओ, क्योंकि मुझे उन्हें देखने का अत्यन्त इत्तहास है ॥४३॥

तयोरामने प्रीति परमा मत्कृता भवेत् ।

दृष्ट्वा तु तौ महावीर्यौ तद्विधास्यामि यद्वितम् ॥४४॥

शासनं यदि वा श्रुत्वा मम तौ परिभाषितम् ।

नागच्छेता यथाकालं निग्राह्यावपि तौ मम ॥४५॥

सान्द्रमेव तु बालेषु प्रधानं प्रथमो नयः ।

मधुरेणैव तौ मन्दौ स्वयमेवानमाशु वै ॥४६॥

अक्रूर कुरु मे प्रीतिमेता परमदुर्लभाम् ।

यदि वा नोपजप्तोऽसि वसुदेवेन सुव्रत ॥४७॥

तथा कर्त्तव्यमेतद्वि यथा तावागमिष्यतः ।

एवमाक्षिप्यमाणोऽपि वसुदेवो वसूपमः ॥४८॥

सागराकारमात्मानं निष्प्रवक्त्रमधारयत् ।

वान्छास्यं तादृशमानस्तु वसेनादीर्घदंशिना ।

क्षमा मनसि सधाय नोत्तरं प्रत्यभाषत ॥४९॥

ये तु तं ददृशुस्तत्र क्षिप्यमाणमनेकधा ।  
 विग्नगित्यसकृत्त वै शनैरुक्कुरवाद्मुखाः ॥५०॥  
 अक्रूरस्तु महातेजा जानन्दिव्येन चक्षुषा ।  
 जल दृष्ट्वैव तृपितः प्रीतिमानभूत् ॥५१॥  
 तस्मिन्नेव मुहूर्ते तु मथुरायाः स निर्ययो ।  
 प्रीतिमान्पुण्डरीकाक्षं द्रष्टुं दानपतिः स्वयम् ॥५२॥

उनके आने से मुझे परम हर्ष होगा और तब मैं उन दोनों के प्रति जैसा उचित समझूँगा, वैसा ही करूँगा ॥४४॥ यदि मेरी आज्ञा पाकर भी यहाँ न प्राये तो उन्हें दण्डित किया जायगा ॥४५॥ वैसे बालकों को सामनीति से ही समझाना चाहिये, इसलिये मधुर वचनों से फुसला कर उन्हें ले आओ ॥४६॥ यदि तुम वसुदेव के पक्ष में न होगये हो तो मेरे इस प्रिय कार्य को शीघ्र ही सम्पन्न करो ॥४७॥ जिस उपाय से वे यहाँ आजायें, वही तुम्हें करना है । कस के ऐसे शोषण युक्त वचनों को सुन कर भी वसुदेव मौन रहे ॥४८-४९॥ परन्तु, वहाँ उपस्थित व्यक्तियों ने कस को इस प्रकार विक्षिप्तता पूर्वक प्रलाप करता देख कर सिर झुका लिया और अस्पृष्ट शब्दों में कस की निन्दा करने लगे ॥५०॥ दिव्य द्रष्टा अक्रूर भविष्य को जान कर अत्यन्त हर्षित हुए और जैसे व्यासा जीब ब्रह्म को देख कर उतावला हो उठता है, वैसे ही ब्रह्म को प्रस्थान करने के लिये उतावले हो गये ॥५१॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन की अभिलाषा करते हुए दानपति अक्रूर ने उसी समय ब्रह्म के लिये प्रस्थान किया ॥५२॥

## ॥ श्रीकृष्ण द्वारा केशी-वध ॥

अक्रूरोऽपि यथाऽऽज्ञप्तः कृष्णदर्शनलालसः ।  
 जगाम रथमुख्येन मनसा तुल्यगामिना ॥१॥  
 कृष्णस्यापि निमित्तानि शुभान्यङ्गगतानि वै ।  
 पितृतुल्येन शंसन्ति बान्धवेन समागमम् ॥२॥  
 प्रागेव च नरेन्द्रेण माथुरेणोग्रसेनिना ।  
 केशिनः प्रेषितो दूतो वधायोपेन्द्रकारणात् ॥३॥

स च दूतवच श्रुत्वा केशी क्लेशकरो नृणाम् ।  
 वृन्दावनगतो गोपान्वाधते स्म दुरासद ॥४॥  
 तेन दुष्टप्रचारेण दूषित तद्वन महत् ।  
 न नृभिर्गोधनेर्वाऽपि सेव्यते वनवृत्तिभि ॥५॥  
 नि सपात कृत पन्थास्तेन तद्विपयाश्रय ।  
 मदाच्चलितवृत्तेन नृमासान्यश्नता भृशम् ॥६॥

श्री वैशम्पायन जी ने कहा—इधर भगवान् कृष्ण के दशन की वज्र करते हुए अक्रूर जी मन के समान द्रुतगामा रथ पर चढ़ कर चले ॥१॥ दूत पिता के समान बाधव के मिलने की सम्भावना से श्रीकृष्ण को सभी शुभ सहा दिखाई दिये ॥२॥ उनसे पहिले ही मथुरापति कंस ने श्रीकृष्ण की मारो का आज्ञा देने के लिये अपने दूत को केशी दैत्य के पास भेजा ॥३॥ राजा की आज्ञा सुन कर केशी दैत्य शीघ्र ही वृन्दावन जाकर योगी और सब व्रजवासियों विविध प्रकार से सताने लगा ॥४॥ उस दुष्ट ने समस्त वन को नष्ट कर दि जिससे मनुष्यो और गौओ ने वहाँ जाना-आना छोड़ दिया । वह गर्वोन्मत्त मनुष्य का मास खाता फिरता था । ५-६॥

नृशब्दानुसर क्रुद्ध स कदाचिद्वनागमे ।  
 जगाम घोषवास चोदित कालधर्मणा ॥७॥  
 त दृष्ट्वा दुद्रुवुर्गोपा स्त्रियश्च शिशुभि सह ।  
 क्रन्दमाना जगन्नाथ कृष्ण नाथमुपाश्रिता ॥८॥  
 तासा रुदितशब्देन गोपाना क्रन्दितेन च ।  
 दत्त्वाऽभय तु कृष्णो वै केशिन सोऽभिदुद्रुवे ॥९॥  
 केशी चाप्युन्नतग्रीव प्रकाशदशनेक्षण ।  
 हेपमाणो जवोदग्री गोविन्दाभिमुखो ययौ ॥१०॥  
 तमापतन्त सप्रेक्ष्य केशिन ह्यदानवम् ।  
 प्रत्पुञ्जगाम गोविन्दस्तोयद शशिन यथा ॥११॥  
 स ससक्तस्तु कृष्णेन केशी तुरगसत्ताम ।  
 पूर्वाभ्या चरणभ्या वै कृष्ण वक्षस्यताडयत् ॥१२॥

पुनः पुनः स च वन्धी प्राहिणोत्वाश्वत्थं युवान् ।

कृष्णस्य दानवो घोरं प्रहारममिताजसः ॥१३॥

वक्त्रेण चास्य घोरेण तोदणदष्ट्राप्युवेन वै ।

अदशद्वाहृशिखर कृष्णस्य रुपितो ह्य ॥१४॥

काल की प्रेरणा से वह मनुष्यों के शब्द की सुनता हुआ उसी के लक्ष्य पर प्रज में जा पहुँचा ॥७॥ उसे देखते ही रौन्नी-बीखती हुई गोपियाँ अपने-अपने गलकों को लेकर शीघ्रतापूर्वक सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के शरणदाता श्रीहरि की शरण में गईं ॥८॥ गोपियों का क्रन्दन और गोपों की चीखार सुन कर भगवान् ने उन्हें अभय प्रदान किया और केशी की ओर अग्रसर हुए ॥९॥ उसने भी जैसे ही उन्हें अपनी ओर आता हुआ देखा, वैसे ही वह नेत्र फाड़े हुए घोर नाद करता आ उनकी ओर शीघ्रता से झपटा ॥१०॥ श्रीकृष्ण ने उसे अपनी ओर आता देख कर मेष के चन्द्रमा के पास तेजी से जाने के समान छनाग लगाई और हन्त उनके सामने जा पहुँचे ॥११॥ जैसे ही दोनों का सामना हुआ, वैसे ही केशी ने अपने अगले पाँच उठा कर श्रीकृष्ण के हृदय पर आघात किया । फिर वह उनके पार्श्व में बारम्बार प्रहार करने लगा और अक्सर पाकर अपने तीक्ष्ण तल्लों से उनके हाथ की काट छाया ॥१२-१३-१४॥

उरस्तस्पोरसा हन्तुमियेष बलवान्हयः ।

वेगेन वासुदेवस्य क्रोधाद्द्विगुणविक्रमः ॥१५॥

तत्स्योतिःस्तस्य बलवान्कृष्णोऽप्यमिनविक्रमः ।

बाहुभाभोगिनं कृत्वा मुखे क्रुद्धः समादधत् ॥१६॥

स तं बाहुमसवनो वै खादितुं भेत्तुमेव च ।

दशनमूलनिमुक्तैः सफेनं रुधिर वमन् ॥१७॥

विपाटिनाभ्यामोष्ठाभ्यां कटाभ्यां विदलीकृतः ।

अक्षिणी विवृते चक्रे विस्तृते मुक्तपन्धने ॥१८॥

निरस्तहनुराविष्ट शोणिताक्तविलोचनः ।

उत्कर्णो नष्टचेतस्तु स केशी चक्रवद्भ्रमन् ॥१९॥

उत्पन्नसकृत्पादैः शकृन्मूत्रं समुत्सृजन् ।  
खिन्नाङ्गगेमा आन्तस्तु निर्यत्नचरणोऽभवत् ॥२०॥

उस समय अत्यन्त रोष के कारण उसका बल बहुत बढ़ गया और उसने श्रीकृष्ण का हृदय विदीर्ण करने की इच्छा की ॥१५॥ तब महापराश्रम भगवान् ने अपनी भुजा उसके मुख में घुमा दी, जिसे न तो वह चबा सका और विदीर्ण कर सका । उल्टे उभी के दाँत मसूड़े तक चिर गये और मुख में फेन निर्यत्न प्रवाहित होने लगा ॥१६॥ उसके ओष्ठ फट गये, कटि विदीर्ण हो गई और उसके नेत्र विकृत हो गये ॥१७॥ ठोड़ी फट गई, नेत्र लोहितमय हो गया, चेतना हो गई और अग-अग लड़पने लगे ॥१८॥ फिर उठने की चेष्टा करके भी उठने में सफल न हुआ, मल मूत्र निकलने से लिप्त हो गया, रोमावलि बिगड़ गई, पसीने से लथ पथ होकर नितान्त क्षान्त हो गया और उसके पंखों हिलना डुलना भी बन्द हो गया ॥२०॥

व्यादितास्यो महारौद्र साऽसुर कृष्णबाहुना ।  
निपपात यया कृत्तो नागो हि द्विदलीकृत ॥२१॥  
बाहुना कृतदेहस्य केशिनो रूपमावभौ ।  
पशोरिव महाघोर निहतस्य पिनाकिना ॥२२॥  
द्विपादपृष्ठपुच्छाद्वं श्रवणकाक्षिनासिके ।  
पेशिनस्तद्विधामूते द्वे चाद्वं रेजतु क्षिती ॥२३॥  
केशिदन्तक्षतस्यापि कृष्णस्य शुशुभे भुज ।  
वृद्धस्ताल इवारण्ये गजेन्द्रदशनाद्धित ॥२४॥  
त हत्वा केशिन युद्धे कल्पयित्वा च भागश ।  
कृष्ण पद्मपलाशाक्षो हसस्तैव तस्थिवान् ॥२५॥  
त हत केशिन दृष्ट्वा गोपा गोपस्त्रियस्तथा ।  
बभ्रुर्मुदिता सर्वे हतविघ्ना हतबलमा ॥२६॥  
दामोदर सुधीमन्त ययास्थान ययावय ।  
अभ्यनन्दन्प्रियैर्वाक्यं पूजयन्त पुन पुन ॥२७॥



## ॥ अक्रूर द्वारा नाग लोक-वर्णन ॥

स नन्दगोपस्य गृह प्रविष्टः सहकेशवः ।  
 गोपवृद्धान्समानीय प्रोवाच मितदक्षिणः ॥१॥  
 कृष्णं चैवाब्रवीत्प्रीत्या रौहिणेयेन सगतम् ।  
 श्वः पुरी मथुरा तात गमिष्यामः सुखाय वै ॥२॥  
 यास्यन्ति च प्रजाः सर्वे गोपाला सपरिश्रहाः ।  
 कंसाज्ञया समुचित करमादाय वार्षिकम् ॥३॥  
 समृद्धस्तत्र कसस्य भविष्यति धनुर्महः ।  
 तद्द्रक्ष्यथ समृद्धं च स्वजनंश्च समेष्यथ ॥४॥  
 पितर वसुदेव च सततं दुःखभाजनम् ।  
 दीनं पुत्रवधश्चान्त युवामद्य समेष्यथ ॥५॥  
 सतत पीड्यमानं च कसेनाशुनबुद्धिना ।  
 दशान्ते शोषित वृद्धं दुःखं शिथिलता गतम् ॥६॥  
 कसस्य भयसत्रस्तं भवद्भगा च विनाशकृत् ।  
 दह्यमानं दिवा रात्रौ सौत्कण्ठेनान्तरात्मना ॥७॥  
 ता च द्रक्ष्यसि गोविन्द पुनैरमृदितस्तनीम् ।  
 देवकी देवसकाशा सीदन्ती विहृतप्रभाम् ॥८॥

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! गोपो और श्रीकृष्ण के साथ अक्रूरबी  
 नन्दजी के घर पहुँचे और श्रीकृष्ण बलराम से प्रीतिपूर्वक बोले—हम कल मथुरा  
 चलेंगे, वहाँ अत्यन्त आनन्द रहेगा । कस की आज्ञा से सभी गोपजन उपहार  
 सहित वार्षिक कर ले-लेकर हमारे साथ ही वहाँ पहुँचेंगे ॥१-३॥ वहाँ धनुर्मेज  
 महोत्सव होगा, इस बहाने से तुम अपने अन्य बाधबो से मिल लोगे ॥४॥ वही  
 तुम्हें तुम्हारे अत्यन्त दुःखित हृदय पिता वसुदेवजी भी मिल जायेंगे ॥५॥ दुष्ट  
 कस उन्हें निरन्तर दुःख देता है, इससे वे और भी सतप्त होजे हुए निरान्त दुर्बल  
 जायेंगे हैं ॥६॥ वे कस के भय से सदा भीत रहते और तुम्हें न देखने से और  
 भी चिन्ता ग्रस्त रहते हैं ॥७॥ तुम्हारी देव-नारियो जैसी अत्यन्त सुकुमारी माता

होगया ॥१॥ पथिकों को उनके बाघवों के मिलन का सन्देश देते हुए पथिकों  
जब अपने निवास के लिये जाने लगे तभी दानपति अक्रूर वज्र में पहुंच ग  
॥२॥ और वहाँ कृष्ण, बलराम और नन्द गोप के विषय में उन्होंने जानकाई  
प्राप्त की ॥३॥ उस समय उनका मुख खिला हुआ था और नेत्र अभ्रुओं के  
परिपूर्ण थे ॥३॥ नन्द के घर में जाकर उन्होंने देखा कि गौओं के दोहन-स्थान  
पर बछड़ों के मध्य में श्रीकृष्ण स्थित है । उन्हें देखते ही अत्यन्त आनंदित होते  
हुए अक्रूर ने उनसे कहा ॥४-५-६॥

एहि केशव तातेति प्रव्याहरत धर्मवित् ॥  
उत्तानशायिन दृष्ट्वा पुनर्दृष्ट्वा श्रिया वृतम् ॥७  
अव्यक्तयौवन कृष्णमक्रूर प्रशशस ह ।  
अयं स पुण्डरीकाक्ष सिंहशार्दूलविक्रमः ॥८  
सपूर्णजलमेघाभ पवंतप्रवराकृतिः ।  
मृधेज्वधर्पणीयेन सश्रीवत्सेन वक्षसा ।  
द्विपन्निघनदक्षाभ्या भुजाभ्या साधु भूयित ॥९  
मूर्तिमान्सरहस्यात्मा जगतोऽग्र्यस्य भाजनम् ।  
गोपवेपधरो विष्णुरुदग्राग्रयूतनूरुहः ॥१०  
किरीटलान्छनेनापि शिरसा छलवर्चसा ।  
कुण्डलोत्तमयोग्याभ्या श्वणाभ्या विभूयितः ॥११

हे वेणव ! यही आनंदी । फिर उन बट के पत्तों पर सज्जन करने लगे,  
अखिल वृत्ताण्ड के गोदर्पाश्रय एवं युवावस्था को प्राप्त होने हुए भगवाद् को  
देख कर विचार करने लगे कि यही साधान् विष्णु है, इनका बर धिह के समान,  
मर्त्य सज्जन मेघ जंगा और जाकार अत्यन्त ऊँच पवंत में मुख्य है तथा एहो  
के वक्ष पर श्रीवत्स चिह्न प्रतिष्ठित है और यह बैरिवा को मारने में अद्वितीय  
है ॥७-८-९॥ जिन्हें अव्यक्त पुरुष कहा जाता है, यह वही है, सम्पूर्ण नेत्रोपर  
एहों का पूजन किया करता है । यही शीघ्र पर मुकुट और श्वेत छत्र  
कानों में ध्वज कुण्डल पारण्ड किये रहते हैं ॥१०-११॥



## ॥ अक्रूर द्वारा नाग लोक-वर्णन ॥

स नन्दगोपस्य गृह प्रविष्टः सहकेशवः ।  
 गोपवृद्धान्समानीय प्रोवाच मितदक्षिणः ॥१॥  
 कृष्ण चैवाद्रवीत्प्रीत्या रौहिणेयेन सगतम् ।  
 श्वः पुरी मयुरा तात गमिष्यामः सुखाय वै ॥२॥  
 यास्यन्ति च प्रजाः सर्वे गोपाला सपरिश्रहाः ।  
 कंसाक्षया समुचितं करमादानं वार्षिकम् ॥३॥  
 समृद्धस्तन्नं कसस्य भविष्यति धनुर्महः ।  
 तद्द्रक्ष्यस्य समृद्धं च स्वजनंश्च समेष्यस्य ॥४॥  
 पितरं वसुदेवं च सततं दुःखभाजनम् ।  
 दीनं पुत्रवधयान्तं युवामद्य समेष्यस्य ॥५॥  
 सततं पीड्यमानं च कसेनाशुभबुद्धिना ।  
 दशान्ते शोषितं वृद्धं दुःखं क्षिप्रतया गतम् ॥६॥  
 कसस्य भयसन्तस्तं भवद्भ्यां च विनाशकृत् ।  
 दह्यमानं दिवा रात्रौ सोत्कण्ठेनान्तरात्मना ॥७॥  
 तां च द्रक्ष्यसि गोविन्द पुनैरमृदितस्तनीम् ।  
 देवकी देवसकाशा सीदन्ती विहृतप्रभाम् ॥८॥

वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! गोपा और श्रीकृष्ण के साथ अक्रूरजी नन्दजी के घर पहुँचे और श्रीकृष्ण बलराम से प्रीतिपूर्वक बोले—हम कल मयुरा वल्लेग, वहाँ अत्यन्त आनन्द रहेगा । कस की आज्ञा से सभी गोपजन उपहार सहित वार्षिक कर ले-लेकर हमारे साथ ही वहाँ पहुँचेंगे ॥१-३॥ वहाँ धनुर्पञ्च महोत्सव होगा, इस बहाने से तुम अपने अन्य बाधकों से मिल लोग ॥४॥ वही तुम्हारे अत्यन्त दुःखित हृदय पिता वसुदेवजी भी मिल जायेंगे ॥५॥ दुष्ट इस उन्हें निरन्तर दुःख देता है, इससे वे और भी सतप्त होते हुए नितान्त दुर्बल हो जायेंगे हैं ॥६॥ वे कस के भय से सदा भीत रहते और तुम्हें न देखने से और भी चिन्ता ग्रस्त रहते हैं ॥७॥ तुम्हारी देव-नारियो जैसी अत्यन्त सुकुमारी माता

देवकी अपने किसी बालक को आज तक दूध न पिला सकी, इससे वह दम्प  
हृदया अत्यन्त कान्तिहोन प्रतीत होती है ॥८॥

पुत्रशोकेन शुष्यन्ती त्वद्दर्शनपरायणाम् ।  
वियोगशोकसतप्ता विवत्सामिव सौरभीम् ॥८॥  
उपप्लुतेक्षणा दीना नित्यं मलिनवाससम् ।  
स्वभन्निवदनग्रस्ता शशाकस्य प्रभामित्र ॥९॥  
त्वद्दर्शनपरा नित्यं तवागमनकाक्षिणीम् ।  
त्वत्प्रवृत्तेन शोकेन सीदन्ती वै तपस्विनीम् ॥११॥  
कृष्ण सुविदितार्थो वै तमाहामितविक्रमम् ।  
बाढमित्येव तेजस्वी न च क्रोधवश गत ॥१२॥  
ते च गोपा समागम्य नन्दगोपपुरोगमा ।  
अक्रूरवचन श्रुत्वा चेलु कसस्य शासनात् ॥१३॥  
गमनाय च ते सज्जा बभ्रुवृंजवासिन ।  
सज्ज चोपायन कृत्वा गोपवृद्धा प्रतस्थिरे ॥१४॥  
कर चानडुह सर्पिमंहिपाश्रोपनायकान् ।  
यथासार यथायूथमुपानीय पयो घृतम् ॥१५॥  
त सज्जयित्वा कसस्य कर चोपायनानि च ।  
ते सर्वे गोपपतयो गमनाद्योपतस्थिरे ॥१६॥

वह तुम्हारे वियोग-दुःख में सदा अश्रुपात करती रहती है पीट-रही है वियोग वाली गी के समान पीड़ित है ॥८॥ उसके वस्त्र सदा मंते पड़े। और यह से पछी हुई चादनी ने समान सब प्रकार से मलीन रहती है ॥९॥ वह तपस्विनी तुम्हारे शोक में क्षीण होती हुई तुम्हें देखने को लातामि है श्री तुम्हारे जाने की प्रतीक्षा करती रहती है ॥११॥ वंशम्पायन की न बहा-राजन् । अक्रूर की बातों को नव प्रकार समझकर भगवान् श्रीकृष्ण ने उन धनुमादन किया ॥१२॥ नन्दादि सभी गोपों ने अक्रूर के मुख से महाराज की आज्ञा सुन ली मधुच पला का विचार किया ॥१३॥ व गुरु ही है

हो, घृत, महिष, वेल आदि के सहित वार्षिक कर लेकर मधुरा चलने की उद्यत हुए ॥१४-१५-१६॥

अक्रूरस्य कथामिदं सह कृष्णेन जाग्रतः ।  
 रोहिणेयतृतीयस्य सा निद्या व्यत्यवर्तत ॥१७॥  
 ततः प्रभाते विमले पक्षिव्याहारसकुले ।  
 नैशाकरे रश्मिजाले क्षणदाक्षयसहते ॥१८॥  
 नभस्यरुणमस्तीर्णे पर्यस्ते ज्योतिषा गणे ।  
 प्रत्यूषपचनामारैः क्वेदिते धरणीतले ॥१९॥  
 क्षीणाकारास्तु तारास्तु सुप्तनिष्प्रतिभास्तु च ।  
 नैशमन्तर्दधे रश्मिमुद्गच्छति दिवाकरे ॥२०॥  
 शीताशुः शान्तकिरणो निष्प्रभः समपद्यत ।  
 एको नाशयते रूपमेको चर्दयते वपुः ॥२१॥  
 गोनिः समवकीर्णास्तु व्रजनिर्घाण भूमिषु ।  
 मन्यानावर्तपूर्णेषु गंगरेषु नदत्सु च ॥२२॥  
 चामभिर्दम्यमानेषु वत्सेषु तरुणेषु च ।  
 गोपैरापूर्यमाणास्तु घोषरय्यास्तु सर्वशः ॥२३॥  
 तत्रैव गुरुकं भाण्डं शकटारोपितं गृहम् ।  
 स्वरिता पृष्ठतः कृत्वा जग्मुः स्यन्दनराहनाः ॥२४॥  
 कृष्णोऽयं रोहिणेयश्च स चैनामितर्दक्षिणः ।  
 त्रयो रथमता जग्मुस्त्रिगोकपतयो यथा ॥२५॥  
 अवाह कृष्णमक्रूरो यमुनातीरमाश्रितः ।  
 स्यन्दनं चात्र रक्षन्व यत्नं च कुरु चाजिषु ॥२६॥  
 ह्येभ्यो यवसं दत्त्वा हयमाण्डे रथे तथा ।  
 प्रगाढं यत्नमास्थाय क्षणं तात प्रतीक्ष्यताम् ॥२७॥  
 यमुनाया हृदं ह्यस्मिन्तोप्यामि भुजनेश्वरम् ।  
 दिव्यैर्मगिवर्तमन्त्रैः सर्वलोकप्रभुं यतः ॥२८॥

आस्तामा- समुदीक्षन्ती भवन्ती सगतावुभौ ।

निष्कृष्टो भुजगेन्द्रस्य यावदस्मि हृदोत्तमात् ॥२६॥

उधर कृष्ण, बलराम और अक्रूर तीनों ही ने विविध वार्ताताप बताए हुए रात्रि-जागरण किया ॥१७॥ जब प्रातःकाल हो गया तब पक्षियों की कल रात श्रवण आरम्भ हुई और चन्द्रमा की किरणें प्रभाहीन हो गई ॥१८॥ आकाश में अरुणोदय की लाली छा गयी, तारागण छिप गये और शीत समीर प्रवाहित होने लगा ॥१९॥ कुछ नक्षत्र छिप गये और कुछ निष्प्रभ हो गये, चन्द्रमा ने अपनी चाँदनी समेटी और सूर्य किरणें विस्तृत हो उठी ॥२०-२१॥ व्रज के द्वार उधर जाकर गए चरने लगी और मयानी का शब्द सुनाई पड़ने लगा ॥२२॥ युवावस्था वाले बछड़े खूंटो से बाँध दिये गये और व्रज के सब मार्गों पर गोप बल्लते हुए दिलाई पड़ने लगे ॥२३॥ उस समय भारी वर्तनों में विविध सांझी भर कर और उन्हें शकटों पर लाद कर गोपगण मथुरा की ओर चल दि ॥२४॥ बलराम, कृष्ण अक्रूर के रथ पर लोकगालों के समान आरुढ़ हो चले ॥२५॥ तब यमुना के किनारे पहुँच कर अक्रूर ने कहा— तुम यहाँ रह कर रथ और घोड़ों की रक्षा करो, घोड़ों को घास डाल देना और उनके आभूषणों को भी देखते रहना ॥२६-२७॥ क्योंकि मैं यमुना बल में जाकर सर्वेश्वर पद्म भगवान् का पूजन करूँगा ॥२८॥ इसलिये जब तक मैं यहाँ लौटकर आऊँ तक तुम यहाँ रह कर मेरी प्रतीक्षा करना ॥२९॥

तमाह कृष्णः सहृष्टो गच्छ धर्मिष्ठ मा चिरम् ।

जावा एतु न शक्तौ स्वस्त्वया हीनावुपासितुम् ॥३०॥

स हृदे यमुनायास्तु ममज्जामितदक्षिणः ।

रमातले स ददते नागलोचमिम यथा ॥३१॥

तस्य मध्ये सहस्रास्य हेमतालोच्छ्रितध्वजम् ।

साङ्गनासतद्वस्ताय मुगलोपाश्रितोदरम् ॥३२॥

असिताम्बरसमीत पाण्डुरं पाण्डुरासनम् ।

कुण्डलकपरं मत्त मुप्तमभ्युद्वेक्षणम् ॥३३॥

भोगोत्कृष्टसुने शुभ्रे स्वेन देहेन कल्पिते ।  
स्वासीनं स्वस्तिकाम्या च वराहाभ्या महीधरम् ॥२४॥  
किञ्चित्सव्यापवृत्तेन मौलिना हेमधूलिना ।  
जातरूपमयैः पद्ममालयाऽऽच्छन्नवक्षसम् ॥२५॥  
रक्तचन्दनदिग्वाङ्गं दीर्घबाहुपरिदमम् ।  
पद्मनाभ मिताभ्राभं भामिज्वलिततेजसम् ॥२६॥  
ददर्श भोगिना नाथ स्थितमेकार्णवेश्वरम् ।  
पश्यमानं द्वित्रिहोत्रं वामुकिप्रमुखं प्रभुम् ॥२७॥

यक्रूर की बात सुनकर भगवान् कृष्ण ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—अच्छा, ॥१५॥ जाइये, परन्तु अधिक विलम्ब न करना ॥३०॥ तब यक्रूर ने यमुना तट पर जाकर जल में स्नान किया । उन्होंने देखा कि वे नागलोक में पहुँच गये ॥३१॥ वहाँ हजार मातृका वाले उन्नत ध्वजा युक्त, हल-मूसल धारण किये हुए, नीलाम्बर ओढ़े, एक कुण्डल से मुगोभित, पाण्डुर वर्ण वाले, मद से मत्त, घिखिले कमल जैसे नेत्र वाले, स्वस्तिक चिह्न धारी अनन्त भगवान् अपने शिर पर सम्पूर्ण पृथिवी को धारण किये हुए एक उज्ज्वल आमन पर प्रतिष्ठित ॥३२-३३-३४॥ उनका मुकुट बाई ओर की कुछ-कुछ मुखा या समा उनके शिःस्थल पर धोने के कमल की माला मुगोभित थी ॥३५॥ उनके शरीर पर रक्त चन्दन लगा था, उनकी विशाल मुखाएँ, कमल के समान नाभि और जल रहित प के समान अत्यन्त शुभ्र देह कान्ति थी ॥३६॥ वामुकि महा स्रपं उन एकार्णविर भगवान् का निरतन्त्र पूजन कर रहे थे ॥३७॥

कम्बलाश्वतरो नागी ती चामरकरावृन्ता ।

अवीजयेता त देव धर्मसिनगत प्रभुम् ॥२८॥

तस्याभ्यक्षगतो भाति वासुकिः पल्लमेश्वरः ।

वृत्तोज्यैः सचिवैः सर्वैः कर्कोटकपुर सरै ॥३८

त यदः काञ्चनानिष्यः ॥ १ ॥

राजानं स्नापयामासु. स्नातमकार्णवान्बुभिः ॥४०॥

तस्योत्सङ्गे घनश्याम श्रीवत्साच्छादितोरसम् ।  
 पीताम्बरधर विष्णु सूपविष्ट ददर्श ह ॥४१॥  
 अपर चैव सोमेन तुल्यसहनन प्रभुम् ।  
 सकर्पणमिवासीन त दिव्य विष्टर विना ॥४२॥  
 स कृष्ण तल सहसा व्याहर्तुमुपचक्रमे ।  
 तस्य सस्तम्भयामास वाक्य कृष्ण स्वतेजसा ॥४३॥  
 सोऽनुभूय भुजगाना त भागवतमव्ययम् ।  
 उदतिष्ठत्पुनस्तोयाद्विस्मितोऽमितदक्षिण ॥४४॥  
 स तौ रथस्थावासीनौ तसैव बलकेशवौ ।  
 निरोक्ष्यमाणावन्योन्य ददर्शाद्भुतरूपिणौ ॥४५॥

कमल और अश्वतर दो नाग-बन्धु उन पर चढ़कर डूला रहे थे ।  
 वामुकी और कर्कोन्क आदि नाग-सचिव उनके चारों ओर बैठे थे ॥४१॥  
 समुद्र के जल से नरे हुए और पद्म पुष्प से सजे हुए स्वर्ण पट से उन  
 भगवान् का अभिषेक हुआ ॥४०॥ तदनन्तर अक्रूर ने देखा कि उन भग-  
 निबट ही पीताम्बर धारी, मेघ-वर्ण, श्रीवत्स से असकृत श्रीकृष्ण के समान है  
 एक अन्य पुरुष विराजमान है ॥४१-४२॥ उस देसत ही अक्रूर उससे कुछ पूछने  
 को उद्यत हुए तभी उनकी वाग्मनित स्तम्भित हो गई ॥४३॥ तब अक्रूर ने  
 श्रीहरि को ही नागराज अनठ समझा और आश्चर्य पश्चित्त मन से यमुना पर  
 स निकल ॥४४॥ तब उन्होंने रथ की ओर दृष्टि डाल कर देखा ठीक  
 बलराम और कृष्ण को रथ पर बैठे रह कर एन-दूसरे की आर देते  
 पाया ॥४५॥

जयामञ्जत्पुनस्तल तदाऽक्रूर कुतूहलात् ।  
 दृश्यत यस्य देवोऽसौ नीलवासा सिताननः ॥४६॥  
 तर्धवासीनमुत्सङ्गे सहस्रास्यधरस्य वै ।  
 ददर्श कृष्णमक्रूर. पूज्यमान तदा प्रभुम् ॥४७॥  
 नृपस्य सहगात्पाय त मन्त्र मनसा जपन् ।  
 रथ तनैव मार्गेण जगामामितदक्षिण ॥४८॥

तमाह केशवो हृष्टः स्थितमक्रूरमागतम् ।  
 कीदृश नागलोकस्य वृत्त भागवते हृदे ॥४६॥  
 चिर च भवता कालो व्याक्षेपेण विलम्बितः ।  
 मन्ये हृष्ट त्वयाऽऽश्चर्यं हृदय ,ते यथा चलम् ॥४७॥  
 प्रत्युवाच स तं कृष्णमाश्चर्यं भवता विना ।  
 किं भविष्यति लोकेषु स्थावरेषु चरेषु च ॥४८॥  
 तनाश्चर्यं माया दृष्टं कृष्ण यद्भुवि दुर्लभम् ।  
 तदिहापि यथा तत्र पश्यामि च रमामि च ॥४९॥  
 सगतश्चापि लोकानामाश्चर्येणैह रुषिणा ।  
 अतः परतरं कृष्ण नाश्चर्यं द्रष्टुमुत्सहे ॥५०॥  
 सदा गच्छ गमिष्यामः कंसराजपुरी प्रभो ।  
 यावन्नास्त ब्रजत्येषस्तमोहर्ता दिवाकरः ॥५१॥

इससे उनका विस्मय और भी बढ़ गया और उन्होंने जल में पुनः गोता  
 या तो जल में जहाँ सहस्र भस्त्रक वाले अनन्त भगवान् विराजमान थे, वहाँ  
 अब श्रीकृष्ण की ही विराजमान देखा ॥४६-४७॥ तब वे पुनः जल से निकले  
 मग्न-जप करते हुए रथ के पास आगये ॥४८॥ उन्हें देख कर श्रीकृष्ण ने  
 —यमुना-जल में आपने ऐसा क्या देखा है जिससे आपके हृदय की चञ्चलता  
 बता रही है कि आपने कोई आश्चर्यजनक घटना देखी है ? फिर आपको  
 विलम्ब भी बहुत हो गया ॥४९-५०॥ इस पर अक्रूर ने कहा—हे वत्स !  
 विश्व में तुम्हारे अतिरिक्त कोई अन्य आश्चर्य है ही नहीं ॥५१॥ वहाँ जिस  
 शर्मययी घटना को मैंने वहाँ देखा था, उसे मैं इस समय भी वहाँ देख रहा  
 ५२॥ मैं उस विमग्नजनक वस्तु को मूर्ति रूप में देख कर इतना तन्मय हो  
 पा कि अब उससे अधिक किसी भी आश्चर्य की देखन की मुझे इच्छा  
 ही नहीं है ॥ ५३ ॥ अच्छा अब हमको चलना चाहिये, क्योंकि सूर्य के  
 हुए ही हमें मथुरापुरी में पहुँच जाना है ॥५४॥

॥ श्रीकृष्ण द्वारा कंस के धनुष का टूटना ॥

ते तु युद्धत्वा रथवर सर्व एवामितोजसः ।  
 कृष्णेन सहिता. प्रायस्तथा सकपणेन च ॥१  
 आसेदुस्ते पुरीं रम्या मथुरा कंसपालिताम् ।  
 विविशस्ते पुरीं रम्या काले रक्तदिवाकरे ॥२  
 तौ तु स्वभवन वीरौ कृष्णसर्पणावभौ ।  
 प्रवेशितौ बुद्धिमता ह्यकूरेणार्कवर्चसौ ॥३  
 तावाह वरवर्णाभौ भीतो दानपतिस्तदा ।  
 त्यक्तव्या तात गमने वसुदेवगृहे स्पृहा ॥४  
 युवयोर्हि कते वृद्ध कंसेन स निरस्यते ।  
 भर्त्स्यते च दिवा राक्षो नेह स्थातव्यमित्यपि ॥५  
 तद्युवाभ्यां हि कर्त्तव्यं पितृय सुखमुत्तमम् ।  
 यथा सुखमवाप्नोति तद्वै कार्यं हितान्वितम् ॥६  
 तमुवाच ततः कृष्णो यास्यावावामर्त्तिकतौ ।  
 प्रेक्षन्तौ मथुरा वीर राजमार्गं च धार्मिकम् ।  
 तस्यैव तु गृहं साधो गच्छावो यदि मन्यसे ॥७

वैशम्पायन जी ने कहा—फिर रथ को जोड़ कर अकूर बल  
 के सहित उस पर बैठ कर वहाँ से चले और सूर्यास्त होते-होते कम दूरी पर  
 मथुरापुरी में जा पहुँचे ॥१-२॥ सूर्य के समान अत्यन्त तेजस्वी उन दोनों वीरों  
 की शाय लिये हुए अकूर अपने घर में धुसे ॥३॥ वहाँ उन दोनों की बातें  
 कर उन्होंने कहा—अभी अपने पिता वसुदेव जी के यहाँ मत जाओ, क्योंकि  
 तुम्हारे लिये ही कंस की ताड़ना सहन कर रहे हैं, इसलिये तुम्हारा यहाँ  
 उचित नहीं होगा ॥४-५॥ इसलिये, उनको मुर की प्राप्ति हो, वंशावली  
 यह मुन कर श्रीकृष्ण बोले कि यदि आपकी अनुज्ञा हो तो हम राजमार्ग के  
 मथुरानगरी को देखते हुए महाराज कंस के भवन में ही चने जायें ॥६-७॥

अनुशिष्टौ च तौ वीरौ प्रस्रियतौ प्रेक्षन्तौ

आमानाभ्यामिवो-मानौ नृज्जगौ यदराशिणौ ॥८



तो तु मामंगतं दृष्ट्वा रजकं रङ्गकारकम् ।  
 अयाचेता ततस्तौ तु वासामि रुचिराणि वै ॥८॥  
 रजकः स तु तौ प्राह युवा कस्य वनेचरो ।  
 राजवामासि यौ मोढ्याद्याचेता निर्भयावुभौ ॥९॥  
 अहं कंसस्य वामानि नानादेशोद्भवानि वै ।  
 कामरागाणि शतशो रञ्जयामि विशेषतः ॥१०॥  
 युवा कस्य वने जाती मृगैः सह विवर्द्धितौ ।  
 जातरामाविदं दृष्ट्वा रक्तमाच्छादन बहु ॥११॥  
 अहौ वा जीवित त्यक्तं यौ भवन्ताविहागतौ ।  
 मूर्खौ प्राकृतविज्ञानौ वामो याचितुमिच्छतः ॥१२॥  
 तस्मै चुकोप वै कृष्णो रजकायालमेष्टसे ।  
 प्राप्तारिष्टाय मूर्खाय मृजते बाङ्मय विषम् ॥१३॥  
 तलेनाशनिकल्पेन स तं मूर्धन्यताडयत् ।

स गतासुः पपातोभ्यां रजको व्यस्तमस्तकः ॥१४॥

बंशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! जैसे खम्भे से बंधा हुआ युद्धेच्छुक  
 जो वन से छूटता है, वैसे ही कृष्ण और बलराम अक्रूर से आज्ञा लेकर नगरी  
 में देखने की इच्छा से चल दिये ॥८॥ फिर कुछ ही दूर जान पर उन्हें एक  
 स्त्र धोने वाला दिखाई दिया, जिससे उन्होंने मुन्दर वस्त्रों की माँग की ॥९॥  
 उनके द्वारा वस्त्र माँगे जाने पर धोबी बोला कि तुम जबदब वनचर प्रतीत  
 होते हो, जो मूर्खता में राजा के वस्त्रों की माँगने हुए भी नहीं डर रहे हो ॥१०॥  
 जना देशों में निमित्त हुए विभिन्न प्रकार के वस्त्रों को महाराज कंस की रुचि  
 अनुसार रंगना ही मेरा काम है ॥११॥ तुम वन में डलान होकर मृगों के  
 साथ खेलते हुए ही वृद्धि को प्राप्त हुए हो, इसीलिये इन रंग-विरंगे वस्त्रों को  
 ख कर इन पर मोहित हो गये हो ॥१२॥ तुम इनने मूर्ख और ज्ञानी हो कि  
 राजा के वस्त्रों की माँग कर तुमने अपने जीवन को धीन बना लिया है ॥१३॥  
 स ग्लान बुद्धि वाले धोबी ने कालखण्ड ही भगवान् कृष्ण के प्रति ऐंसे विषम  
 वचन कहे, जिससे दृष्ट होकर उन्होंने एक थप्पड़ उसके मुख पर मारा। उस

प्रहार से उसका भस्तक विदीर्ण हो गया और प्राण-रहित होकर पृथिवी पर गिरा ॥१४-१५॥

त हत परिदेवन्तप्रो भार्यास्तस्य विचुक्रुशु ।  
 त्वरित मुक्तकेश्यश्च जग्मु कसनिवेशनम् ॥१६॥  
 तावप्युभौ सुवसनौ जग्मतुर्माल्यकारणात् ।  
 वीथी माल्यापणाना वै गन्धाघ्रातो द्विपावि ॥१७॥  
 गुणको नाम तस्मासीन्माल्यवृत्ति प्रियवद ।  
 प्रभूतमाल्यापणवर्ल्लक्ष्मीवान्प्रियदर्शने ॥१८॥  
 त कृष्ण श्लक्ष्णया वाचा माल्यार्थमभिसृष्टया ।  
 देहीत्युवाच तत्काले मालाकारमकातरम् ॥१९॥  
 ताभ्या प्रीतो ददौ माल्य प्रभूत माल्यजीवन ।  
 भवतो स्वमिद चेति प्रोवाच प्रियदर्शनी ॥२०॥  
 प्रीत मुमनसा कृष्णो गुणकाय वर ददौ ।  
 श्रीस्त्वा मत्समवा सीम्य धनोघैरभियत्स्यते ॥२१॥

इस प्रकार जब वह रजक मर गया, तब उसकी स्त्रियाँ कण्ठ सोत  
 चन्दन बरती हुई महाराज वस के भवन में गई ॥१६॥ उधर श्रीकृष्ण-नर  
 भयनी रवि के अनुसार उन मुन्दर वस्त्रों को पहिन कर जहाँ माली रहते  
 वहाँ एक मुगधित माला की इच्छा से गये ॥ १७ ॥ वही गुणक नामक  
 सौभाग्यशाली माली निवास करता था ॥१८॥ उसका नाम जानकर उहाँ ने  
 मधुर स्वर में माला देने का लिय कहा । माली ने कहा कि यह माला  
 लिय ही बनाई गई है, जो अच्छी लगे व सीजिये । यह कह कर उसने  
 मालाएँ उनका हाथ में दे दी ॥१९-२०॥ तब भगवान् ने प्रसन्न होते हुए उस  
 से कहा—ह सीम्य । तुम्हारे यहाँ पर सर्वत्र भरा रहेगा जोर सस्त्री दु  
 पर का कभी त्याग न करोगी ॥२१॥

त सञ्जा वग्मव्यग्रो मातयवृत्तिरधोमुखः ।  
 मृष्णस्य पति ॥ मूर्ध्ना प्रतिजग्राह त वरम् ॥२२॥

यक्षाविमाविति तदा स मेने मात्यजीवकः ।  
 स भृश भयमविमो नोत्तरं प्रत्यपद्यत ॥२३॥  
 वमुदेवमुतो तो च राजमागंगतावुना ।  
 कुब्जा ददसतुर्भूयः सानुलेपनभाजनाम् ॥२४॥  
 तामाह कृष्णः कुब्जेति कस्येदमनुलेपनम् ।  
 नयस्यम्बुजत्रासि क्षिप्रमागतातुमर्हसि ॥२५॥  
 सस्मिता समुन्नीमूत्रा प्रत्युवाचाम्बुजेक्षणम् ।  
 कृष्ण जलदगम्भीर विद्युत्कुटिलगामिनी ॥२६॥  
 राज्ञः स्नानगृहं यामि तद्गृहाणानुलेपनम् ।  
 स्थिताऽस्म्यागच्छ मद्रं ते हृदयस्यामि मे प्रियः ॥२७॥  
 कुनश्चागम्यते सौम्य यन्मा त्व नावबुध्यसे ।  
 महाराजस्य दयिता नियुक्तामनुलेपने ॥२८॥

वरदान प्राप्त कर मातो ने तिर झुका कर और उनके चरणों में पड़  
 र प्रणम किया, परन्तु उसने उन दोनों को दक्ष समझ कर नय के कारण उन्हें  
 ई उत्तर नहीं दिया ॥२२-२३॥ तदनन्तर वे दोनों वमुदेव-नुज उसी राजमागं  
 आगं चले तो उन्हें एक कुबही दिखाई दी, जिसके हृष्य में चन्दन से परिपूर्ण  
 के बर्तन था ॥२४॥ उसने श्रीकृष्ण ने कहा—हे पद्मपत्राक्षि ! यह अनुलेपन  
 इसके लिये ले जा रही हो ? ॥२५॥ इस पर विद्युत् के समान कुटिल गति  
 ली कुब्जा ने मुन्करा कर जलधर के समान गम्भीर श्रीकृष्ण से कहा—यह  
 लेपन राजा कस के स्नानागार में लिये जा रही है, परन्तु तुम्हें देख कर मेरा  
 त मुन्हागे ओर धाकपित हो उठा है, इसलिये तुम्हें जितना चदन चाहिये,  
 उना इसमें से ग्रहण कर लो ॥२७॥ मैं महाराज के लिये थोड़ा अनुलेपन बनाने  
 काम पर नियुक्त हूँ, मेरा चदन उन्हें बहुत प्रिय है, तूम मुझे नहीं जान पाये  
 बताओ कि वहाँ से चने आते हो ? ॥२८॥

तामुवाच हसन्ती तु कृष्णः कुब्जासवस्थिताम् ।  
 आवयोगानसदृशं दीयतामनुलेपनम् ॥२९॥

वयं हि देशातिथयो मत्स्यं प्राप्ता वरानने ।  
 द्रष्टुं धनुर्महं दिव्यं राष्ट्रे चैव महर्षिमत् ॥३०॥  
 प्रत्युवाचाथ सा कृष्ण प्रियोऽमि मम दत्तंने ।  
 राजार्हमिदमव्यग्रं तद्गृहाणानुलेपनम् ॥३१॥  
 तावुभावनुलिप्तः क्ली चारुगात्रो विरेजतु ।  
 तीर्थंगो पङ्कदिग्धाङ्गी यमुनाया यथा वृषी ॥३२॥  
 ता च कुब्जा स्थगोर्मध्ये द्वयङ्गुलेनाग्रपाणिना ।  
 शनैः सपोडयामास कृष्णो लीलाविधावित् ॥३३॥  
 सा च मग्नं स्वयं मत्वा स्वायताङ्गी शुचिस्मिता ।  
 जहासौच्चं स्तनतटां शृङ्गुयष्टिलंता यथा ॥३४॥  
 प्रणयान्चापि कृष्ण सा वभाषे मत्तकं शिनी ।  
 क्व यास्यसि मया रुद्धं कान्तं तिष्ठ गृहाण माम् ॥३५॥

तब श्रीकृष्ण बोले कि तुम हमारे प्रयोग के योग्य ही अनुलेपन होंगे। हम यहाँ प्रथम बार आने वाले मत्स्य हैं और राजा कस के इस वैभवशाली राज्य और धनुयज्ञ की देखने के निमित्त ही यहाँ आये हैं ॥३०॥ श्रीकृष्ण की बात सुन कर कुबड़ी ने कहा—तुम्हें देख कर मेरा देह हलित रहा है, इसलिए राजा के योग्य इस चदन को मैं तुम्हें दे रही हूँ ॥३१॥ दोनों भाइयों ने चदन लेकर अपने देह पर लगाया और कीच म सने हुए के समान शोभा पाने लगे ॥३२॥ तब देह विज्ञान को जानने वाले भगवद् अपनी दो अंगुलियों से कुब्जा के बूबड़ को दबा दिया जिससे उसका बूबड़ हो गया और वह सीधी फैलने वाली सता के समान सुडौन अग धाली हो उच्च स्वर से हस करती हुई श्रीकृष्ण का मार्ग रोक कर बोली—अब कियर जाते हैं ? हे कान्त ! अब तो मुझे ग्रहण कर लीजिये ॥३३-३५॥

तो जातहासावन्योन्य सतलाक्षेपमव्ययी ।  
 वीक्षमाणी प्रहसितौ कुब्जाया श्रुतिविस्तरी ॥३६॥  
 वृष्णस्तु कुब्जा कामार्ता सस्मित विससर्ज ह ।  
 ततस्ती कुब्जया मुक्ती प्रविष्टी राजससदम् ॥३७॥

तावुमो व्रजसवृद्धौ गोपवेपविभूषितौ ।  
 गूढचेष्टाननो भूत्वा प्रविष्टौ नृपवेश्म तत् ॥३८॥  
 धनु शाला गतौ तत्र बालावपरितर्कितौ ।  
 हिमवद्वमसभूतो सिंहाविव मदोत्कटौ ॥३९॥  
 दिदृक्षन्ती महत्तन धनुरायागभूषितम् ।  
 पप्रच्छतुश्च तौ वीरावायुघागारिक तदा ॥४०॥  
 भो कसधनुषा पाल धूयतामहयोर्वच ।  
 कतरत्तदनु सौम्य महोऽय्य यस्य वर्तते ॥४१॥  
 आयोगभूत कंसस्य दर्शयस्व यदौच्छसि ।  
 स तयोर्दर्शयामास तदनु स्तम्भसन्निभम् ॥४२॥

उसके वचन सुन कर दोनों भाइयों को बड़ा आनन्द मिला और वे ताली बजा कर उसे देखने और उसकी प्रशंसा करने लगे ॥३८॥ इसके पश्चात् उन्होंने हेस कर कुन्जा को विशा किया और स्वयं वहाँ से चल कर राजभवन में घुसे ॥३९॥ वहाँ पहुँच कर वे दोनों भाई गोपवेश में ही जहाँ धनुष-यज्ञ होने को था, उस यज्ञशाला में धनुष को देखने को इच्छा से गये और वहाँ जाकर यज्ञशाला के रक्षक से पूछने लगे कि हे महाराज कम के धनुषपाल ! जिस धनुष के लिये इस महोत्सव का आयोजन किया गया है, वह धनुष कौन-सा है ? ॥४०-४१॥ यदि आपको किसी प्रकार की जागृति न हो तो उस प्रसिद्ध धनुष के दर्शन हमें भी करा दीजिये । इस पर धनुष रक्षक ने वह स्वप्ने के समान मोटा धनुष उन्हें दिखला दिया । ४२॥

अनारोप्यमसभेद्य देवैरपि सवासवं ।  
 तद्गृहीत्वा तदा कृष्णस्नौलयामास वीर्यवान् ॥४३॥  
 दोष्म्या कमलपत्राक्ष प्रहृष्णान्तेतरात्मना ।  
 तोलयित्वा यथाकाम तदनुर्दृत्यपूजितम् ॥४४॥  
 आरोपयामास तदा नामयामास चासकृत् ।  
 आनम्यमान क्रुग्नेन प्ररुर्पादुरगोपमम् ॥४५॥

द्विधाभूतममून्मध्ये धनुरायोगभूषितम् ।  
 भङ्क्त्वा तु तदनु श्रेष्ठ कृष्णस्त्वरितविक्रमः ।  
 निश्चक्राम महावेग स च मकर्षणो युवा ॥४६॥  
 धनुषो भङ्गनादेन वायुनिर्घोषकारिणा ।  
 चचालान्त पुर सर्वं दिशश्चैव पुष्परिरे ॥४७॥  
 निर्गत्य त्वायुधागाराज्जग्मतुर्गोपसन्निधौ ।  
 वेगेनायुधपालस्तु गच्छन् भ्रन्तमानसः । ४८॥  
 समीप नृपतेर्गत्वा काकोच्छासोऽग्न्यभापत ।  
 श्रूयता मम विज्ञाप्यमाश्वर्यं धनुषो गृहे ॥४९॥

उस धनुष को झुका कर उस पर प्रत्यचा खदाने में इन्द्रादि देवता भी  
 समर्थ नहीं थे, परन्तु पद्मलोचन ऋगवान् श्रीकृष्ण ने हृषित होकर उस सँ  
 के समान धनुष को उठा कर उस पर प्रत्यक्षा खदा दी और उसे बारम्बार खींचने  
 लगे ॥४३-४५॥ परन्तु जैसे ही उस धनुष को विचित्र जोर लगा कर खींचा  
 वैसे ही वह बीच में से दो टुक हो गया । तब श्रीकृष्ण तत्काल ही अपने घर  
 बलराम जी के सहित यज्ञशाला से बाहर निकल आये ॥४६॥ उस धनुष के  
 टूटने का जो भीषण शब्द हुआ, दसों दिशाएँ कम्पित हो उठी तथा राजा का  
 सम्पूर्ण अन्त पुर धरा गया ॥४७॥ बलराम और कृष्ण वहाँ में चल कर नन्दादि  
 गोपों के पास पहुँचे । इधर धनुष रक्षक भयभीत होता हुआ कस के पास जाकर  
 बोला कि हे महाराज ! अभी कुछ देर पहिले ही यज्ञशाला में एक विभिन्न करने  
 वाली घटना हुई है, उसे सुनिये ॥४८-४९॥

निर्वृत्तमस्मिन्काले यज्वगत सभ्रमोपमम् ।  
 नरो कस्प्राण्यसदृशो शिखाविततमूर्द्धजो ॥५०॥  
 नीलपीताम्बरधरो पीतश्वेतानुलेपनो ।  
 तावन्न पुरमज्ञातो प्रविष्टी कामवेपिणो ।  
 देवपुत्रोपमो वीरो बालाविह हुताशनो ॥५१॥  
 स्थितो धनुर्गृह्ण सौम्यो ह्यसौ व्यादिवागती ।  
 मया दृष्टो परिव्यवत रुचिरच्छादनस्रजो ॥५२॥

तयोरेकस्तु पद्माक्षः श्यामः पीताम्बरस्रजः ।  
जग्राह तद्धतूरत्न दुर्ग्राह्यं दैवतैरपि ॥५३॥  
तच्च वालो महच्चाप बलाद्यन्त्रमिवायसम् ।  
आरोपयित्वा वेगेन नामयामास लीलया ॥५४॥  
आकृष्यमाणं तत्तेन विवाणं बाहुशालिना ।  
मुष्टिदेशे विकूजित्वा द्विधाभूतमभज्यत ॥५५॥  
ततः प्रज्वलिता भूमिर्नैव भाति च भास्करः ।  
धनुषो भङ्गनादेन भ्रमतीव नमस्तलम् ॥५६॥

नीले और पीले वस्त्रों को धारण किये हुए, श्वेत तथा पीला चन्दन लगे, सिर पर लम्बी घुटिया रखे देवताओं के समान दो बालक न जाने किस तर यज्ञशाला में घुस गये ॥५०-५१॥ उस समय यही लगता था कि वे स्वर्ग सीधे ही यज्ञशाला में आ गये हो । उनकी देह पर दिव्य वस्त्र तथा कठ में लगी मालाएँ सुशोभित थी ॥५२॥ उन दोनों में से जो एक बालक श्याम वर्ण , पीताम्बरधारी और कमल दल जैसे नेत्र वाला था, उसने देवताओं के द्वारा न उठाये जाने योग्य उस भीषण धनुष को उठा कर लीलापूर्वक ही उस पर उचा चढा दी ॥५३-५४॥ फिर उस बाण को बढाकर उसने वैसे ही खींच : देखा तभी वह धनुष भीषण शब्द करता हुआ टूट गया ॥५५॥ उस समय खी कम्पायमान ही उठी, आकाश घूमने लगा और सूर्य का प्रकाश भी क्षीण गया ॥५६॥

तदद्भुतं महद्दृष्ट्वा विस्मयं परमं गतः ।  
भयाद्भयदं शत्रूणां तदिहाध्यातुमागतः ।  
न जानामि महाराजं को तावमितविक्रमो ॥५७॥  
एकः कैलाससकाश एकोऽञ्जनगिरिप्रभः ।  
स तु तच्चापरत्नं व भङ्क्त्वा स्तम्भमिव द्विषः ॥५८॥  
निष्पपाताभितगतिः सानुगोऽमितविक्रमः ।  
अगमत्तं द्विधा कृत्वा न जाने कोऽप्यसौ नृप ॥५९॥

श्रुत्वेव धनुषो भङ्गः कसो विदितविस्तरः ।  
विसृज्यायुधपालः वे प्रविवेश गृहोत्तमम् ॥६०॥

इस विचित्र घटना से मुझे अत्यंत विस्मय हुआ है, मैं नहीं जानता कि वे ऐसे अद्भुत पराक्रम वाल कौन थे यही सब निबद्ध करने के लिये मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ ॥५७॥ उनमें से एक तो कैलाश के समान उज्ज्वल और दूसरा अजन के समान काला था । हे महाराज ! जैसे हाथी किसी खम्भे को पीर कर चला जाय, वैसे ही वह श्याम वर्ण वाला बालक धनुष तोड़ कर अपने शायी के साथ न जाने कहाँ गया ॥५८-५९॥ धनुष रक्षक से धनुष के टूटने का समाचार सुनकर कत उस जाने को कह कर अपने थोठे भवन में प्रविष्ट हो गया ॥६०॥

## ॥ कुवलियापोड का वध ॥

तस्मिन्नहनि निवृत्ते द्वितीये समुपस्थिते ।  
आपूर्यत महारगः पौर्युर्ददितुभिः ॥१॥  
सचित्राष्टास्त्रिचरणाः सार्गलद्वारवेदिकाः ।  
सगवाक्षाद्वचन्द्राश्च सुतल्पोत्तमभूषिताः ॥२॥  
प्राङ्मुखंश्चारुनिर्मुक्तैर्माल्यदामावतसितैः ।  
अलकृत्तविराजद्भिः शारदैरिव तोयदैः ॥३॥  
मञ्जवागारं सुनिर्युक्तैर्युद्धाय सुविभूषितैः ।  
समाजवाटं शुशुभे समेधोघ इवार्णवः ॥४॥  
स्वकर्मद्रव्ययुक्ताभिः पताकाभिर्निरन्तरम् ।  
श्रेणीनां च गणानां च मञ्जवा भान्त्यचलोपमा ॥५॥  
अन्तःपुरचराणां च प्रक्षालागाराण्यनेकशः ।  
रेजु वाचनचिह्नाणि रत्नज्वालाकुलानि च ॥६॥  
तानि रत्नोपकल्पतानि ससानुप्रग्रहाणि च ।  
रेजुर्जयनिगोक्षैर्षः सपक्षा इव धनगा ॥७॥  
तत्र चामरहारैश्च भूषणानां च सिञ्चितं ।  
मणीनां च विचित्राणां विचित्राश्चैवर्गचिपः ॥८॥



श्री वंदम्यायन जी ने कहा—हे राजन् ! प्रातःकाल महोत्सव देखने के लिये सम्पूर्ण रंगभूमि दर्शकों से परिपूर्ण हो गई ॥१॥ समा मंच विभिन्न चिन्टा, स्तम्भो, वेदियों, अर्द्धचंद्र के आकार वाले झरोखों आदि के द्वारा सज र मंचों से युक्त सागर के समान प्रतीत होता था । माला आदि से अलंकृत और सूक्ष्म वस्त्रों से सुशोभित गानियों और श्रेष्ठ पक्षवानों से परिपूर्ण रंगशाला रत्नकाल के स्वच्छ आकाश जैसी लग रही थी ॥२-४॥ शिल्पकार द्वारा अकित गङ्गाओं से सुशोभित रंग मंच पर्वत के समान प्रतीत होता था ॥५॥ अन्तःपुर वासिनी महिलाओं के लिय बनाये गये रत्नमय पतावार्यों वाले स्थानों पर पड़े होने से वे आकाश में उड़ने हुए पक्षधारी पक्षी जैसी लगते थे ॥६॥ उन वीं में चँवर, हार और विभिन्न आभूषणों के हिलने का ध्वनि और उज्ज्वल रंग सुशोभित थी ॥७-८॥

सौवर्णा पानकुम्भाश्च पानभूम्यश्च शोभिता ।  
फलावदशपूर्णाश्च चागेर्यं पानयोजिता ॥८॥  
अन्ये च मञ्चा बहव काष्ठसचयबन्धना ।  
रेजु प्रस्तरणास्तस्र शतशोऽथ सहस्रश ॥९॥  
उत्तमागारिकाश्चैव सूक्ष्मजालावलाकिन ।  
स्त्रीणा प्रेक्षागृहा भान्ति राजहसा इवावरे ॥१०॥  
प्राङ्मुखश्चारनिर्युक्तो मेरुश्च गतमप्रभ ।  
स्वमपल्लसनिभस्तम्भश्चित्रनिर्योगशोभित ॥११॥  
प्रेक्षागार स कसस्य प्रचकाशोऽधिक श्रिया ।  
शोभिता मात्यदामैश्च निवासकृतलक्षण ॥१२॥  
तस्मिन्नानाजनाकीर्णं जनौघप्रतिनादिते ।  
समाजवाटे सस्तब्धे कम्पमानार्णवप्रभे ॥१३॥

मदिरा, जल और फलों के रसों से परिपूर्ण पात्र सब ओर रखे थे ॥८॥ कड़ो हजार पावाण और काष्ठयुक्त मंच थे, जिनकी गणना करना अस-  
॥१०॥ बने हुए समा मंच के ऊपरी भाग में स्त्रियों के देखने के लिये,  
॥११॥ म हस्त-समूहों के समान, झरोखों से युक्त कक्ष बन हुए थे ॥१२॥ उन

सभी मर्चो के बीच में जो कस का मर्च था, वह सूक्ष्म वस्त्रो, स्वर्ण लम्बो अनेक प्रकार की मालाओं से सज कर पूर्व दिशा की प्रवर्तित कर रहा ॥१२-१३॥ इस प्रकार असह्य जन-समूह के कोलाहल के कारण वह रणक्षेत्र क्षुब्ध समुद्र के समान प्रतीत हो रहा था ॥१४॥

राजा कुवलिपापीड समाजद्वारि कुञ्जरः ।  
 तिष्ठतिविति समाज्ञाप्य प्रेक्षागारमुपाययी ॥१५॥  
 स शुक्ले वाससी विभ्रच्छ्वेतव्यजनचामरः ।  
 शुशुभे श्वेतमुकुटः श्वेताभ्र इव चन्द्रमा ॥१६॥  
 तस्य सिंहासानस्यस्य सुखासीनस्य धीमतः ।  
 रूपमप्रतिम दृष्ट्वा पौराः प्रोचुर्जयाशिवः ॥१७॥  
 ततः प्रविविशुर्मल्ला रंगमाधलितावराः ।  
 तिलश्च भागश कक्षा प्राविशन्बलशालिनः ॥१८॥  
 ततस्तूर्यनिनादेन क्ष्वेडितास्फोटितेन च ।  
 वसुदेवमुतो हृष्टो रगद्वारमुपस्थितौ ॥१९॥  
 बल्लवी वल्लभवीतौ सुरचन्दनभूषितौ ।  
 ऊर्ध्वापीडौ स्रगापीडौ बाहुशङ्कृतौ यमौ ।  
 आस्फोटयन्तावन्योऽन्य बाहू चैवागंतोपमौ ॥२०॥  
 तावापसन्तौ त्वरितौ प्रतिपिदौ वराननौ ।  
 तेन मत्तेन नागेन चोद्यमानेन वै भृशम् ॥२१॥  
 स मराहृस्ती दुष्टात्मा कृत्वा कुण्डलिनं करम् ।  
 चकार चोदितो यत्नं निहन्तुं बलकेशवौ ॥२२॥

तभी राजा कस ने कुवलिपापीड हाथी को रणशाला के द्वार पर निभू किया और स्वयं अपने मर्च में आया ॥१५॥ उस समय उसने श्वेत वस्त्र पहिने और वह श्वेत मुकुट, श्वेत चमर और श्वेत ही पर्याप्त इवा होने कारण, उज्ज्वल मेघों में उदित हुए चन्द्रमा के समान लग रहा था ॥१६॥ अंत अपने सिंहासन पर विराजमान हो गया तब सभी पुरज्वन उसकी जय हो हुए आशीर्वाद देने लगे ॥१७॥ फिर स्वर्ण जटित वस्त्रों को पहिने हुए और

तीन वक्षों को पार करके रगशाला में आ गये ॥१८॥ उस समय तुरही आदि बाजे बजने लगे और मत्स्यो का ताल ठोकने का शब्द सुनायी पड़ने लगा । तभी वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण-श्लराम भी हर्षित होते हुए रगशाला के द्वार पर आ गये ॥१९॥ उस समय वे सुन्दर वस्त्रों को धारण किये और सुगन्धित अनुलेपन लगाये हुए थे । उनके सिर पर मुकुट, कंठ में हार और हाथों में शस्त्र थे और अर्गल के समान अपनी भुजाओं से ताल ठोकते थे ॥२०॥ उनके द्वार पर आते ही महा-व्रत ने हाथी को प्रेरित किया तब उसने उन दोनों भाइयों को आये बढ़ने से रोका और मारने के लिये उद्यत हुआ ॥२१-२२॥

तत प्रहसितः कृष्णस्त्रास्यमानो गजेन वै ।  
 कंसस्य तन्मत चैव जगहँ स दुरात्मनः ॥२३॥  
 त्वरते खलु कसोऽप्य गन्तुं वैवस्वतक्षयम् ।  
 यो मामनेन नागेन प्रधर्षयितुमिच्छति ॥२४॥  
 सन्निकृष्टे ततो नागे गर्जमाने यथा घने ।  
 सहस्रोत्पत्य गोविन्दश्चक्रे तालस्वनं प्रभुः ॥२५॥  
 श्वेडितास्फोटितरवे कृत्वा नागस्य चाग्रतः ।  
 कर ससीकरं तस्य प्रतिजग्राह वक्षसा ॥२६॥  
 विपाणान्तरगो भूत्वा पुनश्चरणमध्यगः ।  
 यवाधे त गज कृष्ण. पवनस्तोयदं यथा ॥२७॥  
 सहस्ताग्राद्विनिष्क्रान्तो विपाणाग्राच्च दन्तिनः ।  
 विमुक्तः पादमध्याच्च कृष्णो द्विपमपोययत् ॥२८॥

यह देखकर श्रीकृष्ण ने हँसते हुए सोचा कि यह पापी कस अपन हाथी के द्वारा ही हमें मरवा देना चाहता है, तो अब उसका भी अन्तिम समय आ ही गया समझो ॥२३-२४॥ इस प्रकार विचार करते हुए कृष्ण के निकट आत हुए हाथी ने मेघ के समान गर्जना की, तब कृष्ण ने उसके आक्रमण से बचकर ताल ठोकी ॥२५॥ फिर उन्होंने सिहनाद कर ताली बजाई और उसके सामने जाकर मूँड़ पकड़ ली ॥२६॥ उसके पश्चात् उसके दाँतों और पाँवों के बीच में जाकर उन्होंने हाथी को इस प्रकार पीड़ित किया, जैसे वायु के द्वारा बादल पीड़ित होत

है ॥२७॥ इस प्रकार वे कभी उसकी सूँड पकड़ते, कभी दाँत को पीड़ित करते और कभी उसके पाँवों में घुस कर प्रहार करते ॥२८॥

सोऽतिक्रम्यस्तु संमूढो हन्तुं कृष्णमशक्नुवन् ।  
 गजः स्वेष्ट्वेव गात्रेषु मथ्यमानो ररास ह ॥२९॥  
 पपात भ्रूभौ जानुभ्या दशनाभ्या तुतोद च ।  
 मद सुस्त्राव रोपाञ्च घर्मापाये यया घनः ॥३०॥  
 कृष्णस्तु तेन नागेन क्रीडित्वा शिशुलीलया ।  
 निधनाय मतिं चक्रे कसद्विष्टेन चेतसा ॥३१॥  
 स तस्य प्रमुखे पाद कृत्वा कुम्भादनन्तरम् ।  
 दोर्भ्यां विषाणमुत्पाद्य तेनैव प्राहरत्तदा ॥३२॥  
 स तेन वज्रकल्पेन स्वेन दन्तेन कुञ्जरः ।  
 हन्यमानः शठमूत्र मुमोचार्तो ररास ह ॥३३॥  
 कृष्णजर्जरितागस्य कुञ्जरस्यातंवेतसः ।  
 फटान्मामति सुस्त्राव वेगवद्भूरि शोणितम् ॥३४॥  
 लागूल चास्य वेगेन निश्चकर्ष हस्तायुध ।  
 शैलपृष्ठार्द्धं सलीनं वैनतेय इवोरगम् ॥३५॥

यह देखकर यह हाथी अपने ही शरीर की पीड़ा से व्याकुल होता है। विषाडने लगा और कृष्ण को मारने की आज्ञा की छोड़ बैठ ॥२९॥ तब । पुटनों के बल बैठ पर शृंगियों की दाँतों से कुदेदने लगा, उस समय उसके मुख से मद निबलने लगा, जैसे वर्षा में मेघों से जल निबलता है ॥३०॥ इस प्रकार श्रीकृष्ण ने उस हाथी के साथ कुछ समय तक खीसा की और फिर वह बं बंर को मारता वह उसे मारने की उत्तर दिए ॥३१॥ तब उन्होंने अपना एक धारण उसने मस्तक पर और दूसरा मुख पर रख कर बलपूर्वक दोनों दाँत उस की लिये और ऊँची दाँतों से उस मारने लगे ॥३२॥ यज्ञ ने समान अपने ही बंधो दाँतों के जापाड से व्याकुल हुआ वह हाथी पीगता हुआ मल-मूत्र छोड़ने लगा ॥३३॥ भगवान् कृष्ण ने ठारा मस्तक हुए उस हाथी के दह से पारा प्रवाह ॥३४॥

१ लगा ॥३४॥ सभी गरुड़ द्वारा सर्प को खींचने के समान बलरामजी उठका  
पकड़ कर पृथिवी पर धसीटने लगे ॥३५॥

तेनैव गजदन्तेन वृष्णो हत्वा तु दन्तिनम् ।  
जघानैरुप्रहारेण गजारोहणमुत्त्वणम् ॥३६॥  
आतंनाद महत्कृत्वा विदन्तो दन्तिना वरः ।  
पपात स महामात्रो वज्रभिन्न इवाचलः ॥३७॥  
ततस्तो तोरणाङ्गानि प्रगृह्य रणकरंशौ ।  
गजस्य पादरक्षाश्च जघ्नतुः पुरुषपंथी ॥३८॥  
ताश्च हत्वा विविशतुमंध्य रङ्गस्य तावुमी ।  
नासत्यावशिष्यती स्वर्गादवतीर्णाविवेच्यया ॥३९॥  
वृष्ण्यन्धकाश्च भोजाश्च ददृशुर्वनमालिनी ।  
क्ष्वेडितोत्कृष्टानादेन बाह्वोरास्फोटितेन च  
सिंहनादं च तालैश्च हर्षयामासतुर्जनम् ॥४०॥  
तौ हृष्टा भोजराजस्तु विपसाद वृधामतिः ।  
पौराणामनुरागं च हर्षं चालदय भारत ॥४१॥  
त हत्वा पुण्डरीकाक्षो नदन्त दन्तिना वरम् ।  
अवतीर्णोऽर्णवाकारं समाजं सहपूर्वजम् ॥४२॥

इस प्रकार हाथी को सभी के दाँत से अर्द्धमृत करके भगवान् ने उसके  
त का भी वध कर दिया ॥३६॥ इंद्र के वध से किसी पर्वत के छिन्न-भिन्न  
के समान ही दन्तविहीन कुबलयापीड अपने महावध के सहित चीत्कार करता  
मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥३७॥ तदनन्तर वृष्ण-बलराम ने तोरण-संघो के  
उस हाथी के समस्त रक्षकों को भी धार टासा ॥३८॥ फिर ने दोनों रग-  
के भीतर प्रविष्ट हुए, उस समय वे ऐसे प्रतीत होते थे जैसे दोनों अश्विनी-  
ही पृथिवी पर जा गये हों ॥३९॥ सभी यादवों ने रणक्षाला में जाये हुए  
वनमालाधारी दोनों बालकों के दर्शन किये और उनसे सिंहनाद, करतल-  
तथा ताल ठोकन के शब्द से सबको आनन्द हुआ ॥४०॥ परन्तु उन बालकों  
वि नागरिकों की ऐसी सहानुभूति देखकर राजा कन्य को अत्यन्त दुःख हुआ

॥४१॥ इस प्रकार अपने ज्येष्ठ भ्राता के साथ श्रीकृष्ण उस हाथी को म समुद्र के समान उमड़ती हुई भीड़ वाले उस सभा भवन में पहुँच गये ॥४॥

॥ श्रीकृष्ण द्वारा कस का वध ॥

प्रविशन्त तु वेगेन मारुतावल्गितावरम् ।  
 पूर्वज पुरतः कृत्वा कृष्ण कमललोचनम् ॥१॥  
 गजदन्तकृतोत्प्लेख सुभुज देवकीसुतम् ।  
 युद्धसमर्दयोगेन मदेन रुधिराण्य च ॥२॥  
 बल्गमान यथा सिंह व्यूहमान यथा घनम् ।  
 बाहुशब्दप्रहारेण चालयन्त वसुधराम् ॥३॥  
 औग्रसेनि समालोक्य दन्तिदन्तोद्यतायुधम् ।  
 कृष्ण भूशायस्तमुष्य सरोष समुदंक्षत ॥४॥  
 भुजासवत्तेन शुशुभे गजदन्तेन तैश्वर्यः ।  
 चन्द्रार्द्धं बिम्बसप्तपत्तो ययं रश्मिपरो गिरिः ॥५॥  
 बल्गमाने तु गोविन्दे स दृष्ट्यो रगसागर ।  
 जनौधप्रतिनादेन पूर्यमाण द्वावभौ ॥६॥  
 ततः काष्ठाभिनाम्नाक्षः पश्य परमरोषनः ।  
 चाक्षरमादिशतते तृष्णस्य समश्वायतम् ॥७॥

पूँकेले कृष्ण ही सिंहाद करने हुए फिर रहे थे, तो भी सशस्त्र जन-समूह ही सहित करता-सा प्रतीत हो रहा था ॥६॥ तब क्रोध से रक्त नयन किए हुए ने महाबल और पराक्रम युक्त तथा छत्र कुशल चाणूर को कृष्ण से और आकार वाले मुष्टिक को बलराम से मल्ल युद्ध करने की आज्ञा दी ॥७-८॥

कंसेनापि समाज्ञप्तश्चाणूरः पूर्वमेव तु ।  
योद्धव्यं सह कृष्णेन त्वया यत्नवतेति वै ॥६॥  
स रोपेण तु चाणूरः कपायीकृतलोचनः ।  
अभ्यावर्तत युद्धार्थमपा पूर्णो यथा घनः ॥१०॥  
अवधुष्टे समाजे तु निःशब्दस्तिमिते जने ।  
यादवाः सहितास्तत्र इदं वचनमब्रुवन् ॥११॥  
बाहुयुद्धमिदं रंगे सप्राश्निकमकातरम् ।  
क्रियायत्नसमाज्ञातमशस्त्रं निर्मितं पुरा ॥१२॥  
अद्भिश्चातिश्रमा नित्यं विनेयं कानर्दशभिः ।  
करीपेण च मल्लस्य सततं सक्रिया स्मृता ॥१३॥  
स्थितो भूमिगतेनैव यो यथा मार्गतः स्थितः ।  
सयुज्यतश्च पर्यायः प्राश्निकः समुदाहृतः ॥१४॥  
वालो वा यदि वा वृद्धो मध्यो वाऽपि कृशोऽपि वा ।  
बलस्यो वा सिक्तो रंगे ज्ञेयः कशान्तरेण वै ॥१५॥

पहिले से ही कृष्ण का वध करने विषयक आदेश को पाये हुए चाणूर ने श्वानी से युद्ध करने की, राजाज्ञा को मुनते ही रोपपूर्वक जलयुक्त नेत्र के जल वेग से आगे बढ़ कर कृष्ण को चुनौती दी ॥१०॥ परन्तु, कम की आज्ञा कर सम्पूर्ण जन-समूह के स्तब्ध हो जाने पर सभी यादवों ने एक साथ — इस सभा में सभी के सामने किसी प्रकार का शस्त्र बल प्रयोग किये बिना केवल मल्ल-कौशल से बानु युद्ध करने की बात है ॥११-१२॥ कुशली लड़ने की धकान मिटाने के लिये बीच-बीच में जल और देह में उगलो का बुरादा देने की भी व्यवस्था है ॥१३॥ युद्ध के सही रूप में संचालन और निर्णय की दृष्टि से — हवा बँटे हुआ की, सड़ा हुआ लठे हथो की, बालक-बालकी की,

बीच का बीच वाला की, निर्वल निर्वलो की, बली बलवानों की ओर वृद्ध की देख-भाल करेगा ॥१४-१५॥

वलतश्च क्रियातश्च बाहुयुद्धविशारद ।

निपातानन्तर किञ्चिन्न कर्तव्य विजानता ॥१६॥

तदिदं प्रस्तुत रगे युद्ध कृष्णान्ध्रमल्लयो ।

बाल कृष्णो महानन्ध्र कथं न स्याद्विचारणा ॥१७॥

ततः किलकिलाशब्द समाजे समवर्तत ।

प्राचलगत च गोविन्दो वाक्य चेदमुवाच ह ॥१८॥

अहं बालो महानन्ध्रो वपुषा पर्वतोपम ।

युद्धं ममानेन सह रोचते बाहुशालिना ॥१९॥

युद्धव्यतिक्रमं कश्चिन्न भविष्यति मत्कृत ।

न ह्यहं बाहुयोधानां दूषयिष्यामि यन्मतम् ॥२०॥

बल और कौशल का प्रदर्शन ही इसका प्रधान उद्देश्य है, इसमें होकर पृथिवी पर गिरे मल्ल पर प्रहार नहीं किया जायगा ॥१६॥ कृष्ण चाणूर का जो युद्ध उपस्थित हुआ है, उसमें कृष्ण बालक और चाणूर देह वाला मल्ल है, इसलिये हम इस विषय में विचारपूर्वक कार्य करना ॥१७॥ इस प्रकार उस सभा में अत्यन्त बोलाहूँ मचने लगा, तभी वहाँ हुए श्रीकृष्ण ने उच्च स्वर से कहा—यद्यपि मैं बालक और चाणूर पर मल्ल है, फिर भी मैं इससे साथ युद्ध करना स्वीकार किया है ॥१८॥ मल्ल युद्ध के किसी भी नियम को नहीं तोड़ेंगा और मेरे द्वारा बाहुसिद्धान्त की विधि भी उपेक्षा नहीं होगी ॥२०॥

एव सजल्पतामेव ताम्ब्या युद्धं सुदारुणम् ।

उन्नाभ्यामभवद्वोर वारणाम्ब्या यथा वने ॥२१॥

वृत्तप्रतिवृत्तेश्चक्षेर्वाढुमिश्रं सख्यम् ।

सन्निगातावधूतंश्च प्रमायोन्मयनस्तथा ॥२२॥

तानुभावपि सञ्चिन्तो यथा शलमयो तथा ।

क्षपणं मुष्टिभिरभेद्यं वराहादनुमिष्यते ॥२३॥



कीलवज्रनिपातेश्च प्रसृष्टाभिस्तथैव च ।  
 शलाकनखपातैः पादोद्धूतैश्च दारुणैः ॥२४॥  
 जानुभिश्चाशमनिर्घो पैः शिरोभिश्चावधट्टितः ।  
 तद्युद्धमभवद्धोरमशस्त्र बाहुतेजसा ॥२५॥  
 बाहुघ्राणेन शूराणां समाजोत्सवसन्निधौ ।  
 सरज्यत जनः सर्वः सोत्कृष्टनिनदोत्थितः ॥२६॥  
 साधुवादाश्च भवेपु'घोषयन्त्यपरे जनाः ।  
 ततः प्रस्विन्नवदनः कृष्णे प्रणिहितेक्षणः ।  
 न्यवारयत तूर्याणि कसः सव्येन पाणिना ॥२७॥  
 प्रतिपिद्धेषु तूर्येषु मृदगादिषु तेषु वै ।  
 खे सगतान्यवाद्यन्त देवतूर्याण्यनेकशः ॥२८॥  
 युद्धयमानैः हृषाकेने पुण्डरीकनिभेजगे ।  
 स्वयमेव प्रवाद्यन्ते तूर्यघोषास्तुसर्वशः ॥२९॥

इस प्रकार की वार्ता के पश्चात् जैसे वन के मध्य दो हाथी भिड़ जाते हैं, वैसे ही कृष्ण और बाणूर के मध्य भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ ॥२१॥ परस्पर प्रहार और बचाव करते हुए कभी कोई नीचे गिरता कभी कोई मुक्का मारता, कभी छाती भिड़ा कर लड़ता, कभी पाँवों के बीच में पीड़ित करता और कभी कोई जोर से चीत्कार कर उठता ॥२२-२३॥ कभी कोई जानु प्रदेश को और कभी कोई पेट को पीड़ित करता, कभी कोई ललचाता और कभी कोई दूर फेंक देता ॥२४॥ यद्यपि उस समय शस्त्र का प्रयोग नहीं हो रहा था, फिर भी ताल ठोकने का नाद बज्जरात जैसा प्रतीत होता था ॥२५॥ उन दोनों के इस प्रकार के कोशल को देखने के लिये दर्शक गए उठ-उठ कर खड़े होते और उनके भुजबल को देख कर प्रसन्नता व्यक्त करते थे ॥२६॥ मर्चों पर बैठे हुए दर्शक उन दोनों की प्रशंसा कर रहे थे, उभी समय कस ने कृष्ण की ओर देख कर बाजे वालों को बाजे बन्द कर देने का संकेत किया ॥२७॥ जब रंगशाला में बाजों का बजना बन्द होगया, तब आकाश में सब ओर स्थित हुए देवता दिव्य बाजे बजाने लगे ॥२८-२९॥

अन्तर्धानगता देवा विमानं वामरूपिभि ।  
 चेरुविद्याधरं साद्वं कृष्णस्य जयकाट्क्षिण ॥३०  
 जयस्व कृष्ण चाणूर दानव मल्लरूपिणम् ।  
 इति सप्तर्षय सर्वे ऊचुश्चैव नमोगता ॥३१  
 चाणूरेण चिर काल क्रीडित्वा देवकीसुत ।  
 बलमाहारयामास कसस्याभावदर्शिवान् ॥३२  
 ततश्चचाल वसुधा मचाश्चैव जुघूर्णिरे ।  
 मुकुटान्चापि कसस्य पपात मणिरुत्तम ॥३३  
 दोर्भ्यामानम्य कृष्णस्तु चाणूर शीर्णजीवितम् ।  
 प्राहरन्मुष्टिना मूर्ध्नि वक्षस्याहत्य जानुना ॥३४  
 नि सृते साश्रुरधिरे तस्य नेत्रे सवन्धने ।  
 तापनीये यथा घण्टे कक्षोपरि विलंबिते ॥३५

स्वेच्छानुसार रूप को धारण करने वाले देवगण श्रीकृष्ण की जीत व कामना करते हुए अप्रकट भाव से विचरसु करने लगे ॥३०॥ उसी समय सप्तर्षियो ने श्रीकृष्ण से कहा—हे कृष्ण ! अब इस मल्ल रूप धारी चाणूर नाम दैत्य को परास्त करो ॥३१॥ तब श्रीकृष्ण ने बहुत देर से बाल क्रीडा करने उपरान्त अपने यथार्थ बल को प्रकट करके चाणूर का बल क्षीण कर दि ॥३२॥ उस समय पृथिवी कांप उठी, रगभूमि के सभी मन्त्र हिलने लगे और कस के सिर पर स्थित हुए मुकुट का एक मणि उससे निकल पडा ॥३३॥ सभी श्रीकृष्ण ने चाणूर को अपनी भुजाओं से नीचे की ओर झुका कर उस हृदय को घुटनों से मर्दित किया और मस्तक पर बठोर मुक्का मारा ॥३४॥ इस प्रहार से तोरण पर लटके हुए स्वर्णिम घण्टों के समान उसके अध्मजों व अधिर स भरे हुए दोनों नेत्र बाहर निकल आय ॥३५॥

पपात स तु रगस्य मध्ये निसृतलोचन ।  
 चाणूरो विगतप्राणो जीवितान्ते महीतले ॥३६  
 देहेन तस्य मल्लस्य चाणूरस्य गतायुष ।  
 सन्निष्टो महारग स शैलेनेव लक्ष्यते ॥३७

रौहिणेयो हृते तस्मिन्वाणूरे वनदर्पिते ।  
 जग्राह मुष्टिकं रगे कृष्णस्तोगलकं पुनः ॥३८॥  
 सन्निपाते तु तौ मलयौ प्रथमे क्रोधमूर्च्छितौ ।  
 समेयाता रामकृष्णौ कालस्य वयवर्निनौ ॥३९॥  
 निर्धातावनतौ भूत्वा रगमध्ये बबलगतुः ।  
 कृष्णस्तोशलमुद्यम्य गिरिशृंगोपमं वली ।  
 भ्रामयित्वा शतगुण निष्पिपेष महीतले ॥४०॥  
 तस्य कृष्णाभिपन्नस्य पीडितस्य वलीयमः ।  
 मुखाद्रुधिरमत्यथमुज्जगाम मुमूर्षतः ॥४१॥  
 सकपणस्तु सुधिरं योधयित्वा महाबलः ।  
 अन्ध्रमल्लं महामल्लो मंडलानि व्यदर्शयत् ॥४२॥

ऐसा होने पर बाणूर के प्राण उड़ गये और उनके पर्वताकार मृतदेह  
 खाड़ा भर गया ॥३८-३९॥ इन प्रकार बाणूर मर गया बलराम मुष्टिक  
 भेदे हुए वे धीरे कृष्ण भी तोगल से मुड़ करने लगे ॥३८॥ बाल के वय  
 डे हुए वे दोनों मल्ल अत्यन्त उत्साह प्रदर्शित करते हुए ताल टोंक कर  
 : बबलते थे ॥३९॥ फिर श्रीकृष्ण ने पर्वत जिसर के महान आकार वाले  
 ल के पैर पकड़ कर उसे भी बार घुमा कर ओर से पृथिवी पर दे मारा  
 ॥४०॥ इस प्रकार कृष्ण द्वारा दे मारने पर तोगल अपने मुन से रुधिर-वमन  
 ने लगा ॥४१॥ मुष्टिक के साथ मुड़ करते हुए बलरामजी ने भी बहुत देर  
 उसके साथ बाल-झोड़ा की ॥४२॥

मुष्टिनैकेन तेजस्वी साधनिस्तनविलुना ।  
 शिरस्यम्यहनद्वोरो वज्रेणेव महागिरिम् ॥४३॥  
 स निष्पतितमप्तिष्को विस्रस्तनयनो महान् ।  
 उपात निहतस्तेन ततो नादो महानभूत् ॥४४॥  
 अन्ध्रतोशलकौ हृत्तः कृष्णसंक्रुर्णायुभौ ।  
 क्रोधसरवतनयनी रगमध्ये बबलगतुः ॥४५॥

समाजवाटो निर्मलत्रः सोऽभवद्भीमदर्शनः ।

अन्ध्रे तदा महामल्ले मुष्टिके च निपातिते ॥४६॥

ये च सप्रेक्षका गोपा नन्दगोपपुरोगमाः ।

भयक्षोभितसर्वाङ्गाः सर्वे तत्रावतस्थिरे ॥४७॥

हर्षज वारि नेत्राभ्या वर्षमाणा प्रवेती ।

प्रस्रवोत्पीडिता कृष्णं देवकी समुदैक्षत ॥४८॥

कृष्णदर्शनजातेन वाष्पेणाकुलितेक्षणा ।

वसुदेवो जरा त्यक्त्वा स्नेहेन तरुणायते ॥४९॥

फिर जैसे वज्र के प्रहार से पर्वत विदीर्ण हो जाता है, वैसे ही उस धूसरे का भीषण प्रहार का मुष्टिक का मस्तक चूर-चूर कर दिया ॥४६॥ उसका मस्तिष्क बाहर निकल पड़ा, शीश एक ओर को लुढ़क गई, निकल आई और वह एक भीषण घमाके के शब्द के साथ मर कर पृथ्वी पर गिर गया ॥४७॥ इस प्रकार कृष्ण बलराम तोशल और मुष्टिक का करके उसी रंगशाला में घूमने लगे ॥४८॥ महामल्ल मुष्टिक और तोशल मृत्यु होने पर सब पहलवान भाग गये और वह अखाड़ा भयंकर प्रतीत लगा ॥४९॥ नन्दादि सब गोप उस मल्ल युद्ध को देख कर भयभीत हुए के अवलम्बन पूर्वक अपने-अपने स्थान पर बंठे रहे ॥५०॥ उस समय देवकी नेत्रों से आँसुओं की धारा निकलने लगी और वह कम्पित देह से कृष्ण को घेरने लगी ॥५१॥ वसुदेव की भी आँखें भर आई और उस समय वे वृद्धावस्था में भी तरुणाई का अनुभव करने लगे ॥५२॥

वारभुज्यश्च ताः सर्वाः कृष्णस्य मुखपंकजम् ।

पपुर्हि नेत्रभ्रमरनिमेषान्तरगामिभिः ॥५०॥

कसस्थाय मुखे स्वेदो भ्रूभेदान्तरगोचरः ।

अभवद्रोपनिर्यासः कृष्णसदर्शनेरितः ५१

केशवायसधूमेन रोपनिश्वासवायुना ।

दीप्तमन्तर्गत तस्य हृदयं मानसाग्निना ॥५२॥



क्षिप्ते पितरि चुक्रोध नन्दगोपे च केशवः ।  
 जातीना च व्यथा दृष्ट्वा विसृज्य चैव देवकीम् ॥६१॥  
 स सिंह इव वेगेन केशवो जातविक्रमः ।  
 आरुरुक्षुर्मुहाबाहुः कंसनाशार्थमच्युतः ॥६२॥  
 रङ्गमध्यादुत्पपात कृष्णः कसासनान्तिकम् ।  
 असज्जद्वायुनाक्षिप्तो यथा खस्यो घनाघनः ॥६३॥

मेरे अनिष्टचित्तक नन्द गोप को पकड़ कर हमके पाँवों में तोड़े ॥  
 जजीरों कस दो ॥६१॥ यह दुर्वृत्ति वाला बसुदेव भी मेरे अहिंस की कामना  
 करता है, इसलिये इसे भी पकड़ कर दण्डित करो ॥६२॥ कृष्ण के अनुयायियों  
 जो भी गोपज्ञ हैं, उन सभी के गदादि धन और रत्नादि सम्पत्ति को छी  
 लो ॥६३॥ कृष्ण अपने सेवकों को इस प्रकार आज्ञा दे ही रहा था, तभी ध  
 कृष्ण आई दोनों नेत्रों से कस की ओर देखते हुए उसे घूरा ॥६०॥  
 उन्होंने जब देखा कि पिता बसुदेवजी तथा नन्द गोप को तिरस्कृत, बांध  
 को व्यथित और शूरा देवकी को निश्चेष्ट होते हुए देखा तो वे अत्यन्त क्रो  
 में भर गये ॥६१॥ तब वे मुहाबाहु और सिंह के समान पराक्रमी हुए क  
 को मारने के लिये उतावले हो गये ॥६२॥ जैसे वायु की प्रेरणा से मेघ वे  
 पूर्वक चलता है, वैसे ही वेग से उछलते हुए श्रीकृष्ण कस के पास जा प  
 ॥ ६३ ॥

ददृशुर्न हि त सर्वे रङ्गमध्यादवप्लुतम् ।  
 केवल कसपार्श्वस्थ ददृशुः पुरवासिनः ॥६४॥  
 सोऽपि वसस्तथाऽऽयस्तः परीतः कालधर्मणा ।  
 आकाशादिव गोविन्द मेने तत्तागत प्रभुम् ॥६५॥  
 कृष्णेनायत कृत्वा बाहुं परिघसन्निभम् ।  
 मूर्द्धजेपु परामृष्टः कसो वै रङ्गससदि ॥६६॥  
 मुकुटश्चापतत्तस्य काञ्चनो वज्रभूषितः ।  
 शिरसस्तस्य कृष्णेन परामृष्टस्य पाणिना ॥६७॥

स हस्तग्रस्तकेशश्च कसो निर्यत्नता गतः ।  
 तथैव च विसमूहो वैकल्य समपद्यत ॥६८  
 निगृहीतश्च केशेषु गतासुरिव निःश्वसन् ।  
 न शशाक मुख द्रष्टु कस कृष्णस्य वै तदा ॥६९  
 विकुण्डलाभ्या कर्णाभ्या छिन्नहारेण वक्षसा ।  
 प्रलम्बाभ्या च बाहुभ्या गात्रैर्विमृत भूपणे ॥७०  
 भ्र शितेनोत्तरीयेण सहसावलिताननः ।  
 चेष्टमान समाक्षिप्तः कस काष्णं तेजसा ॥७१  
 चकर्प च महारगे मञ्चान्निष्क्रम्य केशव ।  
 केशेषु त वलाद्गृह्य कस क्लेशार्हता गतम् ॥७२  
 कुप्यमाण स कृष्णेन भोजराजो महाद्युतिः ।  
 समाजवाटे परिखा देहकृष्ठा चकार ह ॥७३  
 समाजवाटे क्रीडित्वा विकृष्य च गतायुषम् ।  
 कृष्णो विसर्जयामास कसदेहमदूरत ॥७४

दर्शको ने उन्हें वहाँ जाते हुए तो नहीं देखा, परन्तु जब वे कस के पास जा पहुँचे तभी उन्हें देख सके ॥६४॥ कम ने भी उस समय व्याकुल और शक्ति हृदय से श्रीकृष्ण को विष्णु के ही साक्षात् रूप में आना समझा ॥६५॥ फिर श्रीकृष्ण ने परिष के समान अपने बाहुओं को फैला कर तुरन्त ही कस के केश रकड़ कर उसे खींच लिया ॥६६॥ इस प्रकार खींचे जाने से उसके मस्तक का हीरो का मुकुट पृथिवी पर जा गिरा ॥६७॥ केशमात्र खींचने पर ही मरणा-सन्न हुआ कस चेष्टा-रहित, विमूढ और विह्वल होकर दीर्घ नि श्वास छोड़ने लगा । उस समय कृष्ण के मुख की ओर देखने में भी वह असमर्थ रहा ॥६८-६९॥ उसके कानों से कुण्डल उतर गये, हृदय का द्वार टूट गया और सभी आभूषण शरीर से गिर गये तथा दोनों भुजाएँ भी पृथिवी की ओर लटक पड़ी ॥७०॥ तभी श्रीकृष्ण ने उसके कंठ में उत्तरीय डाल कर उसे मज से खींच लिया और पृथिवी पर पटक कर घसीटने लगे ॥७१-७२॥ इस प्रकार देह के घसीटे जाने से पृथिवी पर खार्द जैसी रेखा बन गई ॥७३॥ श्रीकृष्ण ने इस

प्रकार लीलापूर्वक ही कस को मार कर उसके देह को वही पटक दि  
॥ ७४ ॥

॥ उग्रसेन अभिषेक वर्णन ॥

उग्रसेनस्तु कृष्णस्य समीपं दुःखितो ययौ ।  
पुत्रशोकाभिसतप्नो विषपीत इव श्वसन् ॥१॥  
स ददर्श गृहे कृष्णं यादवैः परिवारितम् ।  
पश्चानुतापादधायन्त कंसस्य निधनाविलम् ॥२॥  
स कृष्णं पुण्डरीकाक्षमुत्राच यदुससदि ।  
वाष्पसदिग्धया वाचा दीनया सज्जमानया ॥३॥  
पुत्रो निर्यातितः क्रोधान्नीतो याम्यां दिशं रिपुः ।  
स्वधर्माधिगता कीर्तिर्नाम विश्रावितं भुवि ॥४॥  
स्थापितं सत्सु माहात्म्य शङ्किता रिपवः कृताः ।  
स्थापितो यादवो वशी गर्विता सुहृदः कृताः ॥५॥  
सामन्तेषु नरेन्द्रेषु प्रतापस्ते प्रकाशितः ।  
मित्राणि त्वा भजिष्यन्ति सश्रमिष्यन्ति पार्ष्विवाः ॥६॥  
प्रकृतयाऽनुयास्यन्ति स्तोष्यन्ति त्वा द्विजातयः ।  
सधिविगूहमुक्ष्यास्त्वा प्रणमिष्यन्ति मन्त्रिणः ॥७॥

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! पुत्र शोक से सन्तप्त हुए उग्रसेनजी विषपान विधे हुए के समान लड़खड़ाते और क्षीर्ण श्वात छोड़ते हुए ओठ्ठल के पास पहुँचे ॥१॥ वहाँ जाकर उन्होंने श्रीकृष्ण को यादवों से घिरे हुए और वृद्ध की मृत्यु पर पश्चात्ताप प्रवृत्त करते हुए देखा ॥ २ ॥ उस समय उग्रसेन जी ने अपने कपड़े फाड़, बरार सर और कातर वस्त्रों न आहूत हो मग्नोपविष्ट करते हुए कहा—हे परम ! तुमने मेरे पुत्र को मारकर जाना क्रोध उत्पन्न किया और अधाधारण यश पाकर अपने को विख्यात कर लिया है ॥३-४॥ शत्रु समाप्त ॥ अब तुम प्रतिष्ठित होगे और शत्रु भी तुमसे भयभीत रहेंगे । तुमने अपने शत्रु कार्य में बहुत ही बचा लिया है, इससे तुम्हारे वधुजा को गर्व भी होगा ॥५॥ यह राजाभी को तुम्हारे पराक्रम का ज्ञान हो गया और और सभी अधुनक



गण तुम्हारे वश में हो जायेंगे ॥६॥ ब्रजाजन तुम्हारे आज्ञावर्ती और बाह्य  
॥ होंगे । मधि और कलहविषयक मन्त्रणाद्यो के जाता अमात्यगण तुम्हें  
क मुकाएंगे ॥७॥

हस्त्यश्वरथसंपूर्णं पदातिगणसंकुलम् ।

प्रतिगृहाण कृष्णेदं कंसस्य बलमव्ययम् ॥८॥

धनं धान्यं च यत्किञ्चिद्रत्नान्याच्छादनानि च ।

प्रतीच्छन्तु नियुक्ता वै त्वदीयाः कृष्ण पुरुषाः ॥९॥

स्त्रियो हिरण्यं यानानि यदन्यद्वमु किञ्चन ।

एव हि विहिते योगे पर्याप्ते कृष्ण विग्रहे ॥१०॥

प्रतिष्ठिताया मेदिन्या यदूना शत्रुसूदनः ।

त्व गतिश्चागतिश्चैव यदूना यदुनन्दन ॥११॥

शृणुष्व वदता वीर कृपणानामिदं वचः ।

अस्य त्वाकोपदग्धस्य कंसस्याशुभकर्मणः ॥१२॥

तव प्रसादाद्गोविन्द प्रेतकार्यं क्रियेत ह ।

तस्य कृत्वा नरेन्द्रस्य विपन्नस्योर्ध्वदेहिकम् ॥१३॥

सस्तुपोऽहं सभायंश्च चरिष्यामि मृगैः सह ।

प्रेतसत्कारमात्रेण कृते बान्धवकर्मणि ॥१४॥

आनृष्य लौकिकं कृष्ण गताः किल भवन्ति हि ।

तस्याग्निं पश्चिमं कृत्वा चितिस्थाने विधानतः ।

तोयप्रदानमात्रेण कंसस्यानृष्यमाण्युयाम् ॥१५॥

अब कंस की इस हाथी, घोड़े, रथ, पैदल आदि से सम्पन्न सम्पूर्ण सेना  
अपना अधिकार करिये । तुम्हारे द्वारा नियुक्त अधिकारी धन, धान्य स्वर्ण  
वाहन आदि सभी की उचित व्यवस्था करें क्योंकि यह अवसर अब आ  
है ॥८-१०॥ हे शत्रुसूदन ! अब तुम्ही यदुवध की गति और कुगति हो,  
कि यादवों के राज्य पर अब तुम्हारा ही अधिकार है ॥ ११ ॥ परन्तु अभी  
कार्य शेष है—तुम्हारी क्रोधान्ति में दग्ध हुए पापी कंस का और्ध्वदेहिक  
कर होना उचित है । ऐसा होने के पश्चात् मैं अपने वधू-बांधवों और मार्याश्री

आदि के साथ मृगों से आवृत वन में निवास करूँगा । क्योंकि वधुजनों  
कर्म की समाप्ति पर ही, चौकिक ऋण छूटता है । इसलिये कस का दाह  
करके और उसे जलाञ्जलि देकर ही मैं अपने को ऋण से मुक्त हुआ हूँ ।  
॥१२-१५॥

एतत्ते कृष्ण विज्ञाप्यं स्नेहोऽन मयि युज्यताम् ।  
प्राप्नोति सुगतिं तत्र कृपणः पश्चिमा क्रियाम् ॥१६॥  
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य कृष्णः परमविस्मितः ।  
प्रत्युवाचोग्रसेन वै सान्त्वपूर्वमिदं वचः ॥१७॥  
कालयुक्तमिदं तात तवैतद्यत्प्रभाषितम् ।  
सदृशं राजशार्दूलं वृत्तस्य च कुलस्य च ॥१८॥  
यत्त्वमेवविधो ग्रूये गतेऽर्थे दुरतिक्रमे ।  
प्राप्स्यते नृपसत्कारं कंसा प्रेतगतोऽपि सन् ॥१९॥  
कुले महति ते जन्म वेदान्वितवानसि ।  
कथं न ज्ञायते तात नियतिर्दुरतिक्रमा ॥२०॥  
स्थावराणां च भूतानां जङ्गमानां च पार्थिव ।  
पूर्वजन्मकृतं कर्म कालेन परिपच्यते ॥२१॥

हे वरत ! अब आप मुझ पर कृपा करके इसकी उचित व्यवस्था की  
आपकी कृपा होने पर ही वरत की सद्गति हो सकेगी ॥१६॥ यह सुनकर  
वान् श्रीकृष्ण को अत्यन्त आश्चर्य हुआ और वे सान्त्वनापूर्ण शब्दों में कहा  
गये—हे तात ! आपका कहना समयानुसूल है, जिस थोड़ा वरत मैं प्राप्त  
हुए हूँ और जैसा उदार आपका चरित्र रहा है, वैसे ही आपकी बानी भी  
मृदु है ॥१७-१८॥ जब आपने इस प्रकार कहा है तो परलोकवासी होने  
का जो राज-गम्मान मिलेगा ॥१९॥ आप अत्यन्त थोड़ा कुल में उत्पन्न  
हगनिए आपके लिये तो कुछ भी रहस्य नहीं है, फिर भी आप विषादा के  
में अनजान क्यों हैं ? ॥२०॥ समय की प्राप्ति पर मगार वे सम्पूर्ण  
को अरुण पूर्व जन्मों में किये हुए कर्मों का फल अवश्य भोगना होगा है ।

यत्तुवन्तोर्ध्ववन्तश्च दातारः प्रियदर्शनाः ।  
 ब्रह्मण्या नयसंपन्ना दीनानुग्रहकारिणः ॥२२॥  
 लोकपालसमास्तात महेन्द्रमभिविक्रमाः ।  
 क्षितिपालाः कृतान्तेन नीयन्ते नृपसत्तम ॥२३॥  
 धार्मिकाः सर्वभावज्ञाः प्रजापालनतत्पराः ।  
 क्षत्रधर्मपरा दान्ताः कालेन निघ्नन् गताः ॥२४॥  
 स्वयमात्सकृतं कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम् ।  
 प्राप्ते काले तु तत्कर्म दृश्यते सर्वदेहिनाम् ॥२५॥  
 कालस्तु बलवान् राजन्तुर्विज्ञेया हि सा गतिः ।  
 परावरविरोपज्ञा या यान्ति समदर्शिनः ॥२६॥  
 गतिः कालस्य सा येन सर्वं कालस्य गोचरम् ।  
 प्रवीमि यदहं तात तदनुष्ठीयता बचः ॥२७॥  
 न हि राज्येन मे कार्यं नाप्यहं नृप काङ्क्षितः ।  
 न चापि राज्यलुब्धेन मया कसौ निपातितः ॥२८॥

विद्वान्, धर्मिक, रूप-सम्पन्न, दानशील, ब्रह्मवादी, नीतिज्ञ, दयावान्त  
 लोकपालों और इन्द्र के समान महान् पराक्रम वाले राजगण भी बाल के  
 गुन से निकल नहीं पाते ॥२२-२३॥ सर्वदों ही धर्मकर्मा, सर्वज्ञाता, प्रजा के  
 लन में तत्पर, युद्ध विदारद और उदारचेता भूपाल काल के हाथों पड़ कर  
 लोको में चले गये ॥२३॥ शुभकर्मी, पापकर्मी कैसा भी हो, उसे कालान्तर  
 अपने कर्म का फल अवश्य भोगना होगा ॥२५॥ काल की गति किसी प्रकार  
 की नहीं जाती, इससे काल ही बलवान् है । केवल भोजन तत्त्व के ज्ञाता, ज्ञानी,  
 उदर्शा और सिद्ध पुष्ट्य ही काल की महिमा को जानते हैं । अथ मैं जो कहता  
 थाप उसके अनुसार वीजिये ॥२६-२७॥ राज्य की मुझे किञ्चित् भी इच्छा  
 है और न मैंने राज्य के लोभ से कस की मारा ही है ॥२८॥

किं तु लोकहितार्थाय कीर्यथं च सुतस्तव ।

व्यङ्गभूतः कुलस्यास्य सानुजो विनिपातितः ॥२९॥

अहं स एव गोमध्ये गोपं सह वनेचर ।  
 प्रीतिमान्विचरिष्यामि कामचारो यथा गज ॥३०॥  
 एतावच्छतशोऽप्येव सत्येनंतद्व्रवीमि ते ।  
 न मे कार्यं नृपत्वेन विज्ञाप्य क्रियतामिदम् ॥३१॥  
 भवान् राजाऽस्तु मान्यो मे यदूनामश्रणी प्रभु ।  
 विजयायाभिपिच्यस्व स्वराज्ये नृपसत्तम ॥३२॥  
 यदि ते मत्प्रिय कार्यं यदि वा नास्ति ते व्यथा ।  
 मया निसृष्टं राज्यं स्व चिराय प्रतिगृह्यताम् ॥३३॥  
 एतच्छ्रुत्वा तु वचनं भोत्तरं प्रत्यभाषत ।  
 व्रीडिताधोमुखः स तु राजानं यदुससदि ॥३४॥  
 अभिपेक्षेण गोविन्दो योजयामास धर्मवित् ।  
 स बद्धमुकुटं श्रीमानुग्रसेनो महाद्युतिः ।  
 चकार सह कृष्णेन कसस्य निधनक्रियाम् ॥३५॥

मैंने तो सोक-बत्त्याए के ही अनुयायियों के सहित कस का वध किया है ॥३६॥ मैं तो अब पुनः उसी वन में जाकर गोओं और गोपों के साथ मग हाथी की तरह विचरण करना चाहता हूँ ॥३०॥ हे महाराज ! मैं सत्य की सैंकड़ों बार सौगंध छाकर निवेदन करता हूँ कि मैं राजा नहीं होना चाहता इसलिये आप मेरे कहने के अनुसार कार्य कीजिये ॥३१॥ आप यदुवशिरो हैं श्रेष्ठ और पूजनीय हैं, यदि आप मेरी इच्छा को रखना चाहें और आपके मन में किसी प्रकार की व्याप्ति न हो तो निःसंकोच भाव से आप इसे स्वीकार कर राज्यपद पर स्वयं अभियुक्त हो जायें । इस प्रकार आप आनंद पूर्वक चिरकाल तक राज्य शासन करें ॥३२ ३३॥ राजा उग्रसेन जी ने श्रीकृष्ण की बात का लज्जावश कोई उत्तर नहीं दिया और वे नीचा मुँह करके वहीं बैठ गये ॥३४॥ तब धर्मविज्ञ श्री गोविन्द ने उसी समय उग्रसेन जी का राज्यपद और अभिषेक किया और फिर वह राजा उग्रसेन श्रीकृष्ण के साथ जाकर कस का मृतक संस्कार करन के वाय में लग गये ॥३५॥

तं सर्वं यादवा मुख्या राजान कृष्णशासनात् ।  
 अनुजग्मुः पुरीमार्गे देवा इव शतक्रतुम् ॥३६॥  
 रजन्या तु निवृत्ताया ततः सूर्ये विराजिते ।  
 पश्चिम कंससंस्कारं चक्रुस्ते यदुपुङ्गवाः ॥३७॥  
 शिविकायामधारोप्य कंसदेहं यथाक्रमम् ।  
 नैष्ठिकेन विधानेन चक्रुस्ते कंससत्क्रियाम् ॥३८॥  
 स नीतो यमुनातीरमुत्तम नृपतेः सुतः ।  
 सत्कृतश्च यथान्याय नैघनेन चिनाग्निना ॥३९॥  
 तथैव भ्रातरं चास्य सुनामान महाभूजम् ।  
 संस्कारं लभ्यमानासु सहकृष्णेन यादवाः ॥४०॥  
 ताम्बा ते सलिलं चक्रुर्वृष्णयन्त्रकपुरोगमाः ।  
 अक्षयं चास्तु प्रेतेभ्यो भापमाणाः पुनः पुनः ॥४१॥  
 हिरण्यस्य सुवर्णस्य दण कोटीस्तथा हरिः ।  
 गावो रत्नानि वातांसि ग्रामान्नागरममताम् ॥४२॥  
 ददौ कंसं समुद्दिश्य ब्राह्मणेभ्यो नृपोत्तमः ।  
 अक्षयं चापि विप्रेभ्यो भापमाणाः पुनः पुनः ॥४३॥  
 तयोस्ते सलिलं दत्त्वा यादवा दीनमानसाः ।  
 पुरस्कृत्योग्रसेन वै विविशुर्मेधुरा पुरीम् ॥४४॥

जैसे इन्द्र की आज्ञा के अनुवर्ती सब देवगण हैं, वैसे ही श्रीकृष्ण की के अनुवर्ती हुए सब यादव महाराज अग्रसेन के पीछे चले ॥३६॥ रात्रि होती होने तथा प्रातः काल का प्रकाश फैलने पर सब यादव कंस के संस्कार-में लग गये ॥३७॥ उन्होंने कंस और उसके भाई के शरीरों को पालकी में और यमुना-सट पर ले जाकर शास्त्र-विधि से चिना बना कर उनका दाह-अम्पन्न किया ॥३८-४०॥ फिर वृष्णि और अक्षय वशीय सब यादवों ने गावों को स्वर्ग मिले कहते हुए बारबार जलाञ्जलि दी ॥४१॥ फिर श्रीकृष्ण करोंड स्वर्ण मुद्रा, गोएँ, रत्न, वस्त्र और ग्रामादि का ब्राह्मणों को दान और जलाञ्जलि देह के पश्चात् उदात्त चित्त हुए सभी यादव महाराज को आगे करके मधुरा नगरी में चोट आये ॥४२-४४॥

## ॥ मथुरा पर जरासन्ध की चढाई ॥

स कृष्णस्तत्र सहितो रीहिणेयेन सगतः ।  
 मथुरा यादवाकीर्णा पुरी ता सुखमावसत् ॥१॥  
 प्राप्तयोवनदेहस्तु युक्तो राजश्रिया विभुः ।  
 चचार मथुरा प्रीतः सवनाकरभूषणाम् ॥२॥  
 कस्यचित्त्वय कालस्य राजा राजगृहेश्वरः ।  
 शुश्राव निहतः कः स दुहितृभ्या महीपतिः ॥३॥  
 ततो नातिचिरात्कालाज्जरासन्धः प्रतापवान् ।  
 बाजगाम पङ्क्त्येन वपेन महता वृतः ॥४॥  
 जिघासुर्हि यदून्क्रुद्धः कः सस्यापचितिं स्मरन् ।  
 अस्ति प्राप्तिश्च नाम्ना ते मागधस्य सुते नृप ॥५॥  
 जरासन्धस्य कल्याण्यौ पीनश्रोणिपयोधरे ।  
 उभे कः सस्य ते भार्ये प्रादाद्बार्हद्रथो नृप ॥६॥  
 स ताभ्यामुमुदे राजा वदध्वा पितरमाहुकम् ।  
 समाश्रित्य जरासन्धमनादृत्य च यादवान् ।  
 शूरसेनेश्वरो राजा यथा ते बहुश श्रुतः ॥७॥  
 नातिकार्यार्थाद्विचर्यमुग्रसेनहिते रतः ।  
 वसुदेवोऽभवन्नित्यः कः सो न ममृषे च तम् ॥८॥  
 रामवृष्णी समाश्रित्य हते कः से दुरात्मनि ।  
 उग्रसेनोऽभवद्राजा भोजवृष्ण्यन्धकैर्वृतः ॥९॥  
 दुहितृभ्या जरासन्धः प्रियाभ्या बलवान्नृपः ।  
 नोदितो वीरपत्नीभ्यामुपायान्मथुरा ततः ॥१०॥

वंशम्पादन जो ने कहा—हे राजन् ! महाबली कृष्ण-बलराम एव  
 और यादवों ॥ युवत होकर बनो और खाना वाली मथुरापुरी में रहते हुए  
 पूर्वं विहार करने लगे ॥१-२॥ कुछ बालोपरान्त जरासन्ध की पुत्रियों ने  
 अपने पति के मरने का समाचार दिया, जिससे उस अत्यन्त दुःख हुआ ॥  
 फिर वह प्रतापी राजा जरासन्ध अपनी छ अंगुल सम्पत्ति विहात हो

र कर शीघ्र ही उसके साथ चन दिया ॥४॥ उसने क्रोध में भरकर सभी  
दो का सहार करने का निश्चय कर लिया था, क्योंकि उसकी अस्ति-प्राप्ति  
की दोनों पुन्दर पुत्रियाँ कस के साथ विवाही गई थी और विवाह के बाद  
सध की सहायता से कस ने अपने पिता उग्रसेन को बन्दी बना लिया था  
ए यादवों का तिरस्कार करता हुआ सुखपूर्वक विहार करता था ॥५॥ ७॥ अपने  
तेज-बुद्धों का पक्ष लेने वाले वसुदेव जी उग्रसेन के द्विज में सदा तत्पर रहते  
और कस उनको इस बात से भी रह्य था ॥८॥ फिर कृष्ण बलराम के द्वारा  
और उसके राज्य का अन्त हुआ तथा वृष्णि, अथक और भोजवशी यादवों  
घिरे हुए उग्रसेन पुनः राज्यपद पर अभिषिक्त हुए ॥९॥ उसके बाद जरासन्ध  
कयाजी ने उसे कस की मृत्यु का समाचार दिया, जिस सुनकर उसने यादवों  
नष्ट करने का विचार स्थिर किया और अपनी पुत्रियों के आग्रह पर उसने  
रा पर चढ़ाई कर दी ॥१०॥

## ॥ जरासन्ध का पलायन ॥

सतो युद्धानि वृष्णीना वभूवुः सुमहान्तथ ॥  
मागधस्य महामासैनृपैश्च वानुयापिभिः ॥१॥  
रुक्मिणा वासुदेवस्य भीष्मकेणाद्रुकस्य च ॥  
क्रथस्य वसुदेवेन कशिकस्य तु वभ्रुणा ॥२॥  
गदेन चेदिराजस्य दन्तवक्सस्य शकुना ॥  
तथान्यैर्वृष्णिवीराणा नपाणा च महात्मनाम् ॥३॥  
युदमासीद्वि संन्याना सैनिकैर्भरतपंथ ॥  
अहानि पञ्च चक च पट सप्ताष्टौ च दारुणम् ॥४॥  
गजैर्गजा ह्यैरश्वैः पदात्ताश्च पदातिभिः ॥  
रथै रथा विमिश्राश्च योधा युयुधिरे नृप ॥५॥  
जरासन्धस्य नृपते रामेणासीत्समागम ॥  
महेन्द्रस्येव वृत्रेण दारुणो रोमहर्षण ॥६॥  
अवेक्ष्य रुक्मिणी कृष्णो रुक्मिण न व्यपोथयत् ॥  
ज्वलनार्काश्रुसकाशानाशीविपविपोपमान् ॥७॥

वारयामास कृष्णो वै शरास्तस्य तु शिखया ।  
इत्येषा सुमहानासीद्वलीघाना परिक्षय' ॥८

वंशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! फिर जरासन्ध के पक्ष के राव और यादवों में घोर युद्ध होने लगा ॥१॥ रुक्मी से श्रीकृष्ण, भीष्मक से उग्रसेन, क्रथ से वसुदेव, वभ्रु से कंशिव, चंदिराज से गद, शकु से दत्तवक्र और अन्ना-वीर अपने विपक्षियों से भिड़े हुए थे । इस प्रकार दोनों पक्षा में सत्ताईस दिन तक घोर युद्ध चलता रहा ॥२-४॥ उस युद्ध में गजों से गज, अश्वों से अश्व, रथों से रथ और पंदलों से पंदल भिड़े हुए थे । वृत्रासुर और इन्द्र के मध्य भी भयंकर युद्ध के समान ही जरासन्ध और बलराम के मध्य अत्यन्त घोर युद्ध रहा था ॥५-६॥ श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी के सम्बन्ध को जानते हुए रुक्मी का नहीं किया, किन्तु अपने कौशल से ही अग्नि और सर्पों के समान दुष्प्रह्वनों बाणों को विकल कर रहे थे, इससे उनकी अग्र्य सेना का नाश होने लगा ॥७॥

उभयो सेनयो राजन्मासशोणितकर्दम ।  
कवन्धानि समुत्तस्थु सुबहूनि समन्तत ॥८  
तस्मिन्विमर्दे योधाना सख्यावृत्तिकराणि च ।  
रथी रामो जरासन्ध शरं राक्षीविषोपमं ॥९०  
आवृण्वन्नभ्ययाद्वीरस्त च राजा स मागध ।  
अभ्यवर्तत वेगेन स्पन्दनेनाशुगामिना ॥९१  
अन्योन्य विविधैरस्त्रैर्विद् वा विद्ध्वा विनेदनु ।  
तौ क्षीणशस्त्रौ विरथौ हताश्वौ हतसारथौ ।  
गदे गृहीत्वा विक्रान्तावन्योन्यमभिधावताम् ॥९२  
कम्पयन्तौ भुव वीरौ तावुद्यतगदावुगौ ।  
ददर्शते महात्मानौ गिरी सशिखराविव ॥९३  
व्युपारमन्त युद्धानि पश्यता तौ महाभुजौ ।  
सरन्धावभिधावन्तौ गदायुद्धेषु विश्रुतौ ॥९४

दोनों पक्ष के भीषण सहार से युद्ध क्षेत्र में रक्त मांस की बीज-ह और सब तरफ असंख्य शव दिखाई देने लगे । जरासन्ध पर अपने भीषण बा



वर्षा करते हुए बलरामजी आगे बढ़े तब क्षपणे वेगवन्त रथ पर चढ़ा हुआ जरासन्ध भी तेजी से उनकी ओर दौड़ा ॥१०-११॥ सापना होने पर दोनों ही अपने-अपने शस्त्रों से एक दूसरे को बीचने लगे । युद्ध करते-करने जब दोनों के ही शस्त्र समाप्त हो गये और रथ, घोड़े तथा सारथी आदि में से भी कोई न रहा, तब गदा-युद्ध करने लगे ॥१२॥ उन दोनों को देख कर ऐसा प्रतीत होता था, जैसे दो पर्वत ही साक्षात् खड़े होकर परस्पर युद्ध कर रहे हैं तथा पृथिवी भी उस युद्ध की भीषणता से काँप उठी ॥१३॥ वे दोनों गदा-युद्ध विचारद अब सब के समाने केवल गदाओं से ही युद्ध कर रहे थे ॥१४॥

उभौ तौ परमाचार्यौ लोके ख्यातौ महाबलौ ।  
 मत्ताविव गजौ युद्धे तावन्धोऽन्यमयुध्यताम् ॥१५॥  
 ततो देवा समन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।  
 समन्ततश्चाप्सरसः समाजग्मुः सहस्रशः ॥१६॥  
 तद्देवयक्षगन्धर्वमहर्षिभिरलकृतम् ।  
 शुशुभेऽभ्यधिकं राजन्गण ज्योतिर्गणैरिव ॥१७॥  
 धर्मदुद्राव रामं तु जरासन्धो महाबलः ।  
 सव्य मण्डलमाश्रित्य बलदेवस्तु दक्षिणम् ॥१८॥  
 प्रहरन्तौ ततोऽन्योऽन्य गदायुद्धविशारदौ ।  
 दन्ताभ्यामिव मातङ्गौ नादयन्तौ दिशो दश ॥१९॥  
 गदानिपातो रामस्य शुश्रूवेऽशनिनिःस्वनः ।  
 जरासन्धस्य चरणे पर्वतस्येव दीर्यतः ॥२०॥  
 न स्म कम्पयते राम जरासन्धकरच्युता ।  
 गदा गदाभृता श्रेष्ठ विन्ध्य गिरिमिवानिलः ॥२१॥

जैसे दो मदमत्त हाथी परस्पर लड़ते हैं, वैसे ही उन दोनों में घमासान संग्राम चल रहा था ॥१५॥ उस समय देवता, यक्ष, गणर्व, सिद्ध, महर्षि आदि ने भी वहाँ उपस्थित होकर बलराम और जरासन्धादि के युद्ध को देखा था ॥१६॥ युद्ध-भूमि में इधर से उधर दौड़ते हुए वे आकाश में चमकते हुए नक्षत्रों के समान

सगते थे ॥१७॥ बलराम जी दाहिनी ओर रह कर परस्पर प्रहार कर रहे थे ॥१८॥ वे दोनों ही बड़े-बड़े दाँतो वाले भीमबाय हाथियो जैसे लग रहे थे जिनकी गदाओ के भिड़ने से जो शब्द हो रहा था, उससे दसो दिशाएँ गूँब उठती थी ॥१९॥ जैसे कैसा भी भीषण पवन विन्ध्याचल पर्वत को विचलित करने में समर्थ नहीं हो सकता, वैसे ही जरासन्ध की गदा के भीषण प्रहार से भी बलराम जी विचलित नहीं हो सके ॥२०-२१॥

रामस्य तु गदावेगं वीर्यात्स भगधेश्वरः ।  
 सेहे धैर्येण महता शिक्षया च व्यपोहयत् ॥२२  
 एव तौ तत्र सग्रामे विचरन्तौ महाबली ।  
 मण्डलानि विचित्राणि विचेरतुररिन्दमी ॥२३  
 व्यायच्छन्तौ चिरं काल परिश्रान्तौ च तस्यतु  
 समाश्वास्य मुहूर्तं तु पुनरन्योन्यमाहताम् । २४  
 एवंतौ योधमुज्यौ तु समं युयुधतुश्चिरम् ।  
 न च तौ युद्धवैमुख्यमुभावेव प्रजग्मतुः ॥२५  
 अथापश्यद्गदायुद्धे विशेष तस्य वीर्यवान् ।  
 रामः क्रुद्धो गदा त्यक्त्वा जग्राह मुसलोत्तमम् ॥२६  
 तमुद्यन्त तदा दृष्ट्वा मुसल घोरदर्शनम् ।  
 अमोघं बलदेवेन क्रुद्धेन तु महारणे ॥२७  
 ततोऽन्तरिक्षे वागासीत्सुस्वरा लोकसाक्षिणि ।  
 उवाच बलदेव त समुद्यतहृलायुधम् ॥२८  
 न त्वया राम बध्योऽयमलङ्घिदेन मागधे ॥  
 विहितोऽस्य मया मृत्युस्तस्मात्साधु व्युपासम् ।  
 अचिरेणैव कालेन प्राणास्त्यक्ष्यति मागधः ॥२९

उपर जरासन्ध भी बलराम जी के प्रहारों को सहन करता हुआ, उनके धपना बचाव करता रहा ॥२२॥ इस प्रकार वे दोनों ही महाबली विचित्र प्रशस्ति प्राप्त कर केनाकर परस्पर में पँतरे चढ़लगे हुए युद्ध कर रहे थे ॥२४॥ दोनों ही पर विजय कर लेते और फिर उठ कर उसी प्रकार भिड़ जाते । ॥

॥ २४-२५ ॥ तब बलराम जी ने जरासन्ध को गदा-युद्ध में अधिक  
 देखकर गदा छोड़कर मूलतः ग्रहण कर लिया ॥ २६ ॥ यह देखकर उसी  
 आकाशवाणी ने धीरे से कहा—हे बलराम ! जरासन्ध की मृत्यु तुम्हारे  
 से नहीं है, इसलिए तुम अपने विशेष क्रोध का त्याग करो । इसकी मृत्यु  
 जो समय निश्चित हुआ है, उसी में इसका अन्त होगा । इसलिये तुम शान्ति  
 ण करो ॥ २७-२८ ॥

जरासन्धस्तु तच्छ्रुत्वा विमना समपद्यत ।  
 न प्रजह्ये तत्तस्तस्मै पुनरेव हलायुध ॥३०  
 तौ व्युपारमता युद्धे वृष्णयस्ते च पार्थिवा ।  
 असक्तमभवद्युद्धं तेषामेव सुदारुणम् ॥३१  
 दीर्घकालं महाराज निघ्नतामिदरेतरम् ।  
 पराजिते त्वपक्रान्ते राजमन्त्रे महीपती ॥३२  
 अस्त याते दिनकरे नानुसन्नुस्तदा निशि ।  
 समानीय स्वकं सैन्यं लघ्वलक्षया महाबलाः ॥३३  
 पुरीं प्रविविष् हृष्टा केशवेनाभिपालिता ।  
 खाच्च्युतान्यायुधान्येव तान्येवान्तर्दनुस्तदा ॥३४  
 जरामन्धोऽपि नृपतिर्विमना स्वपुरीं ययौ ।  
 राजानश्चानुगा येऽस्य स्वराष्ट्राण्येव ते ययुः ॥३५

आकाशवाणी सुनकर जरासन्ध की भी सताप हुआ और बलराम जी भी  
 ॥ २४-२५ ॥ उन दोनों पक्षों ने युद्ध समाप्त कर  
 और जरासन्ध भी विजय प्राप्त न करके वहाँ से लौट गया ॥ ३१-३२ ॥  
 समय मूर्ख छिप गया और रात्रि का समय हो जाने के कारण किसी ने भी  
 रासन्ध का पीछा नहीं किया और श्रीकृष्ण द्वारा सेनाओं को लेकर सभी हर्षित  
 हुए मपुरापुरी में लौट आये युद्ध के आरम्भ में आकाश से आये हुए सभी  
 यास्त्र अन्तर्धान हो गये ॥ ३३-३४ ॥ जरासन्ध अत्यन्त भिन्न होता हुआ अपने  
 को गया और उसके साथी राजागण भी अपने-अपने स्थान को चले गये ॥ ३५ ॥

जरासन्ध तु ते जित्वा मेनिरे नैव निर्जितम् ।  
 वृष्णाय कुशादूर्ल राजा ह्यतिव्रत स वै ॥३६॥  
 दश चाष्टौ च सग्रामाञ्जरासन्धस्य यादवा ।  
 ददुर्न चैनं समरे हन्तुं शेकुर्महाबला ॥३७॥  
 अक्षौहिण्यश्च तस्यासन्निवशतिश्च महामते ।  
 जरासन्धस्य नृपतेस्तदर्थं या समागता ॥३८॥  
 अल्पत्वादभिभूतास्तु वृष्णयो भरतर्षभ ।  
 दाहृद्वयेन राजेन्द्र राजभिः सहितेन वै ॥३९॥  
 भूय कृत्वोद्यम प्रायाजादवान्कृष्णपालितान् ।  
 जित्वा तु मागध स रये जरासन्ध महीपतिम् ।  
 विहरन्ति स्म सुखिनो वृष्णिर्सिंहा महारथा ॥४०॥

मह पराक्रमी वृष्णियो ने जरासन्ध को हरा कर भी अपने को  
 हरा नहीं माना, क्योंकि जरासन्ध का बल इस युद्ध में प्रकट हो चुका था ।  
 उन यादवों को जरासन्ध से अठारह बार लड़ना पड़ा, फिर भी वे उसे  
 में समर्थ नहीं हुए ॥३७॥ जरासन्ध की सहायता के लिये बीस अक्षौहिणी  
 युद्ध-भूमि में आई थी ॥३८॥ यादवों की सेना को अल्प सङ्ख्याक देख कर  
 सन्ध ने वृष्णियो पर बारम्बार आक्रमण किया और प्रत्येक बार उसे  
 पराजय का सामना करना पड़ा । इस प्रकार उसे रख में हरा कर माद  
 निभय होकर मथुरा में रहने लगे ॥४०॥

॥ श्रीकृष्ण द्वारे कालयवन-वध ॥

भगवन्द्रोतुमिच्छामि विस्तरेण महात्मन ।  
 चरितं वामुदेवस्य यदु श्रेष्ठस्य धीमत ॥१॥  
 किमर्थं च परित्यज्य मथुरां मधुसूदन ।  
 मध्यदेशस्य कद्रुद घाम लक्ष्म्याश्च वेवलम् ॥२॥  
 शृणु पृथिव्या स्वालदय प्रभूतघनघान्यवत् ।  
 आर्याद्वयजनभूयिष्ठमधिष्ठानचरोत्तमम् ॥३॥

अयुद्धेनैव दाशार्हस्त्यक्तवान्द्विजसत्तम ।  
 स कालयवनश्चापि कृष्णे किं प्रत्यपद्यत ॥४  
 द्वारकां च समासाद्य वारिदुर्गां जनार्दनः ।  
 किं चकार महाबाहुर्महायोगी महातपाः ॥५  
 किंवीर्यः कालयवनः केन जातश्च वीर्यवान् ।  
 यमसह्यं समालक्ष्य व्यपयातो जनार्दनः ॥६

जनमेजय ने कहा—हे महारामन् ! मैं यादवोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के चरित्र को विस्तार पूर्वक सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥ मध्यदेश में मथुरा नगरी अलंकार स्वरूप एवं अत्यन्त मनोहर थी, लक्ष्मीजी का वहाँ निरत्य निवास था ॥ २ ॥ वह स्थान पृथिवी का शिवा स्वरूप था, वहाँ धन-पुन्य की प्रचुरता थी, धनवानों का वह निवास स्थान था, इसीलिये उसकी गणना पृथिवी के सर्वोत्तम स्थानों में थी ॥ ३ ॥ ऐ ! होने पर भी श्रीकृष्ण ने उम नगरी का त्याग क्यों किया ? कालयवन ने श्रीकृष्ण के साथ कैना व्यवहार किया ? ॥ ४ ॥ चारों ओर से समुद्र से घिरी हुई द्वारावती नगरी में बाहर उन्होंने क्या कार्य किये ? ॥ ५ ॥ जिस कालयवन के असह्य पराक्रम से उन्हें भागना पड़ा, वह कालयवन किसका पुत्र और कितना बली था ? ॥ ६ ॥

वृष्णीनामन्धकानां च गुरुर्गार्ग्यो महामनाः ।  
 ब्रह्मचारी पुत्रा भूत्वा न स्म दारान्स विन्दति ॥७  
 तथा हि वर्तमानं तमूर्ध्वरेतसमव्ययम् ।  
 श्यालोऽभिषस्तवान्गार्ग्यमपुमानिति राजनि ॥८  
 सोऽभिषस्तस्तदा राजन्नगरे त्वजितंजये ।  
 अलिप्सस्तु स्त्रियं चैव तपस्तेपे सुदारुणम् ॥९  
 ततो द्वादशवर्षाणि सोऽयश्चूर्णञ्च भक्षयन् ।  
 आराधयन्महादेवमचिन्त्यं शूलपाणिनम् ॥१०  
 रुद्रस्तस्मै वरं प्रादात्समर्थं युधि निग्रहे ।  
 वृष्णीनामन्धकानां च सर्वतेजोमयं सुतम् ॥११

तत शुथाव त राजा यवनाधिपतिर्वरम् ।  
 पुत्रप्रसवज देवादपुत्र पुत्रकामिता ॥१२  
 स नृपस्त्रमुपानाय्य सान्त्वयित्वा द्विजोत्तमम् ।  
 त धोपमध्ये यवनो गोपस्त्रीषु सभासृजत् ॥१३  
 गोपाली त्वप्सरास्तत्र गोपस्त्रीवेपधारिणी ।  
 धारयामास गार्ग्यस्य गर्भं दुर्धरमच्युतम् ॥१४

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! वृष्टिण और अधिक बनी यादों के महर्षि गार्ग्य गुरु थे, उन्होंने अपनी पत्नी के होते हुए भी अलग-अलग ब्रह्मचर्य का पालन किया था ॥ ७ ॥ इस प्रकार वे ऊर्ध्वरेता होकर जीवन यापन करते थे तभी एक दिन उनके साले ने सभा में उनको नपुंसक कह कर हँसी उड़ाई ॥ ८ ॥ जिससे वे क्षाम में भर गये और पुत्र की अभिलाषा करके अन्तिम तपस्त्रय नगर को गये, वहाँ उन्होंने बारह वर्ष तक केवल सौहृच्छपूर्ण भक्षण पूरे भगवान् शंकर की आराधना की ॥ ९-१० ॥ उनके घोर तप को देखकर शंकर ने प्रसन्न होकर उन्हें वर दिया—हे मुने ! तुम्हें शीघ्र ही एक अत्यन्त तेजस्वी पुत्र की प्राप्ति होगी, जो रणक्षेत्र में वृष्टिणयो और अधिको पर विजय प्राप्त करेगा ॥ ११ ॥ इसके पश्चात् जब यवनराज ने सुना कि महर्षि गार्ग्य ने सिवजी से पुत्र होने का वर प्राप्त किया है, तो उसने उन्हें बुलवाकर अनेक अनुनय-विनय के साथ श्वान-वस्त्री में स्त्रियों के समीप ही ठहरा दिया ॥ १२-१३ ॥ वहाँ गोप-नारी के वेश में रहने वाली गोपाली नाम की एक अप्सरा ने उनके गर्भ धारण किया ॥ १४ ॥

मानुष्या गार्ग्यमार्याया नियोगाच्छूलपाणिन ।  
 स कालयवनो नाम जज्ञे शूरो महाबलः ॥१५  
 अपुत्रस्याथ राजस्तु बबुधेऽन्त पुरे शिशुः ।  
 तस्मिन्नुपरते राजन्स कालयवनो नृपः ॥१६  
 मुदाभिकामो नृपति पर्यपृच्छद्विजोत्तमान् ।  
 पृष्यन्धकृत् तस्य नारदेन निवेदितम् ॥१७

ज्ञात्वा तु वरदानं तन्नारदान्मपुमूदनः ।  
 उपप्रक्षत तेजस्वी वदन्त यवनेषु तम् ॥१८॥  
 समृद्धो हि यदा राजा यवनाना महाबलः ।  
 तत एव नृपा म्लेच्छाः सथित्यानुययुस्तदा ॥१९॥  
 शकास्तुपारा दरदाः पारदाः शृङ्गलाः खशाः ।  
 पल्लवाः शतशश्चान्ये म्लेच्छा हैमवतास्तथा ॥२०॥  
 स तैः परिवृतो राजा दस्युभिः शलभैरिव ।  
 नानावेपायुर्धर्मैर्मथुरामभ्यवर्तत ॥२१॥

भगवान् शकर के वरदान स्वरूप उसके गर्भ से एक महाबली पुत्र की उत्पत्ति हुई, जिसका नाम कालयवन रहा ॥ १५ ॥ पुत्रहीन यवनराज के मन में वह बालक दिनों दिन वृद्धि को प्राप्त होना रहा और कुछ कालोपरांत जब यवनराज की मृत्यु हुई, तब वही कालयवन राजपद पर अभिषिक्त हुआ ॥ १६ ॥ इसके पश्चात् उसने युद्ध की कामना से आह्वानों से प्रेरित किया कि मैं इस समय किस वंश के राजा से सप्राप्त करूँ ? इस पर नारदजी ने उसे वृष्णि और अथक वंशी यादवों की सब बात सुनायी ॥ १७ ॥ तथा नारदजी ने ही भगवान् श्रीकृष्ण के पास आकर कालयवन के जन्म लेने का वृत्तान्त कहा, इसलिये श्रीकृष्ण उस कालयवन की प्रतीक्षा करने लगे ॥ १८ ॥ जब कालयवन अत्यन्त शक्तिशाली हो गया, तब शक, तुपार, वरद, पारद, शृङ्गला, खश, पल्लव आदि अनेक पर्वतीय राजा उसके आधीन हो गये ॥ १९-२० ॥ इसक पश्चात् वह कालयवन टिड्डी दल के समान असंख्य सेना लेकर मथुरा की ओर चल पड़ा ॥ २१ ॥

गजवाजिखरोष्ट्राणामयुतैर्वुदैरपि ।  
 पृथिवी कम्पयामास मन्थेन मृता वृतः ॥२२॥  
 रेणुना सूर्यमार्गं तु समवच्छाद्य पार्थिवः ।  
 मूत्रेण शकृता चैव सैन्येन समृजे नदीम् ॥२३॥  
 अश्वोष्ट्रशकृतां राशेर्निमृतेति जनाधिप ।  
 ततोऽश्वशकृदित्येव नाम नद्या वभूव ह ॥२४॥

तत्सैन्यं महदायाद्वै श्रुत्या वृष्ण्यन्धकाग्रणीः ।  
 वासुदेवः समाभाष्य ज्ञातीनिदमुवाच ह ॥२५॥  
 इदं समुत्थितं घोरं वृष्ण्यन्धमिव महत् ।  
 अवध्यश्चापि नः शत्रुर्वरदानात्पिनाकिनः ॥२६॥  
 सामादयोऽभ्युपायाश्च विहितास्तस्य सर्वशः ।  
 मत्तो मदबलाभ्यां तु युद्धमेव चिकीर्षन्ति ॥२७॥  
 एतावानिह वासश्च कथितो नारदेन मे ।  
 एतावति च वक्तव्यं सामं व परमं मतम् ॥२८॥

उनके साथ के असह्य हाथी, घोड़े, गधे, ऊँट एवं अन्यान्य भारवाहक और सैन्य समूहों के भार से पृथिवी कम्पित हो उठी ॥ २२ ॥ सैनिकों की पग-धूलि के उड़ने से सम्पूर्ण आकाश आच्छादित हो गया, अश्वों के मूत्र की नदी प्रवाहित होने लगी, जिस नदी की उत्पत्ति अश्व के मल से हुई थी, उसका नाम 'अश्वसक्त' हो गया ॥ २३-२४ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्ण ने सर्वत्र कालयवन का आगमन सुना तो अपने जाति-बन्धुओं को बुला कर उन्होंने यह कि अब हम लोगों पर घोर विपत्ति आ गयी है, क्योंकि यह कालयवन नगवाह शत्रु के वरदान से हमारा न मारा जाने योग्य शत्रु है ॥ २५-२६ ॥ वह अपने बल और मद से उन्मत्त होकर अनेक उपायों का अवलम्बन करके यहाँ आ पहुँचा है और हमसे युद्ध करने की उसकी इच्छा है ॥ २७-२८ ॥

जरासन्धश्च नो राजा नित्यमेव न मृष्यते ।  
 तथाऽन्ये पृथिवीपाला वृष्णिचक्रप्रतापिताः ॥२९॥  
 केचित्सवधाच्चापि विरक्तास्तदुगता नृपाः ।  
 समाश्रित्य जरासन्धमस्मानिच्छन्ति बाधितुम् ॥३०॥  
 वह्न्यो ज्ञातयश्चैव यदूना निहता नृपैः ।  
 वर्द्धितुं नैव शक्याम पुरेऽस्मिन्निति केशवः ॥३१॥  
 अपयाने मतिं कृत्वा दूतं तस्मै ससर्ज ह ।  
 ततः कुम्भे महासर्पं भिन्नाञ्जनचयोपमम् ॥३२॥



घोरमाशीद्विषं कृष्णं कृष्ण. प्राक्षेपयत्तदा ।

ततस्तं मुद्रयित्वा तु स्वेन दूतेन हारयत् ॥३३॥

निदर्शनार्थं गोविन्दो भीषयामास त नृपम् ।

स दूतः कालयवनं दर्शयामास त घटम् ॥३४॥

कालसर्पोपमः कृष्ण इत्युक्त्वा भरतर्षभ ।

तत्कालं यवनो बुद्ध्वा श्वासनेन यादवैः कृतम् ॥३५॥

क्षेपि नारद ने मुझे बताया था कि अब हमारे मयुरा मे रहने की अवधि हो चुकी है । अगर जरासब हमारा अमाधारण सत्र है ही तथा अन्यान्य शो मे भी बहुत से राजागण हमारे प्रभाव को देख कर ईर्ष्या करते हैं, वे इस के मरने से अब जरासब के वधवर्ती हो गये हैं तथा जरासब की गता प्राप्त करके वह हमें सताना चाहते हैं ॥ २६-३० ॥ उन राजाओं के हमारे बहुत-से बन्धु-बान्धवों का सहार भी किया जा चुका है, इस दशा मे हम इस नगरी मे रहेंगे तो हमारा विकास समभव नहीं है, इसलिये यहाँ से देना ही श्रेयस्कर होगा । इस प्रकार श्रीकृष्ण ने मयुरा से पलापन का प्रय करके एक मृद्घ घट मे एक काला सर्प बन्द किया और अपने दूत के कालयवन के पास भेजा । दूत ने उस घड़े को काल यवन के सामने रखते कहा कि कृष्ण इस काले नाग के समान भयंकर है । उस घड़े को देखते ही यवन ने समझ लिया कि यह मुझे डराने का उपक्रम है ॥ ३१-३५ ॥

पिपीलिकाना चण्डानां पूरयामास त घटम् ।

स सर्पो बहुभिस्तीक्ष्णः सर्वतस्तः पिपीलिकैः ॥३६॥

भक्ष्यमाणं किलाङ्गेषु भस्मीभूतोऽभवत्तदा ।

तं मुद्रयित्वा तु घटं तथैव यवताविपः ।

प्रेषयामास कृष्णाय बाहुल्यमुपवर्णयन् ॥३७॥

वासुदेवस्तु त दृष्ट्वा योगं विहृतमात्मनः ।

उत्सृज्य मयुरामाशु द्वारकामग्निजग्मिवान् ॥३८॥

वैरस्यान्तं विधित्सस्तु वासुदेवो महाप्रज्ञाः ।

निवेश्य द्वारका राजन्वृष्णीनाश्वास्य चैव ह ॥३९॥

पदातिः पुरुषव्याघ्रो बाहुप्रहरणस्तदा ।

आजगाम महायोगी मथुरा मधुसूदनः ॥४०॥

तं दृष्ट्वा निर्ययी हृष्टः स कालयवनो रपा ।

प्रेक्षापूर्वं च कृष्णोऽपि निश्चकर्म महाबलः ॥४१॥

अयान्वगच्छद्गोविन्दं जिघृक्षुर्यवनेश्वरः ।

न चैनमशकद्राजा ग्रहीतुं योगधर्मिणम् ॥४२॥

इसके पश्चात् कालयवन ने तीक्ष्ण दाँतो वाली भयकर चीटियाँ मँगा  
उस धड़े के मुख में डलवा दी, तब उन चीटियों ने उस सर्प का भक्षण कर  
और तब उस धड़े को बन्द करके कालयवन ने कृष्ण के पास भेज  
॥ ३६-३७ ॥ उसे देख कर श्रीकृष्ण ने समझ लिया कि डराने का उपा  
ध्यय हुआ और तब वह उसी समय मथुरा छोड़कर द्वारका के लिये चला  
॥ ३८ ॥ वहाँ उन्होंने वृष्णियों की आवास-व्यवस्था करने का आश्वासन  
और स्वयं पथिक का वेश धारण करके, शत्रु का नाश करने के विचार से  
ही मथुरा जा पहुँचे ॥ ३९-४० ॥ काल यवन ने जैसे ही उन्हें दे  
खे ही वह क्रोध पूर्वक युद्ध करने के लिये उनकी ओर सपटा, यह देख  
अत्यन्त बली श्रीकृष्ण वहाँ से भाग चले ॥ ४१ ॥ तब कालयवन भी  
पकड़ने के लिये पीछे-पीछे भागा, परन्तु उन्हें पकड़ने में नितान्त अ  
रहा ॥ ४२ ॥

मान्धातुस्तु सुतो राजा भुचुकुन्दो महायशाः ।

पुरा देवासुरे युद्धे कृतकर्मा महाबलः ॥४३॥

वरेण छन्दितो देवैर्निद्रामेव गृहीतवान् ।

श्रान्तस्य तस्य वागेवं तदा प्रादुरभूत्किल ॥४४॥

प्रसुप्तं बोधयेद्यो मा त दहेयमह सुराः ।

चधुपा क्रोधदीप्तेन एवमाह पुनः पुनः ॥४५॥

एवमस्त्विति त शक्र उवाच त्रिदशैः सह ।

॥ सुरैरभ्यनुजातो लोकं मानुषमागमत् ॥४६॥

स पर्वतगुहा काचित्प्रविश्य श्रमकणितः ।  
 सुप्वाप कालमतं वै यावत्कृष्णस्य दर्शनम् ॥ ८७  
 तत्सर्वं वामुदवाय नारदन निवदितम् ।  
 वरदानं च देवम्यत्नेजस्तस्य चमूपात् ॥ ८८  
 कृष्णोऽनुगम्यमानश्च तेन स्नेच्छेते शत्रुणा ।  
 सा गुहा मुचुकुन्दस्य प्रविशेति विनीतयत् ॥ ८९

वैशम्पायन जी न कह — ह राजन् ! प्राचीन काल की बात है कि  
 महाराज मात्वाता के पुत्र मुचुकुन्द देवानुर सशाम यं विश्वी हुए थे, तब  
 देवानों ने उनसे वर माँगने को कहा था। उन समय उन्होंने मुख्य पूर्वक सोते  
 रहने का वर माँगा। अधिक थक हुए होने के कारण उनके मुख से निकला कि  
 'आ कोई मुझे सात से जगाय, वह मर जाय मे जन्त हुए नना व द्वारा उसी  
 (नम नस्म हा जाम ॥ ४१-४४ ॥ इत्यादि देवताओं ने 'एसा ही होगा' कह  
 कर उन्हें वर प्रदान किया, और उन्हें हिमानय पर्वत पर जाकर सोने का आदेश  
 दिया, तदनुसार वे हिमानय की एक गुहा में जाकर सो गये और जब तक  
 जागवान् श्रावण से साक्षात्कार नहीं हुआ, तब तक आनन्द पूर्वक सोने पर  
 रहे ॥ ४६-८७ ॥ उसी समय देवर्षि नारद नावान् कृष्ण के पास आये और  
 'होने मुचुकुन्द की वर प्राप्ति का पूरा वृत्तांत उनसे बर्णन किया ॥ ८८ ॥  
 इ मुनिर श्रीकृष्ण मुचुकुन्द की गुहा में पुत्र जाय, तब समय भी कालवदन  
 का पीछा कर रहा था ॥ ४९ ॥

गिर म्यान तु राजर्षेर्मुचुकुन्दस्य केशवः ।  
 सदशनपथं त्यक्त्वा तस्यो वृद्धिमता वरः ॥ ९०  
 अनुप्रविश्य गवना ददध पृथिवीपतिम् ।  
 स त मुप्त कृतान्नाममाससाद मुहुर्मति ॥ ९१  
 वामुदव तु त मत्वा घट्टयामास पार्थिवम् ।  
 पादनात्मविनाशाय शनभ पादक यथा ॥ ९२  
 मुचुकुन्दस्तु राजर्षि पादस्पर्शप्रयाधितः ।  
 निद्राच्छेदनं चक्रात् पादस्पर्शेन तन च ॥ ९३

सस्मृत्य स वरं शक्रादवैक्षत तमग्रतः ।  
 स दृष्टमात्र क्रोधेन सप्रजज्वाल सर्वशः ॥५४॥  
 ददाह पावकस्तं तु शुष्क वृक्षमिवाशनिः ।  
 क्षणेन कालयवन नेलतेजोविनिर्गतः ॥५५॥  
 त वासुदेव श्रीमन्त चिरमुप्तं नराधिपम् ।  
 कृतकार्योऽब्रवीद्वीर्यमानिद वचनमुत्तमम् ॥५६॥

भगवान् श्रीकृष्ण मुचुकुन्द की दृष्टि को बचाते हुए धीरे-धीरे उस  
 सिरहाने की ओर जाकर खड़े हो गए ॥ ५० ॥ उसी समय कालयवन भी  
 गुफा में घुसा और उसने यम स्वरूप मुचुकुन्द को वहाँ सोते देखा ॥ ५१ ॥  
 समय, जैसे शलभ अपने आरमोत्सर्ग के लिये अग्नि से सघर्ष करता है, वैसे  
 कालयवन ने सोते हुए मुचुकुन्द को कृष्ण समझ कर उसको लात मारी ॥ ५२ ॥  
 लात के लगते ही मुचुकुन्द की नींद टूट गई जिससे वह अत्यन्त क्रोध में  
 गये ॥ ५३ ॥ उन्हें इन्द्र ने वर दिया था, इस बात का ध्यान आने पर मुचु-  
 ने अपने दोनों नेत्र खोल दिये, जिनसे अग्नि की लपटें निकलने लगी ॥ ५४ ॥  
 फिर जैसे सूखे वृक्ष को अग्नि भस्म कर देनी है, वैसे ही मुचुकुन्द की नेत्रों  
 ने कालयवन को देखते देखते ही भस्म कर डाला ॥ ५५ ॥ इसके पश्चात्  
 मनोरथ हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने बहुत समय से सोते हुए राजा मुचुकु-  
 कहा ॥ ५६ ॥

राजश्चिरप्रसुप्तोऽसि कथितो नारदेन मे ।  
 कृत मे सुमहत्कार्यं स्वस्ति तेऽस्तु ब्रजाम्यहम् ॥५७॥  
 वासुदेवमुपालदय राजा ह्रस्व प्रमाणतः ।  
 परिप्लुत युगं मेने कालेन महता तदा ॥५८॥  
 उवाच राजा गोविन्दं को भवान्किमिहागतः ।  
 कश्च काल प्रसुप्तस्य यदि जानासि कथ्यताम् ॥५९॥  
 सोमवशोऽद्रवो राजा ययातिर्नाम नाहुपः ।  
 तस्य पुत्रो यदुर्ज्येष्ठश्चत्वारोऽन्ये यवीयसः ॥६०॥

यदुवशात्समुत्पन्न वसुदेवात्मज विभो ।  
 चासुदेव विजानीहि नृपते त्वामिहागतम् ॥६१॥  
 त्रेतायुगे प्रसुप्तोऽसि विदितो मेऽसि नारदात् ।  
 हृद कलियुग विद्धि किमन्यस्करवाणि ते ॥६२॥  
 मम शत्रुस्त्वया दाओ देवदत्तवरो नृप ।  
 अवध्यो यो मया सख्ये भवेद्वर्षशतैरपि ॥६३॥

श्रीकृष्ण बोले—हे राजन् ! महर्षि नारद से मुझे ज्ञात हुआ था कि आप यहाँ विरकाल से शयन किये हुए हैं । इस समय आपके द्वारा मेरा बहुत बड़ा कार्य सम्पन्न हुआ है, अब मैं जाता हूँ तुम्हारा कल्याण हो ॥ ५७ ॥  
 वीजम्पायन बोले—हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण को उस छोटी आकृति में देख कर सोचा कि मुझे सोते हुए, इतना समय हो गया कि युग ही परिवर्तित हो गया है ॥ ५८ ॥ ऐसा विचार कर उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा—आप कौन हैं ?  
 !हाँ क्यों आये हैं ? यदि आपको ज्ञात हो तो मुझे बताने की कृपा करिये कि मुझे !हाँ सोते हुए कितना समय व्यतीत हो चुका है ? ॥ ५९ ॥ श्रीकृष्ण ने कहा—  
 'तदुप पुत्र राजपि मुचुकुन्द । ययाति के पाँच पुत्र हुए थे—यदु, तुवंसु, द्रुह्यु, नु, और पूरु, इनमें यदु सबसे बड़े थे ॥ ६० ॥ उसी यदुवश में उत्पन्न वसुदेव ! की मैं पुत्र हूँ, मेरा नाम वासुदेव है ॥ ६१ ॥ देवर्षि नारद ने मुझ से कहा कि आप त्रेता युग से यहाँ सो रहे हैं और अब कलियुग आगया है, बताइये, आपका कौन सा कार्य बरू ? ॥ ६२ ॥ भगवान् शंकर के धरदान से मेरा ! शत्रु अवध्य था, मैं उसे सो वष में भी नहीं मार सकता था, आपने उसे म करके हमारा बहुत बड़ा काय किया है ॥ ६३ ॥

इत्युक्त स तु कृष्णेन निर्जंगम गुहामुखात् ।  
 अन्वीयमान कृष्णेन कृतकार्येण धीमता ॥६४॥  
 ततो ददर्श पृथिवीमावृता ह्रस्वर्चनरे ।  
 स्वत्योत्साहैरल्पबलैरल्पवीर्यपराक्रमै ।  
 परेणाधिष्ठित चैव राज्य केवलमात्मन ॥६५॥



यदुवंशात्समुत्पन्नं वसुदेवात्तदुनन्दनम् ॥२॥  
वासुदेव विजानीहि नृपते त्वाच्यं द्विजोत्तमान् ।

प्रेतायुगे प्रसुप्तोऽसि विदितोऽन्क्रियाम् ॥३॥  
इदं कलियुगं विद्धि किमन्यत्समूदनः ।

मम शत्रुस्त्वया दग्धो देवदत्तपुत्र्यया ॥४॥  
अवध्यो यो मया सृष्टे भवेद् यदुपास्यति ॥५॥

श्रीकृष्ण बोले—हे राजन् ! महान् मया ।

आप यहाँ चिकाल से घबरा किये हुए हैं । रावती ॥६॥  
बड़ा कार्य सम्पन्न हुआ है, अब मैं जाता हूँ ।

वैजम्पायन बोले—हे राजन् ! भगवान् धीशुराणि च ॥७॥

कर सोचा कि मुझे सोते हुए, इतना समय  
आया है ॥ ५८ ॥ ऐसा विचार कर उन्होंने इसके पश्चात् जब रात्रि व्यतीत

यहाँ क्यों आये हैं ? यदि आपको ज्ञात हो तो प्रातः कर्मों में निवृत्त होकर दुर्ग

यहाँ सोते हुए कितना समय व्यतीत हो चुका है गये, उनके साथ उनके प्रमुख

नरूप पुन राजपि मुचुकुन्द ! मयाति के पाँच निर्णय हो गया तब शुभ दिन

तु, और पूर, इनमें यदु सबसे बड़े थे ॥ ६० ॥ चंक दुर्ग का निर्माण-कार्य प्रारम्भ

की की मैं पुत्र हूँ, मेरा नाम वासुदेव है ॥ ६१ ॥ आदेश देते हैं, वैसे ही भगवान्

कि आप नेता युग से यहाँ सो रहे हैं और हे गदबो ! उस स्वर्ग के समान

आपका कौन-सा कार्य करूँ ? ॥ ६२ ॥ और नाम भी रख लिया है । यह

शत्रु अवध्य था, मैं उसे सो वर्षों में भी नहीं मार पाया ॥ ६३ ॥ मान रमणीय होगी ॥ ६४ ॥

इत्युक्तः स तु कृष्णेन निर्जंगाम गुहामुः ।

अन्वीयमानः कृष्णेन कृतकार्येण धीमत

ततो ददर्श पृथिवीमावृता ह्रस्वर्गनैस्त्वराः ।

स्वलोत्साहैरल्पवर्त्तरल्पवीर्यपराक्रमः गतिः ॥६॥

परेणाधिष्ठितं चैव राज्यं केवलमात्मन

प्रेक्ष्यन्ता शिल्पिमुख्याना युक्ताना वैश्वकर्मासु ।  
 नियुज्यन्ता च देशेषु प्रेष्यकमकरा जना ॥१०॥  
 एवमुक्ते तु यदबो गृहसग्रहतलरा ।  
 यथानिवेश सहृष्टाश्चक्रुर्वास्तुपरिग्रहम् ॥११॥  
 पुर्या क्षिप्र निवेशार्थं चिन्तय मास माघव ।  
 तस्य दैवोत्थिता बुद्धिर्विमला क्षिप्रकारिणी ॥१२॥  
 पुर्या प्रियकरी सा वै यदूनामभिर्बुद्धिनी ।  
 शिल्पिमुख्यस्तु देवाना प्रजापतिसुत प्रभु ॥१३॥  
 विश्वकर्मा स्वसामर्थ्यात्पुरी सस्थापयिष्यति ।  
 मनसा समनुध्याय तस्यागमनकारणात् ।  
 निदशाभिमुख कृष्णो विविक्ते समपद्यत ॥१४॥

इस उपद्रव रहित नगरी में आ। सब भी देवताओं के ही समान अत्यन्त  
 धान द्रव्यक रहेगे । प्रथम अपने भवन स्थान निश्चित कर गली माग तथा चौका  
 युक्त राज माग के दोनों ओर भवनो का निर्माण करने के लिये भूमि की मा  
 करावें ॥८॥ गृह निर्माणार्थ चतुर शिल्पियों को बुलाने के लिये कुछ व्यक्तियों  
 को विभिन्न स्थानों पर भेजा जाय ॥१०॥ भगवान् वासुदेव की बात सुन क  
 सभी यादव प्रसन्न हुए और गृह निर्माण काय में उत्प्रेरता से लग गये ॥११॥  
 इधर भगवान् वासुदेव द्वारावती नगरी के शीघ्रतापूर्वक बसाये जाने पर विस्  
 करने गये तब ईश्वरेच्छा से उनके हृदय में शीघ्रतापूर्वक काय होने की बु  
 उत्पन्न हुई । १२॥ उससे यादवों की उत्साह वृद्धि हुई और पुर निर्माण काय  
 सम्यक् हो गये । भगवान् ने सोचा कि देवताओं के शिल्पी प्रजापति के पुत्र विश  
 वर्मा हैं यदि वे अपने हाथ में इस काय को ले लें तो ठीक रहे ऐसा विश  
 वरके वे विश्वकर्मा ने आगमन की प्रतीक्षा करते हुए स्वर्ग की ओर मुख क  
 बैठ गये ॥१३॥ १४॥

तस्मिन्नेन तत काले शिल्पाचार्यो महामति ।  
 विश्वकर्मा सुरश्च च कृष्णस्य प्रमुखे स्थित ॥१५॥



शक्रेण प्रेषितः क्षिप्रं तव विष्णो धृतव्रत ।  
 किंकरः समनुप्राप्तः शशि मा किं करोमि ते ॥१६॥  
 यथाऽसौ देवदेवो मे शंकरश्च यथाऽव्ययः ।  
 तथा त्वं देवमान्यो मे विशेषो नास्ति व. प्रभो ॥१७॥  
 त्रैलोक्यज्ञापिका वाचमुत्सृजस्व महाभुज ।  
 एषोऽस्मि परिदृष्टार्थः किं करोमि प्रशाधि माम् ॥१८॥  
 श्रुत्वा विनीतं वचनं केशवो विश्वकर्मणः ।  
 प्रत्युवाच यदुश्रेष्ठः कंसारिरतुलं वचः ॥१९॥  
 श्रुतार्थो देवगुह्यस्य भवान्यत्र वयं स्थिताः ।  
 अवश्यं त्विह कर्तव्यं सदनं मे सुरोत्तम ॥२०॥  
 तदियं पूः प्रकाशार्थं निवेश्या मयि सुव्रत ।  
 मत्प्रभावानुसर्पश्च गृहैश्चेयं समन्ततः ॥२१॥

कुछ क्षणों में ही शिल्पाचार्य विश्वकर्मा उनके समक्ष आ पहुँचे ॥१४॥  
 भगवान् वासुदेव से कहा—हे वृत्तव्रत ! हे विष्णु ! मुझे इन्द्र ने आपकी  
 सेवा है, मैं आपका दास हूँ, जिस प्रकार मुरारि और शिवजी मेरे स्वामी  
 ही आप भी मेरे प्रभु हैं, आप में और उनमें कोई भेद नहीं है ॥१६-१७॥  
 फिर आप तीनों लोकों की आज्ञा देते हैं, उसी प्रकार मुझे भी आज्ञा  
 कि मुझे आपका कौन-सा कार्य करना है ? ॥१८॥ हे राजन् ! विश्वकर्मा  
 ने से प्रसन्न होने हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने उनसे कहा—देवताओं का सब  
 मैं आप भले प्रकार जानते हैं । मेरे लोक में जिस प्रकार का मेरा स्थान  
 भी आपको ज्ञात है, आपको वैसे ही स्थान मेरे लिये यहाँ भी बनाना है  
 २०॥ इस पुरी की रचना करके आप अपनी महिमा दिखाइये, मेरे प्रभा-  
 व अनुरूप ही नगर एवं भवनो का निर्माण होना चाहिये ॥२१॥

एवमुक्तस्ततः प्राह विश्वकर्मा मतीश्वरः ।  
 कृष्णमविलष्टकर्माणं देवामित्रविनाशनम् ॥२२॥  
 सर्वमेतत्करिष्यामि यत्त्वयात्सभिहितं प्रभो ।  
 पुरी त्वयं जनस्यास्य न पर्याप्ता भविष्यति ॥२४॥

भविष्यति च विस्तीर्णा वृद्धिस्स्यास्तु शोभना ।  
 चत्वारः सागरा ह्यस्या विचरिष्यन्ति रूपिणः ॥२४  
 यदीच्छेत्सागरः किंचिदुत्सष्टुमपि तोयराट् ।  
 ततः स्वायतलक्षण्या पुरी स्यात्पुरुषोत्तम ॥२५  
 एवमुक्तस्ततः कृष्णः प्रागेव कृतनिश्चयः ।  
 सागरः सरिता नायमुवाच वदता वरः ॥२६  
 समुद्र दश च द्वे च योजनानि जलाशये ।  
 प्रतिसह्यितामात्मा यद्यस्ति मयि मान्यता ॥२७  
 अवकाशो त्वया दत्ते पुरीयं मामकं बलम् ।  
 पर्याप्तिविषया रम्या समग्रं विसर्हिष्यति ॥२८

भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा सुनकर सुमति विश्वकर्मा ने उनके प्रति कहा—हे प्रभो ! मैं आपकी आज्ञानुसार ही करूँगा, परन्तु यह नगरी सब यादों के निवास के लिये पर्याप्त नहीं होगी ॥२२-२३॥ यदि समुद्र कुछ स्थान दे सके तो कार्य ठीक होगा, उस समय उसमें इतना स्थान हो जायगा कि चारों समुद्र भी साकार रूप से इसमें विचरण कर सकेंगे ॥२४-२५॥ यह सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण ने नदियों के स्वामी समुद्र से स्थान देने के लिये अनुरोध किया—हे समुद्र ! मुझे बारह योजन विस्तार वाले स्थान की आवश्यकता है, तुम इतना स्थान दे सको तो मेरे नगर में स्थान की कमी नहीं रहेगी और मेरी सेना बाँट के लिये भी सुविधा हो जायगी, इसलिये तुम मेरी बात मान कर अपने स्थान से बारह योजन पीछे हट जाओ ॥२६-२८॥

ततः कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा नदनदीपतिः ।  
 स मास्तेन योगेन उत्सर्जं जलाशयम् ॥२९  
 विश्वकर्मा ततः प्रीतः पुर्याः सलदय वास्तु तत् ।  
 गोविन्दे चैव सम्मानं कृतवान्सागरस्तदा ॥३०  
 विश्वकर्मा ततः कृष्णमुवाच यदुनन्दनम् ।  
 अद्यप्रभृति गोविन्द सर्वे समधिरोहन् ॥३१

मनसा निर्मिता चेयं मया पूः प्रवरा विमो ।  
 अचिरेणैव कालेन गृहसन्नाथमालिनी ॥३२॥  
 भविष्यति पुरी रम्या मुद्रारा प्राग्रजतोरणा ।  
 चयाटालकक्रेयूरा पृथिव्या ककुदोपमा ॥३३॥  
 अन्तःपुरं च कृष्णस्य परिचर्याक्षयं महत् ।  
 चकार तस्या पुर्या वं देशे त्रिदशपूजिते ॥३४॥  
 ततः स निर्मिता कान्ता पुरी द्वारवती तदा ।  
 मानसेन प्रयत्नेन वैष्णवी विश्वकर्मणा ॥३५॥

यह मुन कर नदी पति समुद्र वायु की सहायता से तुरन्त ही बारह योजन छि हट गया । यह देख कर विश्वकर्मा ने कहा—अब आप नगर प्रवेश का कार्य करना करें और मैं भी अपने मनोयोग सहित भवनादि से परिपूर्ण इस सुरम्य रावती नगरी की रचना बिये देता हूँ ॥२६-३०-३१॥ इसके द्वार, तोरण, टालिकायें आदि सभी अत्यन्त उत्कृष्ट होंगे और पृथिवी पर स्थित हुई यह नगरी पर्यंत शिखर के समान ऊँची प्रतीत होगी ॥३३॥ हे राजन् ! यह वह कर विश्वकर्मा ने मनोयोगपूर्वक उस नगरी की रचना आरम्भ की और भगवान् श्रीकृष्ण के लिये अत्यन्त विस्तृत अन्तःपुर और स्नानागार का निर्माण किया ॥३४॥ देखते-देखते ही विश्वकर्मा ने अपने मनोयोग से उस परम वैष्णवी द्वार-वती नगरी की रचना कर डाली ॥३५॥

विधानविहितद्वारा प्रभुपरवरशोभिता ।  
 परिखाचयसगुप्ता साट्टाकारतोरणा ॥३६॥  
 कान्तनारीनरगणा वणिग्निरुपशोभिता ।  
 नानापथ्यगणाकीर्णाखेचरीव च गा गता ॥३७॥  
 प्राकारेणार्कवर्णेन शातकौम्भेन सवृता ।  
 हिरण्यप्रतिवर्णेन च गृहैर्गम्भीरनिःस्वनैः ॥३८॥  
 शुभ्रमेघप्रतीकाशं द्वारं सौधैश्च शोभिता ।  
 वचचित्कवचिदुदग्राग्ररूपावृतमहापता ॥३९॥

तामावसत्पुरी कृष्णः सर्वे यादवनन्दना ।  
 अभिप्रेतजनाकीर्णं सोमः खमिव भासयन् । ४०  
 विश्वकर्मा च ता वृत्वा पुरी शक्रपुरीमिव ।  
 जगाम त्रिदिव देवो गोविन्देनाभिपूजितः ॥४१॥

उसके द्वार, प्राचीर, परिखा आदि अत्यन्त शोभामान् बने थे । शीघ्र वह नगरी स्त्री, पुरुष, वस्त्रिक् तथा विभिन्न द्रव्यादि से परिपूर्ण हो गयी । ऐसा प्रतीत होने लगा कि आकाश के कोई अप्सरा ही भूतल पर उतर कर खड़ी हुई है ॥३८-३७॥ स्वर्णिम प्राचीरो, कोलाहल से परिपूर्ण भवनो, श्वेत के समान शुभ्र द्वारो, अट्टालिकाओ एव अत्यन्त उन्नत प्रासादो की छाया युक्त राजमार्गों से उस नगरी की शोभावृद्धि अत्यन्त अधिक हो गई श्री ॥३८-३६॥ यादवो के आनन्द की वृद्धि करने वाले भगवान् आकाश में स्थित चन्द्रमा के समान द्वारावती नगरी को देदीप्यमान करने के लिए अत्यन्त अनदपूर्वक निवास करने लगे ॥४०॥ नगरी की रचना के पश्चात् विश्वकर्मा भी भगवान् के द्वारा सम्मान को प्राप्त होकर अपने लोक की गये ॥४१॥

भूयश्च बुद्धिरभवत्कृष्णस्य विदितात्मनः ।  
 जनानिमान्धनीर्धश्च तर्पयेयमहं यदि ॥४२॥  
 स वैश्रवणसस्पृष्टं निधीनामुत्तमं निधिम् ।  
 शङ्खमाह्वयतोपेन्द्रो निशि स्वे भूमौ प्रभुः ॥४३॥  
 स शङ्खः केशवाह्वानं ज्ञात्वा हि मेघराट् स्वयम् ।  
 आजगाम समीप वै तस्य द्वारावतीर्धतेः ॥४४॥  
 स शङ्खः प्राञ्जलिभूत्वा विनयादवनि नतः ।  
 कृष्णं विज्ञापयामास यथा वैश्रवण तथा ॥४५॥  
 भगवन्कि मया कार्यं मुराणा वित्तरक्षिणा ।  
 नियोजय महाबाहो यत्कार्यं यदुनन्दन ॥४६॥  
 तमुवाच हृषीकेशः शङ्खगुह्यकमुत्तमम् ।  
 जनाः कृशधना येऽस्मिस्तान्धनेनाभिपूरय ॥४७॥

नेच्छाम्यनशितं द्रष्टुं कृश मलिनमेव च ।

देहीति चैव याचन्तं नगर्या निर्धनं नरम् ॥४८॥

फिर भगवान् ने द्वारका के नागरिकों को धन प्राप्त करने के उद्देश्य  
। एक रात्रि में कुबेर के अनुचर निधिपति सग को बुलाया ॥४२-४३॥ उनके  
परा आह्वान किया जाते ही निधिपति उनके समक्ष आकर उपस्थित हो गये ।  
न्होंने सिर झुका कर भगवान् को प्रणाम किया और अत्यन्त आदरपूर्वक हाथ  
गोठ कर उनसे बोले ॥४४-४५॥ हे प्रभो ! हे यदुनन्दन ! मैं देवगण का वित्त-  
शक आपकी सेवा में उपस्थित हूँ, मुझे क्या करना है, सो आदेश दीजिये ॥४६॥  
व उस यक्ष से श्रीकृष्ण ने कहा— हमारी द्वारावती नगरी में रहने वाले जिन  
व्यक्तियों के पास धन की कमी है, उन्हें धनवान् बना दो ॥ ४७ ॥ क्योंकि मैं  
पनी इस नगरी में किसी को वृद्धित, कृश, मलिन, निर्धन अथवा भिखारी  
ने नहीं रहने दूँगा ॥४८॥

गृहीत्वा शासनं मूर्ध्ना निविराट् केशवस्य ह ।

निधितान्नापयामा न द्वारवत्या गृहे गृहे ॥४९॥

धनीर्धरभिवर्षन्वं चक्रु सर्वं तथा च ते ।

नाधनो विद्यते तत्र क्षीणभाग्योऽपि वा नरः ॥५०॥

कृशो वा मलिनो वाऽपि द्वारवत्या कथञ्चन ।

द्वारवत्या पुरि पुग केशवस्य महात्मनः ॥५१॥

चकार वायोराह्वानं भूयश्च पुरुषोत्तमः ।

तक्षस्थ एव भगवान्यादवाना प्रियङ्करः ॥५२॥

प्राणयोनिस्तु भूतानामुपतस्थे गदाधरम् ।

एकमासीनमेकान्ते देवगुह्यधरं प्रभुम् ॥५३॥

किं मया देव कर्तव्यं सर्वमेनाशुगामिना ।

यथैव दूतो देवाना तथैवास्मि तवानघ ॥५४॥

तमवाच ततः कृष्णो रहस्यं पुरुषो हरिः ।

मार्त्तं जगतः प्राणं रूपिणं समुपस्थितम् ॥५५॥

गच्छ मारुत देवेशमनुगान्य सन्नामरे ।

सभा सुप्रार्थमादाय देवेभ्यस्त्वमिहानय ॥५६॥

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् । भगवान् की आज्ञा प्राप्त करों उस यक्ष शख ने अपनी निधिओं को बुला कर उन्हें आदेश दिया—हे निधिओ ! तुम इस द्वारावती नगरी के प्रत्येक गृह में धन की वर्षा करो । यह सुन कर निधिओ ने सभी घरों में धन की वर्षा करके उन्हें परिपूर्ण कर दिया । इसी द्वारावती में कोई भी घर धनहीन नहीं रहा, कृश, मलिन अथवा अभागा भी अप्रकृत नहीं रह गया, सभी धनवान् हो गये थे । इसके पश्चात् श्रीकृष्ण वायुदेवता को द्वारका वासियों के कल्याणार्थ आहूत किया ॥५६-५७॥ आहूत करते ही वायु देवता एकाग्रत में बैठे हुए भगवान् वासुदेव की सेवा में उपस्थित होकर बोले—हे देव ! मैं देवताओं का दूत और आपका दास हूँ, मुझे आज्ञा दीजिये कि आपकी क्या सेवा करनी है ? ॥५७-५८॥ उस दिव्य देहधारी वा से भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा— हे वायो ! तुम स्वर्ग की देव-सभा में शीघ्रतापूर्व जाओ और देवताओं से अनुमति लेकर उनकी सुधर्मा नाम की देव-सभा लेकर यहाँ लौट आओ ॥५९-६०॥

सगृह्य वचन तस्य कृष्णस्याविलष्टकर्मण ।

वायुरात्मोपमगतिर्जंगाम त्रिदिवालयम् ॥५७॥

सोऽनुमान्य सुरान्सान्वृष्णवाक्य निवेद्य च ।

सभा सुधर्मादाय पुनरायान्महीतलम् ॥५८॥

सुधर्माय सुधर्मा ता वृष्णायाविलष्टकारिणे ।

देवो देवसभा दत्त्वा वायुरन्तरधीयत ॥५९॥

द्वारवत्यास्तु स मन्ये केशवेन निवेक्षिता ।

सुप्रार्था यद्गम्यमाना देवाना त्रिदिवे यथा ॥६०॥

एव दिव्यैश्च भोगैश्च जलजैश्चाव्ययो हरि ।

द्रव्यैरलकरोति स्म पुरी स्वा प्रमदामिव ॥६१॥

मर्यादाचंश्व सचक्रे श्रेणीश्च प्रवृत्तीस्तथा ।

चलाच्यक्षाश्च युवताश्च प्रवृत्तीनास्नर्धेव च ॥६२॥

भगवान् के वचन सुन कर त्रायुदेव अत्यन्त वेगपूर्वक वहाँ से चल कर स्वर्ग की देव-सभा में शीघ्र ही पहुँच गये ॥५७॥ वहाँ उन्होंने भगवान् का आदेश श्वताजा को सुनाया और उनको अनुमति से मुघर्मा नाम की देव-सभा को लेकर उन पृथिवी पर लौट आये और उस भगवान् के समक्ष रख कर, उनकी आज्ञा ॥ अपने लोक को गये ॥५८-५९॥ इसके पश्चात् द्वारकावासियों के कल्याणार्थ उन्होंने स्वर्ग के समान द्वारका नगरी के मध्य मुघर्मा को स्थापित किया ॥६०॥ इस प्रकार उन्होंने स्वर्गीय, पार्थिव, जलज सब प्रकार की विविध वस्तुओं को धीरे धीरे सज्जित किया और एक सुसज्जित सुन्दरी के समान द्वारकती का सजाया ॥६१॥ फिर श्रेणी विभाग, प्रकृति विभाग और शासन विभागों की पृथक् स्थापना की ॥६२॥

उग्रसेन नरपति काश्य चापि पुरोहितम् ।  
सेनापतिमनाघृष्टि विक्रद् मन्त्रिपुङ्गवम् ॥६३॥  
यादवाना कुलकरान्स्यविरान्दश तन वै ।  
मतिमान्स्यपयामास सर्वकार्येष्वनन्तरान् ॥६४॥  
रथेष्वतिरयो यन्ता दारुक केशवस्य वै ।  
योधमुख्यश्च योगाना प्रवर सात्यकि कृत ॥६५॥  
विधानमेव कृत्वाऽथ कृष्ण पुर्मामनिन्दित ।  
मुमुदे यदुभि सार्द्धं लोकस्रष्टा महीतले ॥६६॥  
रेवतस्याय कन्या च रेवती शीलसम्मताम् ।  
प्राप्सवान्जलदेवस्तु कृष्णस्यानुमते तदा ॥६७॥

महाराज उग्रसेन को राजा, काशी नरेज को पुरोहित, अनाघृष्टि को सेनापति, विक्रद् को नत्री, वृद्ध और प्रमुख दन यादवा को सर्वाध्यक्ष, मुनिपुण और अतिरथ को सारथी एवं युद्धकुशल नात्मवि को सेनाध्यक्ष पद सौंपा गया ॥६३-६४-६५॥ इस प्रकार समुचित व्यवस्था करके भगवान् बामुदेव यादवों के सहित उस नगरी में आनन्दपूर्वक विहार करने लगे ॥६६॥ इसके कुछ कालापरान्त श्रीकृष्ण को अनुमति से बलरामजी ने रेवत की पुत्री रेवती का पाणिग्रहण कर लिया ॥६७॥

## ॥ रुक्मिणी हरण ॥

एतस्मिन्नेव काले तु जरासघ प्रतापवान् ।  
 नृपानुद्योजयामास चेदिराजप्रियेप्सया ॥१  
 सुताया भीष्मकस्याथ रुक्मिण्या रुक्मभूषण ।  
 शिशुपालस्य नृपतेर्विवाहो भविता किल ॥२  
 दन्तवक्त्रस्य तनय सुवक्त्रममितौजसम् ।  
 सहस्राक्षसम युद्धे मायाशतविशारदम् ॥३  
 पौण्ड्रस्य वासुदेवस्य तथा पुत्र महाबलम् ।  
 सुदेव वीर्यसम्पन्न पृथगक्षोहिणीपतिम् ॥४  
 एकलव्यस्य पुत्र च वीर्यवन्त महाबलम् ।  
 पुत्र च पाण्ड्यराजस्य कलिङ्गाधिपतिस्तथा ॥५  
 वृताप्रिय च वृष्णेन वेणुदारि नराधिपम् ।  
 अशमन्त तथा क्राय श्रुतधर्माणमेव च ॥६  
 निर्वृत्तशत्रु कालिङ्ग गान्धाराधिपतिस्तथा ।  
 प्रगल्भ च महावीर्यं कौशाम्ब्यधिपमव च ॥७  
 भगदत्ता महासेन शल शाल्वो महाबल ।  
 भूरिश्रमा महासेन तुन्तिवीर्यश्च वीर्यवान् ।  
 स्वयवरार्थं संप्राप्ता भोजराजनियेशने ॥८

धर्मप्राप्त्यनन्तरं जी न कहा—हं शत्रु । चदिराज दमपौत्र वा विवह  
 श्री हृष्टा स निगुमान व साध नीष्मक पुरी रुक्मिणी वा विवाह हाण, १  
 पाण्ड्या प्रतापी जरासघ १ राज समाज व समक्ष कर दी ॥ १-२ ॥ ३१ ६  
 रण विशारद धीर २ ३ क गमान पराक्रमशील सुवक्त्र, अत्यन्त वनहावी ।  
 अक्षोहिणीपति पौण्ड्र पुत्र मुदव, एव १८८५ वा बभी पुत्र, पाण्ड्यराज वा १  
 कलिङ्गाधिपति वृष्णारि वेणुदारि वय पुत्र नगुमान्, श्रुतधर्मा, दापार वी  
 विधान कला युव १८८५, शल, शाल्व, भूरिश्रमा धीर तुन्तिवीर्यं प्रादि पत्र  
 वा निमग्न नव दिव और व सब स्वयवर व सम्पत्ति हा १ के विव नो  
 क नगर मे वा मने ॥३ ८॥



कस्मिन्देगे नृपो जज्ञे स्वमी वेदविदां वरः ।  
 कस्यान्ववाये द्युतिमान्समूतो द्विजसत्तम ॥६  
 राजर्षेर्षादवस्यातोद्विदभी नाम वै नुतः ।  
 विन्ध्यस्य दक्षिणे पार्श्वे विदमर्षां न्यवेशयत् ॥१०  
 क्रयर्कशिकमुञ्च्यास्तु पुत्रास्तस्य महावलाः ।  
 बभूवुर्वीर्यसम्पन्नाः पृथग्वशकरा नृपाः ॥११  
 तस्यान्ववाये भीमस्य जज्ञिरे वृष्णयो नृपाः ।  
 क्रयस्य त्वंशुमान्वगे भीष्मकः कर्णिकस्य तु ॥१२  
 हिरण्यरोमेत्याहुर्न दाक्षिणात्येऽनरं नृपाः ।  
 अगस्त्यगुप्टामाशां यः कुण्डिनस्योऽन्वशान् नृपः ॥१३  
 स्वमी तस्यामवत्पुत्रो रुक्मिणी च विशापते ।  
 स्वमी चास्त्राणि दिव्यानि द्रुमात्प्राप महावतः ॥१४  
 जामदग्न्यात्तया रामाद्ब्रह्ममस्त्रमवाप्तवान् ।  
 प्रास्पदं तु स कृष्णेन नित्यमद्भुतकर्मणा ॥१५

यह मुन कर राजा जनमेजय ने कहा—हे विप्र श्रेष्ठ ! वेद का ज्ञाता राजा स्वमी किस वंश में और किस प्रदेश में उत्पन्न हुआ था ? ॥६॥ वंशम्नायन जी ने कहा—हे राजन् ! राजर्षि यादव का विदर्भ नामक पुत्र लोक विख्यात था, जिसने विन्ध्य पर्वत के दक्षिण में विदमर्षा नाम की एक नगरी को वसाया ॥१०॥ क्रयर्कशिक आदि उसके अनेक पुत्र हुए थे, उन सब का वंश सर्वथा पृथक् था ॥११॥ उसी वंश में भीम के द्वारा वृष्णिमण उत्पन्न हुए थे और क्रय के वंश में भीष्मक की उत्पत्ति हुई थी ॥१२॥ वह भीष्मक ही हिरण्यरोमा नाम से प्रसिद्ध हुए तथा वह कुण्डिन नगर के राजा हुए और अगस्त्य द्वारा रक्षित दक्षिण के प्रदेशों पर राज्य करने लगे ॥१३॥ इन्हीं भीष्मक का पुत्र स्वमी और पुत्री रुक्मिणी हुई । उस स्वमी ने परम प्रतापी द्रुम से अनेक दिव्यास्त्र और परमुराम से ब्रह्मास्त्र प्राप्त किया और अद्भुत विक्रम वाले नगवान् से वैर करने लगा ॥१४-१५॥

रुक्मिणी त्वमवद्राजन् रूपेणासदृशी भुवि ।  
 चक्रमे वासुदेवस्ता श्रवादेव महाद्युतिः ॥१६  
 स तथा चाभिलषित श्रवादेव जनार्दनः ।  
 तेजोवीर्यवलोपेतः स मे भर्ता भवेदिति ॥१७  
 ता ददौ न च कृष्णाय द्वेपाद्रुक्मी महाबलः ।  
 कंसस्य वधसतापात्कृष्णायामिततेजसे ।  
 याचमानाय कंसस्य द्वेष्योऽयमिति चिन्तयन् ॥१८  
 चैद्यस्यार्थं सुनीयस्य जरासन्धस्तु भूमिपः ।  
 वरयामास ता राज भोष्मकं भीमविक्रमम् ॥१९  
 चेदिराजस्य तु वसोरासीत्पुत्रो बृहद्रथः ।  
 मगधेषु पुरा येन निर्मितोऽसौ गिरिवज्रः ॥२०  
 तस्यान्ववाये जज्ञेऽसौ जरासन्धो महाबलः ।  
 वसोरेव तदा वशे दमघोषोऽपि चेदिराट् ॥२१

रुक्मिणी अद्वितीय सुन्दरी थी, यह बात गुप्तर भगवान् धीरे  
 उल्लासपूर्वक कहने का विचार किया ॥ १६ ॥ रुक्मिणी ने भी धीरे  
 से ही पति रूप में वरण करने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली थी ॥ १७ ॥  
 वर-वध ॥ मत्स्य तथा वृष्ण के प्रति स्वाभंगिक विद्वेपी रसमी अपनी  
 का विशाल भगवान् वासुदेव के साथ करना के लिये किसी प्रकार सहमत  
 ॥ १८ ॥ इसका पदार्थ अस्मत्काली और पराजनी राजा जरासन्ध ने  
 भोष्मक व सिंगुपाल के लिये रुक्मिणी की याचना की ॥ १९ ॥ उसका  
 या कि अदिराज वसु के जो बृहद्रथ नामक पुत्र था, उसी ने पूर्वका  
 दश म गिरिवज्र नामक एक मगरी की रचना की थी ॥ २० ॥ राजा  
 को उत्सर्जित उगी वध म हुई और अदिराज दमघोष की उगी वध म  
 हुए ॥ २१ ॥

दमघोषस्य पुत्रास्तु पञ्च भीमपराक्रम्याः ।

अग्निः ॥ वासुदेवस्य च तथैवनि त्रिजिरे ॥२२

शिशुपालो दशग्रीवो रंभ्योऽयोपदिशो वली ।  
 सर्वास्त्रकुशला वीरा वीर्यवन्तो महाबलाः ॥२३॥  
 ज्ञातेः समानवशस्य सुनीथः प्रददौ सुतम् ।  
 जरासधस्तु सुतवद्दर्शेन जुगोप च ॥२४॥  
 जरासधं पुरस्कृत्य वृष्णिशत्रुं महाबलम् ।  
 कृतान्यागासि चैद्येन वृष्णीना चाप्रियं पिणा ॥२५॥  
 जामाता त्वभवत्तस्य कसस्तस्मिन्हस्ते युधि ।  
 कृष्णार्थं वैरमभवज्जरासधस्य वृष्णिभिः ॥२६॥  
 भीष्मकं वरयामास सुनीथार्थं च रुक्मिणीम् ।  
 ता ददौ भीष्मकश्चापि शिशुपालाय वीर्यवान् ॥२७॥

वसुदेवजी की यहन श्रुतश्रुवा के गर्भ से दमघोष ने शिशुपाल, दशग्रीव,  
 यु, उपदिश और वली इन पाँच पुत्रों को उत्पन्न किया, जो कि सर्वशास्त्रों के  
 ॥ और अत्यन्त पराक्रमी हुए ॥ २२-२३ ॥ जरासध और दमघोष दोनों के  
 ॥ ही वश ने उत्पन्न होने के कारण दमघोष ने अपने ज्येष्ठ पुत्र शिशुपाल की  
 ॥ सध की सहायता के लिये उसे दे दिया था, इसलिये जरासध उसे अपने  
 ॥ के समान ही पालने लगा था ॥ २४ ॥ इसीलिये वृष्णियों के राजा  
 ॥ सध का प्रिय करने के लिये शिशुपाल ने वृष्णियों के बहुत से अप्रिय कार्य  
 ॥ ॥ २५ ॥ परम बली, कस राजा जरासध का जमाई था, इसलिये वृष्ण  
 ॥ कस का वध होने के कारण जरासध की प्रीति के निमित्त वृष्णियों से  
 ॥ का वैर-भाव बढ़ हो गया ॥ २६ ॥ इसीलिए जरासध ने राजा भीष्मक से  
 ॥ गुपाल के लिये रुक्मिणी की याचना की, जिसे भीष्मक ने भी स्वीकार कर  
 ॥ ॥ २७ ॥

ततश्चैद्यमुपादाम जरासधो नराधिपः ।  
 ययौ विदर्भान्सहितो दन्तवक्त्रेण यायिना ॥२८॥  
 अनुज्ञातश्च पीण्ड्रेण वासुदेवेन धीमता ।  
 अङ्गवङ्गकलिङ्गानामीश्वरः स महाबलः ॥२९॥  
 मानयिष्यश्च तान् रुक्मी प्रत्युद्गम्य नराधिपान् ।  
 वरया पूजयोपेतास्तान्निनाय पुरी प्रति ॥३०॥

पितृष्वसु प्रियार्थं च रामकृष्णाद्युभावपि ।  
 प्रययुर्वृष्णयश्चान्ये रथेस्तत्र बलान्विताः ॥३१॥  
 क्रयकंसिकभर्ता तान्प्रतिगृह्य यथाविधि ।  
 पूजयामास पूजार्हान्विहिश्चैव न्यवेशयत् ॥३२॥  
 श्वो भाविनि विवाहे च रविमणौ निर्यमौ बहिः ।  
 चतुर्ज्वा रथेनन्द्रे देवतायतने शुभे ॥३३॥  
 द्वाणोमचंयिष्यन्ती वृत्तकौतुकमद्भुता ।  
 दीप्यमानेन वपुषा बलेन महताऽऽवृता ॥३४॥  
 ता ददशं तदा वृष्णो लक्ष्मी साक्षादिव स्थितान् ।  
 रूपेणाग्रघेण सपन्ना देवतायतनान्तिके ॥३५॥

रामेण सह निश्चित्य केशवस्तु महाबलः ।  
 तत्प्रमायेऽकरोद्बुद्धिं वृष्णिभिः प्रणिधाय च ॥३८  
 कृते तु देवताकार्ये निष्क्रामन्ती सुरालयात् ।  
 उन्मथ्य सहसा कृष्णः स्व निनाय रथोत्तमम् ॥३९  
 वृक्षमुत्पाद्य रामोऽपि जघानापततः परान् ।  
 समनह्यन्त दाशार्हास्तदाज्ञप्ताश्च सर्वशः ॥४०  
 ते रथ्यविविधाकारैः समुच्छिन्नमहाध्वजैः ।  
 वाजिभिर्वारिणैश्चैव परिवव्रुर्हंलायुधम् ॥४१

रूप, सीमाय तथा यश में कोई भी स्त्री उनकी समानता करने में समर्थ नहीं है, श्वेत दुकूल धारिणी उन रुक्मिणीजी को देखकर थीकृष्ण के मन में उनके प्रति आशा आग्रत हुई और उनका आवेस आग्याहुति प्राप्त अग्नि के ज्वाला प्रवृद्ध होने लगा ॥३६-३७॥ तब उन्होंने बलरामजी तथा अन्योन्य प्रमुख वृष्णिगणों से परामर्श करके रुक्मिणी का हरण करने का निश्चय किया और जब रुक्मिणी देव पूजन करके मन्दिर से बाहर निकली, तभी थीकृष्ण ने सहसा उन्हें पकड़कर अपने रथ पर चढ़ा दिया ॥३८-३९॥ उस समय जो पुरुष उन्हें रोकने के लिये आगे आये, वह बलराम द्वारा वृक्षों को उखाड़ कर उनसे प्रहार करने के कारण भाग गये । यह देखते ही विविध प्रकार के रथ, हाथी, घोड़े आदि पर सवार तथा पैदल वृष्णिगण उनकी रक्षा के लिये बलरामजी के चारों ओर एकत्र हो गये ॥४०-४१॥

आदाय रुक्मिणी कृष्णो जगामाणु पुरी प्रति ।  
 रामे भारं तमासज्य युयुधाने च वीर्यवान् ॥४२  
 अक्रूरे विपृथी चैव गदे च कृतवर्मणि ।  
 चक्रदेवे सुदेवे च सारणे च महाबले ॥४३  
 निवृत्तशत्रो विक्रान्ते भङ्गाकारे विदूरथे ।  
 उग्रसेनात्मजे कङ्के शतद्युम्ने च केशवः ॥४४  
 राजाधिदेवे मृदुरे प्रसेने चित्रके तथा ।  
 अतिदान्ते वृहद्गुर्गे श्वफल्के सत्यके पृथी ॥४५

वृष्ण्यन्धकेषु चान्येषु मुख्येषु मधुसूदनः ।  
 गुरुमासज्य त भार ययौ द्वारवती प्रति ॥४६॥  
 दन्तवक्त्रो जरासध शिशुपालश्च वीर्यवान् ।  
 सन्नद्धा नियंयु क्रुद्धा जिघासन्तो जनार्दनम् ॥४७॥  
 अङ्गवङ्गकलिङ्गश्च साद्धं पौण्ड्रश्च वीर्यवान् ।  
 नियंयो चेदिराजस्तु भ्रातृभिः स महारथैः ॥४८॥  
 तान्प्रत्यगृह्णन्सरब्धा वृष्णिवीरा महारथाः ।  
 सकर्पणं पुरस्कृत्य वासव मरतो यथा ॥४९॥

तब भगवान् श्रीकृष्ण ने बलराम, युयुधान, सात्यकि, अक्रूर, विष्णु  
 गद, कृत्वर्मा, चक्रदेव, सुदेव, सारण, विदूरथ, उग्रसेन-पुत्र कक, एतच्छूम्न,  
 मृगुर, प्रसेन, चित्रक, अरिदान्त, बृहद्गुण, श्वफल्क, सत्यक, पृषु तथा अन्धकार  
 वृष्णियो और अथको पर वहाँ का भार छोड़ा और स्वयं रुक्मिणी को लेकर  
 द्वारवती के लिए चल दिये ॥४६-४९॥ यह समाचार सुनते ही दन्तवक्त्र  
 शिशुपाल, जरासध आदि विपक्षी राजागण अत्यन्त क्रोधित हुए और कृष्ण को  
 बध करने का विचार करते हुए उनके पीछे दौड़ पड़े ॥४७॥ चेदिराज इमली  
 भी अपने महारथी भाइयों तथा अंग, वग, कलिङ्ग और पौण्ड्र आदि राजाओं को  
 साथ लेकर युद्ध करने के लिये चल पड़ा ॥४८॥ यह देखकर बलरामजी के  
 नेतृत्व में वृष्णिवक्त्र के महारथी दूरवीर युद्ध के लिये उन सब दलबलों के सामने  
 आ पहुँचे ॥४९॥

आपतन्त हि वेगेन जरासध महाबलम् ।  
 पङ्क्तिर्विव्याध नाराचं युयुधानो महामृधे ॥५०॥  
 अक्रूरो दन्तवक्त्र तु विव्याध नवभिः शरैः ।  
 न प्रत्याविद्यत्तत्तारूपो वार्णदंशभिराशुभिः ॥५१॥  
 विष्णुः शिशुपाल तु शरैर्विव्याध सप्तभिः ।  
 अष्टभिः प्रत्याविद्यत्त शिशुपालः प्रतापवान् ॥५२॥  
 गवेरपस्तु चं चं च पङ्क्तिर्विव्याध मार्गणैः ।  
 प्रतिगन्तस्तथाऽप्यानिर्हृद्गुणैश्च पञ्चभिः ॥५३॥

प्रतिविद्याध ताश्चैव पञ्चभि पञ्चभि शरै ।

जघानाश्वाश्च चतुरश्वतुर्भिविपृथा शरै ॥५४॥

वृहद्दुर्गस्य भल्लन शिरश्चिच्छेद चारिहा ।

गवेपणस्य सूत तु प्राहिणोद्यमसादनम् ॥५५॥

हताश्व तु रथ त्यक्त्वा विपृथुस्तु महाबल ।

आरुरोह रथ शीघ्र वृहद्दुर्गस्य वीरवान् ॥५६॥

विपृथो सारथिश्चापि गवेपणरथ द्रुतम् ।

आरुह्य जवनानखान्नियन्तुमुपचक्रम ॥५७॥

युधुधान और सात्त्विक न जब जरासन्ध को अत्यन्त वेग पूर्वक अपनी  
 ॥५४॥ र बढ़ता दृष्टा तो उस छ थाणा स बीध डाला ॥५०॥ तभी अक्रूर न दन्त-  
 ॥५१॥ न को नौ बाणो स और दशवक्र ने अक्रूर को दस बाणा स बीध दिया ॥५१॥  
 पृथु न शिशुपान की मात बाण मारे और शिशुपाल न विपृथु पर आठ बाण  
 लाये ॥५२॥ इसक बाद गवेपण न छ, अतिदन्त न आठ और वृहद् दुर्ग ने  
 च बाणा स शिशुपान को बीधा ॥५३॥ तब कुपित होकर शिशुपान न प्रत्येक  
 र पर पाच पाच वंण चलाकर प्रहार किया ॥५४॥ फिर उसने विपृथु क  
 ॥५५॥ र घोडा को मार डाला और एक भल्लास्य स वृहद्दुर्ग का भीर छेदन कर  
 या तथा गवेपण क मारथी को यमसादन भेज दिया ॥५६॥ अश्व क मारन पर  
 पृथु, वृहद्दुर्ग के रथ पर आरुह्य दृष्टा और विपृथु का सारथी भी गवेपण  
 क रथ पर पड़च कर उस चढ़ाने लगा ॥५६ ५७॥

ते क्रुद्धा शरवर्षेण सुनीथ समवाकिम् ।

नृत्यन्त रथमार्गेषु चापहस्ता रुलाग्नि ॥५८॥

चक्रदेवो दन्तवक्त्र विभदारसि पत्रिणा ।

पङ्कथ पञ्चभिश्चैव विव्याध युधि मार्गेण ॥५९॥

त निमृष्टद्रुमेणाजौ वङ्गराजस्य कुञ्जरम् ।

जघान राम सक्रुद्धो वङ्गराज च सयुग ॥६०॥

॥ हत्वा रथमारुह्य घनुगदाय वीरवान् ।

सकृपणो जघानोर्ध्वैर्नारार्च कंशिकान्वहन् ॥६१॥

पङ्भिर्निहत्य कारूयान्महेष्वासान्स वीर्यवान् ।  
 शत जघान सक्रुद्धो मागधाना महाबले ॥६२  
 निहत्य तान्महाबाहुजंरासध ततोऽभ्ययात् ।  
 तमापतन्त विव्याध नाराचर्मगिघस्त्रिभिः ॥६३

इसके पश्चात् अनुप-बाण ग्रहण किये और अत्यन्त क्रुपित हुए उन वी ने शिमुपाल को चारों ओर से घेर लिया ॥५८॥ चक्रदेव न एक बाण से रु बक्र का हृदय और पाँच बाणों से पडरय को बीध डाला ॥५९॥ इसी व बलराम ने क्रोधपूर्वक एक वृक्ष उखाड़ कर उससे बगराज के हाथों को म और फिर बगराज का भी वध कर दिया ॥६०॥ इस प्रकार बलराम बर को मार कर रथारुद्ध हुए और अपने उग्र बाणों से उन्होंने अनेकानेक वी देशीय वीरों का सहार किया ॥६१॥ अपने छः बाणों से कारुण्य अनुष्णितों वध किया और सौ बाणों से मगध देशीय अत्यन्त बली सैनिकों को मार और फिर वह बलरामजी अत्यन्त पराक्रमी जरासध की ओर बढ़े, उस समय अपनी ओर आता हुआ देख कर जरासध ने उन पर तीन बाण चलाये ॥६२॥

त विभेदाष्टभिः क्रुद्धो नाराचर्मससायुधः ।  
 चिच्छेद चास्य भल्लेन ध्वज हेमपरिष्कृतम् ॥६४  
 तद्युद्धमभवद्धोरं तेषां देवासुरोरमम् ।  
 मृतता शरवर्षाणि निघ्नतामितरेतरम् ॥६५  
 गजं गंजा हि सक्रुद्धाः सनिपेतुः सहस्रशः ।  
 रथं रथाश्च सरब्धाः सादिनश्चापि सादिभिः ॥६६  
 पदातयः पदातीश्च शक्तिचर्मसिपाणयः ।  
 छिन्दन्तश्चोत्तमागानि विनेष्टुं धि ते पृथक् ॥६७  
 जघोना पात्यमानानां कवचेषु महास्वनः ।  
 शराणां पतना शब्दः पतिणामिव शुभ्रये ॥६८  
 भेरीशङ्खमृदङ्गानां वेणूनां च मृधे ध्वनिम् ।  
 जुगूह पथः शरवापा ज्यापोषश्च महात्मनाम् ॥६९



इसमें क्रुपित हुए बलराम ने उस पर आठ बाणों से प्रहार किया और पल्लास्र से उनके रथ का ध्वज काट डाला ॥६४॥ तब उन दोनों अत्यन्त वीरों में घोर युद्ध होने लगा, और वे दोनों ही यथाशक्ति एक दूसरे पर भीषण बाण-वर्षा करने लगे ॥६५॥ उस समय दोनों पक्ष के हाथियों से हाथी, घोड़ों से घोड़े, रथों से रथ भिड़ रहे थे और भयानक मारकाट हो रही थी ॥६६॥ हाथों में मक्खि, डाल, तलवार आदि शस्त्रास्त्र घातों पेंदल पेंदलों का सिर बाटते हुए घूम रहे थे ॥६७॥ जबको पर चोट करती हुई तलवारों की झनझनाहट और गिरते हुए बाणों के शब्द सुनाई दे रहे थे ॥६८॥ युद्ध स्थल में भेरी, शस्त्र और मृदंग बज रहे थे, उनकी ध्वनि सन्तों और प्रत्यक्षाओं की ध्वनि में मिलीन हो रही थी ॥६९॥

## ॥ श्रीकृष्ण रुक्मिणी का विवाह ॥

कृष्णेन ह्यभिमाना ता रुक्मी श्रुत्वा तु रुक्मिणीम् ।

प्रतिज्ञामकरोत्क्रुद्धः समक्ष भीष्मकस्य ह ॥१॥

अहत्वा युधि गोविन्दमनानीय च रुक्मिणीम् ।

कुण्डिन न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥२॥

आस्थाय स रथ वीरः समुद्रायुधध्वजम् ।

जवेन प्रययौ क्रुद्धो बलेन महता वृतः ॥३॥

तमन्वयुनृपास्त्वं दक्षिणापथवर्तिनः ।

क्रायोऽश्रुमान्द्रुतर्वा च वेणुदारिद्र्य वीर्यवान् ॥४॥

भीष्मकस्य सुताश्चान्ये रथेन रथिना वराः ।

क्रथकंशिकमुह्याश्च सर्व एव महारथाः ॥५॥

ते गत्वा दूरमध्वानं सरित् नर्मदामनु ।

गोविन्दं ददृशुः क्रुद्धा सहैव प्रियया स्थितम् ॥६॥

अवस्थाप्य च तत्सैन्य रुक्मी मदबलान्वितः ।

चिकीर्षुर्दृश्य युद्धमभ्ययान्मनुसूदनम् ॥७॥

बैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! रुक्मिणी-हरण का वृत्तान्त सुनकर ते अत्यन्त क्रुपित हुआ और उसने अपने पिता भीष्मक के समक्ष प्रतिज्ञा की

कि युद्ध मे वृष्ण वा वध बिये बिना तथा रुक्मिणी को लौटाये बिना मैं कुम्भीपुर मे लौट कर नही आऊँगा । मेरा यह वचन सत्य समझिये ॥१-२॥ ऐसे प्रतिज्ञा करके वह शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित होकर ऊँची ध्वजा से युक्त रथ में चढ़ कर अपनी विशाल सेना के सहित चल दिया ॥३॥ क्राव, अशुमान, धृज और वेणुदारी आदि दक्षिण की ओर के राजागण, भीष्मक पुत्र गण तथा इन्द्रकैशिक के प्रमुख महारथीगण उसके पीछे चले ॥४-५॥ बहुत दूर चलने पर नर्मदा नदी के तट पर अपनी प्रियतमा रुक्मिणी के साथ बैठ हुए भगवान् वासुदेव उन्हें दिखाई पड़े ॥६॥ उन्हें दिखते ही रुक्मी का क्रोध भयंकर उठा और अपनी सेना को पीछे ही छोड़ कर सग्राम करने के लिये श्रीकृष्ण की आश्रितगति से दौड़ पड़ा ॥७॥

स विव्याध चतुषष्टया गोविन्द निशितैः शरैः ।  
त प्रत्यविध्यत्सप्तत्या बाणैर्युधि जनादेनः ॥८॥  
पतमानस्य विच्छेद ध्वज चास्य महाबलः ।  
जहार च शिर कायास्तारथेस्तस्य वीर्यवान् ॥९॥  
त कृच्छ्रगतमाजाय परिवर्जनादेनम् ।  
दाक्षिणात्या जिघासन्तो राजान सर्व एव हि ॥१०॥  
तमशुमान्महाबाहुर्विव्याध दक्षभिः शरैः ।  
श्रुतर्वा पञ्चभिः क्रुद्धो वेणुदारिश्च सप्तभिः ॥११॥  
ततोऽशुमन्त गोविन्दो बिभेदोरसि वीर्यवान् ।  
निपसाद रथोपस्थे व्यथितः स नराधिपः ॥१२॥  
श्रुतर्वणो जघानाश्वारचतुर्भिश्चतुरः शरैः ।  
वेणुदारेर्ध्वजं छित्त्वा भुज विव्याध दक्षिणम् ॥१३॥  
तथैव च श्रुतर्वणिं शरैर्विव्याध पञ्चभिः ।  
शिथिलैस्त ध्वज शान्तो न्यपीदञ्च व्यथान्वितः ॥१४॥

वहाँ पहुँच कर उसने श्रीकृष्ण पर चौंसठ बाणों को घनपुं पर एक साथ चढ़ाकर बार किया, जिसके उत्तर मे श्रीकृष्ण ने सत्तर बाण एक साथ चढ़ाये ॥८॥ इसके साथ ही उसके रथ की ध्वजा काट दी और उसके सारथी वा मस्तक

जट कर पृथिवी पर गिरा दिया ॥६॥ उसी समय दक्षिणापथ के राजा वहाँ  
 पहुँचे और रुक्मी का समदशस्त देखकर श्रीकृष्ण को मार डालने की  
 च्छा से उन्होंने घेर लिया ॥१०॥ तभी अशुमान ने नी, श्रुतर्वा ने पाँच और  
 गुदारि ने सात बाणों से भावान् श्रीकृष्ण पर प्रहार किये ॥११॥ तब उन्होंने  
 अपने बाणों से अशुमान् का हृदय चीर दिया, जिससे वह भूच्छित तथा घरा-  
 गयी हो गया ॥१२॥ फिर चार बाणा स उन्होंने श्रुतर्वा के चारों घोड़े मार  
 दिये और श्रेणुदारि की ध्वजा और उसका दक्षिण हस्त काट कर गिरा दिया  
 ॥१३॥ फिर उन्होंने श्रुतर्वा पर पाँच बाणा स प्रहार किया, परन्तु अधिक धक  
 गाने के कारण ये रथ की ध्वजा का महारा लकर लट गया ॥१४॥

मुञ्चन्त शरवर्षाणि वासुदेव ततोऽभ्ययु ।  
 क्रयकैशिकमुप्याश्व सर्वे एव महारथा ॥१५॥  
 वाणवर्षाश्च चिच्छेद तेषा युधि जनादन ।  
 जघान तेषा सरथः पतमानश्च ताञ्छ्वान् ॥१६॥  
 पुनरप्यारचतु पट्या जघान निशितं शरं ।  
 क्रुद्धानापततो वीरानद्रवत्स महाबल ॥१७॥  
 विद्रुत स्त्रल दृष्ट्वा रुक्मी क्रोधवशगत ।  
 पञ्चभिर्निशितैर्वाणैर्विव्याधोरसि केशवम् ॥१८॥  
 सारथि चास्य विव्याध सायकैर्निशितैस्त्रिभि ।  
 आजघान शरेणास्य ध्वज च नतपर्वणा ॥१९॥  
 केशवस्त्वरित दृष्ट्वा क्रुद्धो विव्याध भागणै ।  
 धनुश्चिच्छेद चाप्यस्य पतमानस्य रुक्मिण ॥२०॥  
 अथान्यद्गुरादाय रुक्मी कृष्णजिघामया ।  
 प्रादुश्चकार चान्यानि दिव्यान्यस्त्राणि वीर्यवान् ॥२१॥

तभी क्रयकैशिक के वीर बाण वर्षा करते हुए तेजी से श्रीकृष्ण की  
 ओर बढ़े, परन्तु उन्होंने उनकी उस बाण-वर्षा को अपने बाणों से विफल कर  
 दिया ॥१५-१६॥ इसी समय अपनी ओर बढ़त हुए अथान्य धीरो को श्रीकृष्ण  
 चौंसठ बाणों के प्रहार से मार डाला ॥१७॥ यह देख कर रुक्मी की सेना

भाग खड़ी हुई तब रुक्मी ने श्रीकृष्ण की छाती पर अपने बाणों से प्रहार किया ॥१८॥ फिर उसने अपने तीक्ष्ण बाणों से कृष्ण के सारथी और ध्वजा पर भी की ॥१९॥ उसका यह कार्य देख कर भगवान् ने अत्यन्त क्रोधपूर्वक धनुष साठ बाण चढ़ाये और उनके प्रहार से उसके धनुष को काट दिया ॥२०॥ तब रुक्मी ने कृष्ण को मारने का विचार करके दूसरा धनुष ग्रहण किया और तब पर अत्यन्त अष्ट बाणों का प्रयोग करने लगा ॥२१॥

अस्त्रैस्त्राणि सवार्यं तस्य कृष्णो महाबलः ।  
 पुनश्चिच्छेद तन्वाप रथिना च त्रिभिः शरैः ॥२२॥  
 स चिठन्नधन्वा विरथः खङ्गमादाय चर्म च ।  
 उत पात रथाद्वीरो गरुत्मानिव वीर्यवान् ॥२३॥  
 तस्याभिपततः खड्गं चिच्छेद युधि केशवः ।  
 नाराचैश्च त्रिभिः क्रुद्धो विभेदेनमथोरसि ॥२४॥  
 स पपात महाबाहुर्वसुधामनुनादयन् ।  
 विसृजो मूर्च्छितो राजा वज्रेणेव महासुरः ॥२५॥  
 तश्च राज्ञ शरैः सर्वान्धुनविब्याध माघवः ।  
 रुक्मिणं पतितं दृष्ट्वा व्यद्वन्त नराधिपाः ॥२६॥  
 विचेष्टमानं तं भूमौ भ्रातरं वीक्ष्य रुक्मिणी ।  
 पादयोर्न्यपतद्विष्णोर्भ्रातुर्जीवितकाक्षिणी ॥२७॥  
 तामुत्थाप्य परिष्वज्य सान्त्वयामास केशवः ।  
 अभय रुक्मिणे दत्त्वा प्रययौ स्वपुरी ततः ॥२८॥

उनके अस्त्रों को भगवान् वामुदेव ने अपने अस्त्रों से काट दिया फिर तीन बाण मार कर उसका धनुष और रथ तोड़ डाला ॥२२॥ इससे धनुष और रथ के नष्ट हो जाने पर हाथों में डाल तलवार ग्रहण करके गरुड़ के समान वेग से रथ से नूद पड़ा ॥२३॥ उसे अत्यन्त वेग से अपनी छाते देस कर उन्होंने उसकी तलवार के दो टुकड़े कर दिये और तीन बाण यक्षस्वन पर मारे ॥२४॥ जिससे यह महाबाहु रुक्मी मूर्च्छित होकर पड़ा हो गया, उसके गिरने के शब्द से पृथिवी प्रतिध्वनित हो गई ॥२५॥ फिर:

उसके पक्ष के अन्यान्य राजाओं पर भीषण बाण वर्षा की तथा रुक्मी को गिरा हुआ देखकर सभी राजा भागने लगे ॥२६॥ तब अचानक रुक्मी को युद्ध स्थल में छटपटाता हुआ देख कर रुक्मिणी व्याकुल होकर उसकी प्राण-रक्षा करने के लिये भगवान् के चरणों में गिर पड़ी ॥२७॥ तब उन्होंने रुक्मिणी को सात्त्वना देकर रुक्मी को अभयदान दिया और रुक्मिणी सहित द्वारादती की ओर चल पड़े ॥२८॥

वृष्णयोऽपि जरासंधं मङ्कत्वा तार्क्ष्यं पार्यवान् ।

प्रययुर्द्वारका हृष्टाः पुरस्कृत्य हलायुधम् ॥२६॥

प्रयाते पुण्डरीकाक्षे श्रुतर्वाङ्म्येत्य सगरे ।

रुक्मिण रथमारोप्य प्रययौ स्वा पुरी प्रति ॥२७॥

अनानीय स्वसारं तु रुक्मी मानमदान्वितः ।

हीनप्रतज्ञो नैच्छत्स प्रवेष्टुं कुटिनं पुरम् ॥२८॥

विदर्भेषु निवासाय निर्ममेज्यत्पुरं नहत् ।

तद्भोजकमिति यैव वभूव भुवि विश्रुतम् ॥ २

तत्रौजसा महानेजा दक्षिणा दिशमन्वगात् ।

भीष्मक कुण्डिने चैव राजोवास महाभुजः ॥२३॥

द्वारका चापि सप्राप्ते रामे वृष्णिबलान्विते ।

रुक्मिण्याः केशवः पाणिं जग्राह विधिवत्प्रभुः ॥२४॥

ततः सह तया रेमे त्रियया प्रीयमाणया ।

सीतयैव पुरा रामः पीलोम्यैव पुरन्दरः ॥२५॥

इधर वीर यादवों ने जरासंध आदि राजाओं को पराजित किया और प्रसन्न मन से बलरामजी के सहित द्वारका की चल पड़े ॥२६॥ जब नगवान् चले गये तब श्रुतर्वा रण स्थल में गया और रुक्मी को रथ में लिटा कर अपने नगर की लौटा ले गया ॥२७॥ रुक्मी ने युद्ध में जाते समय रुक्मिणी के बिना कुण्डिनपुर में न लौटने की ओ प्रतिज्ञा की थी, उसके विफल होने के कारण उसने कुण्डिनपुर लौटने की इच्छा नहीं की ॥२८॥ तब उसी समय विदर्भ में एक लय सुन्दर नगर भोजकट के नाम से बसाया गया ॥२९॥ अत्यन्त तेजस्वी

रुक्मी ने उसी भोजाष्ट के दक्षिण भाग में निवास किया और उसके पिता भीष्म कुण्डिनपुर में ही रहते रहे ॥३३॥ उपर जब यादवों के सहित बनराम द्वारावती पट्टंष गये, तब श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी के साथ विधिपूर्वक विवाह कि ॥३४॥ इसके पश्चात् वे आनन्दपूर्वक रुक्मिणी के साथ रहते हुए राम-सीता व इन्द्र-सखी के समान बिहार करने लगे ॥३५॥

सा हि तस्याभवग्ग्येष्टा पत्नी कृष्णस्य भामिनी ।  
 पतिप्रता गुणोपेता रूपशीलगुणान्विता ॥३६॥  
 तस्यामुन्मादयामास पुत्रान्दज महारथान् ।  
 चारुदेष्ण मुदेष्ण च प्रद्युम्नं च महाउलम् ॥३७॥  
 मुपेणं चाम्गुप्न च चारुशार्दुं च वीर्यवान् ।  
 चारुविन्द मुच रु च भद्रचारुं तथैव च । ३८॥  
 पाण्डु च वनिना श्रेष्ठ मुना चारुमती तथा ।  
 धर्मायं कुगनास्ते नु कृतास्त्या मृदुदमंशः ॥३९॥

पराव्यवस्थामरणाः कामैः सर्वे मुखोचिताः ।  
जज्ञिरे तामु पुत्राश्च तस्य वीराः सहस्रशः ॥४४॥  
शास्त्रार्थकुशलाः सर्वे बलवन्तो महारथाः ।  
यज्वानः पुण्यकर्माणो महामागा महाबलाः ॥४५॥

रुक्मिणी जी के अतिरिक्त उन्होंने अन्य सात सर्व गृण सम्पन्न कन्याओं विवाह किया था, जो मूर्यपुत्री कालिन्दी, राजाधिदेव पुत्री मिनविन्दा, योग्या नरेश तन्मज्जित की कन्या सत्या, जाम्बवान् पुत्री जाम्बवती, केकय की पुत्री रोहिणी, मद्रराज की कन्या लक्ष्मणा, सत्राजित् की कन्या सत्य-  
मा और राजा द्रौप्य की पुत्री तन्वी थीं । इनके अतिरिक्त सोलह हजार अन्यान्य  
याओं के साथ भी उन्होंने विवाह किया और सब के साथ विहार-रत रहते  
; द्वारका में निवास करते थे ॥४१-४३॥ उनकी सब पत्नियाँ बहुमूल्य वस्त्रा-  
ण्यो और इच्छित भोगो को प्राप्त करती हुई सदा तृप्त रहती थी, उनके गर्भ  
हजारो पुत्रो की उत्पत्ति हुई थी, जो सर्व शास्त्रज्ञ, बली, महारथी, याज्ञिक,  
। कर्मों के अनुष्ठाता तथा अमामाग्य भाग्य से सम्पन्न थे ॥४४-४५॥

## ॥ रुक्मी-वध वृत्तान्त ॥

ततः काले व्यतीते तु रुक्मी महति वीर्यवान् ।  
दुहितुः कारयामास स्वयंवरमरिन्दम ॥१॥  
तत्राहूता पि राजानो राजपुत्राश्च रुक्मिणा ।  
समाजग्मुर्महावीर्या नानादिग्म्यः श्रियाऽन्विताः ॥२॥  
तत्राजगाम प्रद्युम्नः कुमारैरपरैर्वृतः ।  
सा हि त चकमे कन्या स च ता शुभलोचनाम् ॥३॥  
शुभाङ्गी नाम वैदर्भी कान्तिद्युतिसमन्विता ।  
पृथिव्यामभवत्स्याता रुक्मिणस्तनया तदा ॥४॥  
उपविष्टेषु सर्वेषु पार्थिवेषु महात्मसु ।  
वैदर्भी वरयामास प्रद्युम्नमरिसूदनम् ॥५॥

स हि सर्वास्त्रकुशल. सिंहसंहननो युवा ।  
 रूपेणाप्रतिमो लोके केशवस्यात्मजोऽभवत् ॥६  
 वयोरूपगणोपेता राजपुत्री च साऽभवत् ।  
 नारायणी चन्द्रसेना जातकामा च त प्रति ॥७

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! कुछ कालोपरान्त शत्रु का व  
 करने में समर्थ स्वामी ने अपनी कन्या का स्वयंवर किया, जिसमें विविध देशों  
 महाराजों तथा राजकुमारों को आमन्त्रित किया गया, जो कि अपने-अपने सा  
 शृङ्गार सहित उस विदर्भ नगर में एकत्रित हुए ॥१-२॥ अन्यान्य कुमारों  
 साथ लेकर श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न भी उसमें सम्मिलित होने के लिये वहाँ  
 स्वामी की वह कन्या अत्यन्त रूप-लावण्यमयी तथा शुभाङ्गी नाम से प्रसिद्ध थी  
 प्रद्युम्न का शुभाङ्गी पर और शुभाङ्गी का मन प्रद्युम्न पर आसक्त था ॥३॥  
 जिस समय स्वयंवर सभा में सभी राजा और राजकुमार उपस्थित थे,  
 शुभाङ्गी ने राजकुमार प्रद्युम्न के कंठ में धरमाला डाल दी ॥४॥ श्रीकृष्ण  
 प्रद्युम्न जिस प्रकार सर्वपाशविद् तथा सिंह के समान सुदृढ अंग वाले थे,  
 प्रकार राजकुमारी शुभाङ्गी भी अत्यन्त सौन्दर्यमयी तथा रूप, गुण और शक्ति  
 उनके समान थी । उस चन्द्रसेना के समान सुन्दरी शुभाङ्गी का प्रद्युम्न पर  
 अनुराग था ॥६ ७॥

वृत्ते स्वयंवरे जग्मू राजान. स्वपुराणि ते ।  
 उपादाय च वैदर्भी प्रद्युम्नो द्वारका ययौ ॥८  
 रेभे सह तथा वीरो दमयन्त्या नलो यथा ।  
 स तस्या जनयामास देवगर्भोपम मुनम् ॥९  
 अनिरुद्धमिति ख्यात कर्मणाऽप्रतिम भुवि ।  
 पञ्चवेदे च वेदे च नीतिशास्त्रे च पारगम् ॥१०  
 अमवत्यं यदा राजन्ननिरुद्धो वयोऽन्वित. ।  
 तदाऽस्य खिमण. पौत्री श्रीमती स्वमसन्निभाम् ।  
 पत्यव्यं वरयामास नाम्ना दमयतीति सा ॥११



अनिरुद्धं गुणैर्दातुं कृतबुद्धिर्नृपस्ततः ।

प्रीत्या हि रौक्मिण्येयस्य रुक्मिण्याश्चाप्युपग्रहात् ॥१२॥

विस्पर्द्धन्नपि कृष्णेन वैरं त्यज्य महायशः ।

वदामीत्यब्रवीद्राजा प्रीतिमाञ्जनमेव ॥१३॥

केशवः सह रुक्मिण्या पुनः सकपणेन च ।

अन्यैश्च वृष्णिभिः सार्द्धं विदमन्सवल्लो ययौ ॥१४॥

जब स्वयंवर का कर्म पूर्ण हो गया, तब सब राजा और राजकुमार अपने-  
पने धरो को गये तथा प्रद्युम्न भी रुक्मी-नुता शुभागी की साथ लेकर द्वारका  
हुँचे ॥१८॥ वहाँ नल-दमयंती के विहार के समान प्रद्युम्न और शुभागी विहार  
रत्ने लगे ॥१९॥ कुछ काल व्यतीत होने पर शुभागी के गर्भ से अत्यन्त सुन्दर  
और पराक्रमी अनिरुद्ध नामक एक पुत्र हुआ, वह वृद्धि का प्राप्त होता हुआ  
नुविद्या, वेद विद्या और नीति शास्त्र का भी उत्कृष्ट विद्वान् हो गया ॥२०॥  
श्री राजा रुक्मी के एक अत्यन्त सुन्दरी पौत्री रुक्मवती हुई, जब वह बचस्क  
हो गई, तब श्रीकृष्ण ने अपने पौत्र अनिरुद्ध के लिये उस बच्ची को रुक्मी  
के माँगा, परन्तु रुक्मी का उनके प्रति वैर-भाव होने के कारण वह सहमत न था ।  
श्री भी प्रद्युम्न के सयोग और रुक्मिणी के आग्रह से तथा अनिरुद्ध को गुणवान्  
देख कर रुक्मी अपनी पौत्री देने को तैयार हो गया ॥२१-२३॥ तब श्रीकृष्ण  
अपने भ्राता बलराम, अपने पुत्रों और वृष्णियों तथा सेनाओं के सहित रुक्मिणी  
को भी साथ लेकर विदर्भ नगर में जा पहुँचे ॥२४॥

सयुक्ता ज्ञातयश्चैव रुक्मिणः सुहृदश्च ये ।

आहूता रुक्मिणा तेषां तत्राजग्मुर्नराधिपाः ॥२५॥

शुभे तिथौ महाराज नक्षत्रे चाभिपूजिते ।

विवाहः सोऽनिरुद्धस्य बभूव परमोत्सवः ॥२६॥

पाणो गृहीते वैदम्यास्त्वनिरुद्धेन तत्र वै ।

वैदम्यादवाना च बभूव परमोत्सवः ॥२७॥

रेमिरे वृष्णयस्तत्र पूज्यमाना अयामराः ।

अथाश्मकानामधिपो वेणुदारिरुदारधीः ॥२८॥

अक्षः श्रुतर्वा चाणूरः कायश्चैवांशुमानपि ।  
 जयत्सेन. कलिङ्गानामधिपश्च महाबलः ॥१६  
 पाण्ड्याश्च नृपति. श्रीमानृषीकाधिपतिस्तथा ।  
 एते समन्वय राजानो दाक्षिणात्या महर्द्धयः ॥२७  
 अभिगम्यान्नुवन्सर्वे रुक्मिणं रहसि प्रभुम् ।  
 भवानक्षेपु कुशलो वय चापि रिरसवः ।  
 प्रियद्युतश्च रामोऽसावक्षेज्वनिपुणोऽपि च ॥२१

इधर रुक्मी के निमंत्रण पर उसके जाति-बधु तथा अग्न्यान्व राजागण भी उस उत्सव में सम्मिलित होने के लिये वहाँ आये ॥१५॥ फिर शुभ तिथि, नक्षत्र एवं लग्न में अत्यन्त आनन्दपूर्वक रुक्मी की पौत्री और अनिरुद्ध का विवाह-संस्कार सम्पन्न हो गया ॥१६॥ इस प्रकार अनिरुद्ध और रुक्मवती का विवाह हो जाने पर विदर्भ वासियो और यादवों को अत्यन्त हर्ष हुआ ॥१७॥ यादवगण कन्यापक्ष की ओर से देवताओं के समान सत्कारित एवं पूजित होकर अत्यन्त आनन्द में भर गये । इसी अवसर पर राज वेणुदार, श्रुतर्वा, चाणूर, अंशुमान, जयत्सेन, पाण्ड्य और ऋषीकाधिपति आदि सब राजाओं ने परस्पर में मन्त्रणा करके रुक्मी के पास जाकर कहा—हे राजन् ! आप द्यूत-विद्या-विशारद हैं, हम द्यूत खेलना चाहते हैं, बलराम जी भी इसे बहुत पसंद करते हैं, परन्तु वे द्यूत-क्रीड़ा में निपुण नहीं हैं ॥१८-२१॥

ते भवन्त पुरस्कृत्य जेतुमिच्छाम त वयम् ।  
 इत्युक्तो रोचयामास रुक्मी द्यूतं महारथः ॥२२  
 ते शुभां काञ्चनस्तम्भा कुसुमैर्भूषिताजिराम् ।  
 सभामाविविशुद्घृष्टाः सिकता चन्दनवारिणा ॥२३  
 ता प्रविश्य ततः सर्वे शुभ्रस्रगनुलेपनाः ।  
 सौवर्णेष्वासनेष्वासाचकिरे विजिगीषवः ॥२४  
 आहुतो बलदेवस्तु कितवंपक्षकोविदः ।  
 बाढमित्यत्रवीदधृष्ट सह दीव्याम पण्यताम् ॥२५

निकृत्वा विजिगीषन्तो दाक्षिणात्या नराधिपाः ।

मणिमुक्ताः सुवर्णं च तयानिन्युः सहस्रशः ॥२६॥

ततः प्रावर्तन्त द्यूतं तेषां रतिविनाशनम् ।

कलहस्यास्पदं घोरं दुर्मतीनां क्षयावहम् ॥२७॥

निष्काणां च सहस्राणि सुवर्णस्य दशादितः ।

रुक्मिण्या सह सपाते वलदेवो ग्लहं ददौ ॥२८॥

इसीलिये हम उन्हें द्यूत-क्रीड़ा में आपकी सहायता से जीतना चाहते हैं । उस राजाओं की बात सुन कर महारथी स्वामी ने जुआ खेलना स्वीकार कर लिया ॥२९॥ तब वे सब राजा शुभ्र मालाएँ और चन्दनादि से अलङ्कृत होकर स्वर्णमय स्तम्भों से विभूषित, पुष्पमालाओं से सुसज्जित और चन्दन के जल से सिंचित सभामण्डप में गये और विजय की इच्छा करत हुए प्रसन्नचित्त से स्वर्णमय आसनोपर जाकर बैठ गये ॥२९-३०॥ इसके पश्चात् बलराम जी को द्यूत-क्रीड़ा के लिये आमन्त्रित किया गया । तब बलराम ने उस सभा में पहुँच कर कहा कि मैं आपके साथ द्यूत-क्रीड़ा करने के लिये तैयार हूँ ॥३१॥ स्वामीपक्ष के दाक्षिणात्या राजाओं ने बलराम जी को परास्त करने के विचार से सहस्र सख्यक मणि, मुक्ता और स्वर्ण-मुद्रायें मँगवा कर वहाँ रख ली ॥३२॥ इसके पश्चात् प्रीति-मग्न का लाल, कलह का भयन और मूर्खों का सर्वस्व विनाशक द्यूत कर्म प्रारम्भ हुआ ॥३३॥ सर्वप्रथम स्वामी और बलराम में क्रीड़ा प्रारम्भ हुई, उस समय बलराम जी सहस्र निष्क और सहस्र स्वर्ण-मुद्राएँ दाँव पर लगाई ॥३४॥

त जिगाय ततो रुक्मी यतमानं महाबलम् ।

तावदेवापरं भूयो वलदेव जिगाय सः ॥३५॥

असकृज्जीयमानस्तु रुक्मिण्या केशवाग्रजः ।

सुवर्णकोटीर्जग्राह ग्लहं तस्य महात्मनः ॥३६॥

जितमित्येव हृष्टोऽथ तमाहूतिरभाषत ।

श्लाघ्यमानश्च चिक्षेप प्रहसन्मुसलायुधम् ॥३७॥

अविद्यो दुर्वनः श्रीमान्हिरण्यमग्निं मया ।

अजेयो वलदेवोऽयमक्षयूते पराजितः ॥३८॥

खङ्गमुद्यम्य तान्सर्वास्त्रासयामास पार्थिवान् ।  
 स्तम्भ समाया सौवर्णमुत्पाटय वलिना वरः ॥४८॥  
 गजेन्द्र इव त स्तम्भ कर्पन्सरुर्पणस्ततः ।  
 निर्जंगाम सभाद्वारात्त्रासयामास कंशिकान् ॥४९॥  
 रुक्मिण निवृत्तिप्रज्ञ स हत्वा यादवपुंसम् ।  
 चित्रास्य विद्विष सर्वास्तिह क्षुद्रमृगानिव ॥५०॥  
 जंगाम शिविर राम स्वयमेव जनवृत्तम् ।  
 न्यवेदयत्स कृष्णाय तत्र सर्वं यथाऽभवत् ॥५१॥

आकाशवाणी कहती रही—यद्यपि यह चुप हैं, फिर भी जीत इनकी हुई है, इसलिये दाँव की सभी स्वर्ण मुद्राओं पर इनका अधिकार है । सभी उपस्थित जन जानते हैं कि जीत इनकी ही हुई है, परन्तु सत्य बात कोई नहीं कहता, यह कितना अन्याय है ॥४४॥ आकाशवाणी की यथार्थ बातें सुन कर बलराम जी क्रोध से भभक उठे और उन्होंने एक स्वर्णमय तथा अत्यन्त भारी अष्टपाश उठा कर उस क्रूर, कपटी रुक्मी को मार डाला ॥४५-४६॥ और उसी क्रोधावेश में उन्होंने कलिंगराज जयत्सेन के दाँत तोड़ दिये तथा सिंह के समान भयकर गर्जना की ॥४७॥ और हाथ में खड्ग लेकर उन्होंने सब उपस्थित राजाओं को भयभीत कर सभा के स्थण स्तम्भ को उखाड़ कर मत्त हाथी के समान उसे खींचने लगे तब कंशिक देशीय धीरो में हाहाकार मच गया ॥ ४८-४९ ॥ हे राजा ! जैसे सिंह से क्षुद्र मृग भयभीत हो जाते हैं, वैसे ही बलराम जी द्वारा रुक्मी का वध होने से राजागण भयभीत हो गये और बलराम जी अपने शिविर को लौट आये तथा उन्होंने श्रीकृष्ण को सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना दिया ॥५०-५१॥

नोवाच स तदा कृष्ण किञ्चिद्राम महाद्युति ।  
 निगृह्य च तदात्मानं कृच्छ्रादथूष्यवर्तयत् ॥५२॥  
 न हतो वामुदेवेन य पूर्वं परवीरहा ।  
 ज्येष्ठी ग्राताऽय रुक्मिण्या रुक्मिणीस्नेहकारणात् ॥५३॥  
 स रामकरमुक्तेन निहतो द्यूतमण्डले ।  
 अष्टापदेन हलवान्राजा वज्रधरोपम ॥५४॥

तस्मिन्हृते महावीर्ये नृपती भीष्मकात्मजे ।  
द्रुमभागंवतुल्ये वै द्रुमभागंवशिक्षिते ॥५५॥  
कृत्वा च युद्धकुशले नित्ययाजिनिपातिते ।  
वृष्णयश्चान्धकाश्चैव सर्वे विमनसोऽभवन् ॥५६॥  
रुक्मिणी च महामागा विलपन्त्यार्तया गिरा ।  
विलपन्ती तथा दृष्ट्वा सान्त्वयामास केशवः ॥५७॥  
एतत्ते सर्वमाख्यात रुक्मिणो निघ्न यथा ।  
वैरस्य च समुत्थानं वृष्णिभिर्भरतपंथ ॥५८॥  
वृष्णयोऽपि महाराज धनान्यादाय सर्वश ।  
रामकृष्णौ समाश्रित्य ययुर्दारवती प्रति ॥५९॥

यह सुन कर भगवान् वृष्ण चुप ही रह आये तथा अत्यन्त कठिन्ता ने अपने आँखों को रोक सके ॥५२॥ वे सोचने लगे कि जिस रुक्मी को मैंने रुक्मिणी के परम स्नेह वश नहीं मारा, उसे छूत-झींझ के बख्तर पर बलराम जी ने अष्टपाद प्रहार द्वारा मार डाला ॥५३-५४॥ हे राजन् ! उस समय, उस अत्यन्त पराक्रमी, युद्ध विशारद, नित्य यज्ञशाली भीष्मक पुत्र रुक्मी का बच होना मे वृष्णियों और अश्वको को अत्यन्त दुःख हुआ ॥५५-५६॥ वैशम्पायन जी बोले— हे राजन् रुक्मी की मृत्यु का समाचार सुन कर महामायावती रुक्मिणी भार्तावर म रोने लगी, उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण ने सान्त्वना देकर शान्त किया ॥५७॥ इस प्रकार यह रुक्मी और यादवों के बैर तथा रुक्मी के मरण का वृत्तान्त मैंने तुम्हें सुनाया है ॥५८॥ इसके पश्चात् वृष्ण बलराम दोनों भाई वहाँ से प्रचुर रत्न लेकर द्वापवती को चल दिए ॥५९॥

## ॥ पारिजात-हरण कथा ॥

प्रादुर्भव मुनिश्चैष्ठ माथुरे चरित शुभम् ।  
शृण्वन्निर्वाधिगच्छामि तृप्तिं कृष्णस्य धीमत ॥१॥  
द्वारकाया निवसत. कृतदारस्य पद्गुणम् ।  
चरित ब्रूहि कृष्णस्य सर्वं हि विदित तव ॥२॥

जनमेजय कृष्णस्य कृतदारस्य भारत ।  
 निबोध चरितं चित्रं तस्यैव सदृशं प्रभो ॥३॥  
 प्राप्तदारो महातेजा वासुदेव प्रतापवान् ।  
 रुक्मिण्या सहितो देव्या ययौ रैवनक नृप ॥४॥  
 उपवासो वसानं हि रुक्मिण्याः प्रतिपूजयन् ।  
 तर्पयिष्यन्स्वयं विप्राञ्जगाम मधुसूदनः ॥५॥  
 कुमाराः प्रययुस्तत्र पुत्रभ्रातर एव च ।  
 प्रेषिता वासुदेवेन नारदस्याभ्यनुज्ञया ॥६॥  
 षोडश स्त्रीसहस्राणि जग्मुरेव च धीमतः ।  
 ऋद्ध्या परमया राजन्विष्णोरेवोनुरूपया ॥७॥

जनमेजय ने कहा—हे मुनियर ! अत्यन्त मेघावी श्रीकृष्ण के ममुरा सीतावृत्तो को सुन कर ही सन्तोष नहीं है, इसलिए आप कृपया उनके विरह के पश्चात् द्वारका में हुई सीताजी को विस्तारपूर्वक मुझे सुनाइये क्योंकि मैं पूर्ण वृत्तान्त के श्रोता हूँ ॥१-२॥ वंशगायन जी ने कहा—हे राजन् ! विवाह परान्त उन्होंने जो कार्य किये, वह सब तुम्हारे प्रति कहता हूँ, श्रवण करो ॥ अत्यन्त प्रतापी श्रीकृष्ण, विवाह के पश्चात् रुक्मिणी जी को साथ लेकर रैवत पर्वत पर पधारे ॥४॥ उस समय रुक्मिणी जी अपने उपवास के परायण उपलक्ष्य में ब्राह्मणों की तृप्ति के लिये उस पर्वत पर गयी थी । नारद जी कहने से श्रीकृष्ण ने अपने भाइयों और पुत्रों को पहिले ही उस स्थान पर दिया या तथा उनकी अन्याय्य सोलह हजार रानियाँ भी वहाँ पहुँच चुकी ॥५-७॥

ततस्तत्र द्विजातीनां कामान्प्रादादधोक्षजः ।  
 अर्थिना धर्मनित्यानां वन्दितामिष्टरादिनाम् ॥८॥  
 कल्याणनामगोक्षाणां महता पुण्यकर्मणाम् ।  
 योनैः श्रोतृभ्य माद्यंश्च घृष्टानां कुरुनन्दन ॥९॥  
 तर्पयित्वा द्विजाङ्गामेरिष्टैरिष्टैः सता गतिः ।  
 ज्ञातीन्सतर्पयामास यथाहं भवतवत्सलः ॥१०॥

उपवासावसानेऽथ भगवान्स विशेपंतः ।

बहु मेने प्रिया भार्या रुक्मिणी भोष्मकात्मजाम् ॥११

वसतस्तस्य कृष्णस्य सदारस्यामितौत्रसः ।

सहासीनस्य रुक्मिण्या नारदोऽभ्याययौ मुनिः ॥१२

आगतं चाप्रमेयात्मा मुनिमिन्द्रानुजस्तदा ।

शास्त्रदृष्टेन विधिना अर्चयामास केशवः ॥१३

सोऽर्चितो वासुदेवेन मुनिरर्च्यतमः सताम् ।

पारिजाततरोः पुष्प ददौ कृष्णाय भारत ॥१४

वहाँ जाकर उन्होंने पारण के दिन थोड़ा बखोलेपन्न, विद्वान्, श्रुति-प्रधान, धर्म में रत, स्तुति परायण, लोकहित में लगे हुए, धनञ्जय नाम को उनकी इच्छा के अनुसार धन प्रदान किया, इसके पश्चात् जाति-बोधन से भले प्रकार तृप्त किया ॥८-१०॥ इस प्रकार भोष्मक सुता रुक्मिणी उपवास का पारण विधान सम्पन्न हो जाने पर श्रीकृष्ण ने अपनी राहना की ॥११॥ हे राजन् ! फिर जब श्रीकृष्ण रुक्मिणी जी के साथ सुख-सुखी जीवनयापन कर रहे थे, तब एक दिन देवर्षि नारद जी उनके पास पहुँचे ॥१२॥ भगवान् वासुदेव ने उनका विधिपूर्वक पूजन किया और उसके पश्चात् नारद जी ने भगवान् के हाथ पर पारिजात का एक पुष्प रख दिया ॥१३-१४॥

तद्वृक्षराजकुसुमं रुक्मिण्यै प्रददौ हरिः ।

पार्श्वस्था सा हि कृष्णस्य भोज्या नरवराभवत् ॥१५

प्रतिगृह्य तु तत्पुष्पं कामारणिरनिन्दिता ।

शिरस्यमलपत्राक्षी ददौ कृष्णेऽङ्गितानुगा ॥१६

त्रैलोक्यरूपसर्वस्वं नारायणमनोहरा ।

शुशुभे देवपुष्पेण द्विगुणं भोष्मकी तदा ॥१७

ता नारदस्तथोवाच मुनिर्ब्रह्मसुतस्तदा ।

तदेवोपयिकं पुष्पमेकं देवि पतिव्रते ॥१८

अलंकृतं पुष्पमेतत्समर्पितं सर्वथा ।

अत्यर्हा च मतां मे त्वमेतत्पुष्पाद्वृत्तव्रते ॥१९

कल्याणगुणसंपन्ने सततं भर्तृवत्सले ।  
 अम्लानमेतत्सतत पुष्पं भवति कामिनि ॥२०॥  
 सवत्सरपरं काल कालज्ञे गुणसमते ।  
 ईप्सितानपि गन्धाश्च ददाति वदतां वरे ॥२१॥

वह पुष्प उन्होंने रुक्मिणी जी को दे दिया, जिन्होंने उसे लेकर और  
 का सकेत प्राप्त कर अपने जूड़े में लगा लिया । उस पुष्पक के धारण करते  
 ही भगवान् वासुदेव की परम प्रियतमा भार्या रुक्मिणी जी की शोभा बहुत बढ़  
 गयी, क्योंकि वह पुष्प भी सम्पूर्ण त्रैलोक्य के सौन्दर्य का आश्रय स्वरूप था  
 ॥१५-१७॥ इसी अवसर पर देवपि नारद जी से कहा—हे ऋषिगते ! यह पुष्प  
 व आपके ही अनुरूप है, क्योंकि आपको समीपता को प्राप्त हुआ यह पुष्प  
 अब प हले से भी अधिक सुन्दर हो गया है, यह कभी भी कुम्हसायेगा नहीं तथा  
 इसकी सुगन्धि भी पूरे एक वर्ष तक यथावत् बनी रहेगी, उसमें कुछ न्यूनता नहीं  
 आवेगी ॥१८-२१॥

शीतोष्णे चेच्छिते देवि पुष्पमेतत्प्रयच्छति ।  
 स्रवत्यपि रसान्देवि मनसा काक्षितान्वरान् ॥२२॥  
 सेव्यमानं च सौभाग्य ददाति वरवर्णिनि ।  
 स्रवत्यपि तथा गन्धानीप्सितान्प्रोतिवर्द्धनान् ॥२३॥  
 यानि यानि च पुष्पाणि त्व देव्यभिलषिष्यसि ।  
 कुसुमं वृक्षराजस्य तानि तानि प्रदास्यति ॥२४॥  
 एतदेव भगाधान धर्मिष्ठे पुनरुदतया ।  
 मतिं च नाशुभेघत्ते धार्यमाण सदा शुभे ॥२५॥  
 यद्यदिच्छसि वर्णं च तत्सर्वं धारयिष्यति ।  
 स्वल्प वा यदि वा स्थूलं छन्दतस्ते भविष्यति ॥२६॥  
 अनिष्टगन्धहरणं तत्समं गन्धवर्द्धनम् ।  
 प्रदीपकर्म राक्षो च करोति कमलेक्षणे ॥२७॥  
 सतानकस्रजो माला पुष्पवस्तादि वाञ्छ्युतम् ।  
 ऽ ॥ ॥ प्रमुख्यानि चिन्तितेन प्रदास्यति ॥२८॥



बुभुक्षा वा पिपासा वा ग्लानिर्वाप्यय वा जरा ।  
देववद्वारयन्त्यास्ते स्वच्छन्देन भविष्यति ॥२८॥

जब आप इससे शीतलता चाहेंगी तब यह शीतलता प्रदान करेगा और  
आ चाहने पर उष्णता देगा तथा पूजन द्वारा सन्तुष्ट होने पर आपको इच्छित  
श्री दे सकेगा ॥२२॥ हे वरवर्णिनि ! इसकी सेवा करने से यह सौभाग्य  
प्रदान करने में समर्थ है, यह मन को प्रसन्न करने वाली सौरभ सदा देता है,  
इसके द्वारा अन्धान्य पुष्पो में जिस पुष्प की भी आपको इच्छा होगी, वही पुष्प  
प्राप्त हो जायगा ॥२३-२४॥ यह ऐश्वर्यों का ऐश्वर्य और धार्मिकों के लिये  
साक्षात् धर्म है, इनके धारण किये रहने पर मन में कभी कोई अशुभ भाव उत्पन्न  
नहीं होगा ॥२५॥ आप जब जिस वस्त्र को देखने की इच्छा करेंगी, उस समय  
वही वस्त्र आपको दिखायी पड़ेगा । इसके धारण से स्थूल या सूक्ष्म कैसा भी  
स्वरूप धारण किया जा सकता है ॥२६॥ यह सर्वदेव सुगन्धि देता रहता है, इसके  
से रहते हुए दुर्गन्ध का नाम भी नहीं रहता तथा इसके सामने दीपक की  
आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि यह रात्रि के समय सदा प्रकाशमान रहता है  
॥२७॥ यह पुष्प याचना करने पर सततिवृक्ष की माला, स्वच्छ पुष्प वस्त्र तथा  
पुष्प मञ्जर भी प्राप्त कराता है ॥२८॥ इसके साथ रहने पर भूख, प्यास, वृद्धा-  
वस्थाऔर ग्लानि से उत्पन्न कोई भी कष्ट पास नहीं फटकता, आप इसे धारण  
करके सर्वदेव स्वच्छन्द एव आनन्दित रहेगी ॥२९॥

अद्याहमवगच्छामि सर्वथा सर्वशोभने ।

आत्मा द्वितीयः कृष्णस्य भोजे त्वमिति भासिनि ॥३०॥

त्रैलोक्यरत्नसर्वस्वमददाद्यत्तवाच्युतः ।

जीवितातिशयस्तेन त्वया प्राप्तो हरिप्रिये ॥३१॥

नारदेनैवमुक्तं तु तथ्य वाक्यं नराधिपः ।

तत्तस्याः शुश्रूवुः प्रेप्याः प्रेषिताः सत्यनामया ॥३२॥

देवीनां च तथाञ्जसा पत्नीना च विशांपते ।

दृष्ट्वा ताः सविशेषं च नारदेनाभ्युदाहृतम् ॥३३॥

तच्च श्रुत्वा मुनिखिलं प्रेष्यामि. स्त्रीस्यभावतः ।

प्रकाशीकृतमेवासीद्विष्णोरन्तःपुरे तदा ॥३४

कर्णाकर्णि तनो देव्यः कौलीनमिव सघशः ।

मन्त्रयाचक्रिरे हृष्टा रुक्मिण्यतिगुणोदयम् ॥३५

अर्हेति पुत्रमातेति ज्येष्ठेति च समागताः ।

प्रायेण प्रवदन्ति स्म हृष्टा दामोदरस्त्रियः ॥३६

हे सर्वशोभने ! इस समय ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् श्रीकृष्ण की प्राणस्वरूपी आप ही हैं। आज जब उन्होंने आपसे यह तीतो लोको के रत्नस्वरूप पुष्प भेंट कर दिया है, तब इसमें सदेह नहीं है कि इन्होंने अपने प्राण से भी अधिक प्रिय वस्तु आपको प्रदान कर डाली है ॥३०-३१॥ हे राजन् ! जब देवी नारद इन बच्चों से रुक्मिणी जी की प्रशंसा कर रहे थे, उस समय वहाँ श्रीकृष्ण की रानी सत्यभामा तथा अम्बा-य रानियों की परिचारिकायें भी उपस्थित थी और उन सभी ने नारद जी के कहने पर मुनें थे, जो उन्होंने रुक्मिणी जी की प्रशंसा में कहे थे। ३२-३३॥ उन परिचारिकाओं ने अन्त पुर में पहुँच कर वह सभी बातें सब रानियों से कह दी ॥३४॥ तब सब रानियाँ रुक्मिणी जी के सौभाग्य की बात सुन कर प्रसन्नतापूर्वक बातें फारसी हुई कहने लगी—रुक्मिणी जी को भाग्यवती होना ही चाहिये। वे हम सब में बड़ी तथा पुत्रवती भी हैं, वे उस सौभाग्य प्राप्ति की उपयुक्त अधिकारिणी हैं ॥३५-३६॥

ममृषं न सपत्न्यास्तु तत्सौभाग्य गुणोदयम् ।

सत्यभामा प्रिया नित्य विष्णोरनुलतेजसः ॥३७

रूपोवनशृङ्गा स्वसौभाग्येन गर्विता ।

अभिमानयतो देवी श्रुत्वं वेप्याविश गता ॥३८

समुत्तृजन्ती वमनं सकु कुम शुचिस्मिता शुक्लतमं कमण्डलुम् ।

जग्राह रोषातुलितेन चेतसा यद्देस्तदा श्रीरिव यद्वितेन्द्रना ॥३९

दन्दायमाना ज्वलनेन यद्वंता ईर्ष्यासमुत्प्रेन गतप्रवेण ।

प्रोधान्विता प्रोद्गृहं विविक्त विवेक तारेव धनं सतोदम् ॥४०

यद्ध्वा ललाटे हिमचन्द्रशुक्लं दुक्कलपटं प्रियरोषचिह्नम् ।  
पर्यन्तदेशं सरसेन देवी विलिप्य सा लोहितचन्दनेन ॥४१॥  
संस्मृत्य संस्मृत्य शिरः सरोपं प्रकम्पमाना समुपोऽविष्टा ।  
दीर्घोपधानं शयनेऽपनीय विभूषणान्येव निवद्धवेणी ॥४२॥

परन्तु रूप जीवन से युक्त और अपने सोनान्य से गर्विता रानी सत्य-  
भामा को वह बातें अच्छी न लगीं, क्योंकि वह भगवान् वासुदेव की सब से  
अधिक प्रियतमा भार्या थीं, इसलिये उन्हें अत्यन्त अभिमान था । परिचारिकाओं  
की बातें सुन कर सत्यभामा को रुक्मिणी से ईर्ष्या होने लगी ॥३७-३८॥ जिस  
प्रकार आहुति प्राप्त करके अग्नि की प्रदीप्ति में वृद्धि हो जाती है, उसी प्रकार  
राना सत्यभामा की क्रोशग्नि भनक उठी । उन्होंने कुंडुमी रंग की साड़ी उतार  
कर श्वेत वस्त्र धारण कर लिये और जैसे तारिका जल युक्त मेघ में छिप जाती  
है, वैसे ही वह कोप-भवन में जा छिपीं, ईर्ष्याग्नि में दग्ध होने के कारण उनके  
देह की कान्ति भी म्लान हो गई ॥३९-४०॥ अपना क्रोध प्रदर्शित करने के  
लिये उन्होंने अपने मस्तक पर सफेद वस्त्र बाँध कर उस पर सात चन्दन लगा  
लिया तथा घँघ्या पर बैठ कर केश खोल कर फँटा दिये और आनूपण उतार  
कर फँक दिये । अपनी सीत के सोनान्य की याद कर-करके उनका मस्तक क्रोध  
से कम्पित होने लगा ॥४१-४२॥

उपविष्टं मुनिं ज्ञात्वा रुक्मिण्या सह केशव ।  
निश्चक्रामाप्रमेयात्मा व्यपदेशेन सर्ववित् ॥४३॥  
जगाम त्वरितश्चैव सत्यभामागृहं महत् ।  
रम्ये रैवतकोद्देशे निर्मित विश्वकर्मणा ॥४४॥  
अभिमानवतीमिष्टा प्राणैरपि गरीयसीम् ।  
जानन्सानाजितो विष्णुर्विवेश शनकैरिव ॥४५॥  
रुपितामिव सा देवी स्नेहात्संकल्पयन्निव ।  
भीततीतः स शनकैर्विवेश मधुसूदनः ॥४६॥  
सेवकं द्वारदेशे तु तिष्ठेत्यक्त्वा विवेश ह ।  
नारदस्योपचारार्थं प्रद्युम्नं विनियुज्य सः ॥४७॥

स ददर्श प्रिया दूरात्क्रोधागारगता तदा ।  
 प्रेष्यामिव स्थिता कोपान्नि श्वसन्ती मुहुर्मुहुः ॥४८॥  
 करजाग्रावलीढा तु पङ्कज मुखपङ्कजे ।  
 सश्लेषयित्वा नि श्वस्य विहसन्ती पुनः पुनः ॥४९॥

वैशम्पायन जी ने कहा— हे राजन् ! जब देवर्षि नारद और वसिष्ठा जी के मध्य वार्तालाप हो रहा था तब वहाँ की सेवा का भार प्रद्युम्न पर छोड़ कर भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ से चल दिये । फिर उन्होंने सत्राजित-पुत्री सत्यभामा के क्रोध का समाचार सुना और तुरन्त ही विश्वकर्मा रचित अत्यन्त रमणीय सत्यभामा के भवन में जा पहुँचे ॥४३-४४॥ सारथी को द्वार पर खड़े रहने का आदेश देकर अपनी प्रियतमा सत्यभामा के क्रोध की बात को स्मरण करते हुए सद्यः भाव से वह उनके भवन में घुसे । वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि परिचारि जाओ से घिरी हुई सत्यभामा कोप भवन में स्थित हुई दीर्घ द्वासौ ले रही हैं । कभी कभी अपने नाखूनों द्वारा नीचे गये कमल पत्र को अपने मुखारविन्द पर धीरे धीरे घुमाती और कभी-कभी विक्षिप्त के समान ठठा कर हनती हैं ॥४५-४६॥

॥ भगवान् का सत्यभामा को आश्वासन ॥

नारायण सत्यभामा पुनरेवैव भारत ।  
 प्रोवाच प्रणयात्कुट्टामनिमानवती सतीम् ॥१॥  
 दहतीव ममाङ्गानि शोक कमललोचने ।  
 किमु तत्कारणं येन त्वमेवमतिविभ्रवा । २  
 शापिताऽसि मम प्राणैराचक्ष्वानत्ययो यदि ।  
 श्रातव्यं यदि भवतेन भर्ता सर्वाङ्गशाभने ॥३॥  
 ततः प्रोवाच भर्तारं सत्या सत्यव्रते स्थितम् ।  
 याप्यगदगदया याचा तयंवाधोमुग्रो स्थिता ॥४॥  
 त्वयैव स्थापितं पूर्वं सौभाग्यं मम मानद ।  
 जगद्व्यमलपत्रात् यत्प्रातः रेयिनाशन ॥५॥

शिरो वहामि चेष्टत्वात्तवाहं देव गर्विता ।

सर्वंसीमन्तिनीमध्ये स्पृहणीयाऽस्मि सर्वथा ॥६॥

वंशम्पायन जी ने कहा—हे रात्रन् ! उस प्रणय-कोप से कुपित हुई मान-  
तो सत्यभामा से भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा ॥१॥ भगवान् बोले—हे कमललोचने !  
तुम्हारे दुःख को देख कर मेरा बेह दग्ध हो रहा है, यदि तुम्हारे कोप की बात  
मेरे सुनने के योग्य हो और तुम्हें उसके कहने में कोई बाधा न हो तो तुम्हें मेरे  
प्राण की शपथ है, उसे मुझे अवश्य बताओ ॥१-३॥ यह सुन कर पूर्ववत् मुख  
को नीचा किये और अश्रु बहाते हुए सत्यभामा ने कहा—आपने स्वयं ही अप  
मुख से मेरे सौभाग्य को श्रेष्ठ बताया था, इसीलिये सब सभार मुझे परम  
सौभाग्यवती मानता है ॥४-५॥ मैं आपकी सर्वाधिक प्रियतमा हूँ, यही सोच कर  
पने सौभाग्य-गर्व का भार पस्तक पर बहल कर रही हूँ और इसीलिये मेरा  
व्यक्तिक आदर होता है ॥६॥

साऽहमद्यावहास्यामि सपत्नीनां जनस्य च ।

इति प्रेष्याभिराख्यातं श्रुत्वा तथ्य ततस्ततः ॥७॥

यत्पारिजातकुसुम दत्तवान्नारदस्तव ।

तत्किलेष्टजने दत्त त्वयाऽहं परिवर्जिता ॥८॥

रत्नातिशयदाने नतस्यामभ्यधिकः किल ।

स्नेहश्च बहुमानश्च प्रकाश गर्मतस्त्वया ॥९॥

तामस्तोपीत्समक्षं ते प्रिया स हिल नारदः ।

तमश्रीपीश्च हृष्टस्त्व प्रियायाः सस्तव किल ॥१०॥

स्तोतव्यो यदि तावत्स नारदेन तवाग्रतः ।

दुर्भगोऽयं जनस्तत्र किमर्थमनुशब्दितः ॥११॥

प्रणयस्य रस दत्त्वा पश्चात्तापः प्रभो यदि ।

अनुज्ञां मे प्रयच्छस्य तपः कर्तुं प्रसीद मे ॥१२॥

स्वप्नेनापि न दृष्ट्वाऽहं श्रद्धया पुष्करेक्षण ।

यदन्यदेव निर्वृत्तमश्रीप पश्यतस्तव ॥१३॥

कामं कामोऽस्तु तस्यैव मुनेरतुलतेजसः ।

अत्र मन्युस्तु मे देव सानिध्यं तव तत्त यत् ॥१४

परन्तु आज मैं अपनी अन्यान्य सौतो और जन-साधारण के लिये उपहास के योग्य बन गयी हूँ । मुझे दासियों से ज्ञात हुआ है कि नारद जी ने आपको पारिजात का एक पुष्प दिया था, वह पुष्प रत्न आपने मुझे त्याग कर अपनी प्रिय भार्या रुक्मिणी को प्रदान कर दिया, इससे मैं समझती हूँ कि आपका यत्न अथवा स्नेह अधिक से अधिक रुक्मिणी पर ही है ॥७-६॥ देवर्षि नारद जी ने रुक्मिणी की प्रशंसा आपके ही सामने की और आप उसे प्रसन्न हो-हो कर सुनते रहे, इस वृत्तान्त से बड़ कर और कौन-सी बात मेरे लिये दुर्भाग्य सूचक हो सकती है ॥१०-११॥ पहिले प्रणय-रस से अभिषिक्त करना और फिर सन्तप्त करना ही यदि आप ठीक समझते हैं तो आप अब मुझे तप करने की आज्ञा दीजिये ॥१२॥ मैं तो स्वप्न मे भी कभी अपने से अधिक किसी अन्य को आपकी प्रेमपात्री नहीं समझती थी, नारद जी ने ही रुक्मिणी की सराहना की होती तो उससे मुझे शोक नहीं होता, परन्तु आपके उपस्थित रहते हुए ऐसा होने से मुझे अत्यन्त दुःख होता है ॥१३-१४॥

सान्नाजिति प्रिया नान्या त्वत्तो मेऽस्तीति विद्धि माम् ।

यदवोच कः तद्यातमथ वा कः स्मरिष्यति ॥१५

यदब्राक्षीद्वि मा श्वश्रूवंहुमानेन नन्दिनी ।

अवज्ञाता त्वया राज्ञी नूनं दोर्भाग्यकशिताम् ॥१६

किं नु गूटेन मे प्रेम्णा मुस्निग्धेनावि मानद ।

यत्समाना जनेर्देवो मा न पश्यति नित्यदा ॥१७

नाह त्वा कितव धूर्तमज्ञासिपमरिदम ।

अद्य ज्ञातोऽसि तत्पक्षवाङ्मात्रमधुरः शठः ॥१८

स्मरवर्णैङ्गिताकारं निगूढो देव यत्नतः ।

चोर ज्ञातोऽसि तत्पक्षवाङ्मात्रमधुरः शठः ॥१९

एवमीर्ष्यावशं प्राप्ता देवी साक्षाजिती हरिः ।

अनिमानवती देवः सान्त्वय पूर्वमयाव्रवीत् ॥२०

मेव पश्य त्वासाक्षि प्राणेश्वरि वद प्रिये ।

किमत्र बहुनोक्तेन त्वदीयमवगच्छ माम् ॥२१॥

आप तो बता करतें थे कि हे सत्राजित सुते ! विषय में तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई भी मेरे लिये प्रिय नहीं है । आपकी वह बातें अब कहाँ हैं ? अथवा जब मेरी मृत्यु हो जायगी, तब उन बातों की आपको कौन याद करायेगा ? ॥१५॥ मेरी उास मुझे कितने स्नेह-भाव से देखती थीं, अथ आपके द्वारा सम्मान प्राप्त न होने पर क्या वह मुझे उसी प्रकार स्नेह से देखेंगी ॥१६॥ जब आपने मुझे सामान्य व्यक्ति के भी तुल्य नहीं माना है, तो फिर मुझ से मधुर बातें करने और मिथ्या प्रेम प्रदर्शन करने से क्या लाभ है ? ॥१७॥ मैं आज तक आपको ऐसा कपटी और धूर्त नहीं समझती थी, परन्तु अब मुझे ज्ञात हो गया है कि आप असामान्य जनवचक तथा दक्षिणो का पक्ष लेने वाले हैं ॥१८॥ आपको धूर, आकार अथवा भाव-भगिमा आदि के द्वारा नहीं जाना जा सकता, परन्तु आज तो आप प्रकारान्तर से चोर, शठ और वाणी-मात्र से मधुर दिखाई दे रहे हैं ॥१९॥ तब सत्यनामा को अत्यन्त ईर्ष्यापरिचय और अभिमानिनी देख भगवान् ने उन्हें सागरवना देते हुए कहा—हे प्रिये ! हे पद्मपत्र जैसे नेत्र वाली प्राणेश्वरी ! अपने मुख से ऐमा मत कहो, तुम मेरी सर्वस्व हो और मैं सब प्रकार से तुम्हारा ही हूँ ॥२०-२१॥

तत्पारिजातकुमुमं तस्या देवि ममाग्रतः ।

नारदो मरिप्रय कुर्वन्मुनिरविलष्टकर्मकृत् ॥२२॥

दाक्षिण्यादानुरोधाच्च दत्तवान्नात्र संशयः ।

प्रसीदेकापराधं मे मर्पयस्व श्रुचिस्मिते ॥२३॥

पारिजातकपुष्पाणि यदीच्छस्यतिकोपने ।

तदा दातास्मि सुश्रोणि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥२४॥

स्वर्गास्पदादानयित्वा पारिजातं द्रुमेश्वरम् ।

गृहे ते स्थापयिष्यामि यावत्कालं त्वमिच्छसि ॥२५॥

एवमुक्ता तु हरिणा प्रोवाच हरिवल्लभा ।

यद्येव स द्रुमः शक्यस्त्वहानयितुमच्युत ॥२६॥

मन्युरेव प्रसृष्टो हि भवेद्बहुगुणं मम ।  
सीमन्तिनीनां सर्वासामधिका स्यामधोक्षज ॥२७॥  
तथाऽस्तु प्रथमः कल्प इति तां मधुसूदनः ।  
प्रोवाचाप्रतिमो देवो जगतः प्रभवाप्ययः ॥२८॥  
तथेत्युक्तेति कृष्णेन तुतोष समितिजयः ।  
सत्यभामा सतामिष्टा कंसनाशनवल्लभा ॥२९॥

नारद जी ने रुक्मिणी को पारिजात पुष्प प्रदान किया है, उसमें उनका उद्देश्य मेरा प्रिय करना मात्र था । हे मुद्रासिनी ! यह मेरा प्रथम अपराध है, इसे क्षमा कर देना चाहिये २२-२३॥ यदि तुम भी पारिजात पुष्प की इच्छा करती हो तो मैं तुम से यह सत्य ही कहता हूँ कि मैं तुम्हें वह पुष्प अवश्य ही लाकर दूँगा ॥२४॥ स्वर्ग में स्थित उस पारिजात वृक्ष को ही मैं ले आऊँगा और तुम्हारे भवन में ही उसे स्थापित कर दूँगा, फिर जब तक तुम चाहो, तब तब उसे अपने ही यहाँ रखना ॥२५॥ श्रीकृष्ण की बात से आश्चस्त होती हुई सत्यभामा ने कहा—हे प्रभो ! यदि आप पारिजात को ही यहाँ ला देंगे तो फिर मेरा धोभ ही क्यों रहेगा ? इससे हमारी कामना ही पूर्ण होगी तथा मैं सभी नारियो में सर्वश्रेष्ठ कही जाकर प्रसंसा को प्राप्त हूँगी ॥२६-२७॥ हे राजन् ! ससार की मृष्टि और प्रलय के मूल कारण भगवान् कृष्ण ने 'तथागु' कह कर सत्यभामा को मतुष्ट किया, तब वह अत्यन्त प्रसन्न हो गई ॥२८-२९॥

ततः स्नातो जगन्नाथः सर्वेशः सर्वभावनः ।  
चागरावर्यकं सर्वं सर्वकामप्रदः सताम् ॥३०॥  
दध्यौ च नारदं देवः स्नातो देवमुनिर्नृप ।  
अभ्याजयाम स्नानान्ते मुनिश्चैवो महोदधौ ॥३१॥  
तमागत नरपते सतां गतिरधोक्षजः ।  
सत्यया सह धर्मात्मा यथाविधि अपूजयत् ॥३२॥  
पादौ प्रक्षालयांचक्रे मुनेः सात्राजिती स्वयम् ।  
जलं देवः स्वयं नीष्णो भृङ्गारेण ददौ तदा ॥३३॥



जयोपकल्पयामास मुन्वासीनाय केशवः ।

परमान्न स मुनये प्रयतात्मा जगद्गुरुः ॥३४

तल्लोककृर्ना सत्कृत्य दत्त मुनिरुदारधीः ।

बुभुजे वदता श्रेष्ठः श्रद्धया परया युतः ॥३५

इसके पश्चात् सर्वात्मा भगवान् बामुदेव न स्नानादि कर्मों से निवृत्त होकर देवपि नारद का ध्यान किया और अभी वह जल में स्नान करके भगवान् के समक्ष आ खड़े हुए ॥३०-३१॥ उनके जाते ही थीष्टप्पु और सत्यभामा ने उनका यथाविधि स्वागत और पूजन किया ॥३२॥ भगवान् सारी लेकर जल डालने लगे और सत्यभामा उनके पाँव धोने लगी ॥ ३३ ॥ जब नारद जी मुखपूर्वक श्रेष्ठ आसन पर बैठ गये तब भगवान् ने उन्हें खीर का भोजन अपने हाथों से परोसा ॥३४॥ भगवान् द्वारा हम प्रकार सत्कार की प्राप्ति होत हुए वाग्मिबर एव तपोवन नारद जी अत्यन्त तृप्तिपूर्वक भोजन करने लगे ॥३५॥

उपस्पृश्य ततस्तृप्तः प्रददौ चाधिपः प्रभो ।

ताश्च प्रीतेन मनसा प्रतिजग्राह केशवः ॥३६

ततः सानाजितो देवी प्रणता नारदोऽब्रवीत् ।

प्रसार्य दक्षिणं हस्तं सजल जलजेक्षणाम् ॥३७

ययेदानी तथैव त्वं भव देवि पतिव्रता ।

सविशेषं च सुभगा भव मत्तपसो वलात् ॥३८

इत्युक्ता मुनिमुन्येन सत्यभामा हरिप्रिया ।

उत्तस्थी महता युक्ता हर्षेण तु नराधिप ॥३९

स कृष्णोऽप्यभ्यनुज्ञा तु लब्ध्वा मुनिवरात्तदा ।

बुभुजे विधस्य धीमानप्रमेयपराक्रम ॥४०

ततस्तत्वावश्यकं कृत्वा सत्यभामाऽपि भारत ।

अनुज्ञया तदा भर्तुं विवेशान्तर्गृह मुदा ॥४१

ततो विनिर्गता देवी कृष्णस्यैवाभ्यनुज्ञया ।

स्थिता पाश्चात् च कृष्णस्य नमस्कृत्वा महात्मने ॥४२

इस प्रकार दिव्य भोजन से लाभ करके नारदजी ने आचमन किया और

हाथ धोये । फिर हाथ में जल ग्रहण करके भगवान् को आशीर्वाद दिया, जिसे उन्होंने श्रद्धा सहित ग्रहण किया तथा सत्यभामा ने उनके समक्ष मस्तक झुकाया । हि नारदजी ने जल ग्रहण करके सत्यभामा को भी आशीर्वाद दिया ॥३६-३७॥ नारदजी बोले—हे देवि ! आप इस समय जैसी पति-परायणा हैं, वैसे ही भविष्य में भी पति की प्रियतमा और पति परायणा बनी रहें, मेरे तपोबल से आपकी अधिकाधिक सौभाग्य-वृद्धि हो ॥३८॥ नारदजी के यह आशीर्वादन सुन कर सत्यभामाजी अत्यन्त आनन्दित हो उठी और तभी देवर्षि की आज्ञा पाकर भगवान् भी भोजन करने लगे । उनके भोजन कर लेने के पश्चात् भगवान् की अनुमति प्राप्त कर सत्यभामा भी अन्य आवश्यक कार्यों को सम्पन्न करके भोजन करने के लिये अन्दर गई ॥३६-३८-४०-४१॥ भोजन के पश्चात् सत्यभामा ने बाहर आकर नारदजी को नमस्कार किया और भगवान् की बगल में जा बैठी ॥४२॥

ततो मुहूर्तमासित्वा नारदः कृष्णमब्रवीत् ।  
 आपृच्छे त्वा गमिष्यामि शक्रलोकमधोक्षज ॥४३॥  
 तन्नाथं देवमीशान नमस्कृत्य महेश्वरम् ।  
 ग्रास्यन्ति देवगन्धर्वास्तिर्थवाप्सरसा गणाः ॥४४॥  
 मासि मास्युचितं ह्येतन्महेन्द्रसदने प्रभो ।  
 पूजार्थं देवदेवस्य गान्धर्वं नृत्यमेव च ॥४५॥  
 अन्तर्हितो देवदेव सोमः सप्रवरो विभुः ।  
 पश्यत्यमरमुख्येन कृतं भक्त्याऽद्रिघातिना ॥४६॥  
 निमन्त्रितोऽहं पूर्वेषुः पुष्प दत्त महाद्युते ।  
 पारिजातस्य भद्रं ते तरुराज्ञो महात्मनः ॥४७॥  
 यदेतदाहृतं स्वर्गात्त्वदर्थं तु मया विभो ।  
 देवोपभोग्यमेतद्वि तरुराजसमुद्भवम् ॥४८॥  
 इष्टः स वृक्षः सततं शच्याः पुष्करलोचन ।  
 सौभाग्यमावहत्येव पूज्यमानोऽपि नित्यशः ॥४९॥

इसके पश्चात् नारदजी ने भगवान् से कहा—हे अधोक्षज ! :

अनुमति दें तो मैं इद्रलोक के लिये प्रस्थान करूँ ॥४३॥ वहाँ देवता, गंधर्व और अप्सरायण भगवान् शिवजी को नमस्कार करके संगीत का आयोजन करेंगे ॥४४॥ भगवान् शंकर के पूजनोपलक्ष्य में देवराज इन्द्र के भवन में प्रतिमास नृत्य-गायन का आयोजन हुआ करता है ॥४५॥ भगवान् शिवजी, और पावेंती अपने गणों के सहित अन्तर्हित भाव से इन्द्र द्वारा धनुष्ठीत उस पूजन समारोह को देखा करते हैं ॥४६॥ मुझे कल ही सुरपति इन्द्र ने एक पारिजात पुष्प देकर निमन्त्रित किया है ॥४७॥ हे विभी ! मैं उस पुष्प को आपके लिये ही यहाँ लाया हूँ, यह पुष्प तदराज की सम्पत्ति और देवताओं के उपभोग करने योग्य धन है ॥४८॥ हे पद्मलोचन ! देवी इन्द्राणी उस वृक्ष का अत्यन्त आवर करती हैं, क्योंकि उसका नियमित रूप से पूजन करने पर सदा सौभाग्यवृद्धि होती है ॥४९॥

पुण्यं कर्तुं तदा सृष्टः पारिजातो महाद्रुमः ।  
 अदित्या धर्मनित्येन कश्यपेन महात्मना ॥५०॥  
 पुराऽदित्या महातेजास्तोषितः किल कश्यपः ।  
 वरेण च्छन्दयामास मारीचस्तपसो निधिः ॥५१॥  
 सोवाच सुभगा येन भवेय मुनिसत्तम ।  
 स्वलंकृता कामतश्च सर्वे रेव विभूषणैः ॥५२॥  
 ईप्सित गीतनृत्यं च भवेन्मम तपोधन ।  
 कुमारी नित्यदा चैव भवेयं तपसो निधे ॥५३॥  
 विरजा शोकरहिता भवेयमिति नित्यदा ।  
 पतिभक्तिमती चैव धर्मशीला तथैव च ॥५४॥  
 पारिजात ततोऽस्त्राक्षीददित्याः प्रियकाम्यया ।  
 सर्वकामप्रदः पुष्पैरावृत नित्यगन्धदैः ॥५५॥  
 त्रिशाख सर्वदा दृश्य सर्वभूतमनोहरम् ।  
 सर्वपुष्पाणि दृश्यन्ते तस्मिन्नेव महाद्रुमे ॥५६॥

अत्यन्त धार्मिक महात्मा कश्यपजी ने अदिति के पुण्यवृत्त के साधन में उस पारिजात की रचना की थी ॥५०॥ प्राचीन काल में तपोनिधि

कश्यपजी को प्रसन्न करते हुए देवमाता अदिति ने उन से निवेदन किया था—  
हे प्रभो ! मैं इच्छित् आभूषणों से विभूषित हो सकूँ, मेरी सौभाग्य लक्ष्मी  
सदा वृद्धि होती रहे, मेरे इच्छा करते ही नृत्य-संगीत आदि के कार्यक्रम हो  
लगेँ, मैं चिरकाल तक यौवन से सम्पन्न रहूँ, मैं सदैव धर्म परायणा और पतिव्रत  
रहूँ, जिससे किसी रोग, शोक आदि का मुझसे स्पर्श न हो सके, इसके लिये शो  
ही कोई उपाय करिये । ५१-५४॥ अदिति के वचन सुन कर तपोधन कश्यप  
अपनी भार्या की इच्छा पूर्ण करने के लिये, सब के मन का हरण करने वाले  
त्रिशास्त्रा, मुक्त पारिजात वृक्ष की रचना की और उसी महावृक्ष में उन्होंने निर  
सुगंध देने वाले सब प्रकार के पुष्प प्रफुल्लित होने की शक्ति भर दी ॥५५-५६॥

• ईदृशान्यपि पुष्पाणि विभर्त्येकापि रूपिणी ।  
बहुरूपाणि चाप्यन्या पद्मानि च ततोऽपरा ॥५७॥  
मन्दारादपि वृक्षाच्च सारमुद्धृत्य कश्यपः ।  
तस्मादेव तरुश्चेष्टः सर्वेषां श्रेष्ठता गतः ॥५८॥  
ततस्तत्र निवध्याथ कश्यप प्रददौ शुभे ।  
अदितिर्मम पुण्यार्थं सौभाग्यार्थं तथैव च ॥५९॥  
अदित्या कश्यपो दत्तः पुण्यार्थं च तथा मम ।  
पुष्पदान्ना वेष्टयित्वा कण्ठे पुण्यार्थमात्मवान् ॥६०॥  
निष्क्रयेण मया मुक्तः कश्यपस्तु तपोधनः ।  
इन्द्रो दत्तस्तथेन्द्राण्या सौभाग्यार्थं ततो मम ॥६१॥  
सोमश्चाप्यथ रोहिण्या ऋद्ध्या च धनदस्तथा ।  
एवं सौभाग्यदो वृक्षः पारिजातो न सशयः ॥६२॥  
पारिजातो विष्णुपद्याः पारिजातेतिशब्दितः ।  
मन्दारपुष्पैर्यद्युक्ते मन्दारस्तेन कथ्यते ॥६३॥  
कोऽप्यय दारुरित्याहुरजानन्तो यतो जनाः ।  
कोविदार इति प्यातस्ततः स सुमहातरुः ॥६४॥  
मन्दारः कोविदारश्च पारिजातश्च नामभिः ।  
स वृक्षो ज्ञायते दिव्यो यस्मैतत्कुसुमोत्तमम् ॥६५॥

उसकी एक शाखा में एक प्रकार के, दूसरी शाखा में दूसरे प्रकार के तथा तीसरी शाखा में विभिन्न प्रकार के अन्यान्य पुष्प खिलते हैं ॥१५७॥ महर्षि कश्यप ने मन्दार के सारयुक्त ऐसे उम पारिजात वृक्ष की रचना की थी, जिससे वह वृक्ष सर्व श्रेष्ठ माना गया ॥१५८॥ इसके कुछ समय पश्चात् अदिति ने अपने पुष्प और सौभाग्य की वृद्धि-वामना से उस वृक्ष की जड़ में पुष्पमाला से महात्मा कश्यप को बाँध कर मुझे दान किया, तब मैंने कुछ द्रव्य लेकर कश्यप को छोड़ दिया । इसी प्रकार इन्द्राणी ने भी अपने पुष्प और सौभाग्य-वृद्धि के उद्देश्य से इन्द्र को तथा रोहिणी ने चन्द्रमा को और ऋद्धि ने कुबेर को इसी उद्देश्य से बाँध कर मुझे दान में दिया, इस लिये वह पारिजात वृक्ष अत्यन्त सौभाग्य का देने वाला है, इसमें सगय नहीं है ॥१५९-६२॥ वह गया से उत्पन्न होने के कारण पारिजात स्रक्क हुआ है, उसमें मदार-पुष्पों के खिलने से मदार भी कहा जाता है ॥६३॥ उक्त नामों को जो नहीं जानते, वे उसे 'दारु' कह देते हैं, इस कारण उसका कोविदार नाम पड़ गया ॥६४॥ जिस वृक्ष की सम्पत्ति यह पुष्प रत्न है, उस वृक्ष को मन्दार, कोविदार और पारिजात इन तीनों नामों से जाना जाता है ॥६५॥

## ॥ श्रीकृष्ण और इन्द्र का युद्ध ॥

अथ विष्णुमंहातेजा मुहूर्ताभ्युदिते रवौ ।  
मृगयाव्यपदेशेन ययौ रं वतक्रं गिरिम् ॥१॥  
आरोप्यंकरये देवः मात्यकिं नरपुङ्गवम् ।  
प्रद्युम्नमनुगच्छेति प्राक्त्वा कुरूकुलोद्बह ॥२॥  
रं वत च गिरिं देवो गत्वा दारुकमब्रवीत् ।  
मदीयं रथमेनं त्वं ग्रहायेहैव दारुक ॥३॥  
प्रतिपालय मां सौम्य दिनादं वारयन्हरीन् ।  
रथेनैव प्रवेष्टाऽहं द्वारकां भूतमत्तम ॥४॥  
इति सदिश्य भगवानाहरोह जघोद्यतः ।  
तात्पर्यं सप्तात्यको धीमानप्रमेयपराक्रम ॥५॥

पृथग्रथेन कौरव्य प्रद्युम्नः शत्रुसूदनः ।

आकाशगामिना राजन्पृष्ठतः कृष्णमन्वयात् ॥६॥

निमेषान्तरमात्रेण नन्दन कानन हरिः ।

देवोद्यान ययौ धीमान्पारिजातजिहीर्षया ॥७॥

वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! प्रातः काल होने पर सूर्गोदय हुआ और मृगया के मिस से भगवान् श्रीकृष्ण रथतक पर्वत की ओर गये ॥१॥ उस समय उन्होंने सात्यकि को अपने साथ ले लिया और प्रद्युम्न से भी अपने पीछे-पीछे आने को कहा ॥२॥ रथतक पर्वत पर पहुँच कर उन्होंने अपने सारथी दारुक को आदेश दिया कि रथ को यहाँ रोक दो और घोड़ों को भी विश्राम कराओ ॥३॥ तथा दोपहर तक मेरे यहाँ आने की प्रतीक्षा करो मुझे लौट कर द्वारका हो जाना है ॥४॥ दारुक को इस प्रकार का आदेश देकर भगवान् श्रीकृष्ण विजय की इच्छा करते हुए सात्यकि सहित गरुड पर आरुढ़ हुए ॥५॥ उनका पुनः प्रद्युम्न भी एक अन्य आकाशगामी रथ पर चढ़ कर भगवान् के पीछे-पीछे चल पड़ा ॥६॥ इस प्रकार पारिजात को लेने की इच्छा से भगवान् अर्द्ध निमेष में ही देवोद्यान में पहुँच गये ॥७॥

ददर्श तत्र भगवान् देवयोधान्दुरासदान् ।

नानायुधधरान्वीरान्नन्दनस्थानधोक्षजः ॥८॥

तेषां सपश्यतामेव पारिजात महाबलः ।

उत्पाट्यारोपयामास पारिजात सता गतिः ॥९॥

गरुड पक्षिराजानमयत्लेनैव भारत ।

सपस्थितो विग्रवान्पारिजातः स केशवम् ॥१०॥

सान्त्वितो वासुदेवेन पारिजातश्च भारत ।

उपतश्च वृक्ष मा भैस्त्व केशवेन महात्मना ॥११॥

तः प्रस्थित तच्च दृष्ट्वा पारिजातमधोक्षजः ।

अमरावतीं पुरीं श्रेष्ठां ततश्चक्र प्रदक्षिणाम् ॥१२॥

ते तु नन्दनगोप्ताः पारिजातो द्रुमोत्तमः ।

ह्रियतीति महेन्द्राय गत्वा नृप शशसिरे ॥१३॥

अथैरावतमारुह्य निर्ययी पाकशासनः ।

जयन्तेन रथस्येन पृष्ठतोऽनुगतः प्रभुः ॥१४॥

वहाँ पहुँच कर उन्होंने विभिन्न प्रकार के शस्त्रास्त्रों को धारण किये हुए देवयोधार्थों को उसकी सुरक्षा में तत्पर देखा ॥१४॥ उनकी उपस्थिति में गवान् ने क्रीड़ा पूर्वक पारिजात वृक्ष को उखाड़ कर गरुड की पीठ पर रख लिया ॥१५॥ अभी पारिजात मूर्तिमान होकर हर के कारण सम्पाद्यमान होता हुआ भगवान् के समक्ष स्थित हुआ ॥१६॥ उन्होंने उसे सात्वना दी कि हे वृक्ष श्रेष्ठ ! तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो ॥१७॥ उनकी बात सुन कर वह आश्वस्त हुआ और तब श्रीकृष्ण उस सर्व प्रधान अमरावती पुरी की प्रदक्षिणा करने लगे ॥१८॥ हे राजन् ! तभी उम नन्दन कानन के रक्षको ने इन्द्र को पूचना दी कि हे मुरराज ! श्रीकृष्ण पारिजात को ले जा रहे हैं ॥१९॥ यह सुनते ही इन्द्र अपने ऐरावत पर चढ़ कर नगरी से बाहर चले तभी उसका पुत्र जयन्त भी रथ पर चढ़ कर उनके पीछे-पीछे चल पड़ा ॥२०॥

पूर्वमभ्यागतं द्वारं केशव शत्रुनाशनम् ।

दृष्ट्वा वाच प्रवृत्त भोः किमिदं मधुमूदन ॥१५॥

प्रणम्य गरुडस्थोऽथ केशवः शक्रमब्रवीत् ।

बध्वास्ते पुण्यकार्याय नीयतेऽयं वरद्वज्रम् ॥१६॥

तमुवाच ततः शक्रो मा मैवं पुष्करेक्षण ।

अबोधयित्वा न तर्हर्नयितव्यस्त्वयाऽच्युत ॥१७॥

प्रहरस्व महाबाहो प्रयमं मयि केशव ।

प्रतिज्ञा सफला तेऽस्तु मुक्त्वा कोमोदकी मयि ॥१८॥

ततः कृष्णः शरैस्तीक्ष्णैर्देवराजगजोत्तमम् ।

विभेदाशनिसंकाशैः प्रहसन्निव भारत ॥१९॥

विध्याघ गरुडं वज्री दिव्यः शरवरस्तथा ।

बाणाश्चिच्छेद महसा केशवस्य तरस्विनः ॥२०॥

यान्यान्मुमोच देवेन्द्रस्तास्ताश्चिच्छेद माधवः ।

माधवेन प्रयुक्तांश्च चिच्छेद बलवृत्तहा ॥२१॥

जब वह नगरी के पूर्व द्वार पर पहुँचे तब उन्होंने श्रीकृष्ण को वहाँ देते और उनसे बोले कि हे मधुसूदन ! आपने यह कार्य क्यों किया है ? ॥११॥ श्रीकृष्ण ने इन्द्र को प्रणाम करके कहा—हे सुरेन्द्र ! आपकी भ्रातृवधू का पुण्य कार्य सम्पन्न करने के निमित्त इस पारिजात की आवश्यकता है, इसीलिये इसे लेजा रहा हूँ ॥१२॥ तब इन्द्र ने कहा—हे पद्माक्ष ! इस पारिजात को आप युद्ध करके ही यहाँ से ले जा सकते हैं । १३॥ इसलिये हे महाबाहो ! आप युद्ध पर प्रथम प्रहार कीजिये, और मेरे वक्षस्थल पर अपनी गदा घला कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करिये ॥१४॥ तब श्रीकृष्ण ने हँस कर अपने वज्र के समान बाण से इन्द्र के ऐरावत हाथी को घायल कर दिया ॥१५॥ फिर इन्द्र ने अपने बाराँ से पक्षिराज गरुड को बीच डाला और भगवान् के तीक्ष्ण वेग जाने बाणों को भी काट दिया ॥१६॥ श्रीकृष्ण ने भी इन्द्र के बाणों को काट दिया, इस प्रकार वे परस्पर एक दूसरे के बाणों को काटने में प्रयत्नशील थे ॥१७॥

महेन्द्रस्य च शब्देन धनुष कुरुनन्दन ।  
 शार्ङ्गस्य च निनादेन मुमुक्षुः स्वर्गवासिनः ॥२२॥  
 तयोर्वर्तन्ति सग्रामे गरुडस्थो महाबलः ।  
 पारिजातं जयन्तोऽथ हतुं मम्युद्यतो बली ॥२३॥  
 प्रद्युम्नमथ कस्यनो वारयेति तदाञ्जवीत् ।  
 ततस्तं वारयामास रौमिमणेयः प्रतापवान् ॥२४॥  
 जयन्तो जयता श्रेष्ठो रौमिमणेयगदेपुभिः ।  
 सर्वगात्रेषु विहसन्नाजपान रणे स्थितः ॥२५॥  
 रथस्थ एव रथिन कामस्तु कमलेक्षणः ।  
 ऐन्द्रिमभ्यर्दयामास बाणैरास्त्रीविषोपमैः ॥२६॥  
 स सन्निपातस्तुमुलो बभूव कुरुनन्दन ।  
 जयन्तस्य च वीरस्य रौमिमणेयस्य पोभयोः ॥२७॥  
 कृतप्रतिवृत्तं युद्धे पञ्चतुस्ती महाबली ।  
 महेन्द्रोऽपेन्द्रतनयो जगत्पत्न्यभृता वरो ॥२८॥

हे पञ्चतु । श्रीकृष्ण के शार्ङ्ग धनुष तथा इन्द्र पञ्चतु भी टंगीर



जंग के सभी निवासी व्याकुल हो उठे ॥२२॥ श्रीकृष्ण और देवराज में अब भयंकर युद्ध होने लगा तथा जयन्त भी गरुड़ की पीठ से पारिजात उठाने को बड़ा ॥२३॥ तभी श्रीकृष्ण ने प्रद्युम्न से उसे रोकने को कहा, जिससे प्रद्युम्न शत्रु के पुन को रोकने के लिये उद्यत हुआ ॥२४॥ इसके पश्चात् विजयी श्रेष्ठ जयन्त अपने रथ पर चढ़ कर विकराल बाण-वर्षा से प्रद्युम्न के अंगों को घीघने लगा ॥२५॥ उसी प्रकार प्रद्युम्न भी अपने सपें के समान बाणों के प्रहार से जयन्त को घायल करने लगा ॥२६॥ इस प्रकार इन दोनों में भी घोर संग्राम होने लगा और एक-दूसरे के प्रयत्न से दोनों के ही शस्त्रास्त्र निष्फल होने लगे ॥२७-२८॥

देवाश्च मुनयश्चैव ददृशुर्विस्मयान्विताः ।  
त संग्राम महाघोरं सिद्धाश्चैव सचारणाः ॥२८॥  
ततस्तु प्रवरो नाम देवदूतो महाबलः ।  
पारिजात पुनर्हर्तुं मियेष कुलनन्दन ॥३०॥  
सखा स देवराजस्य महास्तविदरिन्दमः ।  
अवध्यो वरदानेन ब्रह्मणः कुरुनन्दन ॥३१॥  
ब्राह्मणस्तपसा सिद्धो जम्बुद्वीपादिव गतः ।  
स्वशक्त्या नृप संयात सखित्व बलघातिना ॥३२॥  
तमापतन्त सप्रक्ष्य कृष्णः सात्यकिमब्रवीत् ।  
अनस्थ एव प्रवरं शरैर्वारय सात्यके ॥३३॥  
न त्वत्त निदंय वाणा मोक्तव्याः सात्यके त्वया ।  
अस्य ब्राह्मणचापस्य सोढव्यं खलु सर्वथा ॥३४॥  
ततः पष्ट्या रथेषूणा गरुडस्थं द्विजस्तदा ।  
आजघान महाबाहो सात्यकिं प्रवरो भृशम् ॥३५॥

उस समय सभी देवता, मुनि, सिद्ध तथा चारणों को उनका युद्ध देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ ॥२८॥ तभी प्रवर नामक एक अत्यन्त बलशाली देवदूत गरुड़ की पीठ से उस पारिजात को हरण करने की चेष्टा करने लगा ॥३०॥ ब्रह्माजी के वरदान से वह देवदूत सभी प्राणियों के द्वारा अवध्य था, शस्त्र विद्या

मे पूर्ण कुशल और इन्द्र के अमिन्न मित्रो मे था ॥३१॥ वह अपने श्रेष्ठ तपोव से ही स्वर्ग को प्राप्त हुआ था और तभी इन्द्र के साथ उसकी मित्रता स्थापि हुई थी ॥३२॥ उसे आता हुआ देख कर श्रीकृष्ण ने सात्यकि से कहा—हे सात्यकि ! उस देवदूत प्रवर को तुम बाणों वर्षा करके रोको ॥३३॥ परन्तु, वह ध्यान रखना कि इस ब्राह्मण के देह पर तुम्हारे बाणों का प्रहार न हो, यद्यपि तुम्हें इसकी अपलता सहन करनी ही पड़ेगी ॥३४॥ सात्यकि से श्रीकृष्ण अभी इतना ही कह पाये थे, कि तभी उस प्रवर नामक देवदूत ने सात्यकि को लक्ष्य करके साठ बाणों से प्रहार किया ॥३५॥

शिनेनंप्ता धनुस्तस्य क्षिपतः सायकान्नुप ।  
चिच्छेद पुरुषव्याघ्रो वचनं चेदमब्रवीत् ॥३६॥  
ब्राह्मणो नाभिहन्तव्यस्तिष्ठ तिष्ठ स्ववर्त्मनि ।  
अवध्या यादवाना हि स्वापराधेऽपि हि द्विजा ॥३७॥  
प्रवरस्तु प्रहस्यैनमुवाच कुरानन्दन ।  
अल क्षान्त्या नृणा शूर युद्ध्य सर्वात्मना रणे ॥३८॥  
जामदग्न्यस्य रामस्य शिष्योऽहमपि यादव ।  
नामतः प्रवरो नाम सखा शक्रस्य धीमतः ॥३९॥  
न देवा योद्धुमिच्छन्ति मन्यन्तो मधुसूदनम् ।  
आनृण्यं सौहृदस्याहमधिगन्तास्मि माधव ॥४०॥  
ततस्तयोस्तदा रौद्रः सग्राभो बबृधे नृप ।  
अस्त्रैर्दिव्यैर्नरव्याघ्र शैनेयद्विजमुख्ययोः ॥४१॥  
द्यौश्चचाल तदा राजन्हाचलाश्च सहस्रशः ।  
तस्मिन्वर्त्तति सग्रामे तेषामतिमहात्मनाम् ॥४२॥

तब सात्यकि ने उसका धनुष काट डाला और उससे कहा—तुम ब्राह्मण हो, सहस्र अपराध करने पर भी यादवगण ब्राह्मणों को नहीं मारते, इसलिये तुम्हें भी अपने ब्रह्म मार्ग पर चलना चाहिये ॥३७-३७॥ सात्यकि की बात सुनकर प्रवर ने हँसते हुए कहा—हे वीर ! युद्ध मे क्षमा का कोई अस्तित्व नहीं होता। तुम मुझ पर अपनी पूर्ण शक्ति लगाकर प्रहार करो ॥३८॥ मैं जमदग्नि पुत्र

शुक्राश्विनी का सिध्द हूँ, मैं इन्द्र का मित्र हूँ तथा मेरा नाम प्रवर है ॥३६॥  
गिवात् श्रीकृष्ण के सम्मानवश देवगण युद्ध करने की इच्छा नहीं करते, परन्तु,  
आज मित्र ऋण से उच्छृण होने के लिये तत्पर हूँ ॥४०॥ हे राजन् ! इनके  
आज्ञात् सात्यकि और प्रवर मे भीषण संग्राम छिड़ गया, जिससे स्वर्ग तथा  
भूमण्डल के अमन्य पर्वत विचलित हो गये ॥४२॥

नातिशिष्ये रणे कार्पिणरैन्द्रिमस्तमृता वरम् ।  
ऐन्द्रिः कार्पिण महात्मान मायिन शूरसत्तमम् ॥४३॥  
हन्त गृह्ण प्रतीच्छेति तावुभौ योधसत्तमौ ।  
युयुधाते नरश्रेष्ठ परस्परजयं पिणौ । ४४॥  
ततो नादः समुत्पृष्टो ह्यमरैः पुण्यकर्मभिः ।  
दृष्ट्वा स्थैर्यं च शैघ्र्यं च प्रद्युम्नस्य महात्मनः ॥४५॥  
प्रवरस्यापि वाणेन शितेन शिनिपुङ्गव ।  
चिच्छेदेष्वासन वीरो हस्तावाप च भारत ॥४६॥  
ततोऽग्न्यत्स तु जग्राह महत्तदनुत्तमम् ।  
महेन्द्रदत्त प्रवरो महाशक्तिसमस्वनम् ॥४७॥  
स येन वीरो महता धनुषा निप्रसत्तमः ।  
शरान्मुमोच विविधानर्करश्मिनिभास्तदा ॥४८॥  
चकतं च धनुश्चित्त शनैर्यस्यामितीजसः ।  
विव्याध सर्वगान्तेषु वाणैरपि च सात्यकिम् ॥४९॥

उधर प्रद्युम्न और जयत मे से किसी की भी हार नहीं हुई, वे दोनों ही  
परस्पर कहते थे कि शस्त्र लेकर मुझ पर प्रहार करो, इस प्रकार वे दोनों ही  
विजय की इच्छा से परस्पर घोर युद्ध कर रहे थे ॥४३-४४॥ उस समय स्वर्ग  
मे रहने वाले सभी पुण्यात्मा पुरुष प्रद्युम्न की कुशलता देख कर उसकी प्रशंसा  
करने लगे, जिससे युद्ध भूमि मे एक अद्भुत ध्वनि गूँजे उठी ॥४५-४६॥ इधर  
सात्यकि ने भी अपने तीक्ष्ण वाणों की वर्षा से प्रवर के धनुष और अगुलि को  
छाट दिया ॥४७॥ तब प्रवर ने इन्द्र के लिये हुए एक वज्र के समान धनुष को  
प्रदण किया और सूर्य किरणों के समान चमकते हुए वाणों की वर्षा करने लगा

॥४८॥ प्रवर द्वारा की गई उस भीषण बाण वर्षा में सात्यकि ने धनुष टुकड़े  
गये और उसके बग प्रत्यग आहत हो मय ॥४९॥

धनुरादाय शंनेयस्ततोऽन्यत्कुरुन्न्दन ।  
दृढ भारसह धीमान्विव्याघ्र प्रवर रणे ॥५०॥  
उच्चवततुरन्योन्यवमणी तौ शितं शरैः ।  
गात्रभ्यश्चैव मासानि मर्मभिर्द्धि शरोद्यमैः ॥५१॥  
अथाष्टधारबाणेन पुनरिष्वासन द्विधा ।  
चिच्छेद प्रवरो वीरस्त्रिभिश्चैनमताडयत् ॥५२॥  
अन्यदिष्वासन त तु ग्रहीतुमनस द्विज ।  
गदया ताडयामास क्षेप्यया लघुहस्तवान् ॥५३॥  
सोऽसि चर्म च जग्राह सात्यकि प्रहसन्निव ।  
न जग्राह धनुर्धामान्गदयाभिहतो भृशम् ।  
तत शरशतान्येव मुमोच प्रवरस्तदा ॥५४॥  
विहस्तमिव विज्ञाय सात्यकि यदुनन्दनम् ।  
प्रद्युम्नोऽस्य ददौ खड्गं निमलाकाशसन्निभम् ॥५५॥  
तस्य चिच्छेद भस्त्रेण निस्त्रिंश प्रवरस्तदा ।  
त्सरुदेशेऽपातयच्च प्रवर प्रहसन्निव ॥५६॥

इसके पश्चात् सात्यकि ने अन्य धनुष लेकर प्रवर पर भीषण बाण वर्षा  
आरम्भ की ॥५०॥ परस्पर में दोनों की घनघोर बाण वर्षा से दोनों के ही कवच  
टूट गये देह आहत हो गए तथा मांस निकल आया, तभी प्रवर ने अपने अष्टधा-  
र युक्त बाण से प्रहार से सात्यकि का धनुष काट दिया और तीन बाण सात्यकि  
के देह पर भी मारे ॥५१-५२॥ जब तक सात्यकि दूसरा धनुष भी न सम्भा-  
पाये, तब तक प्रवर ने उन पर गदा दे मारी ॥५३॥ जिसकी भीषण चोट  
आहत होने पर भी सात्यकि ने हाथ में तलवार ग्रहण की, परन्तु इसी बीच  
प्रवर ने उन पर संबर्षों बाणों की वर्षा की ॥५४॥ सात्यकि को निहत्था दे-  
प्रद्युम्न ने नीलाकाश के समान एक खड्ग उनके हाथ में दिया ॥५५॥ पर-  
प्रवर न उस खड्ग के हाथ में आते ही अपने भस्त्रासन से उसके टुकड़े कर दि-  
दे

गोर बाणों के प्रहार से खड़ग मुष्टि भी काट दी और कवच भी दिन्न-भिन्न  
र बाला ॥५६॥

व्यघमच्च तथा चर्म शिर्तर्वाणैरजिह्मम् ।  
आजधान च शक्त्येन हृदि विप्रो ननाद च ॥५७॥  
तं तिकलवमिव ज्ञात्वा पारिजातजिहीर्षया ।  
ताक्ष्याभ्याशे रथेनैव स तस्थौ प्रवरस्तदा ॥५८॥  
त पक्षपुटवेगेन चिक्षेप गरुडस्तथा ।  
गव्यूतिमेका सरयः स पपात मुमोह च ॥५९॥  
त जयन्तो निपत्याय पतित ब्राह्मण नृप ।  
समाश्वास्य रथ दीघ्रं समारोपितवास्तदा ॥६०॥  
शौनेयमपि मुह्यन्त पतन्त च मुहुर्मुहुः ।  
आश्वासयानः प्रद्युम्नः पितृव्य परिपस्वजे ॥६१॥  
हि पस्पर्शं हस्तेन सव्येन मधुसूदनः ।  
चिरुजः स्पर्शं मात्सेन सात्यकिः समपद्यत ॥६२॥  
प्रद्युम्नो दक्षिणे पार्श्वे वामे तु शिनिपुङ्गवः ।  
तस्यतुः पारिजातस्य युद्धशीण्डितराकुभौ ॥६३॥

फिर प्रवर न सात्यकि के हाथ पर शक्ति से भीषण प्रहार करके गर्जना  
की ॥५७॥ सात्यकि को बुरी तरह घायल हुआ देख कर पारिजान को लेने के  
लिये जैसे ही गरुड के पास गया, वैसे ही गरुड ने उस पर अपने पक्ष से ऐसा  
प्रहार किया कि प्रवर दो कोस दूर जाकर गिरा और उसे मूर्च्छा आगई ॥५८-  
५९॥ प्रवर को इस प्रकार गिरा हुआ देख कर जयन्त ने अपने रथ से उतर कर  
प्रवर को उठाया और अपने रथ पर बैठा लिया ॥ ६० ॥ ऊपर अपने चाचा  
सात्यकि को बारबार मिरते और मूर्च्छित होते हुए देखा तो प्रद्युम्न ने उसे  
सँभाला ॥६१॥ उसी समय श्रीकृष्ण ने सात्यकि के पास आकर उनके देह पर  
अपना हाथ फेरा, जिससे उनकी वेदना नष्ट हो गई और वह स्वस्थ हो गये  
॥६२॥ तब प्रद्युम्न उस पारिजात के दक्षिण ओर तथा सात्यकि उसके बाएँ  
ओर खड़े होकर उसकी रक्षा करने लगे ॥६३॥

जयन्त प्रवरश्चैव रथेनैकेन भारत ।  
 स नन्ती महेन्द्रेण प्रहस्योक्तौ महात्मना ॥६४  
 नासन्नमभिगन्नव्य गरुडस्य कथंचन ।  
 बलवानेष पतता राजा च विनतासुतः ॥६५  
 दक्षिणे चैव सव्ये च पार्श्वे मम धृतायुजौ ।  
 उभौ स्थितौ युद्धघमानं मामेव हि प्रपश्यतम् ॥६६  
 एवमुक्तौ स्थितौ वीरौ ततः शक्रस्य पार्श्वयोः ।  
 ददृशाते युद्धघमानौ देवराजजनार्दनौ ॥६७  
 अथेन्द्रो गरुडं वाणमहाशनिसमस्वर्नः ।  
 विव्याध सर्वंगाक्षेषु महास्त्रप्रवरैस्तथा ॥६८  
 ताभ्याणानगणयन्न्वनतेयः प्रतापवान् ।  
 ससाराभिमुखो वीरः शक्रनागमरिन्दमः ॥६९  
 उभौ तौ सहसा राजन्वलिनी गजवक्षिणी ।  
 प्रयुद्धौ वीर्यसपन्नी महाप्राणी दुरासदौ ॥७०

तनी जयन्त और प्रवर एक साथ एक ही रथ पर चढ़ कर गरुड़ के  
 ओर बढ़े, यह देख कर इन्द्र ने हँस कर कहा कि तुम गरुड़ के निकट मत जान  
 क्योंकि वह असाधारण धीर है ॥६४-६५॥ अब तुम घस्त्र पारणपूर्वक मेरे दोनों  
 ओर स्थित हो जाओ और मेरा और धीवृष्ण का सशाम देखो ॥६६॥ इन्द्र ने  
 बाण मुन कर जयन्त और प्रवर दोनों ही उनके दोनों ओर सके होकर इन्द्र जी  
 धीवृष्ण के मध्य होने वाले युद्ध की देखने लगे ॥६७॥ तब वज्रपात के तामा  
 भीषण घात वाले बाणों ने शूरा से इन्द्र ने पक्षिराज गरुड़ के सम्पूर्ण देह पर  
 भीषण आक्रमण किया ॥६८॥ परन्तु गरुड़ ने उनके बाणों की चिन्ता न कर  
 इन्द्र के ऐरावत हाथी पर आक्रमण कर दिया । ६९॥ तब अत्यन्त क्रोधित हो  
 तथा ऐरावत में भयकर सशाम होते लगे, वे दोनों ही अत्यन्त पराक्रमी, दुर्  
 एवं युद्ध में युद्ध के ॥७०॥

रदनैः पन्नगरिषुं करेण निरमा तदा ।  
 ऐरावतो गत्रानिराजपान नदस्तथा ॥७१

तथा नखाकुगस्तीक्ष्णैर्नतेयो वलोत्कटः ।  
 तथा पक्षनिपातैश्च शक्रनागं जघान ह ॥७२॥  
 मुहूर्त्तं सुमहानासीत्सपातो गजपक्षिणो ।  
 विस्मापनीयो जगतः प्रेक्षितुणा भयावहः ॥७३॥  
 मूर्ध्ययैरावत ताक्ष्यस्ताडयामास भारत ।  
 नखाकुशकरालेन चरणेन महाबलः ॥७४॥  
 संप्रहारामिसंतप्तो निपपात त्रिविष्टपात् ।  
 पारियात्रे गिरिश्रेष्ठे द्वीपेऽस्मिञ्जनमेजय ॥७५॥  
 पतन्तमपि त दक्रो न मुमोच महाबलः ।  
 कारुण्यादथ सौहार्दात्पूर्वाम्युपगमादपि ॥७६॥  
 कृष्णोऽप्यन्वगमञ्चनं पृष्ठतः प्रभवाव्ययः ।  
 पारिजातवत्ता धीमान्मारुदेन महाबलः ॥७७॥

२ उस समय भीषण गर्जन करता हुआ ऐरावत अपने दाँत, मूँड और  
 स्तक से प्रहार करता हुआ गरुड पर टूट पड़ा ॥७२॥ तब महाबली गरुड भी  
 अपने नखों और पंखों के प्रहार द्वारा ऐरावत को बाहृत करने लगे ॥ ७३ ॥  
 ऐरावत और गरुड के इस युद्ध ने कुछ क्षणों में ही वहाँ उपस्थित दशकों को  
 विस्मित कर दिया । क्योंकि उनका युद्ध अत्यंत भीषण हो उठा था ॥७४॥ उसी  
 समय ऐरावत पर गरुड ने अपने नख रूपी अकुश तथा चरणों की भीषण मार  
 की, जिसने अत्यंत व्याकुल होकर ऐरावत स्वर्ग से गिरने लगा तथा वह जम्बू-  
 द्वीप के पारियात्र नामक पर्वत पर आकर रुका ॥ ७५-७६ ॥ महाबली इन्द्र ने  
 कृष्ण, सौहार्द्र तथा उसके पहिले उपकारों की याद करके स्वर्ग से गिरे हुए  
 ऐरावत को छाड़ा नहीं ॥७६॥ उत्पत्ति और प्रलय के कारण रूप भगवान् भी  
 पारिजात और गरुड के सहित देवराज इन्द्र के पीछे-पीछे चले ॥७७॥

स तस्यो पर्वतश्रेष्ठे पारियात्रे तु वृक्षहा ।  
 ऐरावते समाश्वस्ते सग्रामो बवृधे पुनः ॥७८॥  
 शरराशोविषप्रक्ष्यं रत्नयुक्तः सुतेजितः ।  
 अन्योन्यं कुरुषाद्वै स शक्रकेशवयोर्महान् ॥७९॥

ततो वज्रायुधो वज्रमर्शानि च पुनः-पुनः ।  
 मुमोच गरुडे राजन् रावतरिपो नृप ॥८०॥  
 वज्राशनिनिपातांस्तान्सेहे शक्रस्य पक्षिराट् ।  
 अवध्यो बलिना श्रेष्ठो निसर्गेण ततो बलात् ॥८१॥  
 मुमोच पक्षमेकैक मानयन्नशनि सदा ।  
 वज्रं च देवराज्ञोऽय भ्रातुः कश्यपसम्भवः ॥८२॥  
 आक्रम्यमाणस्ताक्ष्येण न्यमज्जन्मुपते गिरिः ।  
 विवेश धरणी राजञ्छीर्यमाणः समन्ततः ॥८३॥  
 चुक्रे बहुमानेन कृष्णस्य स तु पर्वतः ।  
 त चाद्राक्षीत्ततः कृष्णः किञ्चिच्छेषमधोक्षजः ॥८४॥

फिर वृत्र-हृता इन्द्र ने पारियात्र पर्वत पर जाकर ऐरावत को स्वस्थ किया और इसके पश्चात् वृष्ण और इन्द्र ने पुनः युद्ध छिड़ गया ॥ ७८ ॥ वे दोनों ही एक दूसरे पर सर्प के समान भयकर बाणों की वर्षा करने लगे ॥ ७९ ॥ तदा इन्द्र ने ऐरावत के तन्तु गरुड पर वज्र और अशनि से अनेक प्रहार किये ॥ ८० ॥ गरुड स्वभावतः बली तथा तपोबल से अवध्य थे, इसलिये इन्द्र द्वारा किये गये प्रहारों को उन्होंने सहन कर लिया ॥ ८१ ॥ इसके साथ ही अपने भाई इन्द्र और उनके वज्र की सम्मान-रक्षा हेतु उनके द्वारा होने वाले प्रत्येक प्रहार पर अपना एक पल परित्याग कर रहे थे ॥ ८२ ॥ इसी समय गरुड और धीवृष्ण के भार से वरमित्र दृष्टा पारियात्र पर्वत सहसा भयभर चीत्कार करता हुआ पृथिवी में पड़ने लगा । उसके कुछ भाग के क्षेप रहने तक गरुड के सहित धीवृष्ण उस पर्वत को छोड़ कर आकाश में चले गये ॥ ८३-८४ ॥

त मुखा गण्डेनाय तस्थौ देवो त्रिहायधि ।  
 प्रमुखा च तदोवाच सारंगल्लोकाभावनः ॥८५॥  
 इतो दारवनी गत्वा स्थमानय मा चिरम् ।  
 सदायक महाबाहो मत्तेजोयसमाश्रितः ॥८६॥  
 एतन्मो वलभद्रश्च राजा च तुकुराधिपः ।  
 एते त्रिरन्द्रे त्वागमिष्ये दारवामिति मानद ॥८७॥



तथेत्युक्त्वा तु घर्मात्मा प्रद्युम्नः पितरं विभुः ।  
गत्वा ययोक्तमुक्त्वा च यादवेन्द्रवलाबुधौ ॥८८॥  
नाडिकान्तरमात्रेण पुनस्तं देशमाययौ ।  
दारुकेण समायुक्तं रथमास्याय भारत ॥८९॥

तब वे प्रद्युम्न से बोले कि हे वरुण ! तुम मेरे प्रभाव से पूर्ण सम्पन्न हो, अब शीघ्र ही द्वारका जाकर रथ सहित दारुक को यहाँ ले आओ ॥८८-८९॥  
वहाँ बलराम जी और महाराज उग्रसेन से कहना कि मैं इन्द्र को जीत कर कल द्वारका पहुँचूँगा ॥८७॥ पिता की आज्ञा स्वीकार करके प्रद्युम्न शीघ्र ही द्वारका पहुँचे तथा वहाँ बलरामजी और राजा उग्रसेन को स्वर्ग की सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया तथा तुरन्त ही दारुक के साथ रथारूढ होकर वह भगवान् श्रीकृष्ण के पास जा उपस्थित हुए ॥८८-८९॥

## ॥ श्रीकृष्ण द्वारा शिवजी की स्तुति ॥

तमारुह्य रथं कृष्णः पारियात्र गिरिं ययौ ।  
यनैरावतमास्याय स्थितः सुरपतिः प्रभुः ॥१॥  
पारियात्रो गिरिश्रेष्ठो दृष्ट्वा यान्तं जनार्दनम् ।  
शाणपादसमो भूत्वा प्रविवेश वसुंधराम् ॥२॥  
प्रियार्थं वासुदेवस्य प्रभावज्ञो महात्मनः ।  
तस्य प्रीतो हृषीकेशः पर्वतस्य जनाधिप ॥३॥  
ततः प्रयात युद्धार्थमच्युत कुरुनन्दन ।  
सपारिजातो गरुडः पृष्ठतोऽनुययौ तदा ॥४॥  
प्रद्युम्नः सात्यकिश्चापि गरुडस्यौ महाबलौ ।  
गताबुधौ रक्षणार्थं पारिजातमरिदमौ ॥५॥  
ततस्त्यस्त गतः सूर्यः प्रवृत्ता रजनी नृप ।  
उपस्थित पुनर्युद्धं शक्रकेशवयोहि ॥६॥  
सुप्रहाराहतं दृष्ट्वा विष्णुरैरावत गजम् ।  
नातिकल्प महातेजा देवराजान्ममब्रवीत् ॥७॥

वैशम्पायन जी ने कहा—हे राजन् ! तब भगवान् श्रीकृष्ण रथारूढ होव पारियात्र पर्वत पर पहुँचे, जहाँ देवराज इन्द्र ऐरावत के सहित विद्यमान थे ॥१॥ पर्वत श्रेष्ठ पारियात्र भगवान् की महिमा को जानता था, इसलिये उन्हे आते देख कर वह शाणपाद ( चौथाई मासे ) का रूप धारण करके पृथिवी के विवरः प्रविष्ट हो गया, यह देख कर भगवान् उस पर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥२-३॥ जब भगवान् रथारूढ होकर युद्ध के लिये चले तब गरुड भी अपनी पीठ पर पारियात्र वृक्ष को लिये हुए उनके पीछे-पीछे चले ॥४॥ उस समय प्रद्युम्न और सात्यकि भी गरुड की पीठ पर ही बैठ कर पारियात्र की रक्षा में तत्पर थे ॥५॥ उस समय भगवान् भास्कर के अस्त होने पर रात्रि का आगमन हुआ तथा इन्द्र भी कृष्ण के मध्य सशम की पुनरावृत्ति हुई ॥६॥ ऐरावत को बहुत घायल हुआ देख कर श्रीकृष्ण ने इन्द्र से कहा ॥७॥

गरुडाभिहतः पूर्वं नातिकल्पो गजोत्तमः ।

ऐरावतो महाबाहो राक्षसश्च समुपोह्यते ॥८॥

श्व. प्रभाते यथाकाम प्रवर्तस्व यथेच्छसि ।

एवमस्त्विति कृष्णं तु देवराजोऽग्रवीक्ष्यभुः ॥९॥

उवाच पुष्कराम्बासे देवराजः पुरंदरः ।

वज्रं गिरिमयं कृत्वा धर्मात्मिः नृपसत्तम ॥१०॥

ब्रह्मा ततो जगामाथ कश्यपश्च महानृपिः ।

अदितिश्चैव सर्वे च देवा मुनय एव च ॥११॥

साध्या विश्वे च कौरव्य नासत्यावश्विनौ तथा ।

आदित्याश्चैव रुद्राश्च वसवश्च जनेश्वर ॥१२॥

नारायणश्च पुत्रेण सत्यकेन च भारत ।

सहोवाच गिरी रम्ये पारियात्रे प्रहृष्टवत् ॥१३॥

श्रीकृष्ण बोले—हे महाबाहो ! आपका ऐरावत गरुड के प्रहार ध्वस्त हो गया है और अब रात्रि भी हो गई है, इसलिये इस समय सशम रोक दीजिये तथा प्रातःकाळ पुनः युद्ध कर लेना । यह गुन कर इन्द्र ने एवमस्तु कहा और

प्रह्वर तीर्थ के निकट जाकर एक चितामय आवरण स्थान निर्मित कर वहाँ शिव-निवास किया ॥१०॥ उस समय ब्रह्मा, कश्यप, अदिति, सब देवता, मुनि, साध्य, विश्वेदेवा, अश्विद्वय, आदित्यगण, रुद्रगण तथा वसुगण वहाँ आ गये ॥११-१२॥ इधर श्रीकृष्ण अपने पुत्र प्रद्युम्न और भाई सात्वकि के सहित अत्यन्त सुखपूर्वक उस पारिषान् पर्वत पर ही ठहर गये ॥१३॥

यत्स शाणप्रमाणोऽस्य भक्त्या समनवन्नृप ।

वरं प्रादात्ततस्तस्य पर्वतस्य महाद्युतिः ॥१४

शाणपाद इति ज्ञातो भविष्यात्स महागिरे ।

पुण्येनादन्नं तुल्यो हि पुण्यो हिमवतः शुभः ॥१५

एवमेव च भूयिष्ठो भव पर्वतस्तम ।

मेरुणा स्पर्द्धमानो हि बहुचिन्मृगैर्भुतः ॥१६

तथा दत्त्वा वरं तस्य पर्वतस्य तु केशवः ।

दध्यौ गङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा नमस्कृत्वा वृषध्वजम् ॥१७

अपायघो विष्णुपदी स्मृता कृष्णेन भारत ।

संपूज्य ता ततः कृष्णः कृत्वा स्नानमधोक्षजः ॥१८

उदकं च गुहायाय विल्वं च हरिरव्ययः ।

देवमावाहयामास रुद्रं सर्वेश्वरेश्वरम् ॥१९

ततः प्राप्तो महादेवः सोमः सप्रवरो विभुः ।

तस्यावुपरि विल्वस्य तथा गङ्गोदकस्य च ॥२०

त पारिजातकुसुमैरचंयामास केशवः ।

तुष्टाव वाग्मिरीशोऽस्य सर्वकर्तारमीश्वरम् ॥२१

उस समय उन्होंने उस शाणपाद रूप धारण कर लेने वाले पर्वत के प्रति प्रसन्न होकर कहा—हे गिरिधेय ! तुमने शाणपाद रूप धारण किया, इसलिये जगत् में इसी नाम से प्रसिद्ध होंगे तथा अपने पुण्य के बल से हिमालय और मेरु के समान महान् होकर अनेक प्रकार के मृगों से परिपूर्ण होंगे ॥१४-१९॥  
राजन् ! उस पर्वत को इस प्रकार का वर देकर श्रीकृष्ण ने भगवान् शंकर

को नमस्कारपूर्वक सरिताओं में धोष्ठ गंगाजी का ध्यान किया ॥ १७ ॥ इस समय विष्णुपदी भगवती गंगाजी उनके सम्मुख उपस्थित हुईं । तब उन्होंने पूजन कर स्नान किया ॥ १८ ॥ फिर उन्होंने गंगाजल और वित्त्वपत्र ग्रहण कर भगवान् शंकर का आह्वान किया और सौम्यमूर्ति भगवान् शंकर वहाँ प्रवृत्त होकर उसी गंगाजल और वित्त्वपत्र पर प्रतिष्ठित हो गये ॥ १९-२० ॥ इस पश्चात् पारिजात के पुष्पो से भगवान् ने शिवजी का पूजन किया और वे सर्वकर्ता सर्वेश्वर शंकर की स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥

रुद्रो देवस्त्वं रुदनाद्रावणाच्च रोह्यमाणो द्रावणाच्चातिदेवः ।  
 भक्तं भक्तानां वत्सलं वत्सलानां कीर्त्या युद्धवेशाद्य प्रभवाम्यन्तरेण ।  
 ग्राम्यारण्यानां त्व पतिस्त्व पशुना ख्यातो देवः पशुपतिः सर्वकर्मा ।  
 नान्यस्त्वत्त परमो देवदेव जगत्पतिः सुरवीरारिहन्ता ॥२३॥  
 यस्मादीशो महतामीश्वराणां भवानाद्यः प्रीतिदः प्राणदश्च ।  
 तस्माद्धि त्वामीश्वर प्राहुरीशं सन्तो विद्वासः सर्वेशास्त्रार्थतज्ज्ञाः ॥२४॥  
 भूत यस्माज्जगदत्यन्तं धीर त्वत्तोऽव्यक्तादक्षरादक्षरेश ।  
 तस्मात्त्वामाहुर्भव इत्येवभूत सर्वेश्वराणां महतामप्युदारम् ॥२५॥  
 यस्माज्जितैरभिषिक्तोऽसि सर्वदेवासुरैः सर्वभूतैश्च देव ।  
 महेश्वर विश्वकर्माणमाहुस्त्वा वै सर्वे तेन देवातिदेवम् ॥२६॥  
 पूज्यो देवः पूज्यसे नित्यदा वै शश्वच्छ्रेयः काक्षिभिर्वरदामोधवीर्यः ।  
 तस्माद्धिख्यातो भगवान्देवदेवः सतामिष्टः सर्वभूतात्मभावी ॥२७॥  
 भूमिस्तयाणां देव यस्मात्प्रतिष्ठा पुनर्लोकानां भावनामेयकीर्तिः ।  
 श्र्यम्बकेति प्रथमं तेन नाम तवाप्रमेय त्रिदशेशनाथ ॥२८॥

श्रीकृष्ण बोले—हे देव ! आप रुदन करते-करते दौड़े थे इसलिए आपका नाम रुद्र हुआ है, आप सदा अपने ही प्रकाश से प्रकाशित होने हैं, आप भक्तों के भक्त, वरनलों के वरमल हैं, इसलिए आज मुझे यश से सम्पन्न करिये ॥२२॥ आप भोगों में आसक्त समारो और ससार से विरक्त हुए सन्वासी रूपी जीवों के अधिपति हैं, इसलिये पशुपति कहलाते हैं । आप सर्वकर्मा से श्रेष्ठ कोई भी देवता नहीं है ।

नृजगतरति तथा देवताओं के शत्रुओं का नाश करने वाले हैं ॥ २३ ॥ आप ईश्वरो के ईश्वर, आद्य, प्रीतिप्रद तथा प्राणप्रद हैं, इसलिये सब शास्त्रों के ज्ञाता और विज्ञ साधुजन आपको ईश्वर कहते हैं ॥ २४ ॥ हे बुद्धि प्रवर्तक ! हे जीव-नियामक ! आप ही अव्यक्त एव अक्षर हैं, आप से ही यह विश्व उत्पन्न हुआ है, इसलिये आप भव कहे जाते हैं ॥ २५ ॥ हे देव ! सभी देवता, असुर तथा प्राणियों न आपसे पराजित होकर आपको ईश्वर पद पर प्रतिष्ठित किया है, आपको ही विश्व-कर्मा तथा महेश्वर कहते हैं ॥ २६ ॥ आप सब के पूजनीय हैं, इसलिये सभी देवता आपकी पूजा नियमित रूप से करते हैं, आप असीम शक्ति वाले और सभी प्राणियों की सृष्टि करने में स्वयं समर्थ हैं, इसलिये आपको 'देवदेव' कहा जाता है ॥ २७ ॥ हे त्रिदशेशनाथ ! स्वर्ग, मर्त्य और पाताल आप से ही उत्पन्न हुए हैं, आप ही प्राण आदि वायु, सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि आदि की रचना, पालन और सहार करते हैं । इन तीनों कार्यों के सम्पन्न कर्ता होने के कारण ही त्र्यम्बक नाम से आपको प्रसिद्धि लोको में हुई है ॥ २८ ॥

शूनूणा शासनादप्रमेयस्तथा भूय शासनाच्चेश्वरेण ।  
सर्वव्यापित्वाच्छकरत्वाच्च सद्भि शब्दस्येशान श्रीकरार्काग्रचतेजा ॥ २९ ॥  
ससक्ताना नित्यदा यत्करोषि शम भ्रातृव्यान्यद्व्यधनैपी समस्ताम् ।  
तस्माद्देव शकरोऽप्रमेयस्य सद्भिर्द्वंद्वमंजै कथ्यते सवनाथ ॥ ३० ॥  
दत्त प्रहार कुलिशेन पूर्वं तवेशान सुरराज्ञाऽतिवीर्यं ।  
कण्ठे नैत्य तेन ते यत्प्रवृत्त तस्मात्प्यातस्त्व नीलकण्ठेति कल्प ॥ ३१ ॥  
यत्लिङ्गाङ्क यच्च लोके भगाङ्क सर्वं सोम त्व स्यादर जङ्गम च ।  
प्राहुर्विप्रास्त्वा गुणिन तत्त्वविज्ञास्तथा ध्येयामम्बिका लोकधालीम् ॥ ३२ ॥  
वेदेर्गीता सा हि तत्त्व प्रसूता यज्ञो दीक्षाणा योगिना चातिरूप ।  
नात्यदभुतत्वत्सम देव भूत भूत भव्य भवदेवाथ नास्ति ॥ ३३ ॥  
अह ब्रह्मा कपिलो योऽप्यनन्त पुत्रा सर्वे ब्रह्माणश्चातिवीरा ।  
त्वत्त सर्वे देवदेव प्रसूता एव सर्वेश कारणात्मा त्वमीडय ॥ ३४ ॥  
इति सस्तूयमानस्तु भगवान्गोवृषध्वज ।  
प्रसार्य दक्षिण हस्त नारायणमथाब्रवीत् ॥ ३५ ॥  
हे श्रीकर ! मनु आपको कभी भी परास्त नहीं कर सकते, आप सर्व बाह्या म्यतरतया सभी अवस्थाओं में अपने प्रभु धर्म पर स्थित रह कर

सब प्राणियों पर शासन तथा साधुओं का कल्याण करते हैं, इसीलिये आप शर्व कहा गया है । आप शब्द के ईशान तथा सूर्य से भी अधिक तेजस्व ॥ २६ ॥ हे सर्वनाथ ! आप अपने भक्तों को सदा शान्ति तथा असुरों को दण्ड देने वाले हैं, इसलिये धर्मन्त्रि और साधुजनों ने आपका नाम शंकर रखा है ॥ २७ ॥ हे ईशान ! पूर्वकाल में जब इन्द्र ने आप पर वज्र प्रहार किया, ॥ उसके प्रतिकार में समर्थ होने पर भी आपने मातृवात्सल्य के कारण वह आघात सह लिया, जिससे आपके कंठ का नीला वर्ण होगया, इसीलिये आपका नीलकंठ नाम हुआ ॥ २९ ॥ हे सोम ! आप जल में स्त्रीरूप एवं पुरुषरूप युक्त प्यावर जगम सभी प्राणियों के रक्षक हैं इसीलिये आपके यथार्थ तत्व के ज्ञाता जन आपको और लोक धात्री पार्वतीजी को गुणात्मक कहते हैं ॥ ३२ ॥ वेदों ने उन भगवती पार्वती को माया स्वरूपा बताया है, जिनसे महत्तत्त्व की उत्पत्ति हुई है । आप यज्ञ में दीक्षित योगियों के यज्ञ स्वरूप हैं तथा भूत, भविष्य, वर्तमान में आपके समान अद्भुत अन्य कुछ नहीं रहता ॥ ३३ ॥ हे देवादिदेव ! मैं, ब्रह्मर्षि कपिन, शेष तथा ब्रह्मा के अत्यन्त वीर पुत्र आपके द्वारा ही उत्पन्न हुए हैं । विश्व की सभी दिसाई देने वाली वस्तुएं आप से ही प्रकट हुई हैं, इसलिये आप सभी के द्वारा स्तुति के योग्य हैं ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! भगवान् कृष्ण द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् शंकर ने अपना दक्षिण हाथ उठा कर धी-कृष्ण से कहा ॥ ३५ ॥

मनोपितानामर्थानां प्राप्तिस्ते सुरसत्तम ।

पारिजात च हर्ताऽसि मा भूते मनसो व्यथा ॥ ३६ ॥

यथा मंनाकमाश्रित्य तपस्त्वमकरो प्रभो ।

तथा मम चर वृष्ण सस्मृत्य स्ययंग्माप्नुहि ॥ ३७ ॥

अवध्यस्त्वमजेयश्च मत्त शूरतरस्तथा ।

भविताऽसीत्यबोच यत्तत्तथा न तदन्यथा ॥ ३८ ॥

यस्य स्तवेन मा भवत्या स्तोप्यतेऽमरसत्तम ।

स्यया कृतेन धर्मज्ञ धर्मभावसमविष्यति ।

उभरे च जय विष्णो प्राप्य भूजां तथोत्तमाम् ॥ ३९ ॥

विश्वोदकेश्वरो नाम भविताऽहमिहानघ ।  
 देवेश्वर त्वयाऽस्थापि देवसिद्धोपयाचनः ॥४०॥  
 इहस्योपोपितो विद्वान्भक्तिमान्मम केशव ।  
 धिरात्रमीप्सितांलोकान्ममिष्यति जनार्दन ॥४१॥  
 अविन्ध्या नाम देशोऽस्मिन्नाङ्गा चैव भविष्यति ।  
 गङ्गास्नानसम स्नान मन्त्रतो भविता तथा ॥४२॥

शिवजी बोले—हे सुरमत्तम ! आपकी अभिलाषा पूर्ण होगी और आप इस पारिजात तरु को ले जाने में समर्थ होंगे, इस विषय में अब आप चिन्ता न करें ॥ ३६ ॥ जब आपने मैनारु पर्वत पर जाकर तप किया था तभी मैंने आपको वर दे दिया था, इसलिये आप धैर्य रखें ॥ ३७ ॥ आप अवध्य, अजेय तथा अत्यन्त बली होंगे, मेरा यह वचन व्यर्थ नहीं होगा ॥ ३८ ॥ आपने जिस स्तोत्र से अभी मेरा स्तव किया है उस स्तोत्र का पाठक धर्म लाभ करेगा और विश्व में सम्मान तथा युद्ध में विजयी होगा ॥ ३९ ॥ आज से मैं भी विश्वोद-केश्वर कहा जाऊँगा और आप जहाँ मुझे स्थापित करेंगे, वही प्रतिष्ठित होकर सब की अभिलाषा पूर्ण करूँगा ॥ ४० ॥ रात्रि उपवास पूर्वक जो मनुष्य इस स्थान पर भक्ति सहित मेरी उपासना करेगा, वे अवश्य ही इच्छित लोकों को प्राप्त होंगे ॥ ४१ ॥ यह गंगा भी यहाँ अविन्ध्या नाम से प्रसिद्ध होगी तथा जो मन्त्र पाठ करके गंगाजी का स्मरण करेगा, उसे उसी समय गंगा-स्नान का पुण्य प्राप्त होगा ॥ ४२ ॥

पट्पुट्ट नाम नगरं दानवाना जनार्दन ।  
 अत्रान्तर्द्धरणोदेगे पराक्रम्य महाबलाः ॥४३॥  
 एते दैत्या दुरात्मानो जगतो देवकण्ठकाः ।  
 छन्ना वसन्ति गोविन्द सानावस्य महागिरेः ॥४४॥  
 अवध्या देवदेवाना वरेण ब्रह्मणोऽनघ ।  
 मानुषान्तरितस्तस्मात्त्वमेताञ्जहि केशव ॥४५॥  
 ततो याते महादेवे प्रभाताया नराधिपः ।  
 तस्या निशाया गोविन्द. स्तूय पर्वतमब्रवीत् ॥४६॥

तवाध पर्वतश्चेष्ट निवसन्ति महामुरा ।

अवध्या देवदेवाना वरेण ब्रह्मण पुरा ॥४७॥

निर्गमिष्यन्ति ते नैव मया रुद्धा महाबला ।

द्वारे निरुद्धे तसैव विनश्यन्ति ममाज्ञया ॥४८॥

इस पर्वत के नीचे पटपुर नामक प्रसिद्ध दानवों का एक नगर स्थित है । वहाँ ससार के लिये कण्टक स्वरूप, हिंसक एवं दुरात्मा दैत्य कपट वेश में निवास करते हैं ॥ ४३ ४४ ॥ उन दैत्यों ने ब्रह्माजी से वर प्राप्त किया है, इसलिये वे किसी के भी द्वारा नहीं मारे जा सकते । आप इस समय मनुष्य रूप में अवतरित हुए हैं अतः उन दानवों का शीघ्र ही सहार करिये ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! तब भगवान् शंकर ने श्रीकृष्ण को हृदय से लगाया और फिर वही अन्तर्धान होगये । जब प्रातःकाल होगया, तब श्रीकृष्ण ने उस पर्वत से कहा—हे गिरिश्रेष्ठ ! तुम्हारे नीचे जो असुर निवास करते हैं वे ब्रह्माजी के वरदान से अवध्य होगये हैं, इसलिये लोक कल्याणार्थ मैं तुम्हारा अवरोध करूँगा, इससे वे दैत्य बाहर न निकल सकेंगे और मैं उनका सहार कर डालूँगा ॥ ४६ ॥

त्वयि सन्निहितश्चाह भविष्यामि महागिरे ।

अधिष्ठाय महाघोराऽनिवत्स्यामि च पर्वत ॥४९॥

आरुह्य मूर्ध्नि मद्रूपं दृष्ट्वा पर्वतसत्तम ।

गोसहस्रप्रदानस्य फलं प्राप्स्यति शाश्वतम् ॥५०॥

त्वत्तोऽश्मभिश्च प्रतिमां कारयित्वा हि भक्तितः ।

शुश्रूषयन्ति ये नित्यं मम यास्यन्ति ते गतिम् ॥५१॥

इति तं पर्वतं कृष्णो वरदोऽनुगृहीतवान् ।

तदाप्रभृति देवेशस्तत्र सन्निहितोऽभ्युत ॥५२॥

पापार्णं प्रतिमां तात कारयित्वा च कौरव ।

शुश्रूषन्ति कृतात्माना विष्णुलोकाभिवाङ्क्षिण ॥५३॥

उन घोर असुरों को मार कर मैं इसी स्थान पर निवास करूँगा इससे हमारा-तुम्हारा सम्पर्क भी चिरस्थायी होगा ॥ ४९ ॥ हे गिरिश्रेष्ठ ! जं



२ मुत्रा ऊँची करके तुम पर चढ़ेगा, उसे हवाय गोमों के दान का फल  
 हाथा ॥ ५० ॥ जो तुम्हारे पापाणु की नेकर उमंग मेंसे प्रतिमा बनायेग  
 भविष्य महिष मुक्त पूजे, वे मेरे मासोद को प्राप्त हों ॥ ५१ ॥ हे  
 राजन् ! वरदाता भगवान् धीशृणु उम पर्वत पर कृपा करते हुए निरा वहीं  
 निवास करने लगे ॥ ५२ ॥ इमोनिये विष्णु सांक की कामना बाने मनुष्य उम  
 पर्वत के पादपान में प्रतिमा बना कर सदा आराधना में लगे रहते हैं ॥ ५३ ॥

॥ पारिजात का द्वारका लाया जाना ॥

युद्ध आरम्भ होगया ॥ ४ ॥ श्रीकृष्ण ने भीषण बाण वर्षा करके देवराज की सेना को सत्रस्त करना प्रारम्भ किया ॥ ५ ॥ इन्द्र और श्रीकृष्ण दोनों ने प्रहार करने में समर्थ होकर भी परस्पर में किसी पर प्रहार नहीं किया ॥ ६ ॥ श्रीकृष्ण ने उस समय दस-दस बाण एक साथ चला कर देवपक्ष के एक-एक अश्व को ब्रह्म किया ॥ ७ ॥

शैब्याद्यानपि देवेन्द्रः शरैरमरसत्तमः ।  
 छादयामास राजेन्द्र घोरैरस्त्राभिमन्त्रितैः ॥८  
 स च बाणसहस्रं च कृष्णो गजमवाकिरत् ।  
 गरुड च महतेजा बलभिद्धरिवाहनम् ॥९  
 भूमिप्लुताभ्या रथाभ्या तौ तदहः शत्रुदारणौ ।  
 युयुधाते महात्मानौ नारायणसुराधिपौ ॥१०  
 चकम्पे वसुधा कृत्स्ना नीर्जलस्थेव भारत ।  
 दिशा दाहेन दिग्देशाः सवृताश्च समन्ततः ॥११  
 चेलुर्गिरिवराश्चैव तुश्च शतशो द्रुमाः ।  
 पेतुश्च धरणीपृष्ठे मर्त्या धर्मगुणान्विता ॥१२  
 निर्घाताः शतशश्चान्ये पेतुस्तत्र नराधिप ।  
 ऊहृश्च सरितः सर्वाः प्रतिस्त्रोतो विशापते ॥१३  
 विष्वग्गता धनुश्चैव पेतुस्तत्काश्च निष्प्रभाः ॥  
 मुहुर्मुहुर्भूतमङ्गा रथनादेन मोहिताः ॥१४

इन्द्र ने भी श्रीकृष्ण के अश्वों पर भीषण अस्त्र वर्षा की जिससे वे व्याप्य दित होगये ॥ ८ ॥ इस प्रकार इन्द्र और कृष्ण दोनों ही अपने-अपने रथों पर बैठे रह कर दिन भर निरंतर संधामरत रहे ॥ ९ ॥ उस युद्ध के कारण पृथिवी जल में चलने वाली नाव के समान डगमग करने लगी और दसों दिशा जाती हुई प्रतीत हुई ॥ १० ॥ पर्वत कापन लगे, पृथिवी पर गिरे हुए मृक देर लग गये, और मनुष्य वन पृथिवी पर सेट गये ॥ ११ ॥ संस्त्रो प्रभव वा एक साथ आन्ध्रस होने लगा और नद-नदियों के प्रवाह बदल गये ॥ १२ ॥

प्रायु बबहर वन कर धक्कर काटने लगा, उत्काओं की प्रमा नष्ट होगई तथा रथ-चक्रों के भीषण शब्द से ससार के सभी प्राणी चेष्टा हीन होकर पृथिवी पर गिरने लगे ॥ १४ ॥

प्रजज्वाल जले चैव वह्निर्जनपदेश्वर ।

युयुधुश्च ग्रहेः सार्द्धं ग्रहा नमसि सर्वतः ॥१५

ज्योतीषि शतशः पेतुः स्वर्गान्च धरणीतलम् ।

दिशा गजाः प्रकुपिता नागाश्च धरणीतले ॥१६

गर्दमारुणसंस्थानं शिछन्नाभ्रंश्चावृत नभः ।

विनदद्भिर्महारावान्क्षशोणितवर्षिभिः ॥१७

न भूतं द्यौर्न गगनं नरेन्द्रवृषभाभवन् ।

खस्थानि सुरवीरो तु दृष्ट्वा युद्धगतौ तदा ॥१८

जेषुमुनिगणा मन्त्राज्जगतो हितकाम्यया ।

ब्राह्मणाश्च महात्मानो ह्यतिष्ठस्तेषु सत्वरः ॥१९

ततो ग्रह्या महातेजाः कश्यप वाक्यमब्रवीत् ।

गच्छ वध्वा सहादित्या पुत्री वारय सुव्रत ॥२०

स तथेति तदा देवमुक्त्वा पद्ममव मुनिः ।

जगाम रथमास्थाय नस्थी नरवरान्तिके ॥२१

अपनी-अपनी धुरी पर धूमते हुए ग्रहों में परस्पर भिड़ंत होगई और जल में आग लगती हुई दिखाई दी ॥ १५ ॥ आकाश से असह्य नक्षत्र टूट-टूट कर पृथिवी पर गिरने लगे । नाग और दिग्गज भी इस युद्ध से धुन्ध हो उठे ॥ १६ ॥ अरुणवर्ण के दिग्गज-मिन्न हुए बादलों से आकाश भर गया, उनसे भयकर शब्द होने लगा, उत्का-पात के साथ रुधिर की वर्षा होने लगी ॥ १७ ॥ उस समय भूमि, आकाश और स्वर्ग का भी पता न लगता था, विश्व-कल्याण की कामना लाते महर्षि तथा विप्रगण मंत्रों को अपने लगे ॥ १८-१९ ॥ इसके परचात्र ग्रह्याजी ने महर्षि कश्यप को अपने पास बुलाया और उनसे बोले—हे सुव्रत ! आप अपनी अदिति को अपने पुत्रों के पास लेजाइये और उन्हें युद्ध करने से निवारण कीजिये

॥ २० ॥ ब्रह्माजी का आदेश सुन कर कश्यपजी अपनी भार्या अदिति के साथ  
रथ पर चढ़ कर अपने पुत्रों के पास पहुँचे ॥ २१ ॥

स्थित तु कश्यप दृष्ट्वा सहादित्या तदाऽन्तरा ।  
उभौ रथाम्ब्या धरणीमवतीर्णौ महाबलौ ॥२२॥  
न्यस्तशस्त्रौ च तौ वीरो बबन्दतुररिदमौ ।  
पितरौ धर्मतत्त्वज्ञौ सर्वभूतहिते रतौ ॥२३॥  
उभौ गृहीत्वा हस्ताभ्यामदितिस्त्वन्नवीद्वच ।  
असौदराविवैव किमन्योय हन्तुमिच्छत ॥२४॥  
स्वल्पमर्थं पुरस्कृत्य प्रवृत्तमतिदारुणम् ।  
सदृश नेति पश्यामि सर्वथा मम पुत्रयो ॥२५॥  
श्रोतव्यं यदि मातुश्च पिनुश्चैव प्रजापते ।  
न्यस्तशस्त्रौ स्थितौ भूत्वा कुरुत वचन मम ॥२६॥  
तथेत्युक्त्वा च तौ देवौ स्नातुकामौ महाबलौ ।  
गङ्गा जम्भतुरेवाथ प्रजल्पन्तौ परस्परम् ॥२७॥

अत्यन्त प्रतापी दोनों पुत्रों ने जैसे ही माता पिता को सम्मुख देखा, वैसे  
ही अपने-अपने शस्त्रों को त्याग कर रथ से उतरे और धर्मतत्त्वज्ञ तथा लोकहित  
में तत्पर उन दोनों के चरणों में प्रणाम किया ॥ २२-२३ ॥ तभी देवमाता  
अदिति ने इन्द्र और कृष्ण दोनों के मस्तक पर हाथ फेर कर कहा—पुत्रों ।  
तुम दोनों विमाता से उत्पन्न भाइयों के समान परस्पर में एक दूसरे की हत्या  
करने में क्यों उद्यत हो ? ॥ २४ ॥ यह कार्य मेरे पुत्रों के अनुरूप नहीं है फिर  
तुम ऐसे सामान्य कार्य के लिये यह भयानक कर्म क्यों कर रहे हो ? ॥ २५ ॥  
यदि तुम माता पिता की आज्ञा मानना अपना कर्त्तव्य समझते हो तो तुरन्त ही  
हमारी बात पर ध्यान देते हुए युद्ध बन्द कर दो ॥ २६ ॥ इस प्रकार माता-  
पिता की आज्ञा मान कर इन्द्र और कृष्ण ने युद्ध बन्द कर दिया तथा गंगा स्नान  
को चलते हुए परस्पर प्रेमपूर्वक वार्त्तालाप करने लगे ॥ २७ ॥

त्व प्रभुर्लोककृत्कृत्स्नराज्येऽहं स्थापितस्त्वया ।  
स्थापयित्वा कथं नाम पुनर्ममिवमन्यसे ॥२८॥

भ्रातृत्वमुपगम्यैव ज्येष्ठत्व चाप्यपोह्य च ।  
 कथं कमलपक्षाक्ष निर्वाणं कर्तुमिच्छसि ॥२८॥  
 स्नातो तु जाह्नवीतोये पुनरभ्यागतो नृप ।  
 यक्षादितिः कश्यपश्च महात्मानो दृढव्रतौ ॥३०॥  
 प्रियसगमनं नाम त देश मुनयोऽबदन् ।  
 यत्र तो सगतो चोनो पितृभ्या कमलेक्षणौ ॥३१॥  
 ततः शक्रस्थ कौरव्य दत्त्वा वाचाऽभय तदा ।  
 यस्य देवगणाः सर्वे समेता धर्मचारिणः ॥३२॥  
 ततो ययुर्विमानं स्तु देवाः सर्वे त्रिविष्टपम् ।  
 ऋद्ध्या परमया युक्तास्तेषामेवानुरूपया ॥३३॥  
 कश्यपश्चादितिश्चैव तथा शक्रजनादनी ।  
 विमानमेकमारुह्य गता राज त्रिविष्टपम् ॥३४॥

उभी इन्द्र बोले—हे कृष्ण ! आप तीनों संकी के अधीश्वर हैं, आपने ही  
 ते स्वर्ग का राज्य दिया है, अब आप मेरे अपमान करने में क्यों तत्पर हुए ?  
 २८ ॥ आपने मुझे अपना बड़ा भाई मान लिया तो भ्रातृत्व के उस पवित्र नाते  
 में क्यों छोड़ना चाहते हैं ? ॥ २९ ॥ इन्द्र यह कह कर चुप होगये और दोनों  
 उठा गया स्नान करके महर्षि कश्यप और अदिति के पास आगये ॥३०॥ जिस  
 स्थान पर इन्द्र और कृष्ण ने अपने माता-पिता से भेंट की थी, वह स्थान 'प्रिय  
 सगम' नाम से विख्यात हुआ ॥ ३१ ॥ इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने इन्द्र को अभय  
 प्रदान किया और उनके साथ स्वर्ग चलने की उद्यत हुए ॥ ३२ ॥ इसी समय  
 सभी देवगण यथा योग्य विमानों पर आरुढ़ होकर स्वर्ग की ओर चले ॥ ३३ ॥  
 कश्यप, अदिति, कृष्ण और इन्द्र ने एकही विमान पर बैठ कर स्वर्ग की प्राप्ति  
 किया ॥ ३४ ॥

ते शक्रमुदनं प्राप्ता रम्यं सर्वगुणान्वितम्  
 ऊपुरेकक्ष कौरव्य मुदिता धर्मचारिणः ॥३५॥  
 शची तु कश्यपं पत्न्या सहित धर्मवत्सला ।  
 उपाचरन्महात्मानं सर्वभूतहिते रतम् ॥३६॥

ततस्तस्या प्रभाताया रजन्यामब्रवीद्वरिम् ।  
 अदितिर्धर्मतत्त्वज्ञा सर्वभूतहित वचः ॥३७॥  
 उपेन्द्र द्वारका गच्छ पारिजात नयस्य च ।  
 वध्वा सप्रापयस्वेष पुण्यक हृदये स्थितम् ॥३८॥  
 पुण्यके सत्यया प्राप्ते पुनरेष त्वया तरु ।  
 नन्दने पुरुषश्चेष्ट स्थाप्य स्थाने यथोचिते ॥३९॥  
 एवमस्त्विति कृष्णेन देवमाता यशस्विनी ।  
 उक्ता धर्मगुणैर्युक्ता नारदेन महात्मना ॥४०॥  
 ततोऽभिवाद्य पितर मायर च जनार्दन ।  
 महेन्द्रं सह शच्याऽथ प्रतस्थे द्वारका प्रति ॥४१॥

वही जाकर वे सब एक ही स्थान पर बंटे और इन्द्राणी ने परम उपकार करने वाले सात इक्षुर का पूजन किया ॥ ३१-३६ ॥ फिर रात्रि के व्यतीत होने पर प्रभात हुआ तब धर्म-तत्त्व के जानने वाली माता अदिति ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा कि हे उपेन्द्र ! हे कृष्ण ! अब तुम द्वारका जाओ और अपनी पत्नी को इस पुण्य के कारण रूप पारिजात को दे दो ॥ ३७-३८ ॥ वहाँ का कार्य पूर्ण होने पर इसे पुन यही नन्दनकानन में साकर स्थापित कर देना ॥ ३९ ॥ देवर्षि नारद ने अदिति की बात का अनुमोदन किया तब श्रीकृष्ण अदिति, कश्यप, इन्द्र और इन्द्राणी आदि को नमस्कार कर पारिजात सहित द्वारका को चल दिये ॥ ४०-४१ ॥

## ॥ पट्पुर का वध ॥

वंशम्पायन धर्मज्ञ व्यासशिष्य तपोधन ।  
 पारिजातस्य हरणे पट्पुरं परिकीर्तितम् ॥१॥  
 निवासोऽमुरमुद्याना दारुणाना तपोधन ।  
 तेषा वध मुनिश्चेष्ट कीर्तयस्वान्धकस्य च २  
 त्रिपुरे निहते वीरे रुद्रेणाकिलष्टकर्मणा ।  
 तस प्रधाना बहवो बभूवुरसुरोत्तमा ॥३॥

शराग्निना न दग्धास्ते रुद्रेण त्रिपुरालयाः ।  
 पथिः दत्तसहस्राणि न न्यूनान्यधिकानि च ॥४  
 ते ज्ञातिवधसत्पत्ताश्चक्रुर्वीराः पुरा तपः ।  
 जम्बूमार्गे सतामिष्टे महर्षिगणसेविते ॥५  
 आदित्याभिमुखा वीराः सहस्राणां शतं समाः ।  
 वायुभक्षा नृपथेष्ठे स्तुवन्तः पद्मपंभवम् ॥६

उक्त वृत्तान्त के उपरान्त जनमेजय ने वैशम्पायनजी से कहा—हे व्यास-  
 शिष्य वैशम्पायनजी ! हे तपोवन ! आप सब वृत्तान्तों के ज्ञाता हैं । आपने पारि-  
 षात-हरण के प्रसंग में पट्पुर के विषय में कहा था, इसलिये आप कृपया उन  
 पट्पुर वासी दैत्यो और अन्नकापुर के मारे जाने की कथा कहिये ॥१-२॥  
 वैशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! जब भगवान् शंकर और त्रिपुरासुर के मध्य  
 संग्राम हुआ था, उस समय अनेको दानव युद्ध में उपस्थित हुए थे ॥३॥ परन्तु,  
~~वैशम्पायनजी~~ ने त्रिपुरासुर के अतिरिक्त अन्य किसी भी दानव को अपनी शराग्नि से  
 दह नहीं किया । उस समय वहाँ साठ लाख से अधिक दानव नहीं थे ॥४॥ वे  
 सभी दानव अपने बाधव त्रिपुरासुर के मारे जाने से अत्यन्त सतप्त होते हुए  
 ऋषियो द्वारा सेवित जम्बू मार्ग पर निवास करने लगे और वहाँ उन्होंने ब्रह्माजी  
 की स्तुति करते हुए केवल वायु भक्षण पूर्वक भूय की ओर मुख करके एक सहस्र  
 वर्ष तक कठिन तपस्या की ॥५-६॥

तेषामुदुम्बरं राजगण एकः समाश्रितः ।  
 वृक्षं तस्मावसन्वीरास्ते कुर्वन्तो महत्तमः ॥७  
 कपित्थवृक्षमाश्रित्य केचित्त शोषिताः पुरा ।  
 शृगालवादीस्त्वपरे चेरुग्रं तथा तपः ॥८  
 वटमूले तथा चेरुस्तपः कौरवनन्दन ।  
 अधीयन्तो परं ब्रह्म वटं गत्वाऽमुरात्मजाः ॥९  
 तेषां तुष्टः प्रजाकर्ता नरदेवपितामहः ।  
 वरं दातुं सुरश्रेष्ठः प्राप्तो धर्मभृतां वरः ॥१०

वरं वरयतेत्युक्तास्ते राजन्यप्रयोनिना ।  
 नेपुस्तद्वरदानं तु द्विपतस्त्र्यंशक विभुम् ॥११  
 इच्छन्तोऽपचितिं गन्तुं ज्ञानिना कुरुनन्दन ।  
 तानुवाच ततो ब्रह्मा सर्वज्ञः कुरुनन्दन ॥१२  
 विश्वस्य जगत कर्तुः सहतुंश्च महात्मनः ।  
 कः शक्तोऽपचितिं गन्तु भाऽस्तु वोऽय वृथा श्रमः ॥१३

उनमें से कोई गूलर के नीचे बँठ कर तप कर रहे थे, कोई शृगालबादो वृक्ष की छाया में बँठ कर उपासना रख थे और कोई बट वृक्ष के मूल पर बँठ कर वेद मन्त्रों के उच्चारण पूर्वक ब्रह्माजी की उपासना कर रहे थे ॥७-६॥ तब उनके तप से ब्रह्माजी अत्यन्त प्रसन्न हुए उन्हें वर देने के लिये वहाँ पहुँचे ॥१०॥ वे बोले—हे दानवों ! मैं तुम्हारे तप से अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ, इसलिये तुम इच्छित वर माँगो । दानवों ने कहा—हे प्रभो ! शिवजी ने हमारा जो बहिष् किया है, उनसे अपना बदला चुका कर हम अपने वधुओं के ऋण से उद्धृत होना चाहते हैं, यही हमारी इच्छा है इस पर ब्रह्माजी बोले—हे दानवों ! भगवान् शंकर तो इस ससार के रक्षयिता और संहारक हैं, उन्हें भला कौन मार सकता है ? इसलिये तुम्हारा यह विचार सफल नहीं हो सकता ॥११-१३॥

अनादिमध्यनिधनः सोमो देवो महेश्वरः ।  
 तमसूय सुखं स्वर्गं वस्तुमिच्छन्ति ये सुराः ॥१४  
 ते नेपुस्तत्र केचित्तु दुरात्मानो महासुराः ।  
 अथेपुरपरे राजन्नसुरा भव्यभावनाः ॥१५  
 नेपुर्यं सुदुरात्मानस्तानुवाच पितामहः ।  
 वरयध्व वरं वीरा रुद्रक्रोधमृतेऽसुराः ॥१६  
 त ऊचु सर्वदेवानामवध्याः स्याम हे विभो ।  
 पुराणि पट् च नो देव भवन्त्वन्तर्महीतले ॥१७  
 सर्वकामसमृद्धार्थं पट्पुर चास्तु नः प्रभो ।  
 वयं च पट्पुर गत्वा वसेम च सुखं विभो ॥१८



रुद्रादुग्र भय न स्याद्येन नो ज्ञातयो हता ।  
 निहत त्रिपुर दृष्ट्वा भीता स्म तपसा निधे ॥१८  
 असुरा भवतावध्या देवाना शङ्करस्य च ।  
 न वाधिष्यथ चेद्विप्रांसत्यथस्थान्सता प्रियान् ॥२०  
 विप्रोपघात मोहान्चेत्करिष्यथ कथ चन ।  
 नाश यास्यथ विप्रा हि जगत परमा गति ॥२१

ब्रह्माजी की यह बात सुन कर जो दानव शिवजी के पराक्रम को जानते थे, वे तो सहमत्त होगये, परन्तु जो शिवजी से विरोध करके स्वर्ग में सुख से रहना चाहते थे, उन्होंने ब्रह्माजी की बात नहीं मानी । इसलिये ब्रह्माजी ने उनसे कहा—हे दानवो ! शिवजी की क्रोध-वृद्धि करने वाले वर के अतिरिक्त तुम्हें कोई अन्य वर माँग लेना चाहिये ॥१४ ॥१६॥ तब उन दुष्टों ने कहा—ह प्रभो ! देवान हमें न मार सके और हमारे निवास के लिये पृथिवी के नीचे छ पुर बन गये ॥१७॥ यह छोड़ो पुर सुख, सम्पत्ति और ऐश्वर्य से परिपूर्ण हो, जिससे के हम उन पुरों में जाकर सुख से निवास कर सकें ॥१८॥ शिवजी ने हमारे अन्य बांधवा के साथ त्रिपुरासुर को भी मार दिया है, जिससे हम बहुत भय उपस्थित हुआ है । इसलिये आप हमारे लिये ऐसा यत्न करें जिससे हम उनके भय से मुक्त हो जायें ॥१९॥ इस पर ब्रह्माजी ने कहा—हे दानव ! यदि तुम उर्य माग के अनुयायी ब्राह्मणों को दुःख न दागे तो तुम शिवजी व्यववा अन्य किसी भी देवता के द्वारा नहीं मारे जा सकोग ॥२०॥ इसका विपरीत यदि तुमने किसी ब्राह्मण का अपकार किया तो तुम्हारा नाश हो जायगा ॥२१॥

नारायणाद्विभेनव्य कुवद्विब्राह्मणाहितम् ।  
 सर्वभूतेषु भगवान्हित धत्ते जनादन ॥२२  
 ते गता असुरा राजन्ब्रह्मणा ये विसर्जिता ।  
 येऽपि भक्ता महादेवमसुरा धर्मचारिण ॥२३  
 स्वयं हि दर्शनं तेषां ददौ त्रिपुरनाशन ।  
 श्वेतं कृष्णमारुह्य सोम सप्रवरं प्रभु ।  
 उवाचेदं च भगवानसुरान्सं सता गति ॥२४

वैरमुत्सृज्य दम्भं च हिंसां चासुरसत्तमाः ।  
 मामेव चाश्रितास्तस्माद्वरं साधु ददामि वः ॥२५॥  
 यैर्दक्षिताः स्य मुनिभिः सत्क्रियापरमैर्द्विजैः ।  
 सह तैर्गन्ध्याता स्वर्गः प्रीतोऽहं वः सुकर्मणा ॥२६॥  
 इह ये च व वत्स्यन्ति तापसा ब्रह्मवादिनः ।  
 अपि कापित्थिका वृक्षे तेषा लोको यथा मम ॥२७॥

क्योंकि इस विश्व की परम गति ब्राह्मण हैं, इसलिये उनके अपकार करने से विष्णु रुष्ट होंगे ॥२२॥ हे राजन् ! इस प्रकार वर पाकर दैत्यगण विदा हुए । उनमें से जो शिव-भवत थे उनके सम्मुख वृषभवाहन भगवान् शिवजी स्वयं प्रकट होकर उनसे बोले—हे दानवो ! तुम्हारे वैर, दम्भ और विद्वेष को छोड़ कर मेरे क्षरण मे जाने से मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ और तुम्हें वर देता हूँ कि जिन सत्य-निष्ठ ब्राह्मणों से तुमने सत्य मार्ग पर चलने की प्रेरणा ली है, उनके साथ तुम भी स्वर्ग लोक को प्राप्त होगे, क्योंकि मैं तुम्हारे सदाचरण से बहुत सतुष्ट हुआ हूँ ॥२३-२६॥ जो इस गूलर के नीचे बैठ कर तप करेंगे, वे मेरे सालोक्य के अधिकारी होंगे ॥२७॥

॥ श्रीकृष्ण का षट्पुर को प्रस्थान ॥

एतस्मिन्नेव काले तु चतुर्वेदपटङ्गवित् ।  
 ब्राह्मणो याज्ञवल्क्यस्य शिष्यो धर्मगुणान्वितः ॥१॥  
 ब्रह्मदत्तंति विख्यातो विप्रो वाजसनेयिवान् ।  
 अश्वमेधः कृतस्तेन वसुदेवस्य घीमतः ॥२॥  
 स सवत्सरदीक्षाया दीक्षितः पट्पुरालयः ।  
 आवर्तायाः शुभे तीरे सुनद्या मुनिजुष्टया ॥३॥  
 सखा च वसुदेवस्य सहाध्यायी द्विजोत्तमः ।  
 उपाध्यायश्च कौरव्य क्षीरहोता महात्मनः ॥४॥  
 वसुदेवस्तत्र यातो देवक्या सहितः प्रभो ।  
 जयमानं पट्पुरस्थं यथा शको बृहस्पतिम् ॥५॥

तत्सर्वं ब्रह्मदत्तस्य बह्वन्तं बहुदक्षिणम् ।  
उपासन्ति मुनित्रेष्ठा महात्मानो दृढव्रताः ॥६॥  
व्यासोऽहं याज्ञवल्क्यश्च सुमन्तुर्जमिनिस्तयः ।  
धृतिमाञ्ज्वालिश्चैव देवलाद्याश्च भारत ॥७॥

बंशम्पायनजी ने कहा—हूँ राजन् ! इसी समय में चार वेद और छहों  
अंगों के ज्ञाता याज्ञवल्क्य के शिष्य ब्रह्मदत्त ने पट्पुर में यावर्ता नदी के किनारे  
वसुदेवजी के लिए एक वर्ष तक चलने वाला अश्वमेध यज्ञ किया ॥१-३॥ ब्रह्म-  
दत्त वसुदेवजी के सङ्गाठी, उगाध्याय, अच्युत के साथ ही उनके परम मित्र भी  
थे ॥४॥ इन्द्र के गृहस्थितिजी के पास जाने के समान देवकी के सहित वसुदेवजी ने  
यज्ञ की दीक्षा ली और ब्राह्मण श्रेष्ठ ब्रह्मदत्त के पास पट्पुर जा पहुँचे ॥५॥  
जिस प्रकार उस यज्ञ में अन्न दान किया जाता था, उसी प्रकार प्रचुर दक्षिणा  
देने की भी व्यवस्था थी । यज्ञताला में बहुत-से दृढव्रती महारमागज पधारे हुए  
थे ॥६॥ मैं, वेदव्यास, याज्ञवल्क्य, सुमन्तु, जमिनी, द्यागलि और देवल आदि  
बहुत से ऋषि, महर्षि उपस्थित थे ॥७॥

ऋद्धयाऽनुरूपया युक्तं वसुदेवस्य धीमतः ।  
यत्रेप्सितान्ददौ कामान्देवकी धर्मचारिणो ॥८॥  
वासुदेवप्रभावेण जगत्स्रष्टुर्महीतले ।  
तस्मिन्सस्त्रे वर्तमाने दत्ता पट्पुरवासिनः ॥९॥  
निकुम्भाद्याः समागम्य तमूचुर्वरदपिता ।  
कार्यता यज्ञभागो नः सोम पास्यामहे वयम् ।  
कन्याश्च ब्रह्मदत्तो नो यजमानः प्रयच्छतु ॥१०॥  
बह्वधः सन्त्यस्य कन्याश्च रूपवत्या महात्मनः ।  
आहूय ताः प्रदातव्याः सर्वथैव हि नः श्रुतम् ॥११॥  
रत्नानि च ब्रह्मदत्तो विशिष्टानि ददातु नः ।  
अन्यथा तु न यष्टव्यं वयमाज्ञापयामहे ॥१२॥  
एतच्छ्रुत्वा ब्रह्मदत्तस्तानुवाच महासुरान् ।  
यज्ञभागो न विहितः पुराणेऽसुरसत्तमाः ॥१३॥

कथं सत्ते सोमपानं शक्यं दातुं मया हि वः ।

पृच्छतेह मुनिश्चोष्ठान्वेदभाष्यार्थकोविदान् ॥१४

वासुदेवजी की श्रद्धा के अनुसार धर्म का आचरण करने वाली देवकी आये हुए व्यक्तियों का स्तुकार कर रही थी ॥१४॥ इन सब कार्यों में भगवान् कृष्ण की महिमा ही दिखाई दे रही थी, यज्ञ का अनुष्ठान ठीक प्रकार से चल रहा था, सभी पट्पुर में रहने वाले निकुम्भादि दानवों ने वहाँ आकर गर्वयुक्त वाणी में कहा—हे यजमान् ! तुम हमारे लिये यज्ञ-भाग दो, हम भी सोम-पान की इच्छा करते हैं । हमें ज्ञात हुआ है कि ब्रह्मदत्त की बहुत-सी सुन्दरी कन्याएँ हैं, उन सभी को हमें दे दो ॥१५-१६॥ इसके अतिरिक्त यहाँ जो भी श्रेष्ठ रत्न हैं, वे सब भी हमें सौंप दो, अन्यथा तुम्हारा यह यज्ञ कभी भी पूर्ण नहीं हो सकेगा ॥१७॥ यह सुन कर ब्रह्मदत्त बोले—हे असुरश्रेष्ठ ! वेदों में आपके लिये यज्ञ-भाग की कहीं व्यवस्था नहीं है तो हम आपके लिये यज्ञ-भाग और सोम-रस किस प्रकार दे सकते हैं ? यहाँ वेदभाष्य के ज्ञाता अनेकों मुनिजन उपस्थित हैं, आप चाहें तो उनसे पूछ लें ॥१६-१४॥

कन्या हि मम या देयास्ताश्च सकल्पिता मया ।

अन्तर्वेद्यां प्रदास्य्याः सहशानामसशयम् ॥१५

रत्नानि तु प्रवञ्छामि सान्त्वेनाह विचिन्त्यताम् ।

यलान्नं व प्रदास्यामि देवकीपुत्रमाश्रितः ॥१६

निकुम्भाद्यास्तु रुषिताः पापाः पट्पुरवासिनः ।

यज्ञवाटं विलुलुपुर्जहन् कन्याश्च तास्तथा ॥१७

तद्दहन्ना सप्रवृत्ता तु दध्यावानकदुन्दुभिः ।

वासुदेव महात्मानं बलभद्रं गदं तथा ॥१८

विदितार्थस्ततः कृष्णः प्रचुम्नमिदमब्रवीत् ।

गच्छ कन्यापरित्राणं कुरु पुत्राणु मायया ॥१९

यावदादयसंन्येन पट्पुरं याम्यहं प्रभो ।

स ययौ पट्पुरं वीरः पितुराज्ञाकरस्तदा ॥२०

निमेषान्तरमात्रेण गत्वा कामो महाबलः ।

कन्यास्ता मायया धीमानुपजह्ने महाबलः ॥२१॥

मायामयोश्च कृत्वाऽन्या न्यस्तवान्किमणीसुतः ।

मा भैरिति च धर्मात्मा देवकीमुक्तवास्तदा ॥२२॥

आपने कन्याओं के देने की जो बात कही है, उस विषय में मेरे पूर्व निश्चयानुसार वे अन्तर्वेद प्रदेश में अपने अनुह्य पतियों को प्राप्त होंगे ॥१५॥ हाँ, एत्यों के विषय में यह है कि मैं आपको रत्न उमी दे सकता हूँ जब आप शक्तिपूर्ण ढँग से लेना चाहें, अन्यथा हम श्रीकृष्ण के अनुयायी बल-प्रयोग द्वारा तो वह भी कभी नहीं दे सकते ॥१६॥ इस पर इष्ट होकर निकुम्भादि पापी दानवों ने पत्त को भग्न कर दिया और ब्रह्मदत्त की कन्याओं को बलान् उठा कर ले गये ॥१७॥ यह देख कर बभ्रुदेवजी ने कृष्ण, बलराम और गद को याद किया ॥१८॥ तभी श्रीकृष्ण को सब बातें मालुम होगई और उन्होंने प्रद्युम्न को आवा दी—है पुत्र ! तुम शीघ्र ही पट्पुर को प्रस्थान करो और अपनी माता के प्रभाव से ब्रह्मदत्त की कन्याओं को बचाओ ॥१९॥ यह सुन कर प्रद्युम्न ने उत्तर दिया —है तात ! मैं अपनी अपनी सेना के साथ वहाँ जाता हूँ । यह कह कर प्रद्युम्न वहाँ से तुरन्त ही चल दिये ॥२०॥ निमेष मात्र में ही वहाँ पहुँच कर प्रद्युम्न ने उन दानवों को माया से निर्मित कन्याएँ देकर ब्रह्मदत्त की कन्याओं को उनसे छीन लिया और देवकी से बोले कि आप भय न करें ॥२१-२२॥

मायमयोस्तो हत्वा मुता ह्यस्य दुरासदाः ।

पट्पुर विविगुर्दत्ताः परितुष्टा नराधिप ॥२३॥

कर्म चासायते तव विधिदृष्टेन कर्मणा ।

यद्विशिटं बहुगुण तदभूच्च नराधिप ॥२४॥

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता राजानस्तत्र भारत ।

सन्ने निमन्त्रिताः पूर्वं ब्रह्मदत्तेन धीमता ॥२५॥

जरासन्धो दन्तवक्त्रः शिशुपालस्तथैव च ।

सण्डका क्षात्रेण्डाहूयन् सल्लताः उदणास्तथा ॥२६॥

रुक्मी चेवाह्व तिश्चैव नीलो वा धर्म एव च ।  
 विन्दानुविन्दावावन्त्यौ शल्यः सकुनिरेव च ॥२७॥  
 राजानश्चापरे वीरा महात्मानो दृढायुधाः ।  
 आवासिता नातिदूरे पटपुरस्य च भारत ॥२८॥

उधर वे दानव उन मायामयी कन्याओं को लेकर अत्यन्त हर्षित होते हुए अपनी पुरी में गये ॥२३॥ इधर यज्ञ का शेष रहा कार्य भी विधि विधान सहित निर्विघ्न पूर्ण होगया ॥२४॥ तभी ब्राह्मण श्रेष्ठ ब्रह्मदत्त द्वारा निमन्त्रित किये गये राजागण सब ओर से आ-आकर वहाँ एकत्रित होगये ॥२५॥ जरासन्ध, दन्तवक्त्र, शिशुपाल, पाण्डवगण, धृतराष्ट्र-पुत्रगण, मालवगण, रुक्मी, आह्वति, नील, धर्म, विन्द, अनुविन्द, आवन्त्य, शल्य, सकुनि तथा अन्यान्य प्रत्येक राजाओं ने वहाँ आकर अपने अपने डेरे लगा लिये ॥२६-२८॥

तान्दृष्ट्वा नारद श्रोमानचिन्तयदनिन्दितः ।  
 क्षत्रस्य यादवानां च भविष्यति समागमः ॥२९॥  
 अत्र हेतुरह युद्धे तस्मात्तात्प्रयताम्यहम् ।  
 एव सचिन्तयित्वा स निकुम्भभवनं गतः ॥३०॥  
 पूजितः स निकुम्भेन दानवैश्च तथाऽपरे ।  
 सपविष्टः स धर्मात्मा निकुम्भमिदमब्रवीत् ॥३१॥  
 कथं विरोधं यदुभिः कृत्वा स्वस्थैरिहास्यते ।  
 यो ब्रह्मदत्त स हरिः स हि तस्य विभुः सखा ॥३२॥  
 शतानि पञ्च भार्याणां ब्रह्मदत्तास्य धीमतः ।  
 आनीता वसुदेवस्य सुतस्य प्रियकाम्यया ॥३३॥  
 शतद्वयं ब्राह्मणीनां राजन्यानां शतं तथा ।  
 वंश्यानां शतमेकं च शूद्राणां शतमेव च ॥३४॥

देवपि नारदजी ने जब उन सब राजाओं को इकट्ठे हुए देखा सोचने लगे कि अब कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे युद्ध छिड़ जाय। ऐसा निश्चय करके भर्षि नारद निकुम्भ के भवन में जा पहुँचे ॥२९-३०॥ उन्हें

देखते ही निकुम्भादि दानव उनका स्वागत करते हुए उठे तथा उनसे समुचित सत्कृत हुए ऋषि ने आसन पर बैठ कर उनसे कहा ॥३१॥ हे दानवो ! यादवो से वर करके भी तुम ऐसे निश्चिन्त क्यों हो रहे हो ? देखो कृष्ण और ब्रह्मदत्त मे अत्यन्त मंत्री है ॥३२॥ भगवान् कृष्ण के अनुग्रह से ही ब्रह्मदत्त ने पाँच सौ सुन्दर नारियाँ प्राप्त की हैं ॥३३॥ उनमें दो सौ ब्राह्मणी, सौ क्षत्राणी, सौ वैश्याएँ और सौ सूत्राएँ हैं ॥३४॥

ताभिः शुश्रूषितो धीमान्दुर्वासा धर्मवित्तमः ।  
 तेन तासा वरो दत्तो मुनिना पुण्यकर्मणा ॥३५॥  
 एकैकस्तनयो राजन्नेकैका दुहिता तथा ।  
 रूपेणानुपमाः सर्वा वरदानेन धीमतः ॥३६॥  
 कन्या भवन्ति तनयास्तस्यासुर पुनः पुनः ।  
 सङ्गमे सङ्गमे वीर भर्तृभिः शयने सह ॥३७॥  
 सर्वपुष्पमय गन्धं प्रस्रवन्ति वराङ्गनाः ।  
 सर्वदा यौवने न्यस्ताः सर्वाश्चैव पतिव्रताः ॥३८॥  
 सर्वा गुणैरप्सरसा गीतनृत्यगुणोदयम् ।  
 जानन्ति सर्वा दत्तेय वरदानेन धीमतः ॥३९॥  
 पुत्राश्च रूपसपन्नाः शास्त्रार्थकुशलास्तथा ।  
 त्वे त्वे स्थिता वर्णधर्मे यथावदनुपूर्वशः ॥४०॥  
 ताः कन्या भ्रममुद्याना दत्ताः प्राणेन धीमता ।  
 अधशेष क्षत त्वेकं यदानीत किल त्वया ॥४१॥  
 तदर्थं यादवान्वीर योषयिष्यसि सर्वथा ।  
 सहायार्थं तु राजानो त्रियन्तां हेतुपूर्वकम् ॥४२॥

उन सनी ने महर्षि दुर्वासा की सेवा-सुश्रूषा की थी और तब महर्षि ने । होकर उन्हें वर दिया था कि तुम प्रत्येक बार के पति-सहवास में एक-पुत्र और एक-एक कन्या प्राप्त करोगी ॥३५-३७॥ वे कन्याएँ सुन्दर अग, सौ गंध, स्थिर यौवन वाली तथा नृत्य-गान-कुशला और पति-परायणा होधी

॥३८-३९॥ पुत्र भी अत्यन्त सुन्दर, शास्त्रार्थ के ज्ञाता तथा अपने अपने वर्ण-धर्म के मानने वाले होंगे ॥ ४० ॥ इस प्रकार दुर्वासा के वर से प्राप्त हुई उन कन्याओं को ब्रह्मदत्त ने यादवों को दे दिया है । उनमें से केवल एक सौ बची थी, उन्हें ही तुम ला सके हो ॥ ४१ ॥ इसलिये शेष कन्याओं की प्राप्ति के लिये तुम्हें यहाँ आये हुए राजाओं से संधि करके यादवों से युद्ध करना उचित है ॥ ४२ ॥

ब्रह्मदत्तसुतार्थं च रत्नानि विविधानि च ।  
 दीयन्ता भूमिपालानां सहायार्थं महात्मनाम् ॥४३॥  
 आतिथ्यं क्रियता चैव ये समेष्यन्ति वै नृपाः ।  
 एवमुक्ते तथा चक्रुरसुरास्तेऽतिहृष्टवत् ॥४४॥  
 लब्ध्वा पञ्चशतं कन्या रत्नानि विविधानि च ।  
 यथार्हेण नरेन्द्रं स्ता विभक्ता भक्तवत्सला ॥४५॥  
 ऋते पाण्डुसुतान् वीरान् वारिता नारदेन ते ।  
 निमेषान्तरमात्रेण तप्तं गत्वा महात्मना ॥४६॥  
 तुष्टं स्तैरसुरा ह्युक्ता राजन्भूमिपसत्तमैः ।  
 सर्वकामसमृद्धार्थं भवद्विद्यमैः स्वयम् ॥४७॥  
 अर्चिता स्म यथान्यायं क्षत्रं किं व प्रयच्छतुः ।  
 क्षत्रं चाचितपूर्वं हि दिव्यैर्वीरैर्भवद्विधैः ॥४८॥  
 निकुम्भोऽयाग्रवीदधृष्ट क्षत्रं सुररिपुस्तदा ।  
 अनुवर्णयित्वा क्षत्रस्य माहात्म्यं सत्यमेव च ॥४९॥

यदि रत्नादि वें प्रदान द्वारा भी कन्याओं की प्राप्ति के लिये तुम्हें आगत नरेशोम की सहायता प्राप्त हो सके तो लाभ ही है ॥ ४३ ॥ इसलिये यहाँ जितने राजा आज हैं, उन्हें सत्कारादि करके अपनी ओर मिला लो । यह सुन कर दानवगण बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने राजाओं का धन रत्नादि से सत्कार कर शेष सौ कन्याएँ भी भेंट में दी । इससे प्रसन्न हुए राजाओं ने दान और कन्याओं की परस्पर में बाँट लिया ॥ ४४-४५ ॥ परन्तु, नारद



जी के कहने से पाण्डवों ने उस बेंटवारे में कोई सहयोग नहीं दिया ॥४६॥ जिन राजाओं ने धन-रत्न और कन्यादि को प्राप्त किया था, उन्होंने दानवों से कहा कि आप तो वंशवादि में देवताओं के समान हैं, क्योंकि आपके पास किसी भी वस्तु की न्यूनता नहीं है ॥४७॥ आपने हमारा जैसा आतिथ्य-सत्कार एवं अन्वयेना की है, वंसी कभी किसी के द्वारा नहीं हुई । इसलिये हम सब आप लोगों का उपकार करने में तत्पर हैं ॥४८॥ यह मुन कर देवताओं के गनु निहुम्भ ने हर्षपूर्वक उन राजाओं के बल-वीर्य की प्रशंसा की ॥४९॥

युद्धं नो रिपमिः साद्धं भविष्यति नृपोत्तमाः ।

साहाय्य दातुमिच्छामो भवद्भिस्तत्तु सर्वया ॥५०॥

एवमस्त्विति तानूचुः क्षत्रियाः क्षीणकिल्बिषाः ।

पाण्डवेयानृते वीराञ्छ्रुत्वायन्निारदाद्विभो ॥५१॥

क्षत्रियाः सन्निविष्टास्ते युद्धाय कुस्मन्दन ।

पत्न्यस्तु ब्रह्मदत्तस्य यज्ञवाटं गता अपि ॥५२॥

कृष्णोऽपि सेनया साद्धं प्रययौ पट्टपुरं विभुः ।

महादेवस्य वचनमुद्धह्मनसा नृप ॥५३॥

स्थापयित्वा द्वारवत्यामाहुकं पार्थिव तदा ।

स तया सेनया नाद्धं पौराणा हितकाम्यया ॥५४॥

यज्ञवाटस्याविदूरे देवो निविविसे विभुः ।

देशे प्रवरकल्याणे वमुदेवप्रचोदितः ॥५५॥

दत्तगुल्मप्रतिसरं कृत्वा त विधिवत्प्रभुः ।

प्रद्युम्नमटने श्रीमान् रक्षाय विनिवृज्य च ॥५६॥

है नरेगण ! जलुआ से हमारा शीघ्र ही युद्ध होन वाला है, उसमे आपकी महायत्न अपेक्षित है ॥५०॥ पाण्डवों के अतिरिक्त अन्य सभी राजाओं निहुम्भ की बात स्वीकार की ॥५१॥ उन राजाओं ने यज्ञवाता में ब्रह्म-त की पत्नियों के उपस्थित होते हुए भी युद्ध प्रारम्भ कर दिया ॥ ५२ ॥ पर श्रीकृष्ण ने भी उद्घनेन को शायन-नार तौर कर बहव-नी सेना के

सहित पट्पुर को प्रस्थान किया ॥५३॥ वहाँ जाकर उन्होंने वसुदेवजी के परामर्श से यज्ञशाला के निकट ही अपने डेरे छास दिये ॥५४॥ शिविर के सभ ओर रक्षक-चौकियाँ बना कर और प्रद्युम्न को उनकी रक्षा का भार देकर स्वयं सब प्रकार की सावधानी को बतते हुए घूमन लगे ॥५५-५६॥

## ॥ पट्पुर युद्ध में राजाओं का वन्द होना ॥

मुहूर्ताभ्युदिते सूर्ये जनचक्षुषि निर्मले ।  
 बल कृष्ण सात्यकिश्च नाक्षर्यमारुहुस्तदा ॥१॥  
 बद्धगोधाङ्गुलिस्त्राणा दक्षिता युद्धकाक्षिण ।  
 बिल्वोदकेश्वर देव नमस्कृत्य सुरोत्तमम् ॥२॥  
 आवर्ताया जले स्नात्वा रुद्रेण वरदत्तया ।  
 गङ्गाया कुरुशादूल रुद्रवाक्येन पुण्यया ॥३॥  
 प्रद्युम्नमग्रे सैन्यस्य वियति स्थाप्य मानद ।  
 रक्षार्थं यज्ञवाटस्य पाण्डवान्विनियुज्य च ॥४॥  
 शेषा सेना गुहाद्वारि भगवान्विनियुज्य च ।  
 जयन्तमथ सस्मार प्रवर च सता गति ॥५॥  
 तावापेततुरेवाथ स्वयं चापश्यता तथा ।  
 वियत्येव निमुक्ती ती प्रद्युम्न इव भारत ॥६॥  
 ततः कृष्णस्य वचनादाहतो रणदुन्दुभिः ।  
 जलजा मुरजाश्चैव वाद्यान्येवापराणि च ॥७॥

वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! सूर्योदय होने पर बलराम, कृष्ण, सात्यकि आदि शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर और गरुड पर चढ़ कर अपने शिविरों से निकले एवं शिवजी के वर से गंगाजी के समान हुई आवर्ता नदी में स्नान तथा बिल्वोदकेश्वर भगवान् का उन्होंने दर्शन किया ॥१-३॥ सेना के अग्र भाग में प्रद्युम्न को तथा यज्ञशाला की रक्षा के लिये पाण्डवों को नियुक्त किया गया ॥४॥ बची हुई सेना की मुष्ठा के द्वार पर लगा कर श्रीकृष्ण ने इन्द्र

५ पुत्र जयन्त और प्रवर नामक ब्राह्मण का स्मरण किया ॥५॥ इस पर वे दोनों  
 [उत्त ही उनके समक्ष आगये, तब उन दोनों को आकाश मीमं की रक्षा का भार  
 मिला गया ॥६॥ फिर श्रीकृष्ण के कहने पर सब ओर युद्ध के बाजे बजने लगे,  
 जेनमे दु दुनि, जलज, मुरज आदि बाजे विशेष उल्लेखनीय थे ॥७॥

माकरो रचितो व्यूहः साम्बेन च गदेन च ।  
 मारणश्चोदवश्चेव भोजो वंतरणस्तथा ॥८॥  
 अनाघृष्टिश्च धर्मत्मा पृथुविपृथुरेव च ।  
 कृतवर्मा च दष्टश्च विचक्षुररिमर्दनः ॥९॥  
 मनत्कुमारो धर्मत्मा चारुदेणश्च भारत ।  
 अनिरुद्धसहायो तौ पृष्ठानीक ररक्षतुः ॥१०॥  
 शोपा यादवसेना तु व्यूहमध्ये व्यवस्थिता ।  
 रथैरश्वैर्न र्नागैराकुला कुलवर्द्धन ॥११॥  
 पट्पुरादपि निष्क्रान्ता दानवा युद्धदुर्मदाः ।  
 आरुह्य मेघनादांश्च गर्दमानपि हस्तिनः ॥१२॥  
 मकराञ्छिन्नुमाराश्च द्रुतानपि च भारत ।  
 महिषानपि खङ्गाश्च उष्ट्रानपि च कच्छपान् ॥१३॥  
 एतैरेव रथैर्युक्ता विविधायुधपाणयः ।  
 किरीटापीडमुकुटैरङ्गदैरपि मण्डिताः ॥१४॥

साम्ब और गद ने मकर व्यूह बनाया । सारण, उदव, भोज, वंतरण,  
 अनाघृष्टि, पृथु, विपृथु, कृतवर्मा, मुदष्ट, और विचक्षु व्यूह के बीच में नियुक्त  
 हुए ॥८-९॥ मनत्कुमार और चारुदेण अनिरुद्ध की सहायता से व्यूह के पिछले  
 भाग की रक्षा में नियुक्त हुए ॥१०॥ रथ, घोड़े, हाथी और पैदलों से युक्त  
 सम्पूर्ण सेना मकर व्यूह के मध्य में रखी गई ॥११॥ ऊपर युद्ध के लिये व्याकुल  
 हुए दानव भी पट्पुर से बाहर आये । उनमें से कुछ हाथियों पर, कुछ गधों पर,  
 कुछ मकरों पर, कुछ घोड़ों पर, कुछ बैलों पर, कुछ सिन्धुमार पर, कुछ गैंडा  
 पर, कुछ ऊँटों पर और कुछ रथों पर बैठे हुए थे । उन सबों के मन्त्रों पर  
 किरीट-मुकुट और हाथों में विविध प्रकार के शस्त्रादि विद्यमान थे ॥१२-१४॥

नानर्दमानं विविधैस्तूर्यैर्नमिस्वनाकुले ।

प्रध्मायमानं शङ्खैश्च महाम्बुदसमस्वनं ॥१५॥

तासामसुरसेनानामुद्यतानां जनेश्वर ।

निकुम्भो निर्ययावग्रे देवानामिव वासव ॥१६॥

भूमिं द्या च बवृधिरे दानवास्ते बलोत्कटा ।

नदन्तो विविधान्नादान्क्ष्वेडन्तश्च पुन पुन ॥१७॥

राजसेनाऽपि सयत्ता चेदिराजपुरोगमा ।

असुराणां सहायार्थं निश्चिता जनमेजय ॥१८॥

दुर्योधन भ्रातृशत चेदिराजानुजाग्रगम् ।

स्थित रथैर्नरव्यघ्र गन्धर्वनगरोपमै ॥१९॥

कठिना नादिनो वीरा द्रुपदस्यन्दनास्तथा ।

रुक्मी चेवाह्व तिस्रैव तस्यतुनिश्चितो रणे ।

तालवृक्षप्रतीकाशे धुन्वानो धनुषी शुभे ॥२०॥

शाल्यश्च शकुनिश्चोभो भगदत्तश्च पार्थिव ।

जरासन्धस्त्रिगर्तश्च विराटश्च सहोत्तर ॥२१॥

युद्धार्थमुद्यता वीरा निकुम्भाद्या जयैषिण ।

युयुत्समानायदुभिर्देवैरिव महासुरा ॥२२॥

वही तुरही बज रही थी, वही रथ व पहियों का शब्द हो रहा था और वहाँ नीपण मय गर्जना के समान शख ध्वनि हो रही थी ॥१५॥ देव-सेना के आगे इन्द्र व चलने के समान ही दानव थोड़े निकुम्भ दैत्य सेना के आगे आगे चला ॥१६॥ महाभारण बलवान व दानव अनवर प्रकार से सिंहाद करते हुए सम्पूर्ण पृथिवी और आकाश में छा गये ॥१७॥ जनमेजय । चेदिराज जब राजागण भी उन दैत्यों की सहायता के लिये अपनी सेना व साथ निबल पड़े ॥१८॥ दुर्योधन के सौ भाई भी विद्याल रथों पर चढ़ कर अपनी सेनाओं के आगे चले ॥१९॥ उस समय वीरों की गजरा के साथ राजा द्रुपद व रथबल का शब्द बड़ा नयानक प्रतीत हो रहा था । रुक्मी और व्यासृति व नी मुद्र का विषाद स्थिर कर तालवृक्ष के समान आन भरा विद्याल धनुषों की टेंगोर

॥१०॥ शल्य, शकुनी, भगदत्त, जरासन्ध, त्रिगर्त, विराट् और उत्तर—इन सभी वीरों ने निकुम्भ का साथ दिया । इसके पश्चात् दैत्यो ने यादवों को युद्ध की चुनौती दी ॥२१-२२॥

ततो निकुम्भः समरे शरैराशीविपोषमैः ।  
ममदं समरे सेना भ्रमाना भीमदर्शनाम् ॥२३॥  
सेनापतिरनाधृष्टिर्भूमृषे तत्र यादवः ।  
ममदं धोरैर्वाणौघैश्चित्रपुङ्खैः शिलाशितैः ॥२४॥  
न रथोऽसुरमुख्यस्य ददृशे न च वाजिनः ।  
न हव्रजो न निकुम्भस्तु सर्वे वाणाभिसंवृताः ॥२५॥  
स परीत्य ततो वीरो निकुम्भो मायिना वरः ।  
अस्तम्भयदनाधृष्टिं मायया भ्रमसत्तमम् ॥२६॥  
स्तम्भवित्त्वाऽनयद्वीर गुहा पट्पुरसज्जिताम् ।  
रह्वा चाम्यगमद्वीरो मायाबलमुपाश्रितः ॥२७॥  
पुनरेव निकुम्भस्तु कृतवर्माणमाहवे ।  
अनयच्चारुदेष्णं च भोजं वंतरणं तथा ॥२८॥  
सनत्कुमारमृक्षं च तथैव निशठोलमुको ।  
बहूश्चैवापरान्भोजान्मायाबलसमाश्रितः ॥२९॥

इसके पश्चात् दानवराज निकुम्भ रणक्षेत्र में अग्रसर हुआ और सपों के समान सह्रावे हुए भीषण बाणों से यादवों की सेना को नष्ट करने लगा ॥२३॥ तब उस बाण-वर्षा को निष्फल करने के लिये यादवों के सेनापति अनाधृष्टि ने अपने बाणों का प्रयोग किया और निकुम्भ की सेना को मारने लगा ॥ २४ ॥ अनाधृष्टि द्वारा की गयी बाण वर्षा में रथ, घोड़े, ध्वज आदि के सहित निकुम्भ भी डक गया ॥२५॥ तब निकुम्भ ने अपनी माया के प्रभाव से अनाधृष्टि को मूर्च्छित कर दिया ॥२६॥ फिर वह स्वयं अग्रसर रहता हुआ अनाधृष्टि को उठा अपनी कन्दरा में ले गया और उस वही रथ कर स्वयं फिर युद्ध में बाँटता और कृतवर्मा, चारुदेष्ण, वंतरण, सनत्कुमार, ऋक्षपुत्र, निशठ, उत्सुक आदि

अनेक यादवों को उसी प्रकार चेतना हीन कर करक कन्दरा में उठा ले गये ॥२७-२६॥

न तस्य ददृशे देहो मायाच्छूनो जनेश्वर ।  
 नयतो यादवान्घोराङ्गुहा पट्पुस्तज्जिताम् ॥३०॥  
 तद्दृष्ट्वा कदन घोर भ्रमाना भयवद्धन ।  
 चुकोप भगवान्कृष्णो बल सत्यक एव च ॥३१॥  
 सविशेष तथा काम साम्बश्च परवीरहा ।  
 अनिरुद्धश्च दुर्धर्षो भैमाश्च बहवोऽपरे ॥३२॥  
 तत शार्ङ्गापिध शार्ङ्गं कृत्वा सज्य नरेश्वर ।  
 दानवेपु प्रवृत्तपु तृणेष्विव हुताशन ॥३३॥  
 त दृष्ट्वा दानवा देवमभिदुद्रुवुरोश्वरम् ।  
 शलभा कालपाशार्ता प्रदीप्तामिव पावकम् ॥३४॥  
 समुत्सृज्य शतघ्नीश्च परिघाश्च सहस्रश ।  
 शूलानि चाग्नितुल्यानि प्रदीप्ताश्च परश्वधान् ॥३५॥  
 पवताग्राणि वृक्षांश्च घोराश्च विपुला शिला ।  
 उत्क्षिप्य च गजान्मत्तान्स्थानपि हयानपि ॥३६॥

इस प्रकार वह बारबार आकर एक-एक यादव को उठा ले जाता, उस समय वह अपने माया बल के कारण किसी को दिखाई नहीं देता था ॥ ३० ॥ यादवों की एसी दशा देख कर कृष्ण, बलराम, सात्यकि, प्रद्युम्न और मान्म आदि को अरुत कोप हुआ ॥३१-३२॥ फिर श्रीकृष्ण अपने धनुष को प्रत्यवा मुक्त करके तृण में स्थित अग्नि के समान दानवों के मध्य जा पहुँचे ॥३३॥ जैसे मृत्पु के मभीप पहुँच हुए पतन अग्नि की ओर भागते हैं, वैसे ही सब दानव श्री-कृष्ण को देखते ही उनकी ओर दौड़ पड़े ॥३४॥ उस समय वे दानव अग्नि-ज्वाला के समान गूल, फरस और पतपद फेंक-फेंक कर यादवों को धोके, रथ, हथकड़ी आदि को मार रहे थे ॥३५-३६॥

नारायणाम्निस्तान्सर्वाद्दवाह प्रहसन्निव ।

‘यागतिपयः’ अहत्तस्य ‘यागतिप्रपरे’ इति. १५७

शारदभर्षण यद्वत्सेहे घोरो गवा पति ।  
 तद्वद्यदुवृष. सेहे बाणवर्षमरिन्दम ॥३८  
 न सेहिरेऽसुरा बाणान्नारायणधनुश्च्युतान् ।  
 वर्षं पर्जन्यविहित बालुकासेतवो यथा ॥३९  
 न शोकु प्रमुखे स्थातु कृष्णस्यासुरसत्तमा. ।  
 व्यादितास्यस्य सिंहस्य वृषभा इव भारत ॥४०  
 ते बध्यमाना कृष्णेन दिवमाचक्रमुस्तदा ।  
 जीविताशा बहन्तस्तु नारायणभयादिता ॥४१  
 तानाकाशगतानैन्द्रिज्यन्तः प्रवरस्तथा ।  
 निजघ्नतु शरैर्वो रज्ज्वलिताविसर्गं प्रभो ॥४२

जैसे वर्षा के जल को बँस सहन करता है, वैसे ही वे दानुपक्ष के बाणों को सहन कर रहे थे । परन्तु श्रीकृष्ण ने जो बाण-वर्षा की, उसे वे सहन न कर सके और जल वर्षा से बाणों के पुल के बहने के समान ही दैत्यगण मृत्यु को प्राप्त होगये ॥३७-३९॥ जैसे मुख फैला कर आते हुए सिंह का सामना बँस नहीं कर सकता, वैसे ही श्रीकृष्ण के सामने दानवगण नहीं ठहर पाये ॥४०॥ और अपने प्राण नष्ट होने के भय से व्याकुल होकर आकाश मार्ग में उड़ने लग ॥ ४१ ॥ परन्तु, वहाँ ज्यन्त और प्रवर के होने से उनकी रक्षा नहीं हो सकी, क्योंकि उन्होंने अग्नि-शिखा के समान अपने बाणों की वर्षा करके उन्हें नष्ट कर दिया ॥ ४२ ॥

तत. पाशसहस्राणि जग्राह प्रवरोत्तम ।  
 शैलादिरत्नवीढ्वीर रौक्मिणेय महाबलम् ॥४३  
 विल्वोदकेश्वरो देव. प्राह त्वा यदुनन्दन ।  
 सद्यः कुरु तथा रात्र्या चोक्तस्त्व भो यथा मया ॥४४  
 कन्यार्थं रत्नसुव्रास्तु वद वा चेमान्नराधिपान् ।  
 पाशस्त्वमेव मोक्तुं च प्रमाणं यदुनन्दन ॥४५  
 असुरास्तु महाबाहो नि.शेषात्कतुं महं हि ।  
 एवमेव च वक्तव्यस्त्वया वीर जनार्दनः ॥४६

तत स भगदत्त च शिशुपाल च भूमिप ।  
 आहवृति चैव रुक्मि च शेषाश्चान्यान्नराधिपान् ॥४७॥  
 बबन्ध हरदत्तस्तै पाशैरुत्तमवीर्यधृक् ।  
 मायामयी गुहा चैवमानयत्कुसुनन्दन ॥४८॥  
 बद्ध्वा च रौक्मिणेयोऽय नि श्वसन्त इवोरगान् ।  
 अनिरुद्ध चकाराथ रक्षितार स्वमात्मजम् ॥४९॥  
 तेषा निरवशेषेण बबन्ध यदुनन्दन ।  
 सेनापतीन्क्षत्रियाश्च कोशाध्यक्षाश्च भारत ॥५०॥  
 हस्त्यश्वरथवृन्दाश्च चकार च तथात्मसात् ।  
 अव्यग्रस्तु ततो हन्तुममुरानुद्यत प्रभो ॥५१॥

इसी अवसर पर भगवान् रुद्र के प्रधान पार्षद नन्दी सहस्रो पाशास्त्रों को ग्रहण किये हुए वहाँ आये और उन्होंने प्रद्युम्न से कहा ॥ ४३ ॥ हे मधुनन्दन भगवान् बिल्वोदवेश्वर का कहना है कि मेरे द्वारा बतायी गई योजना के असार चल कर आप इन सभी राजाओं को पाशास्त्रों से बांध लें, फिर यह आ की इच्छा होने पर ही मुक्त हो सकेंगे ॥४४-४५॥ देवदेव ने भगवान् कृष्ण प्रति भी यह कहा है कि वे दानवा को शीघ्र ही मार डालें ॥४६॥ तब प्रद्युम्न ने भगवान् शंकर के भेज हुए पाशास्त्र को नन्दोद्वर से लेकर सर्पों के सम फुकार पेंवत हुए भगदत्त, शिशुपाल, आहवृति, रुक्मी आदि राजाओं को उस बांध कर अपने द्वारा निमित्त मायामयी गुफा में बन्द कर दिया । फिर अपने पुत्र अनिरुद्ध को उनकी चौकसी पर नियुक्त कर प्रद्युम्न ने उन राजाओं के सेन पतियों, छिनियों, कोषाध्यक्षों, हाथियों, घोड़ों और रथों आदि पर अपना आकार कर लिया । इसके पश्चात् वे उन वचे हुए दानवों को मारने के लिये असार हुए ॥४७-५१॥

सन्नद्ध एव चोवाच ब्रह्मदत्त द्विजोत्तमम् ।  
 विग्रन्ध वसन्तं कर्म मा न मश्य घनञ्जयम् ॥५२॥  
 न देवभ्यो नागुरभ्यो नागैर्भ्यो द्विजसत्तम ।  
 भयं हि विद्यते तस्य मोक्षारो यस्य पाण्डवाः ॥५३॥



न चामुरैस्तव सुताः स्पृष्टाः खल्वपि चेतसा ।

यज्ञवाटे निरीक्ष्यन्ता मायया निहिता मया ॥५४

उससे भी पहिले उन्होंने ब्राह्मण थोड़ ब्रह्मदत्त को यह आश्वासन दे दिया था कि जब आपके सामने घनजय अर्जुन उपस्थित हैं, तब आपको क्या आसका है ? ॥५२॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जिसकी रक्षा में पाण्डववध निमुक्त हैं, उन्हें देवता, चैत्य, नाग आदि किसी से भी भय नहीं है दैत्यगण आपकी कन्याओं को छू भी नहीं सकते, मैंने अपनी माया के प्रभाव से उनकी रक्षा का पूर्ण प्रबंध कर दिया है ॥५३-५४॥

## ॥ पट्पुर का वध ॥

रुद्धेषु भूमिपालेषु सानुगेषु विद्याम्पते ।

आविवेशासुराश्चाथ कश्मलं जनमेजय ॥१

दिशः प्रतस्थुस्ते वीरा बध्यमानाः समन्ततः ।

कुरणानन्तप्रभृतिमिर्युं दुमिर्युं ददुमंदेः ॥२

निकुम्भस्तानथोवाच रुपितो दानवोत्तमः ।

मित्वा प्रतिज्ञां किं मोहान्द्रुयार्ता यात विह्वलाः ॥३

होनप्रतिज्ञाः काल्लोकान्प्रयास्यथ पलायिताः ।

अगत्वाऽपचितिं युद्धे ज्ञातीना कृतनिश्चयाः ॥४

फलं जित्वैव नोवतव्यं रिपून्समरककंशान् ।

हतेन चापि शूरेण वस्तव्यं निदित्रे मुग्धम् ॥५

पलायित्वा गृहं गत्वा कस्य द्रव्यं हे मुग्धम् ।

दारान्वक्ष्यथ किं चापि सिन्धिविक किं लज्जय ॥६

एवमुक्ता निवृत्तास्ते लज्जमाना नृपासुराः ।

द्विगणेन च वेगेन युयुधुपंदुभिः सह ॥७

बंशभायनजी ने कहा—हे राजन् ! जब अपने अनुगतों के सहित सब ब्राह्मण वंश-हेमों तब दैत्यगण अत्यन्त सुख हुए तथा श्रीकृष्णसुभद्रास्य आदि के साथ नाव को प्राप्त होते हुए दैत्य-सैनिक सभी शिताओं में पनायन करन लगे

॥१-२॥ यह देख कर दैत्यो के राजा निकुम्भ ने अत्यन्त क्रोध पूर्वक उन भाग्नियों से कहा—अरे दानवो ! तुम अपने निश्चय से फिर कर इस प्रकार क्यों भाग रहे हो ? बताओ, प्रतिज्ञा-भंग करके युद्ध क्षेत्र से भागने वाले को किस लोक में स्थान मिलता है ? ॥४॥ युद्ध में घोर शत्रु को हराने पर ही विजय श्री की प्राप्ति अथवा मर जाने पर स्वर्ग की उपलब्धि होती है ॥५॥ इस प्रकार भागने पर तुम्हें घर में ही कौन-सा सुख मिलेगा ? तुम अपनी स्त्रियों को क्या उत्तर दोगे ? अरे क्या तुममें सज्जा का कुछ अंश भी नहीं बचा है ? ॥६॥ निकुम्भ की ललकार सुन कर बचे हुए राजा और दैत्य सज्जित होकर सप्राम में पहिले से भी दुगुने उत्साह से जुट पड़े ॥७॥

उत्सवे युद्धशौण्डानां नानाप्रहरणैर्नृप ।  
 ये यान्ति यज्ञवाटं त तान्निहन्ति धनञ्जयः ॥८॥  
 यमो भीमश्च राजा च धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।  
 द्या प्रयाताञ्जघानन्दिः प्रवरश्च द्विजोत्तमः ॥९॥  
 अथासुरासृक्तोयाढ्या केशवलशाड्वला ।  
 चक्रकर्मरथावर्ता गजगलानुशोभिनी ॥१०॥  
 ध्वजकुन्ततरुच्छन्ना स्तनितोत्कुष्टनादिनी ।  
 गोविन्दशैलप्रभवा भीरुचित्तप्रमाथिनी ॥११॥  
 असृग्बुद्बुदफेनाढ्या असिमत्स्यतरङ्गिणी ।  
 सुभ्राव शोणितनदी नदीव जलदागमे ॥१२॥

जो भी युद्ध कुशल कीर शस्त्रास्त्र ग्रहण करके यज्ञ शाखा में गये, वे युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव आदि के द्वारा मारे गये और जो प्राण-रक्षा के लिये आवाप्त मार्ग में उठे वे जयन्त और प्रवर के हाथ से समाप्त होगये ॥८-९॥ उस समय युद्ध क्षेत्र में वर्षा काल की नदी के समान ही रक्त की नदी प्रवाहित होगई, जिसमें रथ के चक्र कण्डुशो के समान, हाथी पर्वत के समान, ध्वज और बाण वृक्ष के समान, तलवारों मछलियों के समान तथा पीतलार आ-छन्द बरतोल के समान खगने लगे । उस नदी का उद्गम स्थल श्रीऽप्यु रूपी

ति था । उस नदी को देख कर कायरों का तो हृदय भी काँप रहा था  
॥ १०-१२ ॥

ददर्शाय निकुम्भस्तु केशवं रणदुर्जयम् ।  
अर्जुनेन स्थितं साढं यज्ञवाटाविदूरतः ॥१३॥  
स नाद सुमहान्कृत्वा पक्षिराजमताडयत् ।  
परिधेण सुघोरेण बल सत्यक्रमेव च ॥१४॥  
नारायणं चार्जुनं च भीमं चाय युधिष्ठिरम् ।  
यमौ च वासुदेव च साम्ब काम च वीर्यवान् ॥१५॥  
युयुधे मायया दैत्यः शीघ्रकारी च भारत ।  
न चैनं ददृशुः सर्वे सर्वशस्त्रविशारदाः ॥१६॥  
यदा तु नं वापश्यस्त तदा विल्वोदकेश्वरम् ।  
ददृशौ देव हंपीकेतः प्रमथाना गणेश्वरम् ॥१७॥  
ततस्ते सहृणु सर्वे प्रभावादतितेजसः ।  
विल्वोदकेश्वरस्याशु निकुम्भं मायिना वरम् ॥१८॥  
कैलासशिखराकारं ग्रसन्तमिव धिष्ठितम् ।  
आह्वयन्तं रणे कृष्ण वैरिणं ज्ञातिनाशनम् ॥१९॥  
सज्यगाण्डीवमेवाथ पार्यस्तस्य रथेषुभिः ।  
परिधं चैव गानेषु विव्याधैनमयासकृत् ॥२०॥  
ते वाणास्तस्य गाक्षेषु परिधं च जनाधिप ।  
भग्नाः शिलाशिताः सर्वे निपेतुः कुञ्चितः क्षिती ॥२१॥

फिर निकुम्भ युद्ध में दुर्जय श्रीकृष्ण के पास गया तो उसने उन्हें अर्जुन के साथ यज्ञभाला के निकट देखा ॥१३॥ तब उसने भीषण सिंहनाद करके गरुड़, बत्सराम, सातरकि, कृष्ण, अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, वसुदेव, साम्ब और प्रद्युम्न पर अपने परिधों से प्रहार किया ॥१४-१५॥ फिर वह अपने माया-शूल से बहुरूप होकर बड़े-बड़े शीशों को भी दिखाई नहीं देता था ॥१६॥ इससे उसे मारने में कोई भी समर्थ नहीं हुआ, यह देख कर श्रीकृष्ण ने भगवान् विल्वोदकेश्वर का ध्यान किया ॥१७॥ तभी भगवान् उठकर वीर कृपा से सब को

दिव्य दृष्टि मिल गयी और मायावी निकुम्भ उन्हें दिखाई देने लगा ॥१८॥ उस का कैलास शिखर जैसा आकार था, जिससे ऐसा प्रतीत होता था कि वह उस को अपने पेट में रख लेगा । इस प्रकार युद्ध के लिये ललकारता हुआ वह दैत्य श्रीकृष्ण के सामने आया । तभी अर्जुन ने अपने गाढीव पर प्रत्यचा चढ़ा कर निकुम्भ और उसके परिघ पर बाण वर्षा आरम्भ की ॥१९-२१॥

विफलानस्त्रयुक्तास्तान्दृष्ट्वा बाणान्धन जय ।  
 पप्रच्छ केशव वीर किमेतदिति भारत ॥२२॥  
 पर्वतानापि भिन्दन्ति मम वज्रोपमा शरा ।  
 किमिदं देवकीपुत्र विस्मयोऽस्त महान्मम ॥२३॥  
 तमुवाच ततः कृष्ण प्रहसन्निव भारत ।  
 महद्भूतं निकुम्भोऽयं कौन्तेय शृणु विस्तरात् ॥२४॥  
 पुरा गत्वोत्तरकुरुस्तपश्चक्रे महासुर ।  
 शतवर्षसहस्राणां देवलत्तुर्दुरासद ॥२५॥  
 अथैनं छन्दयामास वरेण भगवान्हर ।  
 स वयं लीणि रूपाणि न वध्यानि सुरासुरं ॥२६॥  
 तमुवाच महादेवो भगवान्वृषभध्वज ।  
 मम वा ब्राह्मणानां वा विष्णोर्वाऽप्रियमाचरन् ॥२७॥

परन्तु उनके छोड़े हुए सभी बाण निकुम्भ का और उसके परिघ का स्पर्श होते ही टूट टूट कर पृथिवी पर गिर गये ॥२२॥ हे राजन् ! यह देख कर अर्जुन बोला—हे प्रभो ! यह कैसे विस्मय की बात है कि मेरे जिन बाणों से बड़े बड़े पर्वत तक उड़ जाते हैं, वे सब इस समय व्यर्थ क्यों हो रहे हैं ? ॥२३-२४॥ तब श्रीकृष्ण ने विचित्र मुसकान के साथ कहा—हे अर्जुन ! निकुम्भ में जिस अलौकिक शक्ति का समावेश हुआ है, उसका कारण मैं तुम्हें विस्तार से बताता हूँ, सुनो ॥२५॥ इस महाबली दानव ने पहिले कुरुक्षेत्र में एक लाख वर्ष तक घोर तपस्या की थी । तब इस पर प्रसन्न होकर भगवान् धरु ने इससे व माँगने को कहा और इसने उनसे देवताआ या दैत्यो द्वारा न मारे जाने का वर माँगा ॥२६-२७॥



दैत्य अपनी पटपुर नाम की गुफा में प्रविष्ट होगया ॥३३॥ तब भगवान् श्रीकृष्ण भी उसके पीछे-पीछे चलते हुए उसी भयंकर बन्दरा में जा पहुँचे ॥३४॥ उसने भीतर सूर्य-चन्द्रमा की ज्योति नहीं पहुँचती थी, अपना ही प्रकाश उसे प्रकाश करता रहता था । उसमें सुख-दुःख, शीत-उष्ण की प्राप्ति भी अपनी इच्छा अनुसार होती रहती थी ॥३५॥

तत्र प्रविश्य भगवानपश्यत् जनाधिपान् ।  
 युयुधे सह घोरेण निकुम्भेन जनाधिप ॥३६॥  
 कृष्णस्यानुप्रविष्टास्तु बलाद्या यादवास्तदा ।  
 प्रविष्टाश्च तथा सर्वे पाण्डवास्ते महात्मनः ॥३७॥  
 समेतास्तु प्रविष्टास्ते कृष्णस्यानुमतेन व ।  
 युयुधे स तु कृष्णेन रौक्मिणेयः प्रचोदितः ।  
 अनयद्यादवान्सर्वान्यानय बद्धवान्पुरा ॥३८॥  
 ते मुक्ता रौक्मिणेयेन प्राप्ता यत्न जनादेनः ।  
 प्रहृष्टमनसः सर्वे निकुम्भवधकाङ्क्षिणः ॥३९॥  
 राजानो वीर मुञ्चेति पुनः काम यथाञ्जवीत् ।  
 मुमोच चाथ तान्वीरो रौक्मिणेयः प्रतापवान् ॥४०॥  
 अधोमुखमुखाः सर्वे बद्धमौना नराधिपाः ।  
 लज्जयाऽभिप्लुता वीरास्तस्थुर्नष्टश्रियस्तदा ॥४१॥  
 निकुम्भमपि गोविन्दः प्रययन्त जय प्रति ।  
 मोक्षयामास भगवान्घोरमात्मरिपुं हरिः ॥४२॥

भगवान् कृष्ण ने उस गुफा में जाकर देखा कि निकुम्भ ने जिन यादवों का हरण किया था, वे सब यहीं स्थित हैं । तभी निकुम्भ का और कृष्ण का युद्ध होने लगा ॥३६॥ कृष्ण के पीछे-पीछे बलराम आदि यादव और युधिष्ठिरादि पाण्डव भी उस गुफा में जा पहुँचे ॥३७॥ वहाँ जो यादवगण बंदी बनाये हुए थे, वे सभी श्रीकृष्ण ने प्रद्युम्न से बंध कर मुक्त करा दिये, तब वे बन्धन से छूटे हुए यादव श्रीकृष्ण के पास आये । फिर श्रीकृष्ण के आदेश पर प्रद्युम्न

प्रतिपक्षी राजाओं को भी मुक्त कर दिया, तब वे सब भी लज्जा से मस्तक झुकाये हुए तथा स्तब्ध और मलीन होकर श्रीकृष्ण के सामने जाकर खड़े होगये ॥३८-४१॥ तभी श्रीकृष्ण और निकुञ्ज में भयकर युद्ध छिड़ गया ॥४२॥

परिधेणाहतः कृष्णो निकुम्भेन भृशं विभो ।  
गदया चापि कृष्णेन निकुम्भस्ताडितो भृशम् ॥४३॥  
तावुभौ मोहमापन्तौ सुप्रहारहतौ तदा ।  
ततः प्रव्यधितान्दृष्ट्वा पाण्डवाश्चाथ यादवान् ॥४४॥  
जेपुमुनिगणास्तत्र कृष्णस्य हितकाम्यया ।  
तुण्डुबुध्न महात्मानं वेदप्रोक्तस्तथा स्तवः ॥४५॥  
ततः प्रत्यागदप्राणो भगवान्केशवस्तदा ।  
दानवश्च पुसर्वीराबुध्नौ समर प्रति ॥४६॥  
चृपमाविव नदन्तौ गजाविव च भारत ।  
शालावृकाविव क्रुद्धौ प्रहरन्तौ रणोत्कटौ ॥४७॥  
अथ कृष्ण ततोवाच नृप वागशशरीरिणी ।  
चक्रेण समयस्त्वेन देवराहाणकण्टकम् ॥४८॥  
इति होवाच भगवान्देवो बिल्वोदकेश्वरः ।  
धर्मं यशश्च त्रिपुल प्राप्नुहि त्व महाबलम् ॥४९॥

तभी निकुञ्ज ने परिध से कृष्ण पर और कृष्ण ने निकुञ्ज पर गदा से आघात किया ॥४३॥ इन प्रकार परस्पर भीषण प्रहार होने से कृष्ण और निकुञ्ज दोनों ही मूर्च्छित होगये । यह देख कर यादवों और पाण्डवों में भारी भय छागया । उस समय श्रीकृष्ण की कुशलता के लिये मुनियों ने वेद-मंत्रों के जप प्रारंभ उनकी रक्षा की ॥४४-४५॥ फिर उन दोनों पुनः खेप्टावान् होने पर पुनः क्रुद्ध शूराओं के समान प्रहार युक्त युद्ध प्रभुत हुआ ॥४६-४७॥ तभी आकाशवाणी हुई—हे कृष्ण ! देवताओं और ब्राह्मणों के लिये दून रूप इस दैत्य को आप अपने चक्र से शीघ्र मार दीजिये ॥४८॥ इससे आपको महान् धर्म तथा भारी गुणन की प्राप्ति होगी । इस प्रकार उनसे भगवान् गदर ने आकाश-वाणी में कहा ॥४९॥

तथेत्युक्त्वा नमस्कृत्वा लोकनाथ सता गति ।  
 सुदर्शनं मुमोचाथ चक्रं दैत्यकुलान्तकम् ॥५०॥  
 तन्निकुम्भस्य चिच्छेद शिरः प्रवरकुण्डलम् ।  
 नारायणभुजोत्सृष्टं सूर्यमण्डलवर्चसम् ॥५१॥  
 उत्पपात शिरस्तस्य भूमौ ज्वलितकुण्डलम् ।  
 मेघमत्तो गिरे शृङ्गान्मयूर इव भूतले ॥५२॥  
 निकुम्भे निहते तस्मिन्देवो वित्त्वोदकेश्वर ।  
 तुतोप च नरव्याघ्र जगत्नासकरो विभु ॥५३॥  
 पपात पुष्पवृष्टिश्च शक्रसृष्टा नभस्तलात् ।  
 देवदुन्दुभयश्चैव प्रणेदुररिनाशने ॥५४॥  
 नननद च जगत्कुरुत्स्न मुनयश्च विशेषतः ।  
 दैत्यकन्याश्च भगवान्यदुभ्यः शतशो ददौ ॥५५॥  
 क्षत्रियाणां च भगवान्सान्त्वयित्वा पुनः पुनः ।  
 रत्नानि च विचित्राणि वासांसि प्रवराणि च ॥५६॥  
 रथानां वाजियुक्तानां पटसहस्राणि केशव ।  
 अददत्पाण्डवेभ्यश्च प्रीतात्मा गदपूर्वज ॥५७॥  
 तदेव चाथ प्रवरपटपुरपुरवर्द्धन ।  
 द्विजाय ब्रह्मादत्ताय ददौ ताक्ष्यंवरध्वज ॥५८॥

श्रीकृष्ण ने देववाणी को स्वीकार कर और शिवजी को नमस्कार करते  
 अपने सुदर्शन चक्र का प्रतिष्ठा किया ॥५०॥ इस प्रकार उस सूर्य के समान तेज-  
 स्वी चक्र से निवृन्म का कुण्डलो से विभूषित मस्तक कट कर पृथिवी पर गिर  
 गया ॥५१॥ जैसे जलधर को देख कर उमत्त हुआ और पवन स पृथिवी पर  
 आ गिरता है, वैसे ही निवृन्म का कटा हुआ मस्तक धरती पर आगिरा ॥५२॥  
 हे राजन् ! निवृन्म की मृत्यु से वित्त्वोदकेश्वर अत्यन्त प्रसन्न हुए और सत्तार  
 की भी शान्ति-लाभ हुआ ॥५३॥ उस समय स्वयं इंद्र ने आकाश से पुनः-वृष्टि  
 की, दुर्दान्ता ब्रह्मने तर्फी, सम्पूर्ण विद्वत् और मुनिगण व्यानन्द विभोर हो उठे  
 और सब धीरुष्ण ने यादवों को ऐश्वर्य देख कर व्यापक प्रसन्न कीं । उन्हो १ पांडवों



ये घोड़ों के सहित छः हजार रथ, विभिन्न छत्रियों को विविध प्रकार के विभूषन  
न तथा ग्राह्यगुप्येष्ट ब्रह्मदत्त को पट्टपुर नगर ही दे दिया ॥१८-१८॥

सत्रे समाप्ते च तदा शत्रुचक्रगदाधरः ।

विमर्जयित्वा तत्क्षेत्रं पाण्डवाश्च महाबलः ॥१९॥

वित्तोदकेश्वरस्माथ समाजमकरोत्प्रभुः ।

मासरूपसमाकीर्णं बहून्नं व्यञ्जनाकुलम् ॥२०॥

नियुङ्गुलान्मलान्देवो मन्त्रप्रियस्तदा ।

योऽयित्वा ददौ भूरि वित्तं वस्त्राणि चात्मवान् ॥२१॥

मातापितृभ्यां सहितो यदुभिश्च महाबलः ।

अभिवाप्य ब्रह्मदत्तं ययौ द्वारवतीं पुरीम् ॥२२॥

स विवेश पुरीं रम्यां हृष्टपुञ्जनाकुलम् ।

पुण्यचित्तपथा वीरो वन्द्यमानो नरैः पथि ॥२३॥

यज्ञ के सम्पन्न होने पर भगवान् श्रीकृष्ण ने इस प्रकार अग्न्याग्न रात्राओं  
बाहिर के सहित मर्यादित हुए पाण्डवों को विदा किया ॥२३॥ फिर उन्होंने  
वित्तोदकेश्वर के निमित्त एक महोत्सव का आयोजन किया जिसमें विभिन्न प्रकार  
के स्वादिष्ट भोजनों को तैयार करा कर सब को संतुष्ट किया ॥२४॥ फिर युद्ध  
हुगल मत्स्यो का मत्स्य मुड देगा और उन्हें बनेक प्रकार के घन, वस्त्र आदि  
दिये ॥२५॥ फिर ग्राह्यगुप्येष्ट ब्रह्मदत्त को प्रणाम करके अपने माता-पिता के  
सहित श्रीरुप्य वहाँ से द्वारिका के लिये चल दिये ॥२६॥ जिस समय वैभयमयी  
उस पुरी में उनका जागमग हुआ, उस समय उसके सभी राज मागों को पुण्य-  
माताओं से सजाया गया और उनके दोनों ओर सहे हुए स्त्री-पुरुषों ने उनका  
वन्दन-प्रकार किया ॥२७॥

दम यः पट्टपुरस्थं पित्र्यं चक्रपाणिनः ।

शृणुवाद्वा पठेद्वापि मुदे जयमशप्सुमान् ॥२८॥

अपुत्रो नमते पुत्रमग्नौ नमते धनम् ।

व्याधिनो मुच्यन्ते रोगो यदब्राह्मण्यं वन्द्यमान् ॥२९॥

इदं पुंसवनं प्रोक्तं गर्भाधनं च भारत ।

श्राद्धेषु पठितं सम्यगक्षय्यकरणं स्मृतम् ॥६६॥

इदममरवरस्य भारते प्रथितजनस्य जय महात्मनः ।

सततमिदं यः पठेन्नरः सुगतिमिदं व्रजते गतज्वरः ॥६७॥

मणिकनकविचित्रपाणिपादो निरतिशयार्कगुणोऽरिहादिनाथः ।

चतुर्दशविंशत्यश्रुविधात्मा जयति जगत्पुरुषः सहस्रनामा ॥६८॥

हे जनमेजय ! भगवान् की इस विजय और पट्पूर वध के वृत्तान्त वं जो मनुष्य पढ़ते अथवा सुनते हैं, उनकी युद्ध में जीत होनी है ॥६४॥ तथा जिन के पुत्र नहीं होता, वे पुत्रवान्, धनहीन धनवान्, रोगी निरोग और बन्धन पड़े हुआ को मुक्तकार मिता है ॥६५॥ पुसवन, गर्भाधान अथवा श्राद्धादि समय तो यह क्षय-रहित महामन ही हो जाता है ॥६६॥ जो मनुष्य देवश्रेष्ठ परम प्रसिद्ध महारमा श्रीकृष्ण के इस विजय-वृत्त का पाठ करते हैं, वे सासारि क धियों से छूट कर श्रेष्ठ गति को प्राप्त होते हैं ॥६७॥ हाथ-पावो में मणि जटित स्वर्ण-आभूषणों के धारण करने वाले, सूर्य से भी अधिक तेजस्वी, सर्वेश्वर, चतुःसमुद्रशासी, चतुर्विध रमा, शत्रुओं के नाशक, सहस्रो नाम वाले जगत्पति भगवान् श्रीकृष्ण की जय हो ॥६८॥

## ॥ अन्धकामुर का वध ॥

श्रुतोऽयं पट्पूरवधो रम्यो धुनिवरोत्तम ।

पुरोक्तमन्धकवधं वैशम्पायन कीर्तय ॥१॥

भानुमत्पाशच हरणं निकुम्भस्य वधं तथा ।

प्रब्रूहि वदता श्रेष्ठ परं कौतूहलं हि मे ॥२॥

दितिहन्तेषु पुत्रेषु विष्णुना प्रमविष्णुना ।

तपसाऽऽराधयामास मारीचं कश्यप पुरो ॥३॥

तपसा कालयुक्तेन तथा श्रुश्रूयया मुनेः ।

आनुकूल्येन च तथा माधुर्येण च भारत ॥४॥

परितुष्टः कश्यपस्तु तामुवाच तपोवनः ।  
 परितुष्टोऽस्मि ते भद्रे वरं वरय सुव्रते ॥५॥  
 हतपुत्राऽस्मि भगवन्देवैर्दर्मभृता वर ।  
 अवध्यं पुत्रमिच्छामि देवैर्मितविक्रमम् ॥६॥  
 अवध्यस्ते मुनो देवि दाक्षायणि भवेदिति ।  
 देवानां सशयो नान् कश्चित्कमललोचने ॥७॥  
 देवदेवमृते रुद्रं तस्य न प्रमवाम्यहम् ।  
 आत्मा ततस्ते पुत्रेण रक्षितव्यो हि सर्वथा ॥८॥

राजा जनमेजय ने कहा—हे मुनिवर ! आपसे पट्पुर वध का वृत्तान्त  
 न लिया, परन्तु अब अन्धक वर की क्या कहने की कृपा करें । मैं अन्धक  
 और निकुम्भ के वध और भानमती के अपहरण की क्या सुनने को अत्यन्त  
 लानाथित हूँ, इसलिये आप उसे मेरे प्रति कहिये ॥१-२॥ वसुम्पायनजी ने कहा  
 —हे राजन् ! जब भगवान् विष्णु ब्रह्म-ने शनियों को मार चुके, तब दैत्यों की  
 भीता दिति ने अपने पति महर्षि कश्यप को प्रसन्न किया ॥३॥ महर्षि कश्यप  
 उसकी सेवा-मुधूपा से अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—हे भद्रे ! मैं तुम पर प्रसन्न  
 होगया हूँ, अब तुम जो चाहो, वर मांगलो ॥४॥ इस पर दिति ने कहा—हे  
 भगवन् ! देवताओं ने मेरे सभी पुत्रों का वध कर दिया है, अब आप मुझे ऐसा  
 पुत्र प्रदान करें जो विदोष पराक्रम वाला हो तथा देवताओं के द्वारा न मारा जा  
 सके ॥५-६॥ तब कश्यपजी बोले—हे दाक्षायणि ! हे पद्मलोचने ! तुम्हें अब  
 जिस पुत्र की प्राप्ति होगी, उसे भगवान् रुद्र के अतिरिक्त अन्य कोई देवता नहीं  
 मार सकेगा, इसलिये उस वन्ही से सावधान रहना पड़ेगा ॥७-८॥

अन्वात्मत ता देवी कश्यपः सत्यवाग्य ।  
 अङ्गुलीदरदेशे तु सा पुत्रं सुपुत्रे ततः ॥९॥  
 सहस्रबाहुं कौस्त्य सहस्रशिरसं तथा ।  
 द्विसहस्रक्षणं चैव तावच्चरणमेव च ॥१०॥  
 स व्रजत्यन्धवद्यस्मादनन्योऽपि हि भारत ।  
 तमन्धकोऽयं नाम्नेति प्रोचुस्तत्र निवामिनः ॥११॥

अवध्योऽस्मीति लोकान्त सर्वांश्चाधति भारत ।  
 हरत्यपि च रत्नानि सर्वाण्य्वात्मयलाश्रयात् ॥१२  
 वासयत्यात्मवीर्येण निगृह्याप्सरसा गणान् ।  
 स वेश्मन्यूजितोऽत्यर्थं सर्वलोकभयकरः ॥१३  
 परदारापहरण पररत्नविलोपनम् ।  
 चकार सतत मोहादन्धक पापनिश्चयः ॥१४

इतना कह कर कश्यपजी ने अपनी अँगुली से दिति के उदर का स्पर्श किया, जिससे कुछ कालोपरान्त उसे एक पुत्र की प्राप्ति हुई ॥१२॥ उसके एक सहस्र हाथ, सहस्र शिर तथा दो सहस्र पाँव और दो ही सहस्र नेत्र थे ॥१०॥ दो हजार आँखों के होते हुए भी वह दैत्य अहंकार के कारण अन्धे के समान चलता था, इसीलिये वह अंधक नाम से प्रसिद्ध हुआ । ११ । वह अपने को तीनों लोकों में अवध्य मान कर सब प्राणियों को दुःख देता रहता और सब के धन, रत्नान्त्रि को छीन लेता ॥१२॥ उसने अनेकों अप्सराओं को पकड़ पकड़ कर अपने घर न लाकर रख लिया ॥१३॥ वह अत्यन्त भयकर एवं पापी महासुर पर-नारी, पर-धन और पर-रत्न को छूटने आदि दुष्कर्मों में सदा ही लगा रहता था ॥१४॥

त्रैलोक्यविजय कर्तुं मुद्यत स तु भारत ।  
 सहायैरसुरै साद्धं बहुभि सर्वैर्वपिभि ॥१५  
 तच्छ्रुत्वा भगवाञ्छक्र कश्यप पितर ब्रवीत् ।  
 अन्धकेनेदमारब्धमीदृश मुनिसत्तम ॥१६  
 आज्ञापय विभो कार्यमस्माक समनन्तरम् ।  
 यवीयस कथ नाम सोढव्य स्यान्मुने मया ॥१७  
 इष्टपुत्रे प्रहर्तव्य कथ नाम मया विभो ।  
 इहानभवती कुर्यान्मन्यु मयि हते सुते ॥१८  
 देवेन्द्रवचन श्रुत्वा कश्यपोऽयात्रवीन्मुनि ।  
 वारयिष्यामि देवेन्द्र सर्वथा भद्रमस्तु ते ॥१९  
 अन्धकं वारयामास दित्या सह तु कश्यप ।  
 त्रैलोक्यविजयाद्वीर कृच्छ्रकृच्छ्रेण भारत ॥२०

वारितोऽपि स दुष्टात्मा वाद्यत्येव दिवौकसः ।

तैस्तीरुपायेर्दुष्टात्मा प्रमथ्य च तथाऽमरान् ॥२१॥

कुछ कालोपरान्त उसने अन्यान्य देवों से मेन किया और उनके सहयोग से समस्त त्रैलोक्य को जीतने की तैयारी करने लगा ॥१५॥ यह बात जान कर देवराज इन्द्र ने महर्षि कश्यप की सेवा में उपस्थित होकर कहा—हे प्रभो ! अन्धकासुर के ऐसे कुत्सित कर्मों से सबने के लिये हमें क्या करना चाहिये ? यह आप हमारे प्रति कहें । छोटे भाई द्वारा की जाने वाली ऐसी उच्छृंखलता अब असह्य हो उठी है ॥१६-१७॥ माता दिति का उम पर अत्यन्त स्नेह है और यदि मैं अन्धक को मार दूँगा तो वे क्रुद्ध हो जायँगी ॥१८॥ इन्द्र की वान सुन कर महर्षि कश्यप ने कहा—इन्द्र ! तुम चिन्ता न करो, मैं उसे रोकने का यत्न करूँगा ॥१९॥ यह कह कर महर्षि कश्यप दिति के पास पहुँचे और तब दिति ने और उन्होंने अन्धक को समझाया कि ह वेदा ! तुम तीनों लोकों को जीतने की इच्छा का परिस्थान करो ॥२०॥ परन्तु, उसने माता-पिता की भी बात नहीं मानी तथा अब वह देवताओं और अन्यान्य जीवों की पहिले से भी अधिक सत्ताने लगा ॥२१॥

वमज्ज कानने वृक्षानुद्यानानि च दुर्मतिः ।

उच्चैः श्रव.मुनानश्वान्प्रलादप्यानयद्विबः ॥२२॥

नागान्दिशागजसुनान्दिव्यानपि च भारत ।

यलाद्वरति देवाना पश्यता वरदर्पितः ॥२३॥

देवानाप्यायपन्ते तु ये यज्ञस्तपसा तथा ।

तेषा चकार विघ्नं स दुष्टात्मा देवकण्ठकः ॥२४॥

नेजुर्यज्ञस्तयो वर्णास्तेषुश्च न तपास्यपि ।

अन्धकस्य भयाद्राजन्यज्ञविघ्नानि कुर्वतः ॥२५॥

तस्येच्छया वाति वायुरादित्यश्च तपत्युत ।

चन्द्रमा वा सनक्षत्रो दृश्यते नैव वा पुनः ॥२६॥

न ब्रजन्ति विमानानि विहार्यमिभयात्प्रभो ।

मन्धकस्यातिघोरस्य वलदृष्टस्य दुर्मते ॥२७॥

निरोद्धारवपट्कारं जगद्दीर तथाऽभवत् ।  
 अन्धकस्यातिघोरस्य भयात्कुरुकुलोद्धृ ॥२८॥  
 कुरु स्तथोत्तरान्पापो द्रावयामास भारत ।  
 भद्राश्वान्केतुमालाश्च जम्बुद्वीरास्तथैव च ॥२९॥  
 मानयन्ति च त देवा दानवाश्च दुरासदाः ।  
 भूतानि च तयान्यानि समर्थान्यपि सर्वथा ॥३०॥

उसने इन्द्र के नन्दन कानन के वृक्षों को उखाड़ कर उसे वीरान कर दि  
 और इन्द्र के उच्चैः श्रवा घोड़े के बालको का अपहरण कर लिया ॥२८॥  
 दिग्गजों के बालको को देवताओं के देखते-देखते उठा ले गया ॥२९॥ देवता  
 की तृप्ति के लिये जो पुरुष यज्ञ अथवा तप करता, उसके कार्य में सदा वि  
 डाल देता ॥२४॥ उसके डर से तीनो वर्ण वालों में से कोई भी यज्ञ या तप क  
 के लिये प्रयत्नवान् नहीं होता था ॥२५॥ वायु उसकी इच्छा से चलता था,  
 उसी के समेत पर प्रकाशित होता था, चन्द्रमा और नक्षत्र भी उसकी इ  
 बिना प्रकट नहीं होते थे ॥२६॥ उस दुर्बुद्धि वाले भयानकाकार अन्धक के  
 से आकाश में विमानों का उड़ना रुक गया ॥२७॥ उसी की उद्दण्डता के का  
 भोकार तथा वपट्कार के उच्चारण का भी कोई साहस नहीं करता था ॥२८॥  
 उसने उत्तरकुरु, भद्राश्व, केतुमाल और जम्बुद्वीप आदि में अपने पाप कर्मों  
 द्वारा हाहाकार मचा दिया था ॥२९॥ देवता, दैत्य तथा अन्याय्य बली पुरुष ...  
 उस दानव की सदैव सम्मान प्रदान करते रहते थे ॥३०॥

शृपयो वध्यमानास्तु समेमा ब्रह्मावादिन ।  
 अचिन्तयन्नन्धकस्य वध धर्मभृता वर ॥३१॥  
 तेषा वृहस्पतिर्मध्ये धीमानिदमयाब्रवीत् ।  
 नास्य रद्राहते मृत्युर्विद्यते च कथंचन ॥३२॥  
 तथा वरे दीयमाने कश्यपेनापि शब्दितः ।  
 नाह रुद्रात्परिनातुं शक्त इत्येव धीमतः ॥३३॥  
 तमुपाय चिन्तयामः शर्वो येन सनातनः ।  
 जानीयात्सर्वभूतानि पीडयमानानि शकरः ॥३४॥

विदितार्यो हि भगवानपश्य जगत प्रभु ।  
 अथ प्रमाज्जा देव करिष्यति सता गति ॥३५॥  
 व्रत हि देवदेवस्य भवस्य जगता गुरो ।  
 सन्तोऽसद्भ्यो रक्षितव्या ब्राह्मणास्तु विशेषतः ॥३६॥  
 ते वयं नारद सर्वे प्रयाम शरणं द्विजम् ।  
 उपायं वेत्स्यते तत्र वयस्यो हि भवस्य स ॥३७॥

इस प्रकार ससार के उपद्रव प्रसृत होने पर सभी ऋषिगण उसके मारने में एकमत होकर उपाय सोचने लगे ॥३५॥ सभी सब महर्षियों के मध्य में स्थित देवगुरु बृहस्पतिजी ने कहा— भगवान् शिवजी के अतिरिक्त और कोई भी उस दानव के वध में समर्थ नहीं है ॥३६॥ वर दत्त समय ब्रह्मपत्नी ने उससे कहा था कि शिवजी के अतिरिक्त अन्य सभी प्राणियों से तुम्हारा अवध्य रहना निश्चित है ॥३७॥ इसनिय अब ऐसा ही कुछ उपाय हो जिससे भगवान् उसके द्वारा होने वाले अत्याचारों से ज्वलग्न हो जायें। ऐसा होने पर वे साधुजनों का परित्राता अवश्य ही उसे मारने का प्रयत्न करेंगे। क्योंकि वे ब्राह्मणों पर तो वस भी विधाप कृत्य करते हैं ॥३४ ३५॥ इसनिय अब धर्म देवदेव भगवान् धरु के परम मित्र महर्षि नारद के पास जानना चाहिये उन्हीं से इस विपत्ति से मुक्त होने का उपाय जानना सकेगा ॥३७॥

बृहस्पतिवच श्रुत्वा सर्वेऽप्यथ तपोधना ।  
 तावद्दृष्टुराकशे प्राप्ता देवपिसत्तमम् ॥३८॥  
 पूजयित्वा ययान्याय सत्त्रयं त्रिविधमुनिम् ।  
 देवार्थं भयवन्नाधो बलासं व्रजं सत्वरम् ॥३९॥  
 त्रिजप्नु महसे देवमन्यकस्य वधे हरम् ।  
 त्राणार्थं नारदं प्रोक्तुस्तास्तयेति स चोत्तवान् ॥४०॥  
 श्रुत्वाप्यथ प्रयातेषु तत्त्वार्थं नारदो मुनिः ।  
 विचार्य मनसा विद्वानिति कार्यं स दृष्टवान् ॥४१॥  
 स देवदेवं भगवान्द्रष्टुं मुनिरयाययौ ।  
 मन्दास्वनमध्यस्था यत्नं नित्यं गृणध्वज ॥४२॥

स तत्र रजनीमेतामुपित्वा मुनिसत्तमः ।  
 मन्दाराणा वने रम्ये दयित. शूलपाणिन. ॥४३॥  
 आजगाम पुन स्वर्गं लब्ध्वाऽनुजा वृषध्वजात् ।  
 मन्दारपुष्पै सुकृता मालामावध्य भारत ॥४४॥  
 ग्रथिता सविशेषा ता सर्वगन्धोत्तमोत्तमाम् ।  
 सन्तानमाल्यदाम च तरेव कुमुमे कृतम् ॥४५॥

मुनिगणो ने इस प्रकार का विचार चल ही रहा था, तभी महर्षि नारद को आकाश मार्ग से आते हुए उन्होंने देखा ॥३८॥ तुरन्त ही उनका स्वागत-सत्कार किया गया और फिर उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना कर ऋषियों ने कहा — हे देवर्षि ! आप दीर्घ ही कैलाश के लिये गमन करें ॥ ३९ ॥ वहाँ आप सभी धार्ते यथावत वता कर भगवान् शंकर को लोक कल्याणार्थ गन्धकासुर को मारने के लिये प्रेरित करिये । यह सुन कर नारदजी ने वंसा करना स्वाभाविक ही ॥४०॥ वे तुरन्त ही कैलाश पर्वत के लिये चल दिये । मार्ग में उन्होंने बहुत विचार करने के पश्चात् एक श्रेष्ठ उपाय स्थिर किया । भगवान् शंकर मन्दार वन में रहते थे, नारदजी ने उस वन में पहुँच कर एक रात्रि निवास किया और दूसरे दिन सबेरा होते ही शिवजी की आज्ञा लेकर वहाँ से स्वर्ग लोक को चल दिये । चलते समय मन्दार के पुष्पों की एक माला वहाँ से ले आये ॥४१-४५॥

तच्च कण्ठे समासज्य महागन्ध नराधिप ।  
 आययावन्वको यत्न दुरात्मा बलदर्पित ॥४६॥  
 अन्धकस्त्वथ त दृष्टा गन्धमाघ्राय चोत्तमम् ।  
 सन्तानकाना स्रग्माला महागन्धा महामुने ॥४७॥  
 कुनाय पुष्पजातिर्वा कमनीया तपोधन ।  
 गन्धान्वर्णाञ्जुभास्तान्हि भो पुष्पति मुहुर्मुहुः ।  
 स्वर्गे सन्तानकुसुमान्यतिवर्तति सर्वथा ॥४८॥  
 क. प्रमुस्तस्य वृक्षस्य शक्य वाऽऽनयितुं मुने ।  
 आचक्ष्य यद्यनुग्राह्या वय ते देवतातिये ॥४९॥



तदनन्तर उस माला को पहिने हुए ही नारदजी उस वल के अहकार में मत्त दुरात्मा अन्धकासुर के पास पहुँचे ॥४६॥ अन्धक के नासिका रन्ध्रो में जब उस मन्दर-माला की सुगन्ध पहुँची, तब वह उसे देख कर बोला—हे मुनिश्रेष्ठ ! इस माला के सुन्दर रंग और मन को मोह लेने वाली सुगन्ध से मेरा चित्त बार-बार आकर्षित हो रहा है, इसकी सुगन्ध तो स्वर्ग के पारिजात से भी अत्यन्त श्रेष्ठ है, यह आपको कहीं से प्राप्त हुई ? ॥४७-४८॥ यह पुष्प कहीं का है ? उस स्थान का स्वामी कौन है ? यह किसके द्वारा प्राप्त हो सकता है ? यदि आपकी मुझ पर कृपा हो तो बताने का कष्ट करें ॥४९॥

तमुवाच मुनिश्रेष्ठः प्रहसन्निव भारत ।  
 आदाय दक्षिणे हस्ते महतस्तपसां निधिः ॥५०॥  
 मन्दरे पर्वतश्रेष्ठे वीर कामगम वनम् ।  
 तत्र चैत्रविधं पुष्पं भोः सृष्टिः शूलपाणिनः ॥५१॥  
 न तु तत्र वनं कश्चिदच्छन्देन महात्मनः ।  
 प्रवेष्टुं लभते तद्वि रक्षन्ति प्रवरोत्तमाः ॥५२॥  
 नानाप्रहरणा घोरा नानावेपा दुरासदाः ।  
 अवध्या सर्वभूतानां महादेवाभिरक्षिताः ॥५३॥  
 नित्यं प्रक्रीडते तत्र सोमः सप्रवरो हरः ।  
 मन्दारद्रुमखण्डेषु सर्वात्मा सर्वभावनः ॥५४॥  
 तपोविशेषैराराध्य हरं त्रिभुवनेश्वरम् ।  
 शक्यं मन्दारपुष्पाणि प्राप्तुं कश्यपवशजः ॥५५॥

हे राजन् ! नारदजी ने उसकी बात सुनी तो कुछ हँस कर उससे कहने लगे ॥५०॥ मन्दार पर्वत पर कामगम नामक एक श्रेष्ठ उपवन है, यह पुष्प-रत्न वहीं का है । यह उपवन भगवान् शकर द्वारा निर्मित हुआ है ॥५१॥ शिवजी की आज्ञा के बिना वहाँ कोई नहीं जा सकता, क्योंकि वनक प्रवार का वेश विचारण करने वाले और विविध रन्ध्रों में मुमुक्षु प्रमथण करने की रीति में निरुत्त है । शिवजी की कृपा से उन प्रमथण की कोई भी नहीं मार सकता

॥५२-५३॥ वहाँ अपने गणों के साथ चन्द्रमा नित्य विराजमान रहते हुए मन्दार वृक्षों में विचरण करते रहते हैं । इसलिये जब तक उन सर्वात्मा भगवान् शिवजी को तप के द्वारा प्रसन्न ■ कर लिया जाय, तब तक मन्दार-पुष्प का प्राप्त होना नितांत असम्भव है ॥५४-५५॥

स्त्रीरत्नमणिरत्नानि यानि चान्यानि चाप्यथ ।  
काङ्क्षितानि फलन्ति स्म ते द्रुमा हरवल्लभा ॥५६  
न तत्र सूर्य सोमोऽथ तपत्यतुलविक्रम ।  
स्वयम्भ तरुवन तद्भू दुःखविजितम् ॥५७  
तत्र गन्धान्मन्त्रवन्त्यन्ये नीराण्यन्ये महाद्रुमा ।  
वासांसि विविधात्यन्ये सुगन्धीनि महाबल ॥५८  
भक्ष्य भोज्य च पेय च चोष्य लेह्य तथैव च ।  
तरुभ्य स्रवते तेभ्यो विविध मनसेप्सिम् ॥५९  
पिपासा वा बुभुक्षा वा ग्लानिश्चिन्ताऽपि वाऽनघ ।  
न मन्दारवने वीर भवतीत्युपधायताम् ॥६०  
न ते वर्णयितुं शक्या गुणा वर्षशतैरपि ।  
गुणा ये तत्र बद्धन्ते स्वर्गादिवहुगुणोत्तरा ॥६१  
अतीव हि जयेल्लोकान्स महेन्द्रान्न सशय ।  
एकाहमपि मस्तत्र वसेच्च दितिजोत्तम ॥६२  
स्वर्गस्यापि हि तत्स्वर्ग मुखानामपि तत्सुखम् ।  
बभूव जगत् सर्वमिति मे धीयते मन ॥६३

उस मन्दार वृक्ष की ऐसी महिमा है कि स्त्री, मणि अथवा अन्यान्य कोई भी वस्तु माँगने पर वह तुरन्त प्रदान करने वाला होता है ॥५६॥ यद्यपि वहाँ भूयन्-चन्द्रमा का प्रकाश नहीं पहुँचता, फिर भी वह वन अपने ही प्रकाश से सदा प्रकाशित रहता है ॥५७॥ वहाँ किसी वृक्ष से सुगंधियाँ, किसी से वसन, किसी से चर्व्य, किसी से चोष्य, तथा विविध प्रकार के लेह्य, पेय आदि पकवान भी प्राप्त हो जाते हैं ॥५८-५९॥ वहाँ भूख, प्यास, चिन्ता अथवा ग्लानि जैसी बाधाएँ

उपस्थित नहीं होजी ॥६०॥ उस महाबल के महान् गुणों को तो सौ वर्ष में भी नहीं कहा जा सकता । इतना ही समय लो कि उस कामगम नामक वन के सामन स्वर्ग का नन्दन कानन भी तुच्छ है ॥६१॥ हे दैत्यप्रेष्ठ ! उस उपवन में एक दिन भी निवास कर लेने वाले के लिये इन्द्र सहित सब लोकों का जीत लेना भी एक साधारण काय है ॥६२॥ इस प्रकार वह स्थान स्वर्ग का भी स्वर्ग है और मैं तो एसा समझता हूँ कि वंश सुख और किसी भी स्थान में उपलब्ध नहीं हो सकता ॥६३॥

॥ भगवान् शंकर द्वारा अन्धक वध ॥

अन्धको नारदवच श्रुत्या तत्त्वन भारत ।  
मन्दर पर्वत गन्तु मनो दध्रे महासुर ॥१॥  
सोऽसुरान्सुमहातेजा समानीय महाबल ।  
जगाम मन्दर क्रुद्धो महादेवालय तदा ॥२॥  
त महाभ्रप्रतिच्छन्न महोपधिममाकुलम् ।  
नानामिद्धममाकीर्णं महर्षिगणसवितम् ॥३॥  
चन्दनागुरुवृक्षाढ्य सरलद्रुमसकुलम् ।  
किन्नरोद्गीतरम्य च बहुनागकुलाकुलम् ॥४॥  
चातोदतूतर्वनं पुन्लेन त्यन्तमिव च क्वचित् ।  
प्रलूतं ग्रातुभिश्चित्रं विलिप्तमिव च क्वचित् ॥५॥  
पक्षिस्वनं सुमधुरं रनदन्तमिव च क्वचित् ।  
हसं श्रुतिपदै कीर्णं सपतद्भिरितस्तत ॥६॥  
महाबलंश्च महिषंश्चरद्भिरित्यनाशनं ।  
चन्द्राशुकिमलं सिंहैर्भूषितं हेमसचयम् ॥७॥  
मृगराजसमाकीर्णं मृगवृन्दनिपेयिनम् ।  
स मन्दर गिरिं प्राह रूपेण बलदपित ॥८॥

वंशम्पायनजी ने कहा—हे राजन् ! देवर्षि नारद के मुख से कामगम को

ऐसी महिमा सुन कर अन्धकासुर ने मन्दरपर्वत पर जाने का विचार स्थिर किया और वह अपने साथ बहुत से दैत्यो को लेकर शिवजी के निवास स्थान की ओर वेगपूर्वक चल दिया ॥१२॥ वह पर्वत सदा ही मेघों द्वारा आच्छादित रहता था, उस पर अष्टस्य सिद्ध और महर्षि निवास किया करते थे ॥३॥ उस पर स खोर चन्दन, अगुरु साल तथा विभिन्न प्रकार की औषधियों के वृक्ष स्थित थे वहाँ कहीं किन्नरों का गान चलता रहता और कहीं सर्पों का सनूह घूमता दिखाई देता ॥४॥ किसी स्थान पर वायु के झोको से वह वन नृत्य करता हुआ सा प्रतीत होता और कहीं सु दूर पाँवों वाले श्रेष्ठ हंस विचरण करते देखे जाते ॥५-६॥ कहीं दैत्यो को मारने वाले पराक्रमी भैंसे, कहीं चन्द्रमा के समान उज्ज्वल सिंह और कहीं दल के दल मृगों के झुण्ड विचरते रहते । उस अहंकारी अन्धक ने वहाँ जाकर मूर्त रूप से उपस्थित हुए मन्दर पर्वत से कहा ॥७-८॥

वेत्सि त्व हि यथाऽवध्यो वरदानादहं पितु ।

मम चैव वशे सर्वे सैलोक्य सचराचरम् ॥९॥

प्रतियोद्धु न मा कश्चिदिच्छत्यपि गिरे भयात् ।

पारिजातवन चास्ति तव सानो महागिरे ।

सर्वं कामप्रदं पुष्पं भूषित रत्नमुत्तमम् ॥१०॥

तदाचक्ष्वोपभाषयामि तद्वनं तव सानुजम् ।

किं करिष्यसि ऋद्धस्त्व मनो हि त्वरते मम ॥११॥

प्रातार नानृपश्यामि मया पत्युर्दितस्य ते ।

इत्युक्त्वा मन्दरस्तेन तर्पणान्तरधीयत ॥१२॥

ततोऽन्धकोऽतिरूपितो वरदानेन दत्तः ।

मुमोच नाद मुमहृदिद वचनमत्रयोत् ॥१३॥

मया वै त्व याच्यमानो यस्मान्न बहु मन्यसे ।

अहं पूर्णोऽहोमि त्वा वल पर्वत पश्य मे ॥१४॥

धरे पर्वत ! तुम जानते हो कि मैं अपने पिता से किसी से द्वारा भी नहीं  
जाने का वर प्राप्त कर चुका हूँ और तीनों लोकों का सब प्राणी भरे हो

अश्रित है ॥६॥ डर के कारण मुझसे कोई भी युद्ध करने के लिये अप्रसन्न नहीं होता । मुझे ज्ञात हुआ है कि तुम्हारे शिखर पर पारिजात वन विद्यमान है, जिसके पुष्प अमिलवित फल के देने वाले हैं ॥१०॥ इसलिये यदि तुम्हारी सहमति हो तो मैं उस अपन घर पर ले जाऊँ । मैं इस कार्य में देर करना उचित नहीं समझता । यदि तुम सहमत न होगे तो मेरा कुछ विगाह भी न सकोगे ॥११॥ क्योंकि मुझे यहाँ तुम्हारा कोई रक्षक भी दिखाई नहीं देता । हे राजन् ! अन्धकामुर की बात सुन कर मन्दर पर्वत अभी समय अवश्य हीगया ॥१२॥ तब वर के अहंकार में भर हुए अन्धकामुर ने अत्यन्त क्रोधपूर्वक गर्जना की और उच्च स्वर से बोला—ह मन्दर ! मैंने तुमसे निवेदन किया था, जिस तुमने ठुकरा दिया । परन्तु, अब तुम्ह वही भी ठिठाना नहीं मिलेगा, मैं तुम्ह अभी चूण लिय डालता हूँ, अब तुम मेरे पराक्रम की देखो ॥१३-१४॥

एवमुक्त्वा गिरे शृङ्गमुत्पाट्य बहुयोजनम् ।  
निष्पेष गिरेस्नस्य शृङ्गेऽवन्यत्र वीर्ययान् ॥१५॥  
रा हतैरसुरैः सर्वैर्वरदानेन दपितः ।  
त प्रच्छन्ननदीजालं भज्यमानं महागिरिम् ॥१६॥  
विदित्वा भगवान् रुद्रश्चकारानुग्रहं गिरेः ।  
सविशपतरं वीरं मत्तद्विषमृगायुनम् ॥१७॥  
नदीजालैर्वदृतैराचितं चित्रकाननम् ।  
नभश्च्युतं पुगं यद्वत्तद्वदेव विराजते ॥१८॥  
अथ देवप्रभावेण शृङ्गाण्युत्पाटितानि तु ।  
क्षिप्तानि चामुरानेव घ्नन्ति वीराणि भारत ॥१९॥  
क्षिप्त्वा ये प्रपलायन्ते शृङ्गाणि तु महामुराः ।  
शृङ्गैस्तैस्तैः स्म वध्यन्ति पर्वतस्य जनाधिपः ॥२०॥  
ये स्वम्यास्त्वमुरास्तत्र तिष्ठन्ति गिरिसानुषु ।  
शृङ्गैस्तेन स्म वध्यन्ते मन्दरस्य महागिरेः ॥२१॥

उसने यह कह कर पर्वत का एक शिखर उखाड़ा और वही फेंक कर चूण-चूर कर दिया । उस समय उसके साथी दानवगण भी उसके इस कार्य में

सहायक हुए । उस पर्वत पर अनेक नदिवाँ प्रवाहमाना थी ॥१५-१६॥ पर्वत  
 यह दशा देख कर भगवान् रुद्र को दया आ गई और उनके अनुग्रह को प्राप्त हो  
 वह मत्त मातंग, अद्भुत वनस्थली और स्वर्गीय नदियों से युक्त पर्वत पहले जैसा  
 ही होगया ॥१७-१८॥ अब वे दानव पर्वत के जिस शिखर को उखाड़ कर फेंके,  
 वह उन दानवों पर ही गिर कर उन्हें नष्ट करने लगा ॥१९॥ इस प्रकार पर्वत-  
 शिखर उठा कर फेंकना उन दैत्यों के लिये मृत्यु स्वस्व होगया ॥२०॥ जो दैत  
 किसी कदरा में जा छिपते, वे भी किसी अन्य शिखर के गिरने पर नष्ट हो  
 जाते ॥२१॥

ततोऽन्धकस्तदा दृष्ट्वा सेनां तां मदिता तया ।

रुपित. सुमहानाद नर्दित्वैव तदाऽग्रवीत् ॥२२॥

आह्वये त वन यस्य युद्धार्थमुपतिष्ठतु ।

किं त्वयाऽचल युद्धेन हता स्म छान्ना रणे ॥२३॥

एवमुक्ते त्वन्धकेन वृषभेण महेश्वरः ।

संप्राप्त. शूलमुद्यम्य देवोऽन्धकजिघांसया ॥२४॥

प्रमथाना गर्जन्वीमान्मृतो वं बहु रोवनः ।

तथा भूतगणैश्चैव धीमान्भूतगणेश्वरः ॥२५॥

प्रचक्रम्ये तत. कृत्स्नं त्रैलोक्य रुपिते हरे ।

सिन्धवश्च प्रतिलोतमू ह्रुः प्रज्वलितोदकाः ॥२६॥

जग्मुर्दिशोऽग्निदाहाश्च सर्वे ते हरतेजसा ।

युयुधुश्च ग्रहाः सर्वे विपरीता जनाधिप ॥२७॥

चेलुश्च गिरयस्तत्र काले कुरुकुलोद्वह ।

प्रबवर्षाय पर्जन्यः सधूमाङ्गारवृष्टयः ॥२८॥

इस प्रकार अपने अनुचरों की दशा देख कर अन्धका  
 हुआ और उसने बड़ा भीषण गर्जन करते हुए कहा—हे पर्वतधेनु  
 प्रकार छल करते हुए मेरे अनुगतों को नृणं क्यों किये डालते हो ? इ  
 उस वन के स्वामी का युद्ध के लिये आह्वान कर रहा है, वह तुरन्त  
 सामने आवे ॥२२-२३॥ यह गुा कर भूनेश्वर भगवान् रुद्र अपने नन्दी

हृदय में त्रिशूल धारण किये अन्धकासुर को मारने के लिये प्रमथगणों और त्रिगणों के सहित उसके सामने आगये ॥२४-२५॥ भगवान् शंकर के क्रोधित होने से तीनो लोक कम्पायमान हो उठे, नदियों का जल विपरीत दिशाओं में हता हुआ खोलने लगा ॥२६॥ दसो दिशाएँ उनके तेज से प्रज्ज्वलित हो उठी, हो का मार्ग परिवर्तित होगया और वह परस्पर टकराने लगे ॥२७॥ सभी पर्वत हल उठे, आकाश पर अग्निमय मेघ छागये और धुएँ वाले अगार बरसने लगे ॥२८॥

उष्णभाश्चन्द्रमाश्चासीत्सूर्यः शीतप्रभस्तथा ।  
न ब्रह्म विविदुस्तत्र मुनयो ब्रह्मवादिनः ॥२९॥  
बहवाः सुपुबुर्गाश्च गावोऽश्वानपि चानपि ।  
पेनुवृक्षाश्च मेदिन्यामच्छिन्ना भस्मसात्कृताः ॥३०॥  
वाधन्ते वृषभा गाश्च गावश्चारुहृदृपान् ।  
राक्षसा यातुधानाश्च पिशाचाश्चापि सर्वशः ॥३१॥  
विपरीत जगद्दृष्ट्वा महादेवस्तथागतम् ।  
मुमोच भगवान्छूलं प्रदीप्ताग्निममप्रभम् ॥३२॥  
तत्पपात रहोत्पृष्टमन्धकोरसि दुर्धरम् ।  
भस्मसाच्चाकारोद्ग्रीवमन्धक साधुकण्टकम् ॥३३॥  
ततो देवगणाः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः ।  
शकरं तुष्ट्वुश्चैव जगच्छनौ निर्वहिते ॥३४॥  
देवदुन्दुभयो नेदुः पुण्यवृष्टिः पपात ह ।  
त्रैलोक्य निर्वृत चासीन्रेद्र विगतज्वरम् ॥३५॥

सूर्य-रश्मियों में उष्णता न रही, चन्द्रमा की चाँदनी गमं होगई तथा ब्रह्मवादिनों को ब्रह्म ही विस्मृत होगया ॥२९॥ घोड़ी गौ का बछड़ा उत्पन्न करने लगी और गौ के घोड़ा उत्पन्न होने लगे । वृक्ष बिना काटे ही पृथिवी पर गिर कर भस्म होगये ॥३०॥ बंस और गौ विपरीत आचरण करने लगे ठहर ठहर और जस, भूत, पिशाचादि फेरी लगाने लगे ॥३१॥ जब भगवान् रुद्र ने ससार में

इस प्रकार का विपरीत प्रभाव उपस्थित देता तब उन्होंने आने अग्नि सह  
त्रिशूल को अन्धकासुर पर चलाया जो कि तेशी से जाता हुआ उस दानवबाल  
हृदय पर बैठता । उस त्रिशूल के आघात से सन्तजनों का वीर अन्धकासुर ब  
कर भस्म होगया ॥३२-३३॥ ससार के उस शत्रु के मर जाने पर सभी देव  
और मुनिजन भगवान् शंकर की स्तुति करने लगे ॥३४॥ आकाश से पुष्पवृ  
हर्ष, दुदुभि आदि बाजे बज उठे, तीनों लोकों का आस नष्ट होगया और व  
सुख छागया ॥३५॥

प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।  
जेपुष्पच ब्राह्मणा वेदानीजुश्च क्रतुभिस्तदा ॥३६॥  
ग्रहा प्रकृतिमापेदुरुहर्नद्यो यथा पुरा ।  
न जज्वाल जले वह्निराशाः सर्वाः प्रसेदिरे ॥३७॥  
मन्दरः पर्वतश्रेष्ठः पुनरेव रराज ह ।  
श्रिया परमया जुष्टः सर्वतेजःसमुच्छ्रयात् ॥३८॥  
रेमे सोमश्च भगवान्पारिजातवने हरः ।  
सुप्रचारामुरान्कृत्वा शक्रादीन्धर्मतः प्रभु ॥३९॥

देवता और गणवं गाने लगे, अप्सराएँ नृत्य करने लगी और ब्राह्म  
वेदाध्ययन एवं यज्ञानुष्ठानों में लग गये ॥३६॥ ग्रहणए, नदियाँ, जल और व  
सभी प्रकृतिस्थ होगये और सब दिशाएँ स्वच्छ होगई ॥३७॥ मन्दरावल  
गई हुई शोभा पुनः लौट आई, इससे वह पूर्ववत् आकर्षक होगया ॥३८॥  
प्रकार भगवान् शंकर ने इन्द्रादि सब देवताओं को सकट मुक्त किया और  
अपने उसी वन में जाकर विराजमान होगये ॥३९॥



